पुनर्नवा

आचार्य द्विवेदी की अन्य कृतियाँ

उपन्यास

चारुचन्द्रलेख   २२·००
बाणभट्ट की आत्मकथा   ७·५०

आलोचना

नाट्यशास्त्र की भारतीय
    परम्परा और दशरूपक   १८·००
हिन्दी साहित्य की भूमिका   ११·००
मृत्युंजय रवीन्द्र   ७·५०
कालिदास की लालित्य योजना   ९·००

ललित-निबन्ध

कल्पलता   ७ ००
आलोक-पर्व   १४·००

पुनर्नवा

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली-११०००६ : पटना-८००००६

"अगर निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाएं तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।"

पु। न। र्न। वा

एक

देवरात साधु पुरुष थे। कोई नहीं जानता था कि वे कहाँ से आकर हलद्वीप में बस गये थे। लोगों में उनके विषय में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ थीं। कोई कहता था, वे कुलूत देश के राजकुमार थे और विमाता से अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार प्राप्त करने के बाद संसार से विरक्त होकर इधर चले आये थे। कुछ लोग बताते थे कि बाल्यावस्था में ही उन्हें मंजलि नामक किसी सिद्ध पुरुष से परिचय हो गया और उनके उपदेशों से वे संसार त्यागकर रमता राम बन गये। उनके गौर शरीर, प्रशस्त ललाट, दीर्घ नेत्र, कपाट के समान वक्ष स्थल, आजानुविलम्बित बाहुओं को देखकर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता था कि वे किसी बड़े कुल में उत्पन्न हुए हैं। उनके शरीर में पुरुषोचित तेज और शौर्य दमकता रहता था और मन में अद्भुत औदार्य और करुणा की भावना थी। वे संस्कृत और प्राकृत के अच्छे कवि भी थे और वीणा, वेणु, मुरज और मृदंग-जैसे विभिन्न श्रेणी के वाद्य-यन्त्रों के कुशल वादक भी थे। चित्र-कर्म में भी वे कुशल माने जाते थे। यह प्रसिद्ध था कि क्षिप्तेश्वरनाथ महादेव के मन्दिर के भीतरी भाग में जो भित्तिचित्र बने थे, वे देवरात की ही चमत्कारी लेखनी के फल थे। शील, सौजन्य, औदार्य और मृदुता के वे यद्यपि आश्रय माने जाते थे, परन्तु फिर भी उन्होंने वैराग्य ग्रहण किया था। हलद्वीप के राज-परिवार में उनका बड़ा सम्मान था। जब कभी राजा के यहाँ कोई उत्सव होता था, वे ससम्मान बुलाये जाते थे। वे यज्ञ-याग में उसी उत्साह के साथ सम्मिलित होते थे जिस उत्साह के साथ मल्ल-समाह्वय में। वे पण्डितों की वाद-सभा में भी रस लेते थे और नृत्यगीत के आयोजनों में भी। लोगों का विश्वास था कि उन्हें संसार के किसी विषय से आसक्ति नहीं थी। उनका एकमात्र व्यसन

था दीन-दुखियों की सेवा, बालकों को पढ़ाना और उन्हीं के साथ खेलना। यद्यपि वे अनेक शास्त्रो के ज्ञाता थे और भगवद्-भक्त भी माने जाते थे, परन्तु वे नियमो और आचारो के बन्धनों मे कभी नही पडे। साधारण जनता मे उनकी रहस्यमयी शक्तियों पर बडी आस्था थी परन्तु किसी ने उन्हें कभी पूजा-पाठ करते भी नही देखा।

देवरात का आश्रम हलद्वीप से सटा हुआ, थोडा पश्चिम की ओर महा-सरयू के तट पर अवस्थित था। च्यवनभूमि के चौधरी वृद्धगोप उन पर बडी श्रद्धा रखते थे। वृद्धगोप का इस क्षेत्र मे बडा सम्मान था। उनके पूर्व-पुरुष मथुरा से शुग राजाओ की सेना के साथ आकर यही बस गये थे। नन्दगोप के वशधर होने के कारण उनका कुल जनता की श्रद्धा और विश्वास का पात्र था। वृद्धगोप के दो पुत्र थे जिनमे एक तो वस्तुतः ब्राह्मण-कुमार था जिसे उन्होने यत्न और स्नेह से पाला था। कुछ साँवला होने के कारण उन्होंने इसका नाम दिया था श्यामरूप। दूसरा आर्यक उनका अपना लडका था। श्यामरूप को उन्होने देवरात के आश्रम मे पढने के लिए भेजने का निश्चय किया। उस समय उसकी अवस्था आठ या नौ वर्ष की थी। जब श्यामरूप आश्रम मे जाने लगा तो चार-पाँच वर्ष की अवस्था का आर्यक भी पाठशाला जाने के लिए मचल उठा। वृद्धगोप आर्यक को अपनी वश-परम्परा के अनुकूल मल्ल-विद्या की शिक्षा देना चाहते थे, परन्तु उसके हठ को देखते हुए उन्होने उसे भी पाठ-शाला जाने की आज्ञा दे दी। देवरात इन दोनो शिष्यो को पाकर बहुत अधिक प्रसन्न हुए। उन्होने वृद्धगोप से आग्रह किया कि दोनो बच्चो को उनके आश्रम मे पढने दिया जाये। उन्होने गद्गद भाव से वृद्धगोप से कहा था कि उन्हे ऐसा लग रहा है जैसे स्वयं बलराम और कृष्ण ही इन दो बच्चो के रूप मे उनके सामने आ गये हैं। भाव-गद्गद होकर दोनो बच्चो को गोद मे लेकर वे देर तक बैठे रहे और फिर आकाश की ओर देखकर बोले, 'प्रभो! यह कैसी अपूर्व लीला है! आज तुमने गौर रूप धारण किया है और बडे भैया को श्यामरूप दे दिया है।' वृद्धगोप ने सुना तो उन्हे रोमाच हो आया। उन्हे लगा कि सच-मुच ही जिस प्रकार नन्दगोप की गोदी मे बलराम और कृष्ण आ गये थे, वैसे ही उनकी गोदी मे श्यामरूप और आर्यक आ गये हैं। महात्मा देवरात के चरणों मे साष्टाग दण्डवत् करते हुए उन्होने कहा, 'आर्य, आज मेरा जन्म-जन्मान्तर कृतार्थ जान पडता है। आपने ही इन दोनो बच्चो मे बलराम और कृष्ण का रूप देखा है और आप ही इन्हे बलराम और कृष्ण बना सकते हैं। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि श्यामरूप अपनी वश-परम्परा के अनुसार पण्डित बने और आर्यक अपनी वश-परम्परा के अनुसार अजेय मल्ल बने, परन्तु आपके चरणो मे इन्हे सौंपकर मैं निश्चिन्त हुआ हूँ। आप इन्हे यथोचित शिक्षा दें।' देवरात

देर तक दोनों बच्चों के शारीरिक लक्षणों की परीक्षा करते रहे और उल्लसित स्वर में बोले, 'चिन्ता न करें भद्र, ये दोनों ही बच्चे पण्डित भी बनेंगे और अजेय मल्ल भी। आर्यक में चक्रवर्ती के सब लक्षण दिखाई दे रहे हैं। यदि सामुद्रिक-शास्त्र सत्य है तो आर्यक दिग्विजयी होकर रहेगा और श्यामरूप उसका महामात्य बनेगा।' फिर आर्यक की ओर ध्यान से देखते हुए बोले, 'मेरा मन कहता है कि यह बालक वृद्धगोप के घर में गाय चराने के लिए पैदा नहीं हुआ है। यह बहुत बड़ा होगा, बहुत बड़ा!' वृद्धगोप सन्तुष्ट होकर घर लौट आये। दोनों बच्चे देवरात की देख-रेख में पढ़ने और बढ़ने लगे। देवरात ने त्रिलिंग देश के मल्ल राजुल को उन्हें व्यायाम और मल्ल-विद्या सिखाने के लिए नियुक्त किया।

देवरात दीन-दुखियों की सेवा में सदा तत्पर रहा करते थे। उन्हें किसी से कुछ लेना-देना नहीं था। परन्तु उनकी कला-मर्मज्ञता का राजभवन में भी सम्मान था। हलद्वीप की जनता का विश्वास था कि देवरात जो हलद्वीप में टिक गये हैं, उसका मुख्य कारण राजा का आग्रह और सम्मान है। अन्तःपुर में भी उनका अबाध प्रवेश था। वस्तुतः वे राजा और प्रजा दोनों के ही सम्मानभाजन थे।

देवरात के शील, सौजन्य, कलाप्रेम और विद्वत्ता ने हलद्वीप की जनता का मन मोह लिया था। लोग कानाफूसी किया करते थे कि उनका विरोध सिर्फ एक ही व्यक्ति की ओर से है। वह थी हलद्वीप के छोटे नगर की नगरश्री मंजुला। सारे नगर में उसके रूप, शील, औदार्य और कला-पटुता की धूम थी। बड़े-बड़े श्रेष्ठि-कुमार उसके कृपा-कटाक्ष के लिए लालायित रहा करते थे। उसके नृत्य में मादकता थी और कण्ठ में अमृत का रस। हलद्वीप में वह अत्यन्त अभिमानिनी गणिका के रूप में विख्यात थी और अपने विशाल सतखण्ड हर्म्य के बाहर बहुत कम जाती थी। केवल विशेष-विशेष अवसरों पर आयोजित राजकीय उत्सवों में वह अपना नृत्यकौशल दिखाया करती थी। अन्य अवसरों पर नृत्य और गीत के प्रेमियों को उसके द्वारस्थ होकर ही अपना मनोरथ पूरा करना पड़ता था। उसके अभिमान और आत्मगौरव के सम्बन्ध में लोगों में अनेक प्रकार की किंवदन्तियां प्रचलित थीं। कहा तो यहाँ तक जाता था कि कला-चातुरी के बारे में राजा भी उसकी आलोचना करने में हिचकते थे।

हलद्वीप के पश्चिमी किनारे पर, जहाँ बोधसागर की सीमा समाप्त होती थी, एक ऊँचा-सा बड़ा टीला था। बरसात में जब बोधसागर में पानी भर जाता था और महासरयू में भी उफान आता था, तो यह टीला चारों ओर पानी से घिर जाता था। इसीलिए वह हलद्वीप में एक दूसरे द्वीप की तरह

दिखाई देता था। उसका नाम 'द्वीपखण्ड' सर्वथा उचित ही था। इसी द्वीप-खण्ड के दक्षिण-पूर्वी छोर पर हलद्वीप का 'सरस्वती-विहार' था। वसंतारम्भ के दिन इस सरस्वती-विहार में काव्य, नृत्य, संगीत आदि का बहुत बड़ा आयोजन हुआ करता था। उस दिन राजा स्वयं इन उत्सवों का नेतृत्व करते थे। कई दिन तक नृत्य-गीत के साथ-साथ अक्षरच्युतक, बिन्दुमती, प्रहेलिका आदि की प्रतियोगिताएँ चलती थीं, न्याय और व्याकरण के शास्त्रार्थ हुआ करते थे, कवियों की समस्यापूर्ति की प्रतिद्वन्द्विता भी चला करती थी, और देश-विदेश से आये हुए प्रख्यात मल्लों की कुश्तियाँ भी।

राजा के सभापतित्व में ही एक बार मंजुला का नृत्य इसी सरस्वती-विहार में हुआ। देवरात भी सदा की भाँति आमन्त्रित थे। मंजुला ने उस दिन बड़ा ही मनोहर नृत्य किया था। स्वयं राजा ने उसे उस नृत्य के लिए साधुवाद दिया था। देवरात भाव-गद्गद होकर देर तक उस मादक नृत्य का आनन्द लेते रहे। मंजुला ने उस दिन पूरी तैयारी की थी। उस दिन उसकी सम्पूर्ण देहलता किसी निपुण कवि द्वारा निबद्ध छन्दोधारा की भाँति लहरा रही थी, द्रुत-मन्थर गति अनायास विविध भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त कर रही थी मानो किसी कुशल चित्रकार द्वारा चित्रित कल्पवल्ली ही सजीव होकर थिरक उठी हो, उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें कटाक्ष-विक्षेप की घूर्णमान परम्पराओं का इस प्रकार निर्माण कर रही थीं जैसे नीलकमलों का चक्रवाल ही चंचल हो उठा हो, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उसका मुखमण्डल चारियों के वेग से इस प्रकार घूम रहा था कि जान पड़ता था, शत-शत चन्द्रमण्डल ही आरात्रिक प्रदीपों की अराल-माला में गुँथकर जगर-मगर दीप्ति उत्पन्न कर रहे हों। उसकी नृत्य-भंगिमा से नाना स्थिति की भावमुद्राएँ अनायास निखर उठी थीं। उसके कन्धे के नीचे मृणाल-कोमल भुज-युगल सुकुमार-संग्रथित द्विपदी-खण्ड के समान भाव-परम्परा में वलयित हो उठते थे। वस्तुतः पूर्वानिल के झोंकों से झूमती हुई शतावरी लता के समान उसकी सम्पूर्ण देह-वल्लरी ही भावोल्लास की तरंग से लीलायित हो उठी थी। ऐसा लगता था, वह छन्दों से ही बनी है, रागों से ही पल्लवित हुई है, तानों से सँवारी गयी है और तालों से ही कसी गयी है। सभा एकाग्र की भाँति, चित्रलिखित की भाँति, मन्त्रमुग्ध की भाँति, साँस रोककर उस अपूर्व तालानुग उत्ताल-नर्तन का आनन्द ले रही थी। नृत्य की समाप्ति के बाद भी एक प्रकार की मादक विह्वलता छायी हुई थी। महाराज के साथ सम्पूर्ण राज-सभा ने उल्लसित स्वर में 'साधु-साधु' की हर्षध्वनि की। देवरात निर्वात-निष्कम्प दीपशिखा की भाँति, निस्तरंग जलाशय की भाँति, वृष्टिपूर्वक घनघुम्मर मेघमाला की भाँति स्थिर बने रहे। मंजुला ने गर्वपूर्वक उनकी ओर देखा। वे शान्त बने रहे। ऐसा लगता था कि वे अब भी

भाव-विह्वल अवस्था में थे। महाराज ने उन्हें सचेत किया, 'आर्य देवरात, नृत्य कैसा लगा आपको?' ऐसा लगा कि देवरात आयासपूर्वक अपनी संज्ञा के खोये हुए तन्तुओं को समेटने लगे। बोले, 'क्या कहना है महाराज, मंजुला देवी ने आज नृत्य-कला को धन्य कर दिया है। शास्त्रकारों ने जो नृत्य को देवताओं का चाक्षुष यज्ञ कहा है वह बात आज प्रत्यक्ष देख सका हूँ।' फिर मंजुला को सम्बोधन करते हुए बोले, 'धन्य हो देवि, ताल तुम्हारे चरणों का दास है, भाव तुम्हारे मुखमण्डल का मुँह जोहता रहता है...' कहते-कहते वे बीच ही में रुक गये। स्पष्ट जान पड़ा कि वे कुछ और कहना चाहते थे पर कह नहीं सके हैं। महाराज ने जानबूझकर छेड़ा, 'कुछ त्रुटि भी रह गयी है क्या, आर्य?' मंजुला मन-ही-मन जल उठी। उसे लगा कि देवरात कुछ दोषोद्गार करने के लिए ही यह मीठी भूमिका बाँध रहे हैं। इसके पहले भी कई बार मंजुला देवरात की आलोचना सुन चुकी थी। यद्यपि देवरात ने कभी भी ऐसी कोई बात नहीं कही जिसमें रंचमात्र भी अश्रद्धा प्रकट हुई हो, पर मंजुला ने सदा उनकी आलोचनाओं में द्वेष-भाव ही देखा था। आज भी उसे लगा कि देवरात कुछ ऐसा ही करने जा रहे हैं।

परन्तु देवरात कभी विद्वेष-बुद्धि से किसी को कुछ नहीं कहते थे। उन्हें सचमुच मंजुला का नृत्य अच्छा लगा था, यद्यपि वे उससे कुछ अधिक की आशा रखते थे। मंजुला को ही सम्बोधन करते हुए बोले, 'बड़ा ही रमणीय साधन तुम्हें मिला है, देवि! अपने को खोकर ही अपने को पाया जा सकता है। तुम्हारा नृत्य इसी महासाधना की ओर अग्रसर हो रहा है। इस महाविद्या के बल पर ही एक दिन तुम स्वयं को दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर महा-अज्ञात के चरणों में दे सकोगी।' फिर यह सोचकर कि कहीं मंजुला के चित्त को ठेस न पहुँच जाये, वे फिर उसी को सम्बोधन करके बोले, 'अज्ञ जन दया का पात्र होता है, देवि! अवश्य ही तुमने कुछ समझकर ही भावानुप्रवेश की उपेक्षा की होगी। मैं तो अज्ञ श्रद्धालु के रूप में ही यह सब कह रहा हूँ। इसे अन्यथा न समझना।' मंजुला का मुख क्षण-भर के लिए म्लान हो गया। वह कुछ उत्तर न दे सकी। राजा ने ही बीच में उसे सम्हाला, 'आर्य, किस प्रकार का भावानु-प्रवेश आप चाहते हैं?' देवरात मंजुला का म्लान मुख देखकर अनुतप्त हुए। परन्तु बात उनके मुँह से निकल चुकी थी और राजा के प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक था। बड़ी संयत वाणी में उन्होंने कहा, 'देव, मंजुला का नृत्य निस्सन्देह बहुत उत्तम कोटि का है। जो बात मेरी समझ में नहीं आयी वह यह है कि 'छलित' नृत्य में नर्तक या नर्तकी को उन भावों का स्वयं अनुभव-सा करना चाहिए जो अभिनीत हो रहे हैं। इसी को भावानुप्रवेश कहते हैं। दूसरों के द्वारा प्रकट किये हुए भाव में स्वयं अपने को प्रवेश कराने का कौशल!

निस्सन्देह मंजुला देवी इसमें निपुण हैं। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि वे आज अपने को भूल नहीं सकी है। नृत्य का उद्देश्य मानो कुछ और था—सहज आनन्द से भिन्न, कुछ और बात।' देवरात को सकोच अनुभव हो रहा था। बात कुछ अवांछित दिशा की ओर बढ़ती जा रही थी। उसे किसी दूसरी ओर मोड़ देने के उद्देश्य से उन्होंने कहा, 'भावानुप्रवेश तो पहली सीढ़ी है, महाराज। अन्तिम लक्ष्य तो महाभाव की अनुभूति ही है।' मंजुला ने सुना तो उसे बड़ी चोट लगी। नृत्य-कला में वह और किसी की विदग्धता स्वीकार नहीं करती थी। परन्तु आज सचमुच ही उसके मन में चोर था। वह देवरात को दिखा देना चाहती थी कि उसके समान नर्तकी संसार में और कोई नहीं। हलद्वीप में एकमात्र देवरात ही उसकी दृष्टि में ऐसे थे, जो उसके रूप और गुण से अभिभूत नहीं हुए थे। आज सचमुच ही उसके मन में देवरात पर विजय पाने की लालसा थी। फीकी हँसी हँसकर उसने कृत्रिम विनय के स्वर में कहा, 'आप तो नृत्य के आचार्य जान पड़ते हैं।' परन्तु मतलब यह था कि तुम्हारे आचार्यत्व का अभिमान तुच्छ है।

सभा भंग होने के बाद मंजुला अपने घर लौट आयी, लेकिन एक शब्द उसके कानों के पास बराबर मँडराता रहा—'भावानुप्रवेश'। क्रोधावेश में उसने सोचा, देवरात कहता है कि उसमें भावानुप्रवेश के कौशल की कमी है। यह देवरात दम्भी है, क्लीव है, कुत्सा-प्रिय है। उसने मंजुला का अपमान किया है। परन्तु जैसे-जैसे आवेश ठंडा पड़ता गया, वैसे-वैसे मंजुला के मन में और तरह के विचार आते गये। देवरात एकमात्र समझदार सहृदय है। उसने मंजुला के मन का चोर पकड़ा है। उसे उसकी सीमा में प्रवेश करके परास्त करना होगा। उसका गर्व चूर्ण करना होगा। उस रात मंजुला को नींद नहीं आयी। देवरात का अक्षोभ्य मुख उसके मानस-पटल पर बार-बार आ जाता था। यह आदमी कभी उसके रूप से अभिभूत नहीं हुआ और कभी उसके प्रति इसने अश्रद्धा या लोलुप दृष्टि से नहीं देखा। कला का मर्मज्ञ है, बाह्य रूप का चाटुकार नहीं। मगर मंजुला यह नहीं समझ सकी कि वह उससे जलता क्यों रहता है। जब देखो मीठी छुरी चला देता है। कहता है, भावानुप्रवेश की कमी है। भण्ड है, मायावी है, निन्दक है। मगर सारी दुनिया तो मंजुला पर मुग्ध है, एक देवरात नहीं मुग्ध होता तो उससे उसका क्या बिगड़ जाता है। मंजुला के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। क्यों उसका मन बराबर देवरात पर विजय पाने को तरसता है? क्या वह नहीं जानती कि हजार विदग्धक रसिकों की चाटुकारी, सच्चे सहृदय के एक बार सिर हिलाने की बराबरी नहीं कर सकती? नहीं, देवरात को वश में करने का उपाय कुछ और है। रूप की माया उसे नहीं आकृष्ट कर सकती, हेला और विब्वोक उसे नहीं अभिभूत कर

सकते, उसे वश में करने का कुछ और ढंग होना चाहिए। मिट्टी के शरीर पर आकृष्ट होनेवाले रसिक जानते ही नहीं कि रस क्या चीज है। सहृदय भाव चाहता है, देवरात और भी आगे बढ़कर महाभाव चाहता है। महाभाव क्या होता होगा भला ! मंजुला फिर उलझ गयी। देवरात किस महाभाव में रहते हैं ? सदा प्रसन्न, सदा श्रद्धापरायण, सदा निर्लोभ। मंजुला सोचने लगी, उसने देवरात को क्या गलत समझा था ? पूरी राजसभा में यही तो एक सहृदय है जो रस का मर्मज्ञ है, बाकी तो भांड़ हैं। ना, देवरात ही सच्चा पुरुष है। बाकी तो मांस के भुक्खड़ भेड़िये हैं। देवरात को परास्त करना होगा, मगर उसी के स्तर पर। उसे पसीना आ गया। अंगुलियों में भी स्वेद की आर्द्रता अनुभूत हुई। यह चिन्ता उसे कई दिनों तक व्याकुल किये रही।

कुछ दिन बाद एक दूसरे आयोजन के समय मंजुला को देवरात पर विजय पाने का अवसर मिला। उस दिन उसका चित्त निरन्तर मथित होने के बाद शान्त हो आया था। जैसे बिलोये हुए दधि में मक्खन उतरा आता है, वैसे ही मंजुला में अब सात्त्विक भाव उमड़ आया था। उसने विशुद्ध कलाचार की ऊँचाई से सहृदय को वश में करने का निश्चय किया था। देवरात उस दिन प्राकृत में एक कविता सुना रहे थे। कविता शृंगार रस की जान पड़ती थी। बहुत-से लोग, जो देवरात को वैरागी समझते थे, इस कविता को सुनकर विस्मित हुए थे। कविता इस प्रकार थी—

> अज्जं पिताव एक्क मा मं वारेहि पियसहि रुअन्ती।
> कल्लिं उण तम्मि गए जइ ण मुआता ण रोदिस्सम॥
> (रोवन दे मति आजि तू, मति बरजै रहि मौन।
> सजन चलत लगि काल्हि जौ, प्राण बचै, रोमौं न॥

देवरात ने इसको बड़े व्याकुल स्वर में पढ़ा। उनका स्वर काँप रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि नाभिकुहर से निकले हुए शब्द हैं जो समस्त चक्रों को अनायास ही बेधकर निकल रहे हैं। देवरात का नादयन्त्र केवल निमित्त-मात्र जान पड़ता था। ऐसा लगता था कि कोई विश्वव्यापिनी मर्म-वेदना अनायास ही उनके नादयन्त्र के माध्यम से हिल्लोलित हो उठी हो। पिछले रस-मर्मज्ञों को इसमें सन्देह नहीं रहा कि इसका कवि स्वयं अनुभव करने के बाद ही ऐसी बात कह रहा है। लोगों ने तो यह भी कहना शुरू किया कि इस कविता का सम्बन्ध देवरात की किसी आप-बीती कहानी से अवश्य है। लेकिन मंजुला विचलित हो गयी। वह मन-ही-मन देवरात के वैदग्ध्य से मुग्ध हो रही। उसे लगा कि व्यर्थ में उद्धत अभिमान के कारण वह अब तक इस एकमात्र सहृदय पुरुष की उपेक्षा करती रही है। उसका अन्तर इस प्रकार द्रवित हो उठा जैसे दीर्घकाल से जमा हुआ हिम एकाएक उष्ण वायु के स्पर्श से पिघल गया हो। हाय, किस

गहराई में उस असामान्य पुरुष के अन्तर-देश में मर्मन्तुद पीडा घर किये बैठी है ! ऊपर से वह गम्भीर बनी रही। पर उसका अन्तर द्रवित हो चुका था। राजा ने उससे प्रश्न किया, 'कहो मंजुला, आर्य देवरात की कविता कैसी लगी ?' मजुला ने कृत्रिम गर्व का भाव धारण किया। बिब्बोक-चटुल मुद्रा मे 'नासा मोरि नचाइ दृग' बोली, 'बासी है।' और मन्द-मन्द मुसकुराती हुई देवरात की ओर इस प्रकार देखने लगी मानो कह रही हो कि मेरे शब्दो पर न जाना, कविता अच्छी है। देवरात ने उस दृष्टि का अर्थ समझा और बोले, 'देवि ! अनुग्रह हो तो कुछ प्रत्यग्र-मनोहर सुनने की इच्छा है।' लेकिन इस बीच मंजुला का यह उत्तर सुनकर राजा हँस पडे थे और उनके पीछे बैठी हुई चाटुकारो, भाटो, विदूषको और विटो की मण्डली भी हँसी से इस प्रकार लहा-लोट हो गयी थी मानो अन्नदाता ने अभूतपूर्व परिहास किया हो। मजुला के मन पर चोट लगी। वह नही चाहती थी कि देवरात उसे गलत समझें। अपनी बडी-बडी आँखो से उसने कातर अपाग से देवरात की ओर देखा, भाव था, 'इन भोडे रसिको की हँसी की उपेक्षा करें। मैं परवश हूँ।' देवरात ने आँखो की भाषा मे ही उत्तर दिया, 'कुछ परवाह न करो, ये नासमझ है।' फिर एक-दो बार आँखो-ही-आँखो मे बाते हुई। राज-सभा मे किसी ने इस दृष्टि-विनिमय को समझने का प्रयत्न नही किया। राजा ने मजुला से कहा, 'हाँ सुन्दरि, कुछ प्रत्यग्र-मनोहर सुनाओ। प्रत्यग्र-मनोहर, अर्थात् जो अपनी ताजगी से ही मन हर लेता हो।' मजुला ने एक बार फिर देवरात की ओर ईषत् कटाक्ष-निक्षेप किया। भाव यह था कि 'शुरू करूँ, अनुमति है ?' देवरात ने हँसते हुए कहा, 'अवश्य सुनाओ देवि, मगर सौन्दर्य तो वही है जो बासी नही होता।' मजुला ने जीभ काट ली—क्या देवरात को उसकी आलोचना बुरी लग गयी है ? राजा की ओर देखते हुए किन्तु वस्तुत देवरात को लक्ष्य करके उसने कहा, 'मैं बासी को भी ताजा बना सकती हूँ, महाराज।' राजा एक बार फिर हँसे और साथ ही विटो और विदूषकों की मण्डली लहालोट हो गयी। देवरात ने कहा, 'अवश्य कर सकती हो देवि, विलम्ब का क्या प्रयोजन है ?' पीछे से किसी ने टिटकारी दी, 'हाय, हाय, सूखी डाल में कोपलें फूट रही हैं रे !' मजुला को बुरा लगा। देवरात के चेहरे पर कोई भाव नही दिखाई दिया। मजुला ने सोचा कि देर करने से इन विडम्ब-रसिको से न जाने क्या-क्या सुनने को मिले। इसलिए हाथ जोडकर उसने राजा से कहा, 'महाराज, पहले प्रत्यग्र-मनोहर सुनाने की अनुमति दें और बाद मे बासी को ताजा करने की।' महाराज ने उल्लासपूर्वक साधुवाद दिया और मजुला रगभूमि में उतरी। उस दिन वह सचमुच 'भावानुप्रवेश' की मुद्रा मे थी। बडी ही करुण-मधुर वाणी मे उसने अपनी रचना पढी। लेकिन कविता का पाठ आरम्भ करने के साथ ही वह भाव-विह्वल मुद्रा मे दिखाई पडी।

कसा हुआ धम्मिल-पाश (जूड़ा) न जाने कब बिखरकर पीठ पर फैल गया। वह करुण रस की मूर्ति या शरीरधारिणी विरह-व्यथा की भाँति कूक उठी। क्या सोचकर उसने यह कविता लिखी थी, यह तो उसके अन्तर्यामी ही जानते होंगे, परन्तु उसके पढ़ने में अजीब मादकता थी। ऐसा जान पड़ता था कि उसने हृदय का समूचा रस उँडेलकर उसके एक-एक अक्षर को भिगोया था। प्रत्येक अक्षर स्फुट रूप से उच्चरित था, यथास्थान 'काकु' का उचित सन्निवेश था और छंद की लहरी भाव के साथ विचित्र भंगिमा में हिल्लोलित हो उठी थी। उस दिन वह वास्तविक 'भावानुप्रवेश' की अवस्था में थी। उसने संस्कृत का श्लोक नहीं पढ़ा, प्राकृत की आर्या नहीं सुनायी, सुनाया ग्राम्य भाषा में प्रयुक्त होने वाला विरह गीत (बिरहा) का अत्यन्त मनोहर दोहा छंद। व्याकुल वाणी में उसने सुनाया—

दुल्लहु जण अणुराउ गरु लज्ज परव्वसु प्राणु।
सहि मणु विसम सिणेहु वसु मरणु सरणु णहु आणु॥
(दुर्लभ जन अनुराग बड़ि लज्जा पर बस प्रान।
सखि मन विषम सनेह-वस मरन सरन, नहिं आन॥)

उसने व्याकुल कम्पित स्वर में 'प्राणु' शब्द को खींचा। ऐसा जान पड़ा, आकाश रो उठा है, वायु-मण्डल काँप उठा है। अन्तिम चरण तक आते-आते उसका स्वर शिथिल होने लगा। वह अर्धमूर्छित-सी होकर रंगभूमि में शिथिल भाव से पड़ रही। सभासदों ने आशंकित होकर सोचा, यह क्या अभिनय है, या सच्ची वेदना है? धीरे-धीरे मंजुला की संज्ञा लौट आयी। उसने देवरात की पढ़ी हुई आर्या को भी पढ़ा। करुण-विकम्पित स्वर से वायु-मण्डल विद्ध हो उठा। ऐसा जान पड़ा, वह आविष्ट है। जो मंजुला नित्य दिखाई देती है उससे मानो यह भिन्न हो। काव्य, संगीत और अभिनय के उत्तम पक्षों का यह बहुत ही रमणीय सामंजस्य था। जब कविता-पाठ के बाद वह उठी, तब भी आविष्ट अवस्था में थी। चलने लगी तो चरणों के अलस संचार में भी विरह-व्यथा तरंगित हो रही थी, विलुलित केशपाश में अनुभव लहरा उठे थे और शिथिल नयनों में व्याकुल उच्छ्वास चंचल हो उठा था। स्वयं देवरात के सिवा सभी सभासदों ने यही समझा कि यह देवरात को परास्त करने का आयोजन है। वे यह भी सोच रहे थे कि देवरात अवश्य कुछ-न-कुछ दोषोद्गार करेंगे। परन्तु आश्चर्य के साथ देखा गया कि देवरात की आँखों से अविरल अश्रुधारा झर रही है। उनके होंठ सूख गये हैं और कपोल-प्रान्त मुरझाये हुए कमल के समान पाण्डुर हो उठे हैं। मंजुला ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि देवरात की ऐसी दशा हो जायेगी। देवरात कुछ प्रकृतिस्थ होकर बोले, 'धन्य हूँ देवि, जो वाग्देवता को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।' उनकी इस प्रशंसा को सुनकर मंजुला के सहज-प्रगल्भ

मुख पर पहली बार लज्जा की लालिमा दिखाई पडी। निस्सन्देह उस दिन वह देवरात पर विजय प्राप्त करने की कामना से आयी थी। उसे अभूतपूर्व सफलता भी मिली, पर विधाता के मन में कुछ और ही था। वह अपने को पा गयी, अपने को ही खोकर। जिसे वह सदा अपना प्रतिद्वन्द्वी समझती रही, उसी देवरात को हराकर वह स्वयं हार गयी। उसने पहली बार अनुभव किया कि हारकर भी मनुष्य चरितार्थ हो सकता है।

देवरात उस दिन अधीर और व्याकुल देखे गये। राजा ने समझा कि उन्होंने अपने को अपमानित अनुभव किया है। सुनने में आया कि राजा ने मंजुला पर अपना क्रोध भी प्रकट किया। यद्यपि उन्होंने उसके मुँह पर कुछ नहीं कहा, तथापि सारे नगर में उनके रोष की कहानी फैल गयी। मंजुला ने सुना तो उसका हृदय व्यथा से तडप उठा। क्या सचमुच देवरात को उस दिन उसने चोट पहुँचायी? अभिमानिनी गणिका को अपने औद्धत्य के लिए पहली बार पश्चात्ताप हुआ—हाय अभागी, तूने कैसा अनर्थ कर दिया! परन्तु उसके अन्तर्यामी कहते थे कि यह बात झूठ है। देवरात ऐसे छोटे नहीं हैं। उन्होंने मंजुला को गलत नहीं समझा है। राज-सभा भोंडी रसिकता का शिकार है। विदग्ध-रसिक अपने मन से दूसरों के मन को मापा करते हैं। देवरात इनसे ऊपर हैं, बहुत ऊपर।

लेकिन देवरात अपने आश्रम में दीन-दुखियों की सेवा और बालकों को पढाने-लिखाने का काम यथानियम करते रहे। उस दिन की क्षणिक अधीरता के बाद कभी भी उन्हें कातर या अभिभूत नहीं देखा गया। वे राजा की सभा में आयोजित नृत्य-गीतों में भी उसी उत्साह के साथ सम्मिलित होते रहे, जिस उत्साह के साथ मल्लशाला में आयोजित मल्ल-समाह्वयों में। वे पण्डितों की वाद-सभा में भी उतना ही रस लेते थे। राज-सभा के सभासदों ने सिर हिला-हिलाकर जो आशंका प्रकट की थी कि किसी-न-किसी दिन यह कला-प्रेमी वैरागी मंजुला के कटाक्ष-बाणों से घायल होगा, वह कभी सत्य नहीं हुई। देवरात यथापूर्व निर्विकार और निर्लिप्त बने रहे। केवल एक परिवर्तन हुआ जो देवरात के अन्तर्यामी के सिवा और कोई नहीं देख सका। जब कभी देवरात एकान्त में होते, वे उदास स्वर में गुनगुना उठते—

दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परव्वसु प्राणु।
सहि मणु विसम सिणेह वसु मरणु सरणु णहु आणु॥

एक दिन देखा गया कि स्पर्धाविता नगरश्री मंजुला अपने सारे अभिमान को ताक पर रखकर उदास भाव से देवरात के आश्रम की ओर नंगे पाँव चली जा रही है। हलद्वीप के लोगों के लिए इससे बड़ा आश्चर्य और कुछ नहीं था। आत्मगौरव की प्रतिमा, अभिमान की मूर्ति, शोभा की अविजित रानी, नगर-रसिकों की आकाक्षा-भूमि मंजुला अकेली चल पड़ी है। साथ में कोई दास-दासी नहीं है, रथ नहीं है, पालकी नहीं है, हाथी-घोड़े नहीं हैं, वह सब प्रकार से अकेली है।

हलद्वीप के नगरवासियों ने कभी इस प्रकार की बात की कल्पना भी नहीं की थी। मंजुला परम अभिमानिनी के रूप में ही परिचित थी। उसके बारे में सैकड़ों किंवदन्तियाँ प्रचलित थीं। कहा तो यहाँ तक जाता था कि वह नित्य एक घड़े दूध से स्नान करती है। इधर सरस्वती-विहार वाली नोक-झोंक ने नगर में अनेक प्रकार की किंवदन्तियों को उकसावा दिया था। लोगों ने आश्चर्य के साथ सुना था कि मंजुला में अनेक परिवर्तन हुए हैं। वह अपना अधिकांश समय अब पूजा-पाठ में बिताती है, व्रत-उपवासों का विधिवत् उद्यापन करती है, उसकी वीणा में अब केवल विरह के स्वर झंकृत होते हैं। परन्तु इन बातों की सच्चाई में बहुत थोड़े लोगों को विश्वास था। बुद्धिमान व्यक्तियों ने सिर हिलाकर कहा था—'देखते रहो, जनम की विलासिनी, करम की मायाविनी गणिका अगर पूजा-पाठ करने लगे तो मानना होगा कि बबूल में भी कमल के फूल खिलते हैं, पनाले में भी सुगन्धि फूटती है, सर्पिणी भी पुजारिनी बन सकती है!' लेकिन किंवदन्तियाँ अमूलक नहीं थीं। मंजुला में सचमुच परिवर्तन हुआ था। वह नृत्य को महाभाव का साधन मानने लगी थी, अपने को खोकर अपने को पाने की ओर अग्रसर होने लगी थी। निस्सन्देह उसमें व्याकुलता थी। वह महाभाव का रहस्य समझना चाहती थी। किससे पूछे, कौन बतायेगा कि महाभाव क्या है? एकमात्र देवरात ही बता सकते थे, पर वे मंजुला के लिए दुरधिगम्य थे। आजीवन जिन अस्त्रशस्त्रों का उसने वशीकरण का उपाय मानकर अभ्यास किया था, वे देवरात से टकराकर चूर्ण-विचूर्ण हो गये थे। उसने उपेक्षा की थी। गणिकाशास्त्र में इन अस्त्रों से घायल न होनेवाला नपुंसक माना जाता है। मंजुला ने भी बराबर देवरात को ऐसा ही माना था, पर अब उसे दूसरा ही अनुभव हुआ था। गणिकाशास्त्र से ऊपर भी कुछ है। घायल होने के रूप भी अलग-अलग होते हैं। देवरात नहीं, मंजुला घायल हुई है। कहाँ? किस गहराई में? और क्या सचमुच देवरात किसी अतल में

घायल नहीं हुए हैं ? मंजुला उत्तर पाना चाहती है, पा नहीं रही है।

इस बीच एक अनर्थ हो गया था। राज-सभा में उसकी पुकार हुई थी। उसे सुधि ही नहीं रही। यथासमय वह अनुपस्थित पायी गयी। राजकोप अयाचित, अप्रत्याशित रूप से उस पर आ गिरा। देवरात ही उसकी रक्षा कर सकते थे। वे ही राजा को प्रभावित करने में समर्थ थे। मंजुला को अच्छा बहाना मिल गया। दुःख के आवेदन की देवरात कभी उपेक्षा नहीं करते। मंजुला आज निकल पड़ी है। अकेली।

नगर-भर में खलबली मच गयी। लोगों के आश्चर्य और कौतूहल का ठिकाना नहीं रहा। यह भी क्या सम्भव है कि अभिमानिनी नगरश्री इस प्रकार नगर की गलियों में अकेली चले ? उसके पहिनावे में सिर्फ एक स्वच्छ साड़ी थी, आभूषण के नाम पर केवल एक हाथ में एक सोने की चूड़ी थी और गले में केवल एक सूत का हेमहार था। उसके पैरों में उपानह भी नहीं थे। ऐसा जान पड़ता था कि शोभा ने ही वैराग्य धारण किया है, शान्ति ने ही योगासन ग्रहण किया है, चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना ही धरती पर उतर आयी है, पद्मवन की चारुता ने ही धूल पर चलने का संकल्प किया है और रति ने ही उदास भाव ग्रहण करके धरती को धन्य किया है। निस्सन्देह वह इस वेश में भी मनोहर लग रही थी। शैवालजाल से अनुविद्ध होकर भी कमल पुष्प की शोभा कमनीय होती है, मेघों से आवृत चन्द्रमण्डल की शोभा भी रमणीय जान पड़ती है, मधुर आकृतियों के लिए सब कुछ मण्डन-द्रव्य ही बन जाता है। नगर के गवाक्ष खुल गये, पौर-वधुओं के चकित नयनों ने नगर की शोभा को पैदल चलते देखा, बच्चों का दल पीछे-पीछे दौड़ पड़ा, ग्राम-वृद्धों ने एक-दूसरे की ओर कौतूहल-भरी दृष्टि से देखकर कहा, 'बात क्या' है ? लेकिन मंजुला ने किसी ओर दृष्टिपात नहीं किया। वह निरन्तर आगे बढ़ती गयी। ऐसा जान पड़ता था कि इस अवस्था में भी उसका अभिमान उसे प्रच्छन्न भाव से अवगुण्ठित किये हुए है।

देवरात के आश्रम के बहिर्द्वार पर आकर वह ठिठक गयी, जैसे स्रोतस्विनी के सामने अचानक शिलाखण्ड आ गया हो। उसने चकित मृगशावक की भाँति भीत नयनों से चारों ओर देखा, ऐसा लगा जैसे वह किसी ऐसे स्थान पर आ गयी हो जहाँ उसके प्रवेश का अधिकार न हो। क्या करे, क्या न करे ? वह सोच नहीं पा रही थी। आश्रम उसे जलते अंगार-जैसा दिखाई दे रहा था, जिसको छूने से सम्पूर्ण रूप से जल जाने की आशंका थी। अभिमानिनी गणिका को पहली बार यहाँ अनुभव हुआ कि वह वह नहीं है जो अब तक अपने को समझती आयी थी। एक बार थके निराश नेत्रों से उसने आश्रम के भीतर देखा। उसकी दृष्टि दो बड़े ही सुन्दर बालकों की ओर गयी। ये बालक श्याम-

रूप और आर्यक थे। उसने इंगित से उन्हें अपनी ओर बुलाया। दोनों बालक दौड़ते हुए उसके पास आ गये और बड़े शिष्ट भाव से बोले, 'आर्ये, आप क्या हमारे गुरुजी को खोज रही हैं? क्या आप भी पढ़ने आयी हैं? हमारे गुरुजी आपको बहुत अच्छी तरह पढ़ायेंगे। आइए, आइए, स्वागत है। मंजुला को सन्देह नहीं रहा कि इन बच्चों को गुरु ने ही ऐसी शिष्ट भाषा बोलना सिखाया होगा। उसके मन में वात्सल्य भाव उदित हुआ। उसने दोनों बच्चों के सिर पर हाथ फेरा और प्यार से कहा, 'हाँ वत्स, मैं गुरुजी के दर्शन के लिए ही आयी हूँ। उनसे निवेदन करो कि मंजुला दर्शन का प्रसाद पाना चाहती है। दोनों बच्चे दौड़कर गुरु के पास गये और थोड़ी देर में उनके साथ लौट आये। देवरात ने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि मंजुला इस रूप में उनके द्वार पर उपस्थित होगी। उन्होंने अत्यन्त मधुर वाणी में मंजुला का स्वागत करते हुए कहा, 'देवि, इस आश्रम को धन्य करने का कारण क्या हुआ? मैं किस सेवा के योग्य हूँ? मुझे, तुम्हारा चेहरा उदास देख रहा हूँ। कल्याण तो है?' मंजुला फूट-फूटकर रो पड़ी और अनायास उनके चरणों पर सिर रख दिया। उसने अपने बिखरे अलकों से ही उनका चरण पोंछ दिया और बताया कि अकारण ही उसे राजकोप का शिकार होना पड़ा है। एकमात्र वे ही हैं जो राजकोप का निवारण कर सकते हैं।

देवरात ने उसे आश्वासन दिया, 'चिन्तित न हों देवि, मैं शक्ति-भर प्रयत्न करूँगा कि तुम्हें कोई कष्ट न हो और राजा का कोप शान्त हो।' मंजुला आश्वस्त हुई। फिर आँखें नीची किये कुछ असमंजस की मुद्रा में खड़ी रही जैसे कुछ कहना चाहती हो, कह न पा रही हो। देवरात ने उत्सुकतापूर्वक पूछा, 'क्या कहना चाहती हो, देवि!' और मधुर भाव से आश्वस्त करते हुए बोले, 'कह डालो, संकोच की क्या बात है?'

मंजुला ने धीमे स्वर में पूछा, 'आर्य, उस दिन मेरे कविता-पाठ से आपको चोट लगी। अपराधिनी को क्षमा करना, मैं बहुत लज्जित हूँ।'

देवरात हँसे, 'तुम्हारी उस कविता से मुझे चोट लगी? किसने कहा, देवि!' फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बोलते गये, 'बासी घाव हरा हो गया था, देवि! उसके बारे में न पूछ बैठना, पर उस दिन तुम्हारे भीतर सुप्त देवता का सन्धान मुझे मिला था, सुप्त देवता जो जाग उठा था।'

मंजुला की आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। फफककर बोली, 'हाय आर्य, मेरे भीतर देवता भी है, यह बात तो केवल तुमने ही देखी है। लोग तो इसमें मिट्टी का ढेला ही खोजते हैं। मैं अपने पाप-जीवन से ऊब गयी हूँ आर्य, हाय, इस नरक से मेरा कभी उद्धार भी होगा!' उसने दीर्घ निःश्वास लिया।

देवरात ने कहा, 'मैं भुजा उठाकर कह सकता हूँ देवि, तुम्हारे भीतर

देवता का निवास है। तुम जिस पाप-जीवन की बात कह रही हो वह मनुष्य की बनायी हुई विकृत सामाजिक व्यवस्था की देन है। चिन्ता न करो देवि, इससे उद्धार हो सकता है। तुम्हारा देवता तुम्हारे भीतर बैठा हुआ अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। कोई बाहरी शक्ति किसी का उद्धार नही करती। यह अन्तर्यामी देवता ही उद्धार कर सकता है। चिन्ता की क्या बात है, देवि!'

मजुला आँखे फाडकर देवरात की ओर देखती रह गयी। उसे इन बातो का अर्थ स्पष्ट नही हो रहा था। पर बिना अर्थ समझे भी जैसे साम-गान चित्त को अभिभूत कर लेता है, कुछ उसी प्रकार का भाव उसे अनुभव हुआ।

देवरात ने उसे और भी उत्साहित किया, 'देवता न बडा होता है, न छोटा, न शक्तिशाली होता है, न अशक्त। वह उतना ही बडा होता है जितना बडा उसे उपासक बनाना चाहता है। तुम्हारा देवता भी तुम्हारे मन की विशालता और उज्ज्वलता के अनुपात मे विशाल और उज्ज्वल होगा। लोग क्या कहते हैं इसकी चिन्ता छोडो। अपने अन्तर्यामी को प्रमाण मानो। वे सब ठीक कर देंगे, देवि।'

मजुला को जैसे नया सुनने को मिला। नवीन बाल मृगी जैसे बरसते मेघ के रिमझिम सगीत को आश्चर्य से सुनती है, उसी प्रकार वह सुनती रही—चकित, उल्लसित, उत्सुक।

देवरात ने उपसहार किया, 'अपने देवता की उपेक्षा न करना, देवि। जाओ, मगल हो।'

मजुला महरा गयी। वह इतनी जल्द उपसहार के लिए प्रस्तुत नही थी। वह बहुत सुनना चाहती थी, उसे थोडे मे सतोष नही हो रहा था। हाय, उसके भीतर भी देवता है—चिर-उपेक्षित, चिर-पिपासित, चिर-अपूजित! उसकी बडी-बडी आँखें धरती की ओर जो झुकी सो मानो चिपक ही गयी। वह दाहिने पैर के नाखून से धरती कुरेदती खडी रही। नाना भाव-तरगो के आघात-प्रत्याघात से वह जड प्रतिमा की भाँति निश्चेष्ट हो गयी। देवरात मुग्ध भाव से उसकी मनोहारिणी शोभा को देखते रहे। वे भी चित्रलिखित-से खडे-के-खडे रह गये। श्यामरूप और आर्यक चकित होकर दोनो को देखते रहे। उनकी समझ मे नही आ रहा था कि इन्हे हो क्या गया है। थोडी देर तक यही अवस्था रही। फिर देवरात का ही ध्यान भग हुआ। बोले, 'चारुशीले, मैंने जो कहा उससे तुम्हारे चित्त को आश्वासन नही मिला क्या?' मजुला ने आँखें ऊपर उठायी, बोली, 'अपराधिनी हूँ, आर्य! आपको सदा गलत समझा है। मैं बिलकुल नही जानती थी कि कोई मेरे भीतर देवता का भी सन्धान पा सकता है। मुझे अब लगता है कि केवल आज नही, पहले भी तुमने मेरे भीतर सुप्त देवता को देखा था। मैं आजीवन पाप-पंक मे डूबी हुई, तुम्हारी भावनाओ को क्य

जानूँ। मैं तो सिर्फ़ यह जानती रही कि लोग मेरे भीतर जाग्रत पशु को ही देखते हैं, उसी का सम्मान करते हैं। जो इस पशु को नहीं देख पाता उसे दृष्टि ही नहीं है। हाय आर्य, मेरे अन्तरतर का देवता गुप्त रहकर भी तुम्हें जितना प्रभावित कर सका उसका शतांश भी तुम्हारे जाग्रत देवता से यह पापिनी प्रभावित हो पाती!' देवरात ने बीच में ही टोका, 'सुनो देवि, तुम इतनी व्यथित क्यों हो रही हो? अपने पर तुम्हारी यह अनास्था उचित नहीं है। तुम बार-बार अपने को पापिनी और अपराधिनी कहती हो तो मेरा अन्तरतर काँप उठता है। यहाँ शुद्ध सुवर्ण कहीं नहीं है, सब जगह खाद मिला हुआ है। सब-कुछ शुद्ध सुवर्ण और खाद से बना हुआ हेमालंकार है। किसने यह आभूषण पहन रखा है? उसी को खोजो। पाप और पुण्य जब उसी को समर्पित हो जाते हैं तो समान रूप से धन्य हो जाते हैं। मन में खोट न आने दो देवि, तुम नारायण की स्मित-रेखा के समान पवित्र हो, आह्लादक हो, आनंददायिनी हो। देवि, जिस दिन देवरात ने तुम्हें देखा था, उस दिन उसे लगा था कि वह कुछ अपूर्व देख रहा है, कुछ नवीन अनुभव कर रहा है। तुम विश्वास मानो देवि, तुम्हारे दर्शन-मात्र से देवरात का सम्पूर्ण अस्तित्व उमड़ आता है। निस्सन्देह तुम्हारे भीतर कोई महा-आकर्षक देवता बसता है। लोग उसको ठीक नहीं पहचानते। वे मन्दिर को ही आकर्षण का हेतु मान लेते हैं। बिचारे कृपण हैं, उनका देवता भी सुप्त है। जागेगा, मगर कब, कहना कठिन है!'

मंजुला का अंग-अंग द्रवित हो उठा। नस-नस में आनन्द की अनुभूत लहरी सिहरन पैदा कर गयी। वह क्या सुन रही है? उसे देखकर देवरात का सम्पूर्ण अस्तित्व उमड़ आता है! उसे वे नारायण की स्मित-रेखा के समान पवित्र और आह्लादवर्धिनी समझते हैं, यह भी क्या चाटूक्ति है? हाय, कितनी वेधक चाटूक्ति है यह। मंजुला के अन्तरतर को यह वेध रही है। अब तक सुनी हुई चाटूक्तियाँ उसे ढँक देती रही हैं। आज की उक्ति उसे उधेड़ रही है। नारायण की आह्लादिनी स्मित-रेखा! पहले उस स्मित-रेखा ने मोहिनी रूप में ही संसार को वशीभूत किया था। आज उसका पवित्र आह्लादक रूप प्रकट हो रहा है। मंजुला अपने को पा रही है।

देवरात ने पुनः कहा, 'देवि, तुम्हारे नृत्य में तुम्हारा देवता अभिव्यक्त होता है। देवरात उसे पहचानता है।'

मंजुला अपने को सम्हाल नहीं सकी। उसने आवेशपूर्वक देवरात के चरणों पर सिर रख दिया। देवरात पीछे हट गये। मंजुला बोली, 'इतने से वंचित न रहने दो, आर्य। मैं फटी जा रही हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि इस सारे आवरण को छिन्न करके एक नयी मंजुला निकलना चाहती है। इस कलुषित मंजुला के भीतर से शुद्धसत्वा अकलुष मंजुला! वह अकलुष मंजुला ही तुम्हें समर्पित

है, आर्य ! उसे अपने पवित्र ममत्व से वंचित न करो। हाय आर्य, बड़ी देर हो गयी।'

देवरात भाव-विह्वल, अचंचल !

क्षणभर में क्या-का-क्या हो गया। देवरात का सारा सत्व मथित होकर ढरक जाना चाहता है।

मंजुला प्रकृतिस्थ हो गयी। बोली, 'इससे अधिक लोभ नहीं करूँगी, आर्य ! इस नवीन मंजुला को मत भूलना। पुरानी को क्षमा कर देना।'

देवरात ठगे-से, खोये-से, हारे-से, स्तब्ध !

मंजुला ने उनके चरणों की धूल आँखों में लगायी और चलने को प्रस्तुत हुई। देवरात निश्चल, अकम्प।

मंजुला अन्तिम प्रणाम निवेदन करके जाने को हुई। घूमकर पहला ही पग उठा पायी थी कि देवरात ने झपटकर उसका कन्धा पकड़ लिया, 'रुको देवि, थोड़ा और रुको।'

मंजुला ने घूमकर देवरात की ओर देखा। उनका चेहरा लाल था। आँखें न जाने कैसी-कैसी हो गयी थीं। बोले, 'देवि, बासी को ताजा करने के लिए इस दिन का साधुवाद ग्रहण करो।'

मंजुला इसका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ सकी। उसे उस दिन का राज-सभा का परिहास तो याद था, पर इस अवसर पर उसका क्या तुक था ? हाथ जोड़कर बोली, 'समझ नहीं सकी, आर्य।' देवरात के चेहरे पर सहज दीप्ति आ गयी। हँसकर बोले, 'सब प्रसाद समझ कर ही नहीं लिये जाते। पर प्रसाद प्रसाद ही है।' मंजुला देवरात के मुख पर एकटक दृष्टि लगाये ताकती रही। मन-ही-मन उसने कहा—यह सहज-प्रसन्न मुख-मण्डल अक्षोभ्य नहीं है ! साहस बटोरकर उसने कहा, 'यदि अनुचित न समझें तो दासी किसी दिन अपने घर पर चरणों की धूलि पाने की मनोकामना रखती है।' देवरात पुलकित होकर बोले, 'अवसर आने पर तुम्हारी यह मनोकामना भी पूर्ण होगी।' गणिका को जैसे राज्य मिल गया हो। अत्यन्त कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देवरात की ओर देखते हुए वह सन्तुष्ट चित्त से घर लौट आयी।

पूरे हलद्वीप में यह बात आँधी की तरह फैल गयी। बुद्धिमानों ने सिर हिलाकर कहा, 'इसमें कुछ रहस्य है। यह गणिका मायाविनी है। यह देवरात को फँसाना चाहती है।' कुछ दूसरे लोग यह कहते सुने गये कि यह राजा का षड्यन्त्र है। वह देवरात की लोकप्रियता से चिन्तित है और उसे बदनाम करना चाहता है। तरुण नागरिकों में कुछ और ही तरह की कानाफूसी चलने लगी। उनके मन में गणिका के प्रेमासक्त होने की ही सम्भावना अधिक थी। जितने मुख उतनी बातें सुनाई देने लगीं। बातें धीरे-धीरे वृद्धगोप तक भी पहुँचीं।

उन्होंने देवरात को सावधान करने की बात भी सोची। परन्तु स्वयं देवरात के चित्त में कोई विकार नहीं देखा गया। उनका सदा-प्रसन्न चेहरा जैसा-का-तैसा बना रहा। कोई पूछता तो कहते, 'मंजुला देवी ने निमन्त्रण दिया है, अवसर आने पर उस निमन्त्रण का सम्मान तो करना ही होगा। अवसर आ भी सकता है, नहीं भी आ सकता है।' और हँस देते। उस हँसी में एक प्रकार का विषाद-भाव भी मिला होता था। ऐसा जान पड़ता था कि उनकी हार्दिक कामना यही थी कि अवसर न आये। लेकिन नगर के विडम्ब-रसिकों ने उनकी हँसी की भी नाना प्रकार से व्याख्या की। नित्य नयी कहानियाँ गढ़ी जातीं और फैलायी जातीं। यहाँ तक भी सुना गया कि नगरश्री मंजुला स्वयं अभिसार-यात्रा की तैयारी कर रही है। परन्तु देवरात यथानियम अपने काम में लगे रहते। उन्होंने इन बातों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी।

इस बीच देवरात राजा से कई बार मिल भी आये। यह भी सुना गया कि राजा ने उनकी बात मान ली है और गणिका को क्षमा प्रदान कर दी है। अटकलों के बवण्डर उड़ते रहे। इतना अवश्य देखा गया कि गणिका ने राज-कोप के दामन के बाद धूमधाम से क्षिप्रेश्वर महादेव की पूजा करवायी और सहस्रों नागरिकों को अपना नृत्य दिखाकर मुग्ध भी किया। नगर के लोग इस परिणति से सन्तुष्ट हो गये और कानाफूसी धीरे-धीरे दब गयी। लोग धीरे-धीरे इस घटना को भूल गये।

कुछ दिनों बाद देवरात को सचमुच ही गणिका का आतिथ्य स्वीकार करना पड़ा। एकाएक नगर में भयंकर महामारी का प्रकोप हुआ। शीतला देवी को प्रसन्न करने के अनेक उपचार किये गये, परन्तु उनका कोप घटने के स्थान पर बढ़ता ही चला गया। नगर में हाहाकार मच गया। जिधर देखो उधर ही कराहने की ध्वनि सुनाई देने लगी। लोगों में भगदड़ मच गयी। राज-परिवार ने भी नगर से दूर बने हुए प्रासाद में आश्रय लिया। वृद्धगोप के दोनों बच्चों को उनके घर भेजकर देवरात सेवा-कार्य में जुट गये। कोई किसी को पूछने-वाला नहीं था। किसी-किसी मुहल्ले में प्रत्येक व्यक्ति महामारी का शिकार बना था और कोई-कोई मुहल्ला एकदम जनशून्य हो गया था। अपने सगे-सम्बन्धी भी दूर भागने लगे। लेकिन देवरात प्रत्यूष से लेकर आधी रात तक घूम-घूमकर लोगों की सुश्रूषा करते, दवा पहुँचाते, पथ्य की व्यवस्था करते। एक दिन उन्हें समाचार मिला कि मंजुला भी रोगग्रस्त हो गयी है। और उसके दास-दासी घर छोड़कर भाग गये हैं। कोई पानी देनेवाला भी नहीं रह गया है। देवरात ने मंजुला के आतिथ्य-ग्रहण का अवसर आज देखा। वे मंजुला के विशाल प्रासाद की ओर बढ़े। चारों ओर भयंकर सुनसान था। घर का द्वार खुला हुआ था, परन्तु कहीं कोई दिखायी नहीं पड़ा। मंजुला के घोड़े, बैल और

अन्य पशु या तो छोड दिये गये थे या फिर किसी और की सम्पत्ति बन चुके थे। पूरा प्रासाद खांय-खांय कर रहा था। घर में एक बत्ती तक नहीं जल रही थी। देवरात को लगा कि कदाचित् मंजुला भी कहीं अन्यत्र चली गयी है। क्षण-भर के लिए वे ठिठके। मन में आया, कदाचित् उन्हें गलत खबर मिली है। वे सोचने लगे कि लौट जाना ही उचित है। उसी समय ऊपरी तल्ले से अत्यन्त क्षीणकण्ठ के कराहने की ध्वनि उनके कानों में पड़ी। उस शब्द का अनुसरण करते हुए वे सीढ़ियों पर चढ़ गये और गणिका के शयन-कक्ष में उपस्थित हुए। अन्धकार में उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर उन्होंने निश्चित सूचना पाने के उद्देश्य से आवाज दी, 'कोई है ?' उत्तर में अत्यन्त क्षीण, कातर ध्वनि सुनाई पड़ी—'पानी !' देवरात की आँखें भर आयीं। निस्सन्देह यह मंजुला का ही कण्ठ था। हाय, समृद्धि की रानी, रूप की लक्ष्मी, शोभा की स्रोतस्विनी, अनुराग की तरंगिणी मंजुला की आज यह दशा है! उनका गला भर आया। भर्रायी हुई वाणी में बोले, 'मैं देवरात हूँ, देवि ! तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार करके आ गया हूँ। चिन्ता न करो, अभी सब ठीक हुआ जाता है।' अँधेरे में उन्हें कहीं भी कोई बरतन नहीं दिखाई दिया। न मंजुला का वह मुख ही दिखाई दिया, जिसे पानी से तर करना था। आँगन में नक्षत्रों के हल्के प्रकाश में एक मिट्टी का घड़ा दिखायी दिया। संयोग से उसमें थोड़ा पानी भी मिल गया। उन्होंने अपना उत्तरीय पानी में भिगोया। घर में आकर पुकारा, 'किधर हो, देवि ! देवरात आया है।' क्षीण कण्ठ से फिर कराहने की ध्वनि हुई। देवरात धीरे-धीरे पैर रखते हुए जिधर से आवाज आयी थी, उधर गये। हाथ से स्पर्श करके उन्होंने मंजुला के मुख का पता लगाया और फिर उसके अधरों के पास एक हाथ रखकर दूसरे हाथ से उत्तरीय के पानी की कुछ बूँदें गिरा दीं। ऐसा जान पड़ा मानो मंजुला की चेतना कुछ अधिक सजग हुई। कदाचित् उसकी आँखें भी खुलीं। क्षीण कण्ठ से पूछा, 'कौन है ?' उत्तर मिला, 'देवरात हूँ, देवि।' मंजुला को जैसे विश्वास ही न हुआ हो, बोली, 'कौन, आर्य देवरात ?'

'हाँ देवि, आज मैंने तुम्हारा निमन्त्रण स्वीकार किया। साहस न छोड़ो। सब ठीक हुआ जाता है।' अँधेरे में कुछ दिखाई तो नहीं दिया परन्तु देवरात को समझने में देर न लगी कि उसकी आँखों से अजस्र अश्रुधारा बह रही है। वह सुबक-सुबककर रो रही है। बड़े आयास से उसने कहा, 'पापिनी से दूर रहो देव ! यदि इस अधमा के ऊपर दया है तो अपना हाथ हटा लो और उस बच्ची को देखो।' इतना कहकर मंजुला एकदम मौन हो गयी, मानो यही अन्तिम बात कहने के लिए अब तक उसके प्राण बचे थे। देवरात ने आश्चर्य और कौतूहल के साथ पूछा, 'कौन-सी बच्ची, देवि ? कहाँ है वह ?' क्षीण कण्ठ से

उत्तर मिला—'मृणालमंजरी।' जरा रुककर उसने प्रायासपूर्वक कहा, 'इस नरक-कुण्ड से उसे ले जाओ।' और फिर सब कुछ शान्त हो गया। देवरात जानना चाहते थे कि मृणालमंजरी कौन है? कहाँ है? पर देर तक प्रतीक्षा करने के बाद भी कुछ उत्तर नहीं मिला। उन्होंने मंजुला का ललाट स्पर्श किया, बर्फ की तरह ठण्डा मालूम पड़ा। अंधेरे में उन्हें कुछ नहीं दिखाई दिया, परन्तु मंजुला के वाक्य उनके कर्णपटल पर बार-बार आघात करते रहे, 'उस बच्ची को देखो!' कहाँ है वह बच्ची? यहीं कहीं होगी। इसी घर में। जीवित भी है या नहीं, कौन जाने! अन्धकार बड़ा भयावना लग रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि यमराज का काला भैंसा आक्रमण के लिए तत्पर अवस्था में खड़ा है। कब रपेद देगा, कुछ ठिकाना नहीं। दीपक की कोई व्यवस्था करनी होगी। परन्तु दीपक कहाँ है? दूर तक कहीं आग या धुएँ का चिह्न नहीं दिखाई दे रहा था। उन्होंने टोह-टोहकर सारे घर को समझने का प्रयत्न किया। बड़ी भयंकर अवस्था थी। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि सचमुच यहाँ कोई बच्ची है भी या नहीं, कई बार वे टकराकर गिरते-गिरते बचे। अन्त में मंजुला की शय्या के पास ही एक और शय्या का सन्धान मिला उन्हें। आशा हुई कि इस पर ही कोई छोटी बच्ची सो रही होगी। हौले-हौले उन्होंने पूरी शय्या की परीक्षा की। शय्या सूनी थी। निराश होकर उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि चाहे जितनी दूर भी जाना पड़े, वे आग लाकर कुछ प्रकाश की व्यवस्था करेंगे। जब वे घर के द्वार की ओर बढ़ने लगे तो एकाएक फिर टकराये। यह कोई पालना था। उन्होंने पालने के भीतर टोहकर देखा। सचमुच ही एक छोटी-सी बच्ची बेहोश पड़ी थी। उसका ललाट जल रहा था। जान पड़ता था, उसे तीव्र ज्वर है। धीरे-धीरे बच्ची को उन्होंने उठाया और द्वार से निकालकर खुले आसमान के नीचे ले आये। उन्हें लगा कि बालिका के वस्त्रों में एक प्रतोलिका (छोटी-सी पेटी) जैसी कोई चीज बँधी हुई है। वह क्या है, यह समझने का समय नहीं था। प्रतोलिका समेत उस नन्ही बालिका को बाहर लाकर तारागों के क्षीण प्रकाश में देखा। दो-तीन वर्ष की इस फूल-सी बालिका को देखकर उनका हृदय दुःख से कराह उठा। हाय विधाता, इस भोली दुधमुँही बालिका की क्या दशा है! वह बेहोश थी—परिम्लान कमल-कलिका के समान मुरझाई हुई।

ऊपर आकाश और नीचे धरती। दूर तक जनशून्य राजमार्ग अजगर की तरह लेटा हुआ दिखाई दे रहा है, परन्तु आग कहाँ मिले? प्रदीप कहाँ से जले? बच्ची को गोदी में लिये हुए देवरात तेजी से आगे बढ़ने लगे। बड़े-बड़े प्रासाद इस प्रकार निस्तब्ध खड़े थे मानो महामारी से ग्रस्त होकर मूर्छित हो गये हों। वे चलते ही गये पर आग का दर्शन कहीं नहीं हुआ। अन्त में उन्होंने

यही निश्चय किया कि अपने आश्रम में ही बच्ची को सुलाकर, प्रदीप लेकर फिर इधर आयेंगे। लम्बा रास्ता तय करके वे आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि वृद्धगोप और उनकी पत्नी देर से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वृद्धगोप ने अनुयोग के स्वर में कहा, 'प्रभो! इतनी देर तक महामारी ग्रस्त पुरी में न रहा करें।' देवरात ने थके हुए स्वर में कहा, 'भद्र, बड़ा दुःख देखकर आया हूँ और साथ में एक रुग्ण शिशु को भी लेकर। यह देखो।' दीपक के प्रकाश में तीनों ने उस सुकुमार बालिका का मुँह देखा। ऐसा लगा मानो पूनम के चाँद को राहु ने ग्रस लिया हो। 'हे भगवान्! इस नन्ही बालिका की रक्षा करो।'

वृद्धगोप की पत्नी का मातृ-स्नेह उमड़ आया। उन्होंने बच्ची को गोद में लेकर उसका सिर सहलाया, फिर वृद्धगोप से बोली, 'तनिक पानी तो ले आओ।' थोड़ा-सा पानी देने के बाद बच्ची की आँखें खुल गयीं, परन्तु दृष्टि में एक विचित्र प्रकार की अप्रसन्नता थी। देवरात ने बच्ची की नाड़ी की परीक्षा की और आश्वस्त होकर बोले, 'भगवान् का अनुग्रह होगा तो यह बच जायेगी।' फिर वृद्धगोप-दम्पति पर बच्ची की शुश्रूषा का भार देकर, आग और प्रदीप लेकर वे मंजुला के घर लौट आये। प्रदीप जलाकर जो देखा तो मंजुला का कहीं पता नहीं। कहाँ चली गयी? उन्हें लगा कि वह तड़पती हुई बाहर निकली होगी और फिर सदा के लिए सो गयी। दूर-दूर तक खोजा पर मंजुला नहीं मिली। सौ-सौ निर्जीव शवों के भीतर उसे खोजना असम्भव ही लगा।

देवरात का हृदय टूट गया। नगर की शोभा, अनुराग की दीपशिखा, कला की प्रतिमा, छन्दों की रानी, तालों की मर्म-संगिनी, शृंगार की रंगस्थली, सम्मोहन की सूत्रधारिणी मंजुला चली गयी। बागी को ताजा बनाने की कुदाल कलावती सदा के लिए सो गयी। कोई पानी देने भी नहीं आया। हा विधाता! देवरात ने दीर्घ निःश्वास लिया। कहीं कोई दिखाई भी नहीं दिया।

उन्हें सारा संसार कुलाल-चक्र की भाँति घूमता हुआ दिखाई दिया। मंजुला कहाँ चली गयी? क्या वह अपने देवता को पहचान सकी थी? क्या वह महाभाव का अर्थ समझ सकी थी? हाय देवि, देवता ने तुम्हें पहचान लिया, तुम्हारे देवता को पहचानने का दम्भ करनेवाला पीछे छूट गया।

देवरात अभिभूत की भाँति देर तक खोजते रहे। दिन बीत गया, भगवान् भास्कर का जरठ रथचक्र पश्चिमी पयोनिधि में डूब गया। सन्ध्याकालीन शीतल वायु ने उनका ध्यान भंग किया। उनके अंग-अंग शिथिल हो गये थे। उठने को हुए तो लगा, बासी घाव उभर आया है। अनायास गुनगुना उठे—

दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परब्बसु प्राणु।
सहि मणु विसम सिणेह वसु मरणु सरणु णहु आणु॥

तीन

देवरात ने दूसरे दिन वृद्धगोप-दम्पति को अनेक साधुवाद देकर विदा किया। वृद्धगोप की पत्नी बालिका को अपने साथ ले जाना चाहती थी, पर ऐसा नहीं हो सका। देवरात शोकावेग में भूल ही गये थे कि बालिका के वस्त्रों में एक छोटी-सी पेटी भी बँधी थी। प्रात:काल वृद्धगोप ने उन्हें वह पेटी दिखाई। वह काठ की बनी हुई चौकोर-सी छोटी पेटी थी जो लाल चीनांशुक में लपेट-कर रखी हुई थी। उसमें एक छोटा-सा भूर्जपत्र भी उलझा हुआ था। उस पर कुछ लिखा हुआ था। देवरात ने उत्सुकतापूर्वक उसे पढ़ा। लिखा था, 'कन्या-धन। जिस किसी को यह प्रतोलिका मिले उसे क्षिप्तेश्वर महादेव की शपथ है। इस प्रतोलिका और इस कन्या को आर्य देवरात के पास पहुँचा दे। इसमें इस कन्या के विवाह के समय दिये जाने योग्य उसकी माता का आशीर्वाद है। क्षिप्तेश्वर महादेव की शपथ, कुलदेवताओं की शपथ, पितरों की शपथ।' देवरात ने पढ़ा तो उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने करुणा-विगलित स्वर में वृद्धगोप-पत्नी को सम्बोधन करते हुए कहा, 'क्षमा करें आर्ये, यह बालिका देवरात के पास ही रहेगी। उसकी माता की अन्तिम इच्छा यही है। मेरे ऊपर दया करें। मैं इस शपथ की उपेक्षा नहीं कर सकता।' फिर वृद्धगोप से बोले, 'भद्र, यदि अनुचित न मानें तो इस पेटिका को आप ही कहीं सुरक्षित रख दें। इस बालिका के विवाह के अवसर पर ही इसे खोला जायेगा। इसमें मुमूर्षु माता का आशीर्वाद है। इस न्यास को रखने योग्य सुरक्षित स्थान मेरे आश्रम में नहीं है। यथा-अवसर इसे मुझे लौटा दें।' इतना कहकर देवरात मर्माहत-से स्तब्ध रह गये। वृद्धगोप ने उनकी बात मान ली। भरा हुआ हृदय और आहत मन लेकर वृद्धगोप-दम्पति अपने घर चले गये।

कुछ दिनों बाद नगर की अवस्था ठीक हो गई। महामारी के समाप्त होने के बाद लोग अपने घरों में लौट आये और फिर हलद्वीप जैसे-का-तैसा हो गया। परन्तु इस महामारी ने देवरात के ऊपर एक नन्ही-सी बालिका को पालने-पोसने का भार दे दिया। नियति का कुछ ऐसा ही विधान था कि जिस संसार को छोड़कर देवरात वैरागी बने थे, वह उनके ऊपर पूरी शक्ति के साथ आ जमा। देवरात वैरागी से गृहस्थ हो गये। उनकी सारी शक्ति मृणालमंजरी की देखभाल में लगने लगी। स्वच्छन्द जीवन परवशता में परिवर्तित हो गया। स्नेह का बन्धन भी कैसी विचित्र वस्तु है! वह बाँधता है, परन्तु अपने ऊपर पूरी आसक्ति पैदा करके। देवरात के लिए इस अनायास-लब्ध पितृत्व का बन्धन जितना कठोर हुआ उतना ही मोहक भी। बालिका भी कैसी थी, शोभा और

कान्ति की मूर्ति ! जब हँसती थी तो ऐसा जान पडता था कि निखिल चराचर मे जीवन का समुद्र लहरा उठा है। बहुत दिनो तक देवरात सब-कुछ भूलकर उस बालिका की सेवा मे ही दिन बिताते रहे। श्यामरूप और आर्यक को भी इस बालिका के रूप मे एक निधि-सी मिल गयी। विशेष रूप से आर्यक और मृणालमजरी दिन-रात खेलने मे लगे रहते। श्यामरूप कुछ बडा था और अपने बडप्पन का पूरा अधिकार भी मानता था। वह दोनो पर शासन करता था, दोनो के झगडे का फैसला करता था और आवश्यकता पडने पर दण्ड देने की भी व्यवस्था करता था। बालिका कुछ बडी हुई तो उसने भी पढने मे साथ दिया। इन तीन शिष्यो को पढाकर देवरात मानो धन्य होते। श्यामरूप और आर्यक जब अखाडे मे लडने जाते तो मृणालमजरी एकटक उन्हे देखती रहती। कभी-कभी अपने पिता से आग्रह करती कि उसे भी व्यायामशाला मे जाने की अनुमति दी जाये। परन्तु देवरात हँसकर रह जाते, कहते, 'बेटा, यह लडना और व्यायाम करना पुरुषो का काम है। तुझे मैं इसके बदले मे चित्र-विद्या सिखाऊँगा और नृत्य-कला की शिक्षा दूंगा।' धीरे-धीरे मृणालमंजरी को अनुभव होने लगा कि वह श्यामरूप आर्यक से कुछ भिन्न है। उसके आचरण और आदर्श, पुरुषो के आचरण और आदर्श से भिन्न हैं। देवरात ने उसे नारी-सुलभ कलाओं का ज्ञान करवाया, स्त्री-धर्म की शिक्षा दी, व्रत और उपवास में कुशल बनाया, वीणा और वशी बजाना सिखाया और अन्य सुकुमार कलाओ से परिचय करवाया। लोगो को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि देवरात सुकुमार नृत्य मे भी कुशल है और इस विषय मे भी वह कुछ सिखा सकते हैं।

श्यामरूप जब अट्ठारह वर्ष का हुआ तो देवरात ने वृद्धगोप को बुलाकर कहा कि श्यामरूप धार्मिक ब्राह्मण की अपेक्षा मल्ल ही अधिक बनता जा रहा है। उन्होंने पहली बार बताया कि वे स्वय क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न होने के कारण वैदिक कर्मकाण्ड से अपरिचित हैं। श्यामरूप को वैदिक कर्मकाण्ड की शिक्षा के लिए शिप्तेश्वर की पाठशाला मे भेज दिया जाये। वृद्धगोप ने उनकी सलाह मान ली और उसे शिप्तेश्वर महादेव के मन्दिर से सम्बद्ध वैदिक पाठशाला मे भेज दिया। यह पाठशाला राजकीय सहायता से चलती थी। वहाँ वैदिक कर्मकाण्ड के निष्णात विद्वान् अध्यापन कार्य करते थे। हलद्वीप मे उस पाठशाला की बडी ख्याति थी। जनता मे वह 'लहुरी काशी' नाम से प्रसिद्ध थी। लोग कहा करते थे कि जो बातें काशी मे सीखी जाती हैं वे सब इस पाठशाला मे सीखी जा सकती हैं। परन्तु श्यामरूप का मन इस पाठशाला में नहीं लगा। उसे वैदिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा मल्ल-विद्या से अधिक प्रेम था। वह बार-बार भागकर देवरात के आश्रम मे आ जाता था। और वृद्धगोप उसे हर बार पकडकर शिप्तेश्वर की पाठशाला मे दे आते। एक दिन सुना गया

कि श्यामरूप न जाने कहाँ लुप्त हो गया है। वृद्धगोप बहुत दिनों तक रोते रहे। ज्योतिषियों और तान्त्रिकों के पास उसका पता जानने के लिए दौड़-धूप करते रहे। परन्तु श्यामरूप का पता नहीं चला। आर्यक की अवस्था उस समय कोई चौदह साल की रही होगी। बड़े भाई को खोजने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो उठा। एक दिन उसने मृणालमंजरी से कहा कि मैं अपने बड़े भाई को खोजने जाऊँगा। मृणालमंजरी व्याकुल हो गयी। उसने कहा, 'नहीं, तुम जाओगे तो मैं किसके साथ खेलूँगी?' परन्तु आर्यक दृढ़ रहा और चुपचुप भागने की तैयारी करने लगा। मृणालमंजरी ने उसे समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में उसने अपना ब्रह्मास्त्र चलाया, बोली, 'मैं अपने पिताजी से कह दूँगी कि तुम भागना चाहते हो।' आर्यक घबराया। मिन्नत करता हुआ बोला, 'नहीं मैना, गुरुजी से यह बात न कह। मैं अपने बड़े भाई के बिना जी नहीं सकता। तेरी सब मानूँगा, केवल इतनी-सी बात मुझे अपने मन की करने दे।' मैना अर्थात् मृणालमंजरी पसीज गयी, बोली, 'लौटकर आओगे न?' 'अवश्य आऊँगा मैना, मैं भाई का पता लगाकर यहाँ फिर लौट आऊँगा।' मैना ने वादा किया कि वह अपने पिता से उसके भागने की बात नहीं कहेगी और एक दिन आर्यक भी चुपचाप खिसक गया। मृणाल उदास हो गयी।

कुछ दिन बाद मृणालमंजरी को उसके पिता ने बताया कि आर्यक का पता चल गया है और वृद्धगोप उसे घर ले आये हैं। वे अब बहुत सावधान हो गये हैं। आर्यक पर कड़ी निगाह रखते हैं। आर्यक को वे अब आश्रम में नहीं आने देंगे। मृणालमंजरी (मैना) ने सुना तो उसकी उदासी और बढ़ गयी। वह बार-बार पिता से आग्रह करती कि आर्यक को बुला लें, पर देवरात चुप हो जाते। मृणालमंजरी कुछ समझ नहीं सकी। उसके मन में बेचैनी रहने लगी। सोचती, पिताजी आर्यक को क्यों नहीं बुलाते? उसके न रहने से मेरा मन कैसे लगेगा? वह क्या अब अकेली ही रहेगी? परन्तु देवरात उसे कुछ भी नहीं बताते। जब वह पूछती तो कह देते कि आर्यक अपने पिता की आज्ञा के बिना यहाँ नहीं आ सकेगा। उसे और-और बातों में भुलाने का भी प्रयत्न करते। मृणालमंजरी उदास रहने लगी। फिर भी, मन-ही-मन वह आशा लगाये रही कि आर्यक फिर लौट आयेगा। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। उस समय तक मृणालमंजरी के बालक-मन में आर्यक खेल के साथी के रूप में ही विद्यमान था। परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गये और आर्यक के लौटने की आशा समाप्त होती गयी, वैसे-वैसे उसका चित्त अधिकाधिक सूना होता गया। शुरू-शुरू में तो वह अपने पिता से बराबर पूछती रही कि आर्यक कहाँ है। और क्या कर रहा है? परन्तु समय के लम्बे व्यवधान के बाद एक ऐसी अवस्था भी आयी

जब पिता से पूछने में उसे संकोच अनुभव होने लगा। मृणालमंजरी को पहली बार अनुभव हुआ कि आर्यक के बारे में पूछना ठीक नहीं। क्यों ऐसा हुआ, यह प्रश्न उसके मन में उठा ही नहीं। ऐसा लगता था जैसे कोई हृदय के अज्ञात गह्वर मे बैठा कह रहा है कि सयानी लड़कियों का किसी लड़के के बारे में इतना पूछना उचित नहीं है। कालिदास ने जिसे 'अनिश्चित पटुत्व' कहा है, यह बहुत कुछ उसी प्रकार का भाव था। देवरात ने मृणालमंजरी को बहुत-से काव्य-नाटकों का अभ्यास कराया था और उनमे ऐसे प्रसंग भी आते थे जिनमें युवावस्था में एक विशेष प्रकार के चित्तगत विस्फार या फैलाव की चर्चा हुआ करती थी। परन्तु मृणालमंजरी ने कभी प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया था कि चित्त का फैलाव होता क्या है। उसे पहली बार चित्तगत संकोच का अनुभव हुआ। यह भी क्या युवावस्था का लक्षण था? मृणालमंजरी के मन में यह प्रश्न भी नहीं उठा। जो हुआ वह सिर्फ यही था कि उसके मन ने पहली बार अनुभव किया कि आर्यक उसके लिए बचपन के साथी से कुछ भिन्न प्रकार का साथी भी हो सकता है। बचपन के साथी के बारे में किसी से पूछने में संकोच नहीं होता। लेकिन उसकी समझ में यह बात भी नहीं आ रही थी कि बचपन के साथी के अतिरिक्त आर्यक और है क्या? उदास तो वह पहले भी रहती थी, लेकिन नये सिरे से जो उदासी शुरू हुई वह निश्चित रूप से अन्य श्रेणी की थी। पहली उदासी किसी के सामने छिपाने की चीज नहीं थी जबकि यह नयी उदासी अपने-आपको छिपाने की बुद्धि के साथ आयी। मृणालमंजरी स्वयं ही अपने को समझ नहीं पा रही थी। जितना ही वह आर्यक के बारे में उत्सुकता प्रकट न करने और उसके लिए चित्त में उत्पन्न व्याकुलता को छिपाने का प्रयास करने लगी, उतना ही उसका अंग-प्रत्यंग मानो चिल्लाकर कहने लगा कि वह उदास है, वह व्याकुल है। उसका हृदय उस कली के समान तड़पने लगा जो रंग, रूप, गन्ध के रूप में फूट पड़ने को विवश है, लेकिन इस विवशता को छिपाने का भरपूर प्रयत्न करती है।

देवरात के आश्रम में केवल दो ही व्यक्ति रहते थे—एक स्वयं वे और दूसरी उनकी पुत्री। दिन-भर तरह-तरह के लोग आते रहते थे और अपनी कठिनाइयों का उपचार उनसे पूछते रहते थे। मृणालमंजरी भी यथाशक्ति अपने पिता की सहायता करती रहती थी और समय बड़ी व्यस्तता में कट जाता था। उसके मन में किसी प्रकार का व्यक्तिगत प्रश्न उठता ही नहीं था। ऐसा लगता था कि उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है। अपने परोपकारी पिता का वह अंश-मात्र है—ऐसा अंश, जिसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, जिसकी नाड़ी में पूर्ण की ही धड़कन प्रतिध्वनित होती है। परन्तु इन सारी व्यवस्तताओं की ठोस नीरन्ध्र दीवार को भेदकर न जाने कब उसके

शरीर में युवावस्था बिना बुलाये ही आ पहुँची। जिस प्रकार तूलिका के सम्पर्क में चित्र उन्मीलित हो उठता है, और उसका उच्चावच भाव उभर आता है और जिस प्रकार सूर्य की किरणों के सम्पर्क में कमल की कली रूप, वर्ण, प्रभा और गन्ध में उद्भिन्न हो उठती है, उसी प्रकार नवीन तारुण्य के सम्पर्क में अनायास ही उसका चतुरस्र शरीर उद्भिन्न हो उठा और शरीर का यह उद्भेद अन्तस्तल तक भेद गया। जिस प्रकार उसके शरीर में उच्चावच भाव का उन्मीलन हुआ उसी प्रकार उसके चित्त में भी संकोच और विस्फार तत्त्वों का उद्भेद हुआ। कहना तो यह चाहिए कि उसके शरीर का उन्मीलन तूलिका द्वारा स्पष्ट चित्र की भाँति और मन का उद्भेद सूर्य-किरणों द्वारा उन्मीलित कमल-पुष्प की भाँति हुआ।

इस बीच हलद्वीप में कई नयी घटनाएँ घटीं। राजा का स्वर्गवास हुआ। सारे नगर में शोक छा गया। फिर युवराज का राज्याभिषेक हुआ। नगर में उत्सवों का ताँता बँध गया। देवरात पुराने राजा के शोक-कृत्यों में शामिल होते रहे, पर नये राजा के अभिषेक-समारोह में शामिल नहीं हो सके। नगर की कष्ट-पीड़ित वहुएँ बराबर आश्रम में आया करतीं और नित्य होनेवाले समारोहों का समाचार मृणालमंजरी को भी देती रहतीं। इन्हीं दिनों किसी मुखरा पौर-वधू ने मृणालमंजरी को बताया कि नगर के लोग कहा करते हैं कि मंजुला के नृत्यगान जिन्होंने देखे हैं, वे अब इन नृत्य-गानों का क्या आदर करेंगे। मंजुला के साथ-ही-साथ नगर की शोभा और श्री चली गयी। उसने ही प्रथम बार मृणाल को बताया कि वह मंजुला की ही बेटी है। उसने गाल पर हाथ रखकर बड़ी सहानुभूति का भाव दिखाते हुए कहा कि उसकी माता जीवित होती तो आज क्या वह यों ही दीन-मलिन होती। उसने और भी बहुत-सी बातें कहीं पर मृणाल सबका अर्थ नहीं समझ सकी, उसे सुनकर कैसा-कैसा लगा। उसने पिता से इस बारे में कुछ पूछना चाहा पर इस विषय में भी उसे संकोच का अनुभव हुआ। वह पौर-वधू फिर नहीं आयी, पर उसने मृणाल के मन में एक विचित्र प्रकार का अवसाद उत्पन्न कर दिया। मृणाल अन्य स्त्रियों से नगर के नृत्य-गान-समारोहों का समाचार पाती रही और वह भी समझने लगी कि गणिकाओं के सम्बन्ध में जनता की धारणा बहुत हीन कोटि की है। उसके मन में रह-रहकर अपने जन्म के विषय में खेद और जुगुप्सा के भाव उठते रहे। पर वह पिता से अपनी मन.स्थिति छिपाये रही। कभी-कभी जब वह उद्विग्न होती तो आर्यक उसके मन में आ जाता। वह कातर भाव से उसकी मानस-मूर्ति से अनुरोध करती कि वह उसे भयंकर मनोवेदना से बचा ले।

देवरात अब चिन्तित दिखाई देने लगे। बेटी सयानी हो गयी, उसे सुयोग्य

पात्र के हाथ सौंपकर ही वे निश्चिन्त हो सकते थे। पर सुयोग्य पात्र कहाँ मिले ? उनकी दृष्टि आर्यक पर आकर रुक जाती थी। वही इस कन्या के योग्य वर है। पर वृद्धगोप क्या यह सम्बन्ध स्वीकार करेंगे ? स्वयं आर्यक क्या इस सम्बन्ध से प्रसन्न होगा ? उन्होंने मन-ही-मन इस सम्बन्ध की कल्पना कर ली। कन्या का मन क्या चाहता है, यह जानना भी जरूरी था। चतुर देवरात ने ध्यान देकर मृणालमंजरी के मन को परखना चाहा। आर्यक का किसी प्रसंग में नाम आ जाने पर वह कुछ उपेक्षा-भाव दिखाती है, पर प्रसंग बदल देने पर चाहती है कि किसी प्रकार फिर छिड़ जाये। उसमें आर्यक के प्रति अभिलाष-भाव है, यह बात उनसे छिपी नहीं रही। एक दिन उन्होंने आर्यक के मन का भाव जानने की इच्छा से वृद्धगोप के घर जाने का निश्चय किया। मृणाल को भी साथ चलने को कहा पर उसने केवल सिर हिलाकर 'ना' कह दिया। उस समय उसकी आँखें झुक गयी थीं। देवरात यदि अधिक आग्रह करते तो वह कदाचित् चलने को तैयार भी हो जाती, पर देवरात ने वैसा कुछ भी नहीं किया। वे अकेले ही च्यवनभूमि की ओर बढ़ गये। चलते समय उन्होंने मुड़कर देखा, मृणालमंजरी उत्सुक नयनों से उनका रास्ता देख रही है। जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये, वह उसी प्रकार एकटक देखती रही। देवरात मन-ही-मन पुलकित हुए।

च्यवनभूमि के गोपाटक गाँव में वृद्धगोप का घर था। हलद्वीप से वह बहुत दूर नहीं था। देवरात जब उस गाँव में पहुँचे तो पहले-पहल आर्यक ही उन्हें मिल गया। वह कहीं बाहर से आ रहा था। देवरात ने इसे शुभ शकुन माना। आर्यक को देखकर उनकी आँखें जुड़ा गयीं। तीन वर्ष के भीतर आर्यक अब सिंह किशोर की भाँति पराक्रमी दीख रहा था। उसकी चौड़ी छाती, विशाल बाहु और कसा हुआ शरीर बरबस आँखों को आकृष्ट करते थे। उसकी गति में अन्तर्मदावस्थ गजराज की भाँति मस्ती थी और आँखों में तरुण शार्दूल के समान अकुतोभय भाव लहरा रहे थे। उसके अंग-अंग में प्रच्छन्न तेज की दीप्ति दमक रही थी। उसने बड़ी भक्ति के साथ देवरात के चरणों को स्पर्श किया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। देवरात को एक अद्भुत वात्सल्य भाव का अनुभव हुआ। ऐसा जान पड़ता था जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्त मणि पसीज उठी हो, उसके स्पर्श से उन्हें एक विचित्र प्रकार की शीतलता का अनुभव हुआ, मानो चित्तभूमि में किसलयवती चन्दन-लता ही उग आई हो, प्रवाहवती कर्पूर धारा ही उमड़ उठी हो और चन्द्रमा की स्निग्ध सुधा ही उपलिप्त हो गयी हो। वृद्धगोप ने बहुत दिनों के बाद देवरात का दर्शन करके अपने-आपको कृतार्थ अनुभव किया। बोले, 'आर्य, आपके आशीर्वाद से आपका यह शिष्य सब प्रकार से आपके शिक्षण और उपदेश

के उपयुक्त सिद्ध हुआ है। वृद्धावस्था में मेरे मन में एक ही कचोट रह गयी है कि मेरा श्यामरूप जाने कहाँ चला गया है। आज वह भी होता तो मैं निश्चिन्त होकर संसार-त्याग कर सकता। परन्तु मेरे भाग्य में यह सुख नहीं बदा है। आर्यक के मन में भी मेरी तरह श्यामरूप के विछोह का दुख है। परन्तु परमात्मा की इच्छा कुछ और ही प्रकार की है। मेरा मन कहता है कि मेरा श्यामरूप अवश्य लौटकर आयेगा, परन्तु कदाचित् मैं उसे नहीं देख सकूँगा।' वृद्ध की आँखों में आँसू भर आये। देवरात को भी कष्ट हुआ। उन्होंने वृद्धगोप को आश्वस्त करते हुए कहा, 'चिन्ता न करो तात, श्यामरूप अवश्य आयेगा। मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती। भगवान् पर विश्वास रखो। वे सब मंगल ही करेंगे।' देवरात देर तक आर्यक के साथ बातचीत करते रहे और वृद्धगोप को भी आश्वस्त करते रहे। जब वृद्धगोप थोड़ी देर के लिए किसी काम से अन्यत्र चले गये तो अवसर पाकर आर्यक ने धीरे से पूछा, 'मृणालमंजरी कैसी है गुरुदेव?' देवरात ने इस बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया कि आर्यक ने पिता के सामने यह प्रश्न नहीं पूछा। उन्होंने यह भी लक्ष्य किया कि प्रश्न करते समय आर्यक की आँखें नीचे झुक गयी थीं। उन्होंने प्यार से कहा, 'बहुत अच्छी है, बेटा। तुम तो कभी आये ही नहीं। वह तो तुम्हें हमेशा याद करती रहती है।' आर्यक के गम्भीर मुखमण्डल पर उद्विग्नता की हल्की लकीरें उभर आयीं। उसकी आँखें और भी झुक गयीं। अस्फुट स्वर में बोला, 'आऊँगा।' परन्तु देवरात के पारखी चित्त को इसका अर्थ समझने में विशेष अड़चन नहीं हुई। उसका भाव था कि आर्यक के जाने में कहीं-न-कहीं कुछ बाधा है। उस दिन देवरात प्रसन्न मन वहाँ से लौटे। उन्हें लगा कि मृणालमंजरी के योग्य वर खोजने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं होगी।

मृणालमंजरी ने पिता से आर्यक के बारे में पूछा अवश्य, परन्तु उसकी भाषा थोड़ी जड़िमाग्रस्त थी। वह पूछना कम और सुनना ज्यादा चाहती थी। देवरात ने उल्लासपूर्वक आर्यक के रूप, गुण, विनय और शील की बार-बार प्रशंसा की। मृणालमंजरी चुपचाप सुनती रही। परन्तु उसे अनुभव हो रहा था कि सुनने से उसकी तृप्ति नहीं हो रही है। यह प्रसंग कुछ और चलता रहे, उसमें कोई और नयी शाखा-प्रशाखा निकल आये, यह उसकी हार्दिक मनोकामना जान पड़ती थी। देवरात भी देर तक आर्यक का ही बखान करते रहे।

परन्तु देवरात ने आर्यक और मृणालमंजरी के विवाह को जितना आसान समझा था, उतना वह सिद्ध नहीं हुआ। दूसरी बार वे फिर गोपाटक गये और वृद्धगोप से स्पष्ट रूप से इस विवाह का प्रस्ताव किया, तो वे एकदम चौंक पड़े, बोले, 'ऐसा कैसे हो सकता है, आर्य? मृणालमंजरी बहुत अच्छी लड़की है। मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ। परन्तु है तो वह गणिका-पुत्री ही! मैं

अगर मान भी लूं तो मेरे परिवार के लोग कैसे मानेंगे ?' देवरात इस उत्तर से बहुत निराश हुए। उन्हे इस बात मे कोई सन्देह नहीं रहा कि वृद्धगोप का कहना ठीक है। लोकाचार वृद्धगोप के पक्ष मे है। परन्तु उनका हृदय कहता था कि विधाता ने यह जोडी समझ-बूझकर बनाई है। लोकाचार इसमें बाधक भी हो तो भी यह करणीय है। परन्तु वृद्धगोप को सन्तुष्ट करने योग्य कोई तर्क या युक्ति उनके पास नही थी। वे उदास हो गये। उनको विषादयुक्त देखकर वृद्धगोप के मन मे उनके प्रति सहानुभूति जगी, परन्तु फिर भी लोकाचार से उनका चित्त ऐसा बँधा हुआ था कि वे देवरात को आश्वस्त करने योग्य कोई बात नही कह सके। उदास होकर भीगी वाणी से देवरात ने उपसंहार किया। बोले, 'थोडा और सोचकर देखिए!' वृद्धगोप का मन सिकुड गया। क्या सोचना है इसमे !

देवरात लौटकर आये तो मृणालमंजरी उनके निकट देर तक मँडराती रही। वह कुछ सुनना चाहती थी। देवरात इधर-उधर की बातें करते रहे, पर एक बार भी उन्होंने आर्यक का नाम नही लिया। मृणाल को लगा कि पिता कुछ उदास और उद्विग्न है। क्या कष्ट है उन्हे ! बालिका के अबोध चित्त मे नवीन चेतना अकुरित हुई। उसी के कारण तो पिताजी चिन्तित नहीं हैं ? किस उद्देश्य से वे आर्यक के गांव गये थे, क्या परिणाम हुआ ? उसके मन मे अज्ञात आशका का उदय हुआ। परन्तु पिता एकदम मौन। वह मन मसोसकर रह गयी।

देवरात के आश्रम मे एक छोटी-सी कुटिया थी, जिसमे एकमात्र देवरात ही जा सकते थे। वे उसे उपासना-गृह कहा करते थे। स्नान करने के बाद वे एक बार उसमे अवश्य जाया करते थे। मृणाल भी उस उपासना-गृह मे नही जा सकती थी। उस दिन देर तक वे उपासना-गृह मे बैठे रहे। निकले तो उनकी आँखें गीली थी। मृणाल का हृदय फटने को आया। पिताजी क्यो इतने उदास हैं ?

देवरात ने बेटी के मुरझाये मुख को देखा तो बडे व्यथित हुए। उन्हें लगा कि सयानी लडकी के सामने उदासी का भाव दिखाकर उन्होंने गलती की है। उन्होने हँसने का प्रयत्न किया। मृणाल को एक ओर ले जाकर उन्होने प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरा। बोले, 'तू उदास क्यो हो गयी है बेटी !'

मृणाल का हृदय उमड आया। उसकी आँखो से आँसू बहने लगे। बोली कुछ नही। देवरात समझ गये कि लड़की ने उनके हृदय के विषाद का अनुमान कर लिया है। ये आँसू अभिमान के है। पिता अपना दु:ख पुत्री को क्यो नही बताते ? उन्होंने प्यार से उसे गोदी मे खींच लिया। 'रोती है पगली, तेरे कष्ट का कारण क्या है !' वे देर तक दुलार करते रहे। मृणाल का अनुमान और भी

पुष्ट हुआ। वही पिता की चिन्ता का कारण है। देवरात के मौन ने उसे और भी उद्विग्न किया।

चार

हलद्वीप के राजा यज्ञसेन भारशिव नागवंश के थे। कान्तिपुर के राजाधिराज वीरसेन के सेनापति प्रवरसेन को जब काशी में नवम अश्वमेध यज्ञ के आयोजन का भार दिया गया, तो अपने पिछले अनुभवों के आधार पर उन्होंने निश्चय किया कि साकेत से पाटलिपुत्र तक कुषाण नरपतियों का जो भी प्रभाव अवशिष्ट रह गया है उसे समाप्त कर दिया जाये। उनके पुत्र विजयसेन को अश्वरक्षा का भार दिया गया। उसी समय से हलद्वीप में भारशिवों का आधिपत्य हुआ। ये लोग साधारण जनता में भरशिव या भर कहे जाते थे। यज्ञसेन विजयसेन के पुत्र थे और कान्तिपुरी की ओर से हलद्वीप का शासन करते थे। यज्ञसेन ने समझ लिया था कि आभीरों की सहायता के बिना वे इस प्रदेश में अधिक दिन तक नहीं टिक सकेंगे। यद्यपि वे स्वयं शिव के उपासक थे और आभीरगण वासुदेव कृष्ण के उपासक थे, फिर भी उन्होंने किसी प्रकार संकीर्णता नहीं दिखायी। भृगु-आश्रम का विशाल विष्णु मन्दिर उन्होंने ही बनवाया था। उस मन्दिर में चतुर्व्यूह विष्णुमूर्ति की प्रतिष्ठा उन्होंने धूमधाम से करायी थी। भरों और आभीरों की मैत्री सुदृढ करने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते थे। पर उनके पुत्र रुद्रसेन ने इस मैत्री में दरार पैदा कर दी। वह लम्पट और दुर्वृत्त राजा सिद्ध हुआ। उसके औद्धत्य से हलद्वीप की प्रजा त्रस्त हो उठी। बहू-बेटियों का शील भी दुर्वृत्त राजा की जुगुप्सित लालसा की बलिवेदी पर घसीटा जाने लगा। देवरात ने नये राजा को नीति-मार्ग पर ले आने के अनेक प्रयत्न किये, पर राजा उससे और भी क्रुद्ध हो उठा। उसे देवरात की हर सलाह में स्पर्द्धा ही दिखी। प्रजा में असन्तोष बढ़ता गया। भर सैनिकों का औद्धत्य भी बढ़ता गया। बात-बात में निरीह जनता को कष्ट पहुँचाया जाता, खलिहान जला दिये जाते, घर गिरा दिये जाते, खड़ी फसलें काट ली जातीं। नये-नये करों से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। देवरात के पास सताये हुए निरपराध लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। पहले तो उन्होंने राजा को समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया, पर उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली।

मृणाल अब सयानी हो गयी थी। नगर की पीड़ा को वह समझने लगी

थी। पिता की विवशता से वह दुःखी होती, पर वह समझ नही पा रही थी कि किस प्रकार वह पिता का भार हल्का कर सकती है। नगर की प्रौढ स्त्रियाँ उसे इस प्रकार की रोमांचकर कहानियाँ सुना जाती कि वह व्याकुल हो उठती। उसके मन मे बार-बार प्रश्न उठता कि स्त्रियाँ क्या सचमुच अबला हैं। क्या वे इस प्रकार के अत्याचारो का सामना नही कर सकती? कैसे कर सकती है? प्रौढा महिलाएँ उसे यही सिखाती कि वह घर से बाहर न निकले। मृणाल इस प्रकार की सलाह से और भी व्याकुल हो उठती। क्या विधाता ने स्त्रियो को केवल भार रूप मे बनाया है? वे पर-रक्षा तो क्या आत्मरक्षा मे भी समर्थ न रहे, यही क्या विधाता की इच्छा थी? वह केवल सोचती रहती, उसे कुछ रास्ता नही दिखायी देता। पिता की व्याकुलता को कम करने मे वह अपने को असमर्थ पाती। उसे अब अपनी विवशता असह्य लगने लगी। हाय, वह अपने देवता-तुल्य पिता की चिन्ता को क्या कुछ भी हल्का नही कर सकती। अत्याचार की कहानियाँ सुन-सुनकर वह विकल हो उठी थी।

राजा को अन्तिम बार समझाने-बुझाने के उद्देश्य से उस दिन जब देवरात चलने लगे तो मृणाल ने उदास दृष्टि से उनकी ओर देखा। उस दृष्टि मे एक विचित्र प्रकार के विवशताबोध का भाव था, मानो कह रही हो, 'मैं क्या किसी काम नही आ सकती?' देवरात को वह भाव बडा करुण जान पडा। पास आकर उन्होने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरा। प्यार से कहा, 'एक और प्रयत्न कर लेता हूँ। जानता हूँ यह दुष्ट नाग समझाने-बुझाने से वश मे नही आयेगा। पर एक और प्रयत्न कर लेने मे कोई हानि नही है। अन्त मे तो कालियादमन ही रास्ता रह जायेगा।'

मृणाल को लगा कि पिता उसके मनोभाव बिलकुल नही समझ रहे है। उसके हृदय मे जो द्वन्द्व चल रहा है उसका आभास भी उन्होने नही पाया है। व्यथित स्वर मे उसने कहा, 'पिताजी, मैं क्या इस समय आपके किसी काम नहीं आ सकती? दिन-दहाड़े प्रजा की सम्पत्ति लूटी जा रही है, बहू-बेटियो का शील नष्ट किया जा रहा है। आपकी यह अभागिन कन्या क्या इस समय कुछ भी नही कर सकती? आपका मुर्झाया मुख मुझसे नही देखा जाता। मुझे भी कुछ करने की आज्ञा दें।'

देवरात ने चकित होकर कन्या की ओर देखा। उन्होंने कभी भी यह नही सोचा था कि उनकी नन्ही-सी मृणाल मे इतना तेज है। वे भरसक यही प्रयत्न करते थे कि उसे इन अनाचारो की बात न सुनायें। वे हतबुद्धि-से होकर सोचने लगे, ऐसी लडकियाँ इन बातों मे क्या सहायता कर सकती हैं? उन्होंने प्यार से मृणाल का सिर सहलाया, 'मेरी प्यारी बेटी, इस अनाचार को दूर करने का ही तो उपाय कर रहा हूँ। बेटियो की शीलरक्षा का भार पुरुषों पर है। तुझे

मैं कौन-सा काम दे सकता हूँ ? तू तो जो संभव है सब कर ही रही है। दीन-दुखियों की सेवा करना, उनके भीतर आत्मबल संचारित करना, यही तो तेरा काम है। तू कर तो रही है। इससे अधिक जो कुछ करना होगा, वह हलद्वीप के नौजवान करेंगे। तुझे मैं वैसा काम कैसे दे सकता हूँ ?'

मृणाल उदास हो गयी। उसे पिता की विवशता से क्षोभ हुआ। स्त्रियों की शील-रक्षा का भार पुरुषों पर है! पिता ने अन्तिम बात कह दी है। पर राजा के गुण्डे क्या पुरुष नहीं ? उनके ऊपर तो शील नष्ट करने का भार आ पड़ा है। मृणाल का मन विद्रोह कर उठा। बोली नहीं, पर उसके नासापुट बार-बार फड़कने लगे, भृकुटियों में खिंचे हुए धनुर्दण्ड के समान तनाव आ गया। पिता ने उसके भावों को समझने का प्रयास किया। उन्हें कुछ नया अनुभव हुआ। कुछ सोचकर बोला, 'सुना है बेटी कि कान्तिपुरी के निकट विन्ध्याटवी में कोई सिद्ध पुरुष आये हैं। उन्हें देवी ने स्वप्न में आदेश दिया है कि 'मेरे सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी रूप की पूजा का प्रचार करो। जो पुरुष शूर हैं, धर्म के अनुकूल हैं, पापी से डरना नहीं जानते, अन्यायी का रक्तपान करते हैं, वे सिंह हैं। मैं उन्हीं को वाहन बनाकर धर्म-स्थापना करती हूँ, परन्तु जो तामसिक हैं, अविवेकी हैं, धर्मद्वेषी हैं, निरीहों को भय दिखाते हैं, दूसरों का शस्य-क्षेत्र नष्ट करते हैं, मदमस्त होकर चलते हैं, वे महिष हैं। मैं उनका संहार करके धर्म की स्थापना करती हूँ।' सुना है कि इस स्वप्न के बाद उन्होंने इस मूर्ति की उपासना चलायी है और महिषमर्दिनी की स्तुति के मनोरम काव्य लिखे हैं।'

मृणाल को रोमांच हो आया। महिषमर्दिनी दुर्गा ! उल्लसित होकर बोली, 'पिताजी, मुझे महिषमर्दिनी की उपासिका बनने की अनुमति दें। मैं इन घृणित पापाचारियों को ध्वस्त करने की दीक्षा लेना चाहती हूँ। मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। इन घिनौने पशुओं को अधिक छूट मिली तो ये धरती को धर्महीन कर देंगे !'

देवरात अवाक् होकर बेटी का मुँह देखने लगे।

थोड़ी देर तक वे मन्त्रमुग्ध की भाँति मृणाल के तेजोमण्डित अदनार मुख की ओर देखते रहे। फिर बोले, 'नहीं बेटी, महिषमर्दिनी की उपासिका नहीं, तू सिंहवाहिनी की उपासिका बन। जो बात मेरी समझ में नहीं आ रही है उसे करने की सलाह मैं नहीं दे सकता। मुझे सिंहवाहिनी की उपासना तेरे जैसी लड़कियों के लिए उचित जान पड़ती है। महिषमर्दिनी केवल भावलोक की साधना है। वह कविता में फबती है, व्यवहार में नहीं है।'

मृणाल को पहेली-जैसा लगा। वह उत्सुकता के साथ पिता की ओर देखती रही, कुछ अधिक स्पष्ट समझने की आशा से, परन्तु पिता विचारों की दुनिया

मे खो गये, अपनी बात के सर्वांग सत्य होने के विश्वास से। मृणाल ने उनका ध्यान भंग किया, 'नहीं समझ में आया पिताजी, जो बात कविता में फलती है वह व्यवहार में क्यों नहीं फलेगी।'

देवरात शान्त वाणी में बोले, 'कविता, भगवती महामाया की इच्छा-शक्ति है, व्यवहार-जगत् उनकी क्रिया-शक्ति का विलास है। इच्छा-शक्ति कल्पलोक का निर्माण कर सकती है, क्रिया-शक्ति केवल सृष्ट पदार्थों तक सीमित है। मुझे ऐसा लगता है कि उपपन्न कवि चाहे तो कविता के कल्प-लोक में फूल-सी सुकुमार बालिका से वज्र-कठोर महिष का निर्दलन करवा सकता है, पर व्यवहार-जगत् में यह सम्भव नहीं दिखता।'

मृणाल मुरझा गयी। बोली, 'तो कविता निरर्थक हुई पिताजी ?'

देवरात ने हँसते हुए कहा, 'नहीं, अर्थभार से हीन, सत्त्वार्थमात्र ! मगर यह कविता पर विचार करने का समय नहीं है, बेटी ! मेरी बात को समझने का प्रयत्न कर। मैं जब तक लौट आता हूँ तब तक तू इस बात पर विचार कर कि तुझे सिंहवाहिनी की उपासिका बनना है। तू सिंहों को कर्तव्य-पालन की प्रेरणा देगी। देख बेटी, भगवती महामाया नारी के रूप में केवल प्रेरणा-शक्ति हैं, पुरुष के रूप में प्रेरणावाहिनी शक्ति।' देवरात ने कन्या को नयी पहेली में उलझाकर राज-भवन की ओर प्रस्थान किया। मृणालमंजरी पिता के वाक्यों का अर्थ समझने का प्रयत्न करती रही। नारी भगवती महामाया की प्रेरणा-शक्ति है, पुरुष उनकी प्रेरणा को वहन करनेवाली शक्ति है। उसे सिंहवाहिनी की उपासिका बनना है, महिषमर्दिनी की उपासना केवल कविता में फलती है। कविता महामाया की इच्छा-शक्ति का विलास है, अर्थभार-हीन सत्त्वार्थमात्र ! सब मिलाकर क्या बना ? मृणाल समझने का प्रयत्न कर रही है, समझ रही है।

एक बार उसे लगता था कि उसके पिता ठीक ही कह रहे हैं। महिषमर्दिनी देवी केवल भावों की दुनिया में रह सकती है। तथ्यों की दुनिया में सुकुमार बालिकाओं के लिए महिष-मर्दन संभव नहीं है। सिंहवाहिनी देवी ही उपास्य हो सकती हैं। जो सिंह के समान पराक्रमी हैं, अकुतोभय हैं, सत्त्ववान हैं, उनके भीतर जो शक्ति काम करती है वही सिंहवाहिनी है। सिंह, पुरुष-सिंह ! पुरुष-सिंह कैसा होता है ? मृणाल के चित्त में अनायास गोपाल आर्यक का तेजस्वी मुख उद्भासित हो आया। कपाट के समान चौड़ा वक्षःस्थल, सिंह के समान कटिदेश, शोभा और शौर्य के मिलित भाव पैदा करनेवाले केश-कलाप ! गोपाल आर्यक पुरुष-सिंह है, निर्भय, सतेज, सत्त्वशील ! निस्सन्देह ऐसे ही पुरुषों को वाहन बनाकर महादुर्गा क्रूर, दुर्वृत्त और घृणास्पद महिषासुरों का दलन करती हैं। पिता कहते हैं, यही सिंहवाहिनी देवी लड़कियों की उपास्या है। लेकिन फिर उसके मन में प्रश्न उठता, उपासना का क्या अर्थ

है ? केवल पुरुष-शक्ति की पूजा ही क्या स्त्रीधर्म है ? सिंहवाहिनी की उपासना का मतलब क्या इतना ही है कि महिष-मर्दन का काम पुरुषों पर छोड़कर स्त्रियाँ उनकी आरती उतारा करें ? स्त्रियों का धर्म क्या आगे बढ़कर अधर्माचार का विध्वंस करना नहीं है ? स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी बनना पड़ता है। यह कैसा सहधर्म है कि पुरुष युद्ध करें और स्त्रियाँ उनकी आरती उतारती रहें ? मृणाल का मन ऐसा नहीं मानना चाहता। सहधर्म में महिष-मर्दन भी शामिल होना चाहिए। देवी सिंहवाहिनी भी हैं और महिषमर्दिनी भी। पिताजी क्यों इस बात को मानने में कुण्ठा अनुभव करते हैं ! कदाचित् उनके मन में दुर्वृत्त गुण्डों के पशुबल पर अधिक विश्वास है, स्त्रियों के आत्मबल पर कम। मगर पिताजी तो सदा आत्मबल की ही सराहना करते हैं। कहीं कोई मोह तो उनके मन में नहीं आ गया है ? गोपाल आर्यक जैसे सिंह की सहधर्मिणी को उसके हर काम में सहायता पहुँचाने की आवश्यकता है, अधिकार है। एक क्षण के लिए मृणाल को रोमांच हो आया। गोपाल आर्यक की सहधर्मिणी ! उसे एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव हुआ। वह क्या सोचने लगी ? कहाँ गोपाल आर्यक और कहाँ मृणालमंजरी ! यह भी क्या सम्भव है कि वह गोपाल आर्यक की सहधर्मिणी बने ? सिंहवाहिनी की उपासना उसके लिए मनमोदक-मात्र है। सिंह तो एक ही है। गोपाल आर्यक ! वह देर तक गोपाल आर्यक के बारे में सोचती रही। सुना है बड़ा गबरू जवान हो गया है, अपने से तिगुने मल्लों को पछाड़ चुका है। जिधर से गुजर जाता है उधर से मदमस्त वीरता ही चलती दिखाई देती है। नगर के गवाक्ष खुल जाते हैं, पुर-सुन्दरियों की आँखें बिछ जाती हैं। इधर आया क्यों नहीं ? अप्रसन्न हो गया है क्या ? हाय, मृणाल की आँखें प्यासी ही रह गयी हैं। कभी आता ही नहीं, इधर का रास्ता ही भूल गया है. ऐसा तो नहीं था, क्या हो गया है उसे ! लेकिन कोई कुछ भी कहे, गोपाल आर्यक सचमुच सिंह है, पुरुष-सिंह !

'लहुरा वीर की जय !' दूर से सहस्र कण्ठों से निकली हुई जय-ध्वनि ने मृणाल का ध्यान भंग किया। उसने कुटिया से बाहर निकलकर देखा, सैकड़ों युवक जय-जयकार करते हुए गंगा का तट पकड़े पश्चिम-दक्षिण की ओर बढ़े जा रहे हैं। कुछ समझ में नहीं आया।

इसी समय सुमेर काका की आवाज सुनायी पड़ी, 'क्या कर रही हो, बिटिया रानी ? गुरु गया है राजा को मनाने और चेला निकला है लहुरा वीर को जगाने।'

मृणाल ने हँसते हुए प्रणाम किया। सुमेर काका देवरात के घनिष्ठ मित्र थे। आयु में काफी बड़े थे, पर देवरात के साथ उनकी समवयस्कों की-सी दोस्ती थी। सच तो यह था कि सुमेर काका नगर के बाल-युवक-वृद्ध सबके समवयस्क

थे। जिस मण्डली में बैठते, उसी के हो जाते। अश्वमेध के अश्व की रक्षा में वीरतापूर्वक काम करने के कारण उन्हें हलद्वीप के उत्तर की ओर भूमि मिली थी। पत्नी का बहुत पहले देहान्त हो चुका था, एकमात्र कन्या का विवाह धूम-धाम से किया था, पर विदाई के दिन नाव डूब जाने से वह भी चल बसी। तब से सारे नगर के बच्चे उनके अपने हो गये। मृणाल पर तो उनका बहुत अधिक स्नेह था। दुर्भाग्य उन्हें परास्त नहीं कर सका था। जहाँ जाते, आनन्द और उल्लास उनके अनुचर की भाँति वहाँ पहुँच जाते। सुमेर काका को नगर के उच्चपदस्थ लोग भी सम्मान देते थे। राज्य के सर्वाधिक गम्भीर न्यायाधीश आचार्य पुरगोभिल भी जिन्हें 'प्राड्‌विवाक्' कहा जाता था, सुमेर काका के प्रशंसक थे। कहा तो यहाँ तक जाता था कि कई पेचीदे मामलों में वे काका की सहज-बुद्धि पर भरोसा रखकर विचार करते थे। काका जब मृणाल के पास आते तो कोई-न-कोई नया समाचार अवश्य दे जाते। उनके लिए प्रत्येक समाचार का एक ही मूल्य था—आनन्द-वर्षा। कोई समाचार उनके लिए चिन्ता-जनक नहीं होता। चींटियों की लड़ाई की बात करते, तो उतनी ही रसीली बनाकर जितनी बड़े-बड़े राजाओं के युद्ध की। उनके लिए मारपीट भी उतनी ही रसनिष्पत्ति का विषय थी, जितना ब्याह-बरेखी।

सुमेर काका को देखते ही मृणाल का चित्त उल्लास से भर गया। मृणाल का सदा का अनुभव था कि सुमेर काका का पहला वाक्य पहेली होता है। श्रोता को इस पहेली को बूझने के लिए उन्हीं की सहायता लेनी पड़ती थी। सुमेर काका अपना पहला वाक्य बोल चुके थे, 'गुरु गया है राजा को मनाने और चेला निकला है लहुरा वीर को जगाने।' मृणाल ने सदा की भाँति हँसते हुए पूछा, 'आज की पहेली भी बुझा दो, काका! कहना क्या चाहते हो?'

सुमेर काका ने प्यार से कहा, 'बिटिया रानी, तेरा काका पहेली ही नहीं बुझाता, कभी-कभी ठीक समाचार भी देता है। गुरु है तेरा बाप देवरात और चेला है तेरा सगा गोपाल आर्यक! वह जो गंगा के किनारे-किनारे लौंडों का दल चिल्लाता हुआ जा रहा है न, वह लहुरा वीर की उपासना करनेवालों का दल है। उसका नेता है गोपाल आर्यक। सुना है मथुरा के आभीरों ने नये देवता का सन्धान पाया है और वहाँ से अब यह नया देवता उत्तरापथ के हर घर में पहुँचता दिखाई दे रहा है। यहाँ यह गोपाल आर्यक है जो लहुरा वीर का सबसे बड़ा सेवक बना है। कहता फिरता है कि राजा अत्याचारी हो गया है, उसको ध्वस्त करने का आदेश लहुरा वीर ने दिया है। नगरवासी अपनी कष्ट-कथा आर्यक को ही सुनाते हैं। आर्यक ने सैकड़ों युवकों की एक छोटी-मोटी सेना ही तैयार कर ली है। आज उसका दल नगर की गली-गली में घूमा है और उसने लोगों को अभय का आश्वासन दिया है। राजा ने अभी तक तो छेड़छाड़ नहीं

की है, लेकिन बादल घुमड रहे हैं, कब बरस पडें, कहा नही जा सकता।'

मृणाल ने सुना तो उसे गर्व का भाव अनुभव हुआ और थोडा भय भी लगा। उसके हृदय मे जोर-जोर की धड़कन होने लगी। अपने को सम्हालकर उसने पूछा, 'यह लहुरा वीर कौन है काका ?'

सुमेर काका ठठाकर हँस पड़े। बोले, 'सच तो मैं भी नही जानता बिटिया, लेकिन सुना है कि मथुरा के कुषाणो पर विजय पाने के बाद किसी आभीर राजा ने अनुभव किया कि कुषाण लोग जिस प्रकार पंचध्यानी बुद्धों की उपासना करते हैं उसी प्रकार की पंचमूर्ति आभीरों की भी उपास्य बननी चाहिए, क्योंकि मथुरा की जनता मे पाँच की संख्या बहुत प्रिय है। भागवत धर्म में चतुर्व्यूह की उपासना प्रचलित है। ये चार देवता हैं—बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। आभीर राजा ने इस मण्डली मे श्रीकृष्ण के छोटे पुत्र साम्ब को भी जोड़कर पाँच वृष्णि-वीरो की उपासना प्रचलित की। सुना है कि मथुरा मे उन्होंने पाँच वृष्णि-वीरों का विशाल मन्दिर बनवाया है। यही साम्ब लहुरा वीर हैं। पुराने चार वीरों के बाद इनका नाम जुड़ा है, कदाचित् इसीलिए इन्हें लहुरा वीर कहा गया है। लहुरा वीर की इस नयी उपासना ने आभीरों में नवीन उत्साह और आत्मबल का संचार किया है। समूचे उत्तरापथ मे अब यह उपासना फल गयी है। लहुरा वीर अत्याचार और अनाचार को ध्वंस करने के प्रतीक बन गये हैं। गोपाल आर्यक ने हलद्वीप के राजा के विरुद्ध जो अभियान किया है वह भी आभीरो के नये उत्साह और आत्मबल का सूचक है।' फिर जरा अवहेलना की हँसी हँसकर सुमेर काका ने कहा, 'अभी गधा-पचीसी मे है न, बेटा ! समझता है कि राजा की सघटित सैन्य-शक्ति से लोहा लेना बच्चों का खिलवाड है। मारशिवो की शक्ति का पता सुमेर काका को है। बिचारा गोपाल आर्यक कुछ जानता ही नही। लेकिन कर अच्छा रहा है। पिट तो अवश्य जायेगा, लेकि[illegible] राजा को भी छठी का दूध याद आ जायेगा। यह नरक का की[illegible] जानते[illegible] ललनाओं का शील नष्ट करने पर तुला हुआ है। इसका पाप ही इस[illegible] जायेगा। कौन जाने आर्यक को ही निमित्त बनाकर भगवान इसे दण्ड देना चाहते हो। पर चाहे कुछ भी हो बेटा, हलद्वीप में तो चहल-पहल अवश्य होगी, मार-पीट होगी, धर-पकड होगी और जाने क्या-क्या होगा।'

मृणाल के चेहरे पर व्याकुलता की रेखाएँ उभर आयी थीं, पर काका ने उधर ध्यान ही नहीं दिया। उसी प्रवाह के साथ बोलते रहे, 'तेरे बाप का दिमाग भी खराब हो गया है। समझता है राजा को समझा-बुझाकर मना लेगा। बम-भोलानाथ है। आज तक समझ ही नही पाया कि विधाता जिसे मारना चाहता है उसकी बुद्धि पर सम्पत्ति-मद का ताला लगा देता है। आज समझ जायेगा।'

सुमेर काका ने उठने की इच्छा प्रकट की। मृणाल ने उन्हें रोका, 'थोड़ा

थे। जिस मण्डली में बैठते, उसी के हो जाते। अश्वमेध के अश्व की रक्षा में वीरतापूर्वक काम करने के कारण उन्हें हलद्वीप के उत्तर की ओर भूमि मिली थी। पत्नी का बहुत पहले देहान्त हो चुका था, एकमात्र कन्या का विवाह धूम-धाम से किया था, पर विदाई के दिन नाव डूब जाने से वह भी चल बसी। तब से सारे नगर के बच्चे उनके अपने हो गये। मृणाल पर तो उनका बहुत अधिक स्नेह था। दुर्भाग्य उन्हें परास्त नहीं कर सका था। जहाँ जाते, आनन्द और उल्लास उनके अनुचर की भाँति वहाँ पहुँच जाते। सुमेर काका को नगर के उच्चपदस्थ लोग भी सम्मान देते थे। राज्य के सर्वाधिक गम्भीर न्यायाधीश आचार्य पुरगोभिल भी जिन्हें 'प्राड्विवाक' कहा जाता था, सुमेर काका के प्रशंसक थे। कहा तो यहाँ तक जाता था कि कई पेचीदे मामलों में वे काका की सहज-बुद्धि पर भरोसा रखकर विचार करते थे। काका जब मृणाल के पास आते तो कोई-न-कोई नया समाचार अवश्य दे जाते। उनके लिए प्रत्येक समाचार का एक ही मूल्य था—आनन्द-वर्षा। कोई समाचार उनके लिए चिन्ता-जनक नहीं होता। चींटियों की लड़ाई की बात करते, तो उतनी ही रंगीली बनाकर जितनी बड़े-बड़े राजाओं के युद्ध की। उनके लिए मारपीट भी उतनी ही रसनिष्पत्ति का विषय थी, जितना ब्याह-बरेखी।

सुमेर काका को देखते ही मृणाल का चित्त उल्लास से भर गया। मृणाल का सदा का अनुभव था कि सुमेर काका का पहला वाक्य पहेली होता है। श्रोता को इस पहेली को बूझने के लिए उन्हीं की सहायता लेनी पड़ती थी। सुमेर काका अपना पहला वाक्य बोल चुके थे, 'गुरु गया है राजा को मनाने और चेला निकला है लहुरा वीर को जगाने।' मृणाल ने सदा की भाँति हँसते हुए पूछा, 'आज की पहेली भी बुझा दो, काका! कहना क्या चाहते हो?'

सुमेर काका ने प्यार से कहा, 'बिटिया रानी, तेरा काका पहेली ही नहीं बुझाता, कभी-कभी ठीक समाचार भी देता है। गुरु है तेरा बाप देवरात और चेला है तेरा सखा गोपाल आर्यक! वह जो गंगा के किनारे-किनारे लौंडों का दल चिल्लाता हुआ जा रहा है न, वह लहुरा वीर की उपासना करनेवालों का दल है। उसका नेता है गोपाल आर्यक। सुना है मथुरा के आभीरों ने नये देवता का सन्धान पाया है और वहाँ से अब यह नया देवता उत्तरापथ के हर घर में पहुँचता दिखाई दे रहा है। यहाँ यह गोपाल आर्यक है जो लहुरा वीर का सबसे बड़ा सेवक बना है। कहता फिरता है कि राजा अत्याचारी हो गया है, उसको ध्वस्त करने का आदेश लहुरा वीर ने दिया है। नगरवासी अपनी कष्ट-कथा आर्यक को ही सुनाते हैं। आर्यक ने सैकड़ों युवकों की एक छोटी-मोटी सेना हो तैयार कर ली है। आज उसका दल नगर की गली-गली में घूमा है और उसने लोगों को अभय का आश्वासन दिया है। राजा ने अभी तक तो घेड़े छोड़ नहीं

ची है, लेकिन बादल घुमड़ रहे हैं, कब बरस पड़ें, कहा नहीं जा सकता।'

मृणाल ने सुना तो उसे गर्व का भाव अनुभव हुआ और थोड़ा भय भी लगा। उसके हृदय में जोर-जोर की धड़कन होने लगी। अपने को सम्हालकर उसने पूछा, 'यह लहुरा वीर कौन है काका?'

सुमेर काका ठठाकर हँस पड़े। बोले, 'सच तो मैं भी नहीं जानता बिटिया, लेकिन सुना है कि मथुरा के कुषाणों पर विजय पाने के बाद किसी आभीर राजा ने अनुभव किया कि कुषाण लोग जिस प्रकार पंचध्यानी बुद्धों की उपासना करते हैं उसी प्रकार की पंचमूर्ति आभीरों की भी उपास्य बननी चाहिए, क्योंकि मथुरा की जनता में पाँच की संख्या बहुत प्रिय है। भागवत धर्म में चतुर्व्यूह की उपासना प्रचलित है। ये चार देवता हैं—बलराम, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। आभीर राजा ने इस मण्डली में श्रीकृष्ण के छोटे पुत्र साम्ब को भी जोड़कर पाँच वृष्णि-वीरों की उपासना प्रचलित की। सुना है कि मथुरा में उन्होंने पाँच वृष्णि-वीरों का विशाल मन्दिर बनवाया है। यही साम्ब लहुरा वीर हैं। पुराने चार वीरों के बाद इनका नाम जुड़ा है, कदाचित् इसीलिए इन्हें लहुरा वीर कहा गया है। लहुरा वीर की इस नयी उपासना ने आभीरों में नवीन उत्साह और आत्मबल का संचार किया है। समूचे उत्तरापथ में अब यह उपासना फैल गयी है। लहुरा वीर अत्याचार और अनाचार को ध्वंस करने के प्रतीक बन गये हैं। गोपाल आर्यक ने हलद्वीप के राजा के विरुद्ध जो अभियान किया है वह भी आभीरों के नये उत्साह और आत्मबल का सूचक है।' फिर जरा अवहेलना की हँसी हँसकर सुमेर काका ने कहा, 'अभी गधा-पचीसी में है न, बेटा! समझता है कि राजा की संघटित सैन्य-शक्ति से लोहा लेना बच्चों का खिलवाड़ है। मारणियों की शक्ति का पता सुमेर काका को है। बिचारा गोपाल आर्यक कुछ जानता ही नहीं। लेकिन कर अच्छा रहा है। पिट तो अवश्य जायेगा, लेकिन राजा को भी छठी का दूध याद आ जायेगा। यह नरक का कीट [illegible] ललनाओं का शील नष्ट करने पर तुला हुआ है। इसका पाप ही इसे [illegible] जायेगा। कौन जाने आर्यक को ही निमित्त बनाकर भगवान इसे दण्ड देना चाहते हों। पर चाहे कुछ भी हो बेटा, हलद्वीप में तो चहल-पहल अवश्य होगी, मार-पीट होगी, धर-पकड़ होगी और जाने क्या-क्या होगा।' मृणाल के चेहरे पर व्याकुलता की रेखाएँ उभर आयी थीं, पर काका ने उधर ध्यान ही नहीं दिया। उसी प्रवाह के साथ बोलते रहे, 'तेरे बाप का दिमाग भी खराब हो गया है। समझता है राजा को समझा-बुझाकर मना लेगा। बम-भोलानाथ है। आज तक समझ ही नहीं पाया कि विधाता जिसे मारना चाहता है उसकी बुद्धि पर सम्पत्ति-मद का ताला लगा देता है। आज समझ जायेगा।'

सुमेर काका ने उठने की इच्छा प्रकट की। मृणाल ने उन्हें रोका, 'थोड़ा

रको काका, तुम तो सब पर एक-एक लकड़ी मारकर चलते बने। मुझे बताते जाम्रो कि इनमें तुम्हें ठीक मार्ग पर कौन-सा जान पड़ता है। या छोड़ो इस बात को। अगर ऐसा ही कुछ ग्रा घटे कि तुम्हें किसी एक ग्रोर शामिल होना जरूरी जान पड़े तो किधर जाग्रोगे?'

काका ठठाकर हँसे, 'तेरा काका तो सदा का अबोध है ग्रौर वह बालकों का ही पक्ष लेता है। तेरा यह काका, गोपाल ग्रार्यक की ग्रोर से पिटते हुए देखा जायेगा। देवरात भी ग्रबोध है, लेकिन उसकी ग्रबोधता में गति नहीं है, हलचल नहीं है, क्षोभ नहीं है ग्रौर तेरे सुमेर काका को यही सब पसन्द नहीं है। ग्रार्यक ग्रबोध है, लेकिन उसमें गति है, प्रचण्ड गति। जब से मैंने लड़कों की मण्डली का जय-जयकार सुना है, तब से मेरा मन उसी दल में भर्ती होने के लिए व्याकुल है। उधर ही जा रहा हूँ।'

मृणाल को उल्लास का ग्रनुभव हुग्रा। बोली, 'तुम थोड़ा रुक नहीं सकते, काका? एक बहुत ग्रावश्यक प्रश्न तुमसे करना है।'

सुमेर काका ने पीछे फिरकर देखा। ग्रबकी बार उन्हें लगा कि मृणाल के चेहरे पर कुछ चिन्ता की लकीरें उभरी हुई हैं। पहली बार उन्होंने उधर ध्यान नहीं दिया था। लाठी दीवार के सहारे टिकाकर बैठ गये, 'ले, यह बैठ गया। पूछ, क्या पूछना चाहती है?'

मृणाल ने धीरे-धीरे कहा, 'लड़कियाँ इस ग्रनाचार के उन्मूलन में कुछ हाथ नहीं बँटा सकतीं, काका? पिताजी बता रहे थे कि विन्ध्याटवी में कोई सिद्ध पुरुष हैं जो देवी के सिंहवाहिनी ग्रौर महिषमर्दिनी रूप की उपासना का प्रचार कर रहे हैं। परन्तु पिताजी कहते हैं कि लड़कियाँ सिंहवाहिनी की ही उपासना कर सकती हैं, महिषमर्दिनी की नहीं। उनका कहना है कि लड़कियों का महिषमर्दिनी होना सम्भव नहीं है। केवल कविता में यह बात फबती है। ऐसा क्यों होगा, काका? जो बात कविता में फबेगी वह व्यवहार में क्यों नहीं फबेगी?'

सुमेर काका ठठाकर हँसे, 'यही ग्रावश्यक प्रश्न है रे?' फिर थोड़े गंभीर होकर बोले, 'तेरे पिता देवरात पण्डित हैं। जो कुछ कहते हैं, तर्क के तराजू पर तौलकर कहते हैं। पर तेरा काका ग्रटूट गँवार है। जवानी में उसने एक ही काम किया है—सीधे टूट पड़ना, फिर प्राण चाहे रहें, चाहे जायें। बुढ़ापे में भी उसकी यही ग्रादत बनी हुई है। तू पूछना चाहती है कि भैंसा अगर चढ़ दौड़े तो तेरी-जैसी लड़की को क्या करना चाहिए। तेरे बाप का जवाब है कि शेर को बुलाने के लिए दौड़ पड़ना चाहिए। तेरे काका का जवाब है, जो कुछ ग्रास-पास मिल जाये उससे उस भैंसे को दमादम पीट देना चाहिए। नाक पर मार सको तो क्या कहना! ग्राँख फोड़ सको तो ग्रौर ग्रच्छा! सिंह बाद में ग्रायेगा। पहली चोट तुम्हें करनी होगी। ग्रगर डर है कि रगेद देगा, प्राण ले

लेगा तो ऐसा सवाल पूछना ही नहीं चाहिए। सुमेर काका एक ही बात जानता है। सज्जन है, चरण की धूल लो। दुर्जन है, नाक तोड़ दो। जो डरता है वह देवी की उपासना के बारे में पूछना ही छोड़ दे। देवी क्या है रे? तेरे भीतर जो 'अभय' है वही देवी है। पिशाची क्या है, जानती है? तेरे भीतर जो 'भय' है वही पिशाची है।' सुमेर काका ने यह देखने का प्रयत्न नहीं किया कि मृणाल पर उनकी बात का क्या असर पड़ रहा है? देखते तो उन्हें पता चलता कि मृणाल के मुख-मण्डल पर अद्भुत दीप्ति दमक उठी है। वे कहते ही गये, 'देवरात पोथी के बल पर मुझे हरा देना है। जब कभी उसके विचारों के विरुद्ध कुछ कहना चाहता हूँ तभी तर्कों का कोड़ा मार-मारकर उस द्वार की ओर धकेल देता है जहाँ से घुटने टेके बिना भागना भी कठिन है।'

सुमेर काका हँस-हँसकर दोहरे हो गये।

मृणाल भी हँसने लगी। बोली, 'पिताजी तो कहते हैं कि तुम कभी हारते हो नहीं।'

सुमेर काका थोड़ा सुस्ताने लगे। जरा सम्हलकर बोले, 'हार जाता हूँ, बिटिया, बुरी तरह हार जाता हूँ। पर हार मानता नहीं।'

मृणाल ने कहा, 'जरा समझाकर कहो काका, हारते हो मगर हार मानते नहीं!'

'देख रे, तेरा बाप शास्त्र का बड़ा भारी पण्डित है। काव्य का, संगीत का, चित्र का, मूर्ति का सहृदय पारखी है। मगर मैं उसकी कमजोरी जान गया हूँ। वह इन बातों को तैयार माल की तरह देखता है। सुनार जैसे अंगूठी बनाकर ले आता है तो ग्राहक जैसे देखता है, उसी प्रकार। मगर ज्ञान या रस तैयार माल की तरह नहीं होता। वे इतिहास से पलते हैं, और इतिहास को बनाते हैं, मगर मेरे मन में जो कुछ है उसे मैं प्रकट नहीं कर पाता। तैयार माल का दाम आँकनेवाली बुद्धि मुझे मार गिराती है। अनपढ़ हूँ, क्या करूँ। मगर जानता हूँ कि ठीक मैं कहता हूँ। सो हार तो जाता हूँ, पर हार मानता नहीं। उसने तुझे कविता और व्यवहार का जो भेद बताया है न, वह उसी तैयार माल का दाम आँकनेवाली बुद्धि से। समझ गयी, बिटिया रानी! ले, अब तेरा आवश्यक प्रश्न और भी उलझ गया होगा।' कहकर सुमेर काका उठ पड़े।

मृणालमंजरी को काका की बातें पूरी समझ में नहीं आयीं, पर उसे आह्लाद का अनुभव हुआ। बोली, 'सचमुच गोपाल आर्यक के पास जा रहे हो, काका?'

सुमेर काका फिर हँसे, 'एकदम जा रहा हूँ, बिटिया!'

मृणाल ने कहा, 'काका, एक बात मेरी ओर से आर्यक से कह देना। कहना कि वह मृणाल को भी अपने दल में शामिल कर लें।'

सुमेर काका और जोर से हँसने लगे, 'यह नहीं होगा। न तो तेरा बाप ही इसे मानेगा और न उसका बेना। लेकिन तेरा नाम मैंने अपनी बही में लिख लिया है। तेरा सुमेर काका भी पगला है और तू भी पगली है। पागलों की अलग सेना बनेगी और उसमें दो ही सिपाही होंगे—सुमेर काका और मृणालमजरी। बस।' काका ने पीछे फिरकर देखने की जरूरत नहीं समझी। हँसते-हँसते कहते गये, 'सुमेर काका के भी समानधर्मा हैं। अगर ऐसे ही सौ-पचास आदमी मिल जायें, तो आनन्द आ जाये।'

पाँच

राज-सभा में देवरात का अपमान हुआ। उन्हें बैठने को आसन भी नहीं दिया गया। राजा ने उनकी ओर देखा भी नहीं। वे बहुत मर्माहत हुए। देर तक इधर-उधर भटकते रहे। उनके लौटने में देरी हुई। जब लौटे तो देखा कि मृणाल की आँखें सूजी हुई हैं, मुख पीला पड़ गया है। निस्सन्देह वह बहुत रोयी थी। देवरात ने पुत्री का मुरझाया हुआ मुख देखा, तो उन्हें बड़ा ही क्लेश हुआ। परन्तु पूछने पर उसने कुछ कहा नहीं, और भी अधिक रोने लगी। देवरात एकदम व्याकुल हो उठे। उन्हें सन्देह हुआ कि मृणालमजरी के साथ किसी ने छेड़छाड़ की है या कोई कुवाच्य कहा है। परन्तु बार-बार पूछने पर भी मृणालमजरी ने कुछ बताया नहीं। केवल सिसक-सिसककर रोती रही। देवरात अपने को असहाय और निरुपाय अनुभव करने लगे। उनके मन में मातृहीना कन्या के लिए बड़ी दारुण वेदना हुई। उन्होंने प्यार से मृणालमजरी को गोदी में लेकर उसका दुःख जानने का प्रयत्न किया। परन्तु वे जितना ही पूछते थे, उतना ही वह अधिक रोने लगती थी। देवरात ने पूछना बंद कर दिया। केवल गोदी में उसको दुलराते-सहलाते रहे। पिता का स्नेह-स्पर्श पाकर मृणालमजरी उनकी गोदी में सो गयी। देवरात उदास-चिन्तित भाव से उसे गोदी में लिये ही बैठे रहे। उनकी समझ में नहीं आया कि उनकी प्यारी बिटिया को हो क्या गया है। कुछ देर बाद उन्होंने मृणालमजरी को खाट पर सुला दिया और उसके सिरहाने बैठकर स्नेह-वत्सल भाव से उसका सिर सहलाते रहे। कितनी देर वे इस प्रकार बैठे रहे, इसका पता उन्हें भी नहीं चला। मन में विचारों का एक तूफान चलता रहा। मृणालमजरी की माता मंजुला उनके चित्त-पट पर न जाने कितनी बार आयी और न जाने क्या-क्या कह गयी। वे

चिन्ता-कातर मुद्रा में मृणालमंजरी के सिरहाने बैठे रह गये। मृणालमंजरी भी जो सोयी तो ऐसा लगा कि सन्निपातग्रस्त ही हो गयी है।

वह रात यों ही बीत गयी। मृणालमंजरी वात्सल्य रस से भीगी-सी निद्रित पड़ी रही और देवरात उसके सिरहाने बैठे ही रह गये। पूर्व दिशा में उषा की लालिमा दिखाई पड़ी। तरुकोटरों में पक्षियों का कलरव सुनाई देने लगा। सूर्य की लाल-लाल किरणों-रूपी शलाकाओं से आकाश के नक्षत्रगण इस प्रकार लुप्त हो गये मानो किसी ने लाल रंग की झाड़ू से सारा आसमान साफ कर दिया हो। पुत्री को उसी प्रकार निद्रित छोड़कर देवरात उठे और प्रातःकालीन कृत्य के लिए तैयार होने लगे। स्नानादि से निवृत्त होकर जब वे आश्रम के द्वार पर आये, तो देखा कि उनका अत्यन्त विश्वसनीय सेवक सुदिन्न कहीं से चला आ रहा है। सुदिन्न कभी बहुत बीमार पड़ा था और देवरात की परिचर्या से स्वस्थ हुआ था। वह पास ही के गाँव में रहता था और समय-समय पर उनकी सेवा के लिए आ जाया करता था। मृणालमंजरी को वह अपनी बेटी के समान ही प्यार करता था। जब कभी उसे पता चलता कि देवरात बाहर गये हुए हैं और मृणालमंजरी अकेली है, तभी सब काम-काज छोड़कर वह मृणालमंजरी के पास आ जाता। देवरात नहीं चाहते थे कि सुदिन्न घर का काम-काज छोड़कर उनकी सेवा के लिए आया करे। परन्तु सुदिन्न सदा यही सोचता रहता था कि वह किसी प्रकार उनके काम आ सके। उस दिन देवरात जब बाहर गये तो संयोग से सुदिन्न को पता चल गया था और वह मृणालमंजरी के पास पहुँच गया था। मृणालमंजरी रो रही थी। सुदिन्न ने भी देवरात की तरह उसके दुःख का कारण जानने का प्रयत्न किया था, परन्तु उसने उसे कुछ नहीं बताया था। उसके बहुत आग्रह करने पर मृणालमंजरी ने उसे भूर्जपत्र का एक टुकड़ा दिया था जिस पर कोई श्लोक लिखा हुआ था। मृणालमंजरी ने उस पत्र की पीठ पर स्वयं कुछ लिख दिया था और सुदिन्न से अनुनय करके कहा था कि इस पत्र को आर्यक तक पहुँचा दे। उसने यह भी कह दिया था कि वह पत्र आर्यक के सिवा और किसी के हाथ में न दे। सुदिन्न ने मृणालमंजरी को उस अवस्था में छोड़कर जाने से इनकार किया था और कहा था कि जब आर्य देवरात आ जायेंगे, तभी वह आर्यक के पास पत्र लेकर जायेगा। परन्तु मृणालमंजरी ने आग्रह किया था कि पिताजी शीघ्र ही आ जायेंगे, तुम आर्यक के पास चले जाओ। सो, सुदिन्न वह पत्र लेकर आर्यक के गाँव गया था और वहीं से लौट रहा था। देवरात ने सुदिन्न से पूछा कि वह पत्र क्या उसने आर्यक को दे दिया है? सुदिन्न ने सहज-भाव से कहा—'मैं क्या करता आर्य, बिटिया ने शपथ दे दी थी।'

देवरात को कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, 'सुदिन्न, तू क्या पहली बार

ऐसा पत्र लेकर आर्यक के पास गया था ?'

'हाँ आर्य, पहली बार गया था।'

'पत्र पढने के बाद आर्यक ने क्या कहा ?'

सुदिन्न बोला, 'पत्र पढ़कर उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने कहा, 'सुदिन्न ! तू जल्दी मृणालमंजरी के पास लौट जा और उससे जाकर कह कि आर्यक के रहते उसे चिन्तित और कातर होने की कोई आवश्यकता नही है। आर्यक मृणालमंजरी की रक्षा भी करेगा और उसके अपमान का बदला भी लेगा।' वह तमतमाया हुआ उठा और घर के भीतर से अपना विशाल कुन्त लेकर बाहर निकल आया। मैं तो कुछ समझ ही नही सका। मैं पूछने ही जा रहा था कि इस चिट्ठी मे क्या लिखा है कि उसने डाँटकर कहा, 'तू अभी तक यही खडा है ! जल्दी जा और मृणालमंजरी से कह दे कि आर्यक शीघ्र ही आ रहा है।' और पता नही किधर चला गया। वह इतना क्रुद्ध था कि उसे अपने शरीर और वस्त्र की भी चिन्ता नही थी। वह पत्र भी उसके हाथ से गिरकर वही पडा रह गया था। मैंने उसे उठाकर फिर अपने पास रख लिया, क्योकि बिटिया ने कहा था कि वह और किसी के हाथ न लगने पाये। मुझे बडा डर लग रहा था कि पता नही आर्यक कहाँ क्या कर बैठे ! पहर रात गये मैं यहाँ आ गया था, आकर देखा कि आप ध्यानमग्न बैठे थे। उस समय कुछ बोलना उचित न समझकर मैं यहाँ बाहर ही पड रहा।'

देवरात ने व्याकुल भाव से पूछा, 'वह पत्र तेरे पास है सुदिन्न ?'

सुदिन्न ने कहा, 'है तो आर्य, पर वह तो केवल आर्यक के लिए है।'

देवरात बोले, 'आर्यक को तो तूने दिखा ही दिया। अब एक बार मुझे देख लेने दे।'

सुदिन्न धर्म-संकट मे पड गया। बोला, 'पता नही उसमे क्या लिखा है, आर्य ! मगर बिटिया ने मुझे बार-बार कहा था कि यह सिर्फ आर्यक को दिखाना होगा।'

देवरात ने सुदिन्न को स्नेह के साथ समझाया, 'देख सुदिन्न, मेरी बिटिया बहुत व्याकुल है। तू भी तो उसे अपने प्राणो से अधिक प्यार करता है। मुझे लगता है कि उसके दुख का ठीक-ठीक कारण यदि हम नही जान सकेंगे तो वह जीवित नही रह सकेगी। इसलिए तू वह पत्र मुझे दिखा अवश्य दे। मृणालमजरी क्या मुझसे छिपाकर कोई बात कर सकती है ! तू चिन्ता न कर, मुझे वह पत्र दिखा दे।'

सुदिन्न ने मृणालमजरी के प्राण-सकट की बात सुनी, तो एकदम डर गया। उसने पत्र देवरात के हाथो मे देते हुए कहा, 'ठीक कहते हो आर्य, बिटिया के दुख का कारण जरूर समझना चाहिए। उधर आर्यक भी तो न

जाने क्रोध में किधर चला गया है।'

देवरात ने भूर्जपत्र लेकर उसे उलट-पुलटकर देखा। उस समय काफी प्रकाश निकल आया था। उन्हें पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई। पत्र के एक ओर लिखा हुआ था :

'मृणालमंजरी के योग्य—
वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरः मूर्खोऽपि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामति बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरंति च यया नावा तथैवेतरे।
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।
(द्विज पण्डित मूरख शूद्र गँवार नहाते हैं वापी में भेद कहाँ!
वन फूली लता तन देती सभी को मयूर हो, काक हो, खेद कहाँ!
निज गोद में लेती बिठा तरनी सभी जाति कुलीन कुजारज जो।
तुम वापी लता तरनी मम सेविका हो सबकी सबको ही भजो॥)

और उसकी पीठ पर मृणालमंजरी ने अपने काँपते हुए हाथों से लिखा था—'सिंह-पराक्रम आर्यचरित आर्यक को मृणालमंजरी की अभ्यर्थना स्वीकृत हो! आज पिताजी ने सिंहवाहिनी देवी की उपासना का मुझे आदेश दिया और सुमेर काका महिषमर्दिनी रूप की उपासना का परामर्श दे गये। परीक्षा का समय तुरन्त ही आ गया। पागल भैंसे से भी घिनौना चन्दनक मुझे अकेली देखकर यह पत्र फेंककर कुवाच्य बोलने लगा। मैंने उसे ललकारा और पास में पड़े डण्डे से उसे चोट पहुँचायी। भाग न गया होता तो यमलोक में होता। भागा, लेकिन धमकाकर गया है। अब मैं पिताजी के आदेश का पालन कर रही हूँ। तुम चाहो, तो मेरी रक्षा कर सकते हो। नहीं आओगे, तो भी मैंने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। इति—मृणालमंजरी। फिर 'अपरंच' के बाद लिखा था—'पिताजी से यह बात कैसे कह सकती हूँ! तुम यदि मेरी रक्षा करना चाहो तो कर सकते हो।'

देवरात ने चन्दनक के लिखे हुए गन्दे श्लोक को देखकर क्रोध से दाँत पीस लिये। उनके मुँह से सिर्फ इतना ही निकला, 'इस अधम का इतना साहस!' उन्हें मृणालमंजरी के दु:ख का कारण अब समझ में आ गया। परन्तु एकाएक उन्हें ध्यान में आया कि आर्यक चन्दनक से बदला लेने के लिए कहीं कोई अनर्थ न कर बैठे। वह हलद्वीप के राजकुमार का नर्मसखा है और आर्यक के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। उन्होंने कहा, 'सुदिन्न, तू तब तक यहीं रह, जब तक मैं आर्यक को देखकर लौटता हूँ।' और तेजी से चन्दनक के घर की ओर बढ़ गये। इधर आर्यक अपना विशाल कुन्त लिये आश्रम में प्रविष्ट हुआ!

ऐसा पत्र लेकर आर्यक के पास गया था ?'

'हाँ आर्य, पहली बार गया था।'

'पत्र पढ़ने के बाद आर्यक ने क्या कहा ?'

सुदिन्न बोला, 'पत्र पढ़कर उसका मुख क्रोध से लाल हो गया। उसने कहा, 'सुदिन्न ! तू जल्दी मृणालमंजरी के पास लौट जा और उससे जाकर कह कि आर्यक के रहते उसे चिन्तित और कातर होने की कोई आवश्यकता नहीं है। आर्यक मृणालमजरी की रक्षा भी करेगा और उसके अपमान का बदला भी लेगा।' वह तमतमाया हुआ उठा और घर के भीतर से अपना विशाल कुन्त लेकर बाहर निकल आया। मैं तो कुछ समझ ही नही सका। मैं पूछने ही जा रहा था कि इस चिट्ठी मे क्या लिखा है कि उसने डाँटकर कहा, 'तू अभी तक यहीं खड़ा है ! जल्दी जा और मृणालमजरी से कह दे कि आर्यक शीघ्र ही आ रहा है।' और पता नही किधर चला गया। वह इतना क्रुद्ध था कि उसे अपने शरीर और वस्त्र की भी चिन्ता नही थी। वह पत्र भी उसके हाथ में गिरकर वहीं पड़ा रह गया था। मैंने उसे उठाकर फिर अपने पास रख लिया, क्योंकि बिटिया ने कहा था कि वह और किसी के हाथ न लगने पाये। मुझे बड़ा डर लग रहा था कि पता नही आर्यक कहाँ क्या कर बैठे ! पहर रात गये मैं यहाँ आ गया था, आकर देखा कि आप ध्यानमग्न बैठे थे। उस समय कुछ बोलना उचित न समझकर मैं यहाँ बाहर ही पड रहा।'

देवरात ने व्याकुल भाव से पूछा, 'वह पत्र तेरे पास है सुदिन्न ?'

सुदिन्न ने कहा, 'है तो आर्य, पर वह तो केवल आर्यक के लिए है !'

देवरात बोले, 'आर्यक को तो तूने दिखा ही दिया। अब एक बार मुझे देख लेने दे।'

सुदिन्न धर्म-सकट मे पड गया। बोला, 'पता नही उसमे क्या लिखा है, आर्य ! मगर बिटिया ने मुझे बार-बार कहा था कि यह सिर्फ आर्यक को दिखाना होगा।'

देवरात ने सुदिन्न को स्नेह के साथ समझाया, 'देख सुदिन्न, मेरी बिटिया बहुत व्याकुल है। तू भी तो उसे अपने प्राणो से अधिक प्यार करता है। मुझे लगता है कि उसके दुःख का ठीक-ठीक कारण यदि हम नही जान सकेंगे तो वह जीवित नहीं रह सकेगी। इसलिए तू वह पत्र मुझे दिखा अवश्य दे। मृणालमजरी क्या मुझसे छिपाकर कोई बात कर सकती है ! तू चिन्ता न कर, मुझे वह पत्र दिखा दे।'

सुदिन्न ने मृणालमजरी के प्राण-सकट की बात सुनी, तो एकदम डर गया। उसने पत्र देवरात के हाथों मे देते हुए कहा, 'ठीक कहते हो आर्य, बिटिया के दुःख का कारण जरूर समझना चाहिए। उधर आर्यक भी तो न

जाने क्रोध में किधर चला गया है।'

देवरात ने भूर्जपत्र लेकर उसे उलट-पुलटकर देखा। उस समय काफी प्रकाश निकल आया था। उन्हें पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई। पत्र के एक ओर लिखा हुआ था :

> 'मृणालमंजरी के योग्य—
> वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरः मूर्खोऽपि वर्णाधमः
> फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामति बर्हिणा।
> ब्रह्मक्षत्रविशस्तरंति च यया नावा तथैवेतरे।
> त्वं वापीव लतेव नौरिव जन वेश्यासि सर्वं भज।
> (द्विज पण्डित मूरख शूद्र गँवार नहाते हैं वापी में भेद नहीं!
> वन फूली लता तन देती सभी को मयूर हो, काक हो, खेद नहीं!
> निज गोद में लेती बिठा तरनी सभी जाति कुलीन कुजारज जो।
> तुम वापी लता तरनी सम सेविका हो सबकी सबको ही भजो।।)

और उसकी पीठ पर मृणालमंजरी ने अपने काँपते हुए हाथों से लिखा था—'सिंह-पराक्रम आर्यचरित आर्यक को मृणालमंजरी की अभ्यर्थना स्वीकृत हो! आज पिताजी ने सिंहवाहिनी देवी की उपासना का मुझे आदेश दिया और सुमेर काका महिषमर्दिनी रूप की उपासना का परामर्श दे गये। परीक्षा का समय तुरन्त ही आ गया। पागल भैंसे से भी घिनौना चन्दनक मुझे अकेली देखकर यह पत्र फेंककर कुवाच्य बोलने लगा। मैंने उसे ललकारा और पास में पड़े डण्डे से उसे चोट पहुँचायी। भाग न गया होता तो यमलोक में होता। भागा, लेकिन धमकाकर गया है। अब मैं पिताजी के आदेश का पालन कर रही हूँ। तुम चाहो, तो मेरी रक्षा कर सकते हो। नहीं आओगे, तो भी मैंने अपना कर्तव्य समझ लिया है। इति—मृणालमंजरी। फिर 'अपरंच' के बाद लिखा था—'पिताजी से यह बात कैसे कहूँ सकती हूँ! तुम यदि मेरी रक्षा करना चाहो तो कर सकते हो।'

देवरात ने चन्दनक के लिखे हुए गन्दे श्लोक को देखकर क्रोध में दाँत पीस लिये। उनके मुँह से सिर्फ इतना ही निकला, 'इस अधम का इतना साहस!' उन्हें मृणालमंजरी के दु:ख का कारण अब समझ में आ गया। परन्तु एकाएक उन्हें ध्यान में आया कि आर्यक चन्दनक से बदला लेने के लिए कहीं कोई अनर्थ न कर बैठे। वह हलद्वीप के राजकुमार का नर्मसखा है और आर्यक के लिए संकट की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। उन्होंने कहा, 'सुदिन्न, तू तब तक यहीं रह, जब तक मैं आर्यक को देखकर लौटता हूँ।' और तेजी से चन्दनक के घर की ओर बढ़ गये। इधर आर्यक अपना विशाल कुन्त लिये आश्रम में प्रविष्ट हुआ!

सुदिन्न द्वार पर ही मिल गया। बोला, 'आओ भैया, आर्य देवरात तो यह सुनकर बड़े ही उद्विग्न हुए कि तुम अकेले चन्दनक के घर की ओर चले गये हो।'

आर्यक ने कहा, 'चन्दनक के ग्रह आज प्रसन्न थे। वह घर छोड़कर कहीं भाग गया है। तुम दौड़कर गुरुदेव को बुला लाओ। उनसे कह देना कि कहीं कुछ नहीं हुआ है। वे निश्चिन्त लौट आयें। कुछ अनर्थ हो जरूर सकता था, लेकिन हुआ नहीं, फिर उसने पूछा, 'मृणाल कहाँ है ?'

सुदिन्न ने कहा, 'रोते-रोते सो गयी है।'

आर्यक फिर से उसे गुरुदेव को लौटा लाने का आदेश देता हुआ आगे बढ गया। सुदिन्न और आर्यक की बातचीत सुनकर मृणालमंजरी की नींद खुल गयी। वह धड़फड़ाकर उठी। सामने देखा तो आर्यक विशाल मुग्दर लेकर खड़ा है। उसने आर्यक को देखा और चित्रलिखित-सी खड़ी रह गयी। उसके मुँह से कोई बात ही नहीं निकली। लेकिन आँखों से आँसू की धारा बह चली। आर्यक ने आगे बढ़कर कहा, 'मैं आ गया, मैना! मेरे रहते तेरी छाया भी कोई नहीं छू सकेगा।'

मैना स्थिर, निश्चेष्ट।

आर्यक ने देखा, मृणालमंजरी इन तीन वर्षों में काफी बढ़ गयी है। उसके अंग-अंग में लावण्य की छटा छलक रही थी। आर्यक को देखकर उसके मुरझाये हुए मुख पर आनन्द की आभा दमक आयी थी। उसकी दुग्ध मुग्ध मुखश्री में इस प्रकार का उफान आया था जैसे अचानक दुग्ध-भाण्ड को अप्रत्याशित ताप मिल गया हो। परन्तु उसकी आँखों से आँसू झरते रहे। ये आँसू अभिमान के थे। उनमें उलाहना था, अभियोग था, अभिमान था। एक क्षण के लिए आर्यक मुग्ध की भाँति ठिठक गया और मृणालमंजरी की निश्चेष्ट मुद्रा और झरते हुए आँसुओं का अर्थ समझकर मन-ही-मन उल्लसित होता रहा। फिर वह मृणाल-मंजरी के पास पहुँच गया। उसने प्यार से उसकी ठुड्डी पकड़कर ऊपर उठायी और भीगे हुए स्वर में बोला, 'नाराज हो गयी है, मैना! मेरे ऊपर विश्वास कर। अब मैं तुझे अकेली नहीं छोड़ूँगा।'

मैना और भी व्याकुल होकर रो पड़ी। एकाएक पता नहीं आर्यक को कौन-सा आवेश आया, उसने मैना को कसकर अपनी भुजाओं में जकड़ लिया। बचपन में दोनों काफी निकट से एक-दूसरे को पहचान सके थे। सैकड़ों बार लड़ाई-झगड़े से लेकर पुनर्मैत्री तक का अभिनय कर चुके थे। परन्तु आज दोनों को कुछ नयी अनुभूतियाँ हुईं। ऐसा जान पड़ा, अन्त स्तल का सारा सत्त्व उमड़ आया है। आर्यक को रोमांच हो आया और मृणालमंजरी पसीने में तर हो गयी। कुछ देर तक दोनों संज्ञाशून्य की तरह एक-दूसरे को कसकर पकड़े रहे।

वह एक विचित्र समाधि थी, जिसमें दोनों का पृथक् व्यक्तित्व एकदम विलुप्त हो गया था। फिर एकाएक मैना की ही संज्ञा लौटी। उसने झटककर अपने को आर्यक के आलिंगन से अलग कर लिया और झिड़कते हुए बोली, 'छोड़ो, क्या कर रहे हो!' यह भी एक नयी अनुभूति थी। दोनों में से किसी ने पहले अनुभव नहीं किया था कि ऐसा करने में कुछ अनौचित्य भी होता है। विधाता ही जानते हैं कि किस प्रकार 'छोड़ो' के माध्यम से अखण्ड मिलन की अभिव्यक्ति होती है।

आर्यक चुपचाप अलग हट गया। थोड़ी देर के लिए उसकी वाक्-शक्ति रुद्ध हो गयी। थोड़ा सम्हलकर उसने फिर कहा, 'क्षमा कर दो मैना, मैंने अनुचित किया। मुझे इतने दिनों तक तुझे अकेली नहीं रहने देना चाहिए था। बुरा मान गयी, मैना?'

मैना की आँखें झुकी थीं, कपोलपालि अब भी आँसुओं से भीगी हुई थी, नासिका का अग्रभाग अब भी फड़क रहा था, निःश्वास अब भी बड़ी तेजी से भीतर से बाहर और बाहर से भीतर दौड़ रहे थे। उसने धीरे-से कहा, 'हाँ, अब मुझे मत छोड़ना!'

आर्यक को हँसी आ गयी। बोला, 'अभी तो तूने कहा मैना, छोड़ दो! अब कहती हो, मत छोड़ना।'

मैना को भी चुहल सूझ गयी। उसने कहा, 'व्याकरण भी भूल गये। 'छोड़ दो' वर्तमान काल है और 'मत छोड़ना' भविष्यकाल।'

आर्यक ने देखा मृणालमंजरी में स्वाभाविक विदग्धता लौट आयी है। बोला, 'कहाँ का व्याकरण और कहाँ का काव्य! कुश्ती लड़ता हूँ और दण्ड-बैठक किया करता हूँ। तेरे साथ रहूँगा तो शायद फिर से काव्य-व्याकरण लौट आयें।'

इसके बाद दोनों ही सहज हो गये और तरह-तरह की नयी-पुरानी बातों में उलझ गये। थोड़ी देर में देवरात को लेकर सुदिन्न भी लौट आया। गुरु को देखकर आर्यक ने विनम्र भाव से प्रणाम किया और दीर्घायु होने का आशीर्वाद प्राप्त किया। बिना किसी भूमिका के उसने कहा, 'गुरुदेव, मैं मैना को यहाँ अकेली नहीं रहने दूँगा। अनुमति दें तो इसे मैं अपने घर ले जाऊँ।'

देवरात की आँखें विस्मय से तन गयीं, 'यह कैसे हो सकता है बेटा, तुम्हारे पिता की अनुमति लिये बिना इसे मैं तुम्हारे घर कैसे भेज सकता हूँ?'

आर्यक ने कहा, 'क्यों, इसमें दोष क्या है?'

देवरात ने आर्यक के भोलेपन का आनन्द लेते हुए कहा, 'दोष है। सयानी-कुँवारी कन्या को कोई पिता किसी के घर कैसे भेज सकता है! तुम बालक हो। तुम्हें यह बात समझ में नहीं आयेगी।'

नाखूनवाली अंगुलियों मे सुकुमार भाव से गृहीत मांगल्यमालिका, कंगण-वलय, कल्याण अगुलीयक, लाक्षा-रस-रंजित शुभ वस्त्र, हेमाभरण, श्रोणीसूत्र, रसनाकलाप आदि अलंकार इस प्रकार चित्रित थे मानो वे किसी को स्नेहपूर्वक दिये जा रहे हों। कल्पवल्ली की योजना कुछ ऐसे कौशल से की गयी थी कि स्थान-स्थान पर चक्रवाक-मिथुन, पारावतयुगल, विद्याधर-दम्पति और हंसबलाका की पंक्तियाँ अनायास निकलती चली गयी थीं। छन्दोधारा की इस अद्भुत योजना मे चित्रित सौम्यभाव उफन आया था। निश्चय ही मंजुला ने अपनी प्यारी पुत्री के विवाहोत्सव पर ऐसे ही मांगल्य उपहारों की कामना की थी। देवरात की आँखों मे आँसू आ गये। हाय, मातृहीना कन्या के विवाह के अवसर पर वे इस मंगल-कामना का शतांश भी तो पूरा नहीं कर सकते। उन्हें लगा कि मंजुला आकर सामने खड़ी है, पूछ रही है, 'आर्य देवरात, मेरी बेटी के लिए तुमने क्या किया ?' 'कुछ नहीं कर सका देवि, इस अकिंचन के पास रखा ही क्या है जो तुम्हारी इस प्यारी कन्या को दे सकूँ। यह तुम्हारी कल्पवल्ली ही उसे प्राप्त हो, इस इच्छा के अतिरिक्त देने योग्य मेरे पास यहाँ कुछ नहीं है देवि, कुछ नहीं !' उनका चित्त व्याकुल हुआ। वे पेटी हाथ मे लेकर देर तक ध्यान-मग्न बैठे रहे। कब मंजुला ने ऐसी कामना की होगी ? क्या उसे अपनी मृत्यु का आभास पहले ही मिल गया था। इस कल्पवल्ली में उसने अपने प्राण ही उँडेल दिये है। कल्पवल्ली जिसका अर्थ नहीं होता, भाव नहीं होता, मतलब नहीं होता, होता है केवल छन्द, केवल लय, केवल गति—विशुद्ध इच्छा ! तप पूत महात्मा के आशीर्वाद के समान वह मंगलेच्छा मात्र है, अर्थ उसके पीछे दौड़ता है। जो नृत्य मे ताण्डव है, वही चित्र मे कल्पवल्ली और आचार मे मांगल्य आशीर्वाद है। मंजुला ने मातृ-हृदय को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर इसमे ढाल दिया है। हाय देवि, देवरात तुम्हारे किसी काम नहीं आया ! पर इस कल्पवल्ली के आधार रूप मे मंजुला ने दक्षिणावर्त शंख को क्यों चुना ? शंख मांगल्य है, दक्षिणावर्त और भी दुर्लभ मांगल्य, पर यहाँ क्यो ? हाय, जीवन से निराश माता के मन मे वह कौनसी साध थी, जो इस द्वारा संकेतित है ? शंख अनन्त का प्रतीक है, वह विष्णु की स्थानव्यापिनी अनन्त महिमा का चिह्न है, वह अपार धनराशि का आशीर्वाद है। पर सारे अन्य मांगल्यों को छोड़कर मंजुला ने यहाँ इसे ही क्यों चुना ? कल्पवल्ली का आधार दक्षिणावर्त शंख ! देवरात को हैरानी हुई। कहीं तो ऐसा नहीं देखा, नहीं सुना !

पाटे के कोने मे बँधी हुई छोटी-सी कुंचिका से उन्होंने उसे खोला। ऊपर समान आकार के कटे हुए पाँच भूर्जपत्रों पर लिखा हुआ एक पत्र था। एक महीन रजतशलाका भी उस पर पड़ी हुई थी। सारा पत्र उस शलाका से लिखा

जान पड़ता था। हाथ में लेकर देवरात ने उसे उलट-पुलटकर देखा, रोमांच हो आया। सारा शरीर उद्भिन्न-केसर कदम्ब पुष्प की भाँति कंटकित हो उठा। यह तो मंजुला की मनोहर आँखों में काजल लगानेवाली शलाका है! सारा पत्र काजल को ही स्याही बनाकर लिखा गया था। देवरात का हृदय बुरी तरह धड़कने लगा। उनके मुँह से अनायास निकल पड़ा—'विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणाम्'—सुर-सुन्दरियों के प्रसाधन के बाद बचे हुए सिंगारदान के रंग से! तो मंजुला ने अपने सिंगारदान की सबसे महार्घ और सबसे मोहन प्रसाधन-सामग्री से यह पत्र लिखा है। क्षण-भर में मंजुला की बड़ी-बड़ी काली आँखें उन्हें याद आ गयीं, भरी सभा में उस दिन इसी काजल से रंजित आँखों की बिब्बोक-चटुल मुद्रा में उसने लीलापूर्वक देखा था। देवरात ने उसका अर्थ समझा था, 'बुरा तो नहीं मान गये? बुरा नहीं माना करते।' हाय, अब वह कटाक्ष नहीं है, उसका सहायक काजल आज सामने है। देवरात क्षण-भर के लिए पुलकित भी हुए। उन्होंने अपने को सम्हालने का प्रयत्न करते हुए पत्र पढ़ा। अक्षर मोतियों के समान स्पष्ट और गुम्फित थे। लिखा था—

"स्वस्ति। आर्य देवरात योग्य। प्रणाम-पुरस्सर अधमा दासी मंजुला की विनम्र अभ्यर्थना। चरण-कमलों में सप्रश्रय विनिवेदन। अपराध क्षमा हो। प्रत्यग्र-मनोहर अंगीकार हो—

दुल्लह जण अणुराउ गरु लज्ज परब्बसु प्राणु।
सहि मणु विसम सिणेह बसु मरणु सरणु णहु आणु॥

आर्य, बड़ी साध थी कि इस अधमा दासी के घर को तुम्हारे पवित्र चरणों की धूलि का स्पर्श मिलता। परन्तु यह बालक की चाँद पकड़ने की लालसा के समान दुर्ललित इच्छा-मात्र है; यह मैं जानती हूँ। बड़ी साध थी कि तुम्हारे चरणों को स्वयं इन हाथों से धोकर, इन केशों से पोंछकर अपना कलुष धो डालूँ। यह नहीं हो सका, नहीं होना उचित ही है। यहाँ मिट्टी के गाहक आते हैं। अपना सर्वस्व उलीचकर, पाप खरीदकर लौट जाते हैं। पुरुषत्व के वे कलंक हैं, स्त्रीत्व के अपमानकारी। वे रसिकंमन्य होते हैं, रसिक नहीं। इस विटों, विदूषकों और बन्धुलों के स्वर्ग में केवल नरक-यातना के अधिकारी ही आते हैं। यहाँ कामुकता को पुरुषार्थ, भोंडेपन को सरसता, मूर्खता को विदग्धता, स्त्रैण भाव को पौरुष माना जाता है। यहाँ तुम्हारा न आना ही उचित है। मेरी श्रद्धा में भी वासना का पंक था, भक्ति में भी अभिलाषा की कालिख लगी हुई थी। गणिका केवल पाना चाहती है। मंजुला ने देने का अभिनय किया था, पर इस दान में भी दारुण ग्रहण-लालसा की ज्वाला थी। तुम नहीं आये, अच्छा ही हुआ। जानती हूँ, तुम्हारी शुचिता अमोघ है। असुर-संसर्ग से लक्ष्मी दूषित नहीं होती। अन्धकार में दीपशिखा और भी अधिक चमकती है, मेघमाला

मे बिजली और भी उज्ज्वल हो जाती है, इस अपवित्र गृह में तुम्हारी शुचिता और भी ज्वलन्त रूप मे प्रकट होती। परन्तु मैंने मिट्टी के आकर्षण की महिमा देखी है। इसीलिए मैं डरी रहती हूँ। तुम नही आये, बहुत अच्छा हुआ। कम-से-कम मेरा दुर्बल चित्त आश्वस्त है। महाभाव का रहस्य मुझे नही मिल सका, पर महाभाव का आभास मुझे मिल गया है। क्षमा करना प्रभो, मैंने तुम्हारी भाव-मूर्ति मे ही विश्राम पाया है। जिन दिनो इस भाव-मूर्ति की मैं पूजा करने लगी, आसन, शयन और स्वप्न मे उसी दिव्य मनोहर मूर्ति का ध्यान करने लगी, उस समय भी मिट्टी के गाहक आते रहते थे, परन्तु आत्मा का, मन का बुद्धि का गाहक यह भाव-मूर्ति थी। चोरी है, पर मैं परवस थी, आज भी हूँ।

'कैसे बताऊँ स्वामिन्, मंजुला का जीवन कितना तृषित है। तुमने कहा था कि तेरा देवता तेरे भीतर है। मानती हूँ, अवश्य होगा। पर तुम जो नही समझ सकोगे वह यह है कि स्त्री का देवता माध्यम खोजता है, ठोस ग्रहणीय माध्यम। साध्वी रमणियाँ पति का माध्यम पा लेती हैं। वे धन्य हैं, स्पृहणीय हैं। पर हाय, गणिका का माध्यम नहीं होता। वह जुगुप्सित भोग के विकट दावानल मे झुलसती रहती है। नारी का जीवन किसी एक को सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर ही चरितार्थ होता है। वह अपने देवता को इसी प्रकार पा जाती है। मैं कहाँ से यह साधना प्राप्त करती? सो मैंने चोरी की है। मैंने तुम्हारी भाव-मूर्ति को माध्यम बनाने की धृष्टता की है। प्रभो, इसे अन्यथा न मानना।

'परवशता ने मुझे अपने-आपको पाने का उल्लास दिया है। जिन दिनो यह उल्लास अपनी चरम सीमा पर था, उन्ही दिनो मेरी कुक्षि मे एक कन्या अयाचित, अवांछित, अनाहूत आ गयी। मैं नही जानती कि इसके मृण्मय देह का पिता कौन है। पर इतना निश्चित है कि इसके चिन्मय रूप के पिता देवरात हैं, इसमे मुझे रंच-मात्र सन्देह नही है। मुझे सन्तोष है कि इस पापिनी का आवरण भेदकर निष्पाप मंजुला निकल आयी है। यह पाप-वृत्ति की पुण्य परिणति है। इसमे कमल-पुट के भावग्राही प्रच्छन्न मृणाल की शुचिता और स्निग्धता है, तुलसी-मंजरी का सौरभ और गौरव है। जान-बूझकर मैंने इसका नाम मृणालमंजरी दिया है, अनमित है, वन्दित है, उत्प्रेरित है, पर मेरी हार्दिक भावना का द्योतक है। इसकी जो मृण्मयी काया है वह परवशा माता का दान है, और इसकी जो चिन्मयी ज्योति होगी वह तुम्हारे-जैसे मनस्वी पिता की देन होगी। सो आर्य, यह तुम्हारी ही कन्या है। तुम्ही इसके पिता हो, माता हो, गुरु हो। तुम्हारा धन तुम्हें ही समर्पित है! हाय, कभी प्रत्यक्ष मिलकर अपनी निदारुण वेदना तुम्हें बता पाती।

'मुझे दुर्निमित्त दिखाई देने लगे हैं, मैं अधिक दिन नहीं बचूँगी। तुम्हें पाती तो इसे तुम्हारी गोद में देकर निश्चिन्त हो जाती। पर जानती हूँ, तुम इस अधमा की क्षुद्र अभ्यर्थना को अस्वीकार नहीं करोगे।

'प्रभो, पापिनी ने तुम्हारे ऊपर जो भार डाल दिया, उसे मन में न लाना। मैंने जीवन में दो काम किये हैं—पाप और कला-साधना। दोनों से अर्थोपार्जन किया है। परन्तु आर्य, नृत्य और गीत को मैं पूजा मानकर ही चली हूँ। इसके लिए मैंने अहंकार का कवच धारण किया था। लोग मुझे महाभिमानिनी ही मानते हैं। इसमें अनायास और अयाचित जो कुछ मिल गया है उसे मैं बहुत पवित्र समझकर अलग रखती आयी हूँ। उस धन से जो कुछ हो सका है, वही इस कन्या को दे सकती हूँ। पाप की कमाई से उपार्जित धन को तुम्हारी कन्या के लिए कैसे रख सकती हूँ? वह इस पत्र के साथ है। उचित समझना तो बेटी के ब्याह के अवसर पर उसकी माता के आशीर्वाद के रूप में पहना देना। इति।'

देवरात ने पत्र पढ़कर दीर्घ निःश्वास लिया। पत्र के नीचे लाक्षा-रंजित रुई के कोमल परत थे। पहले परत के नीचे एक मुक्तादाम था—मोतियों का एकलरा हार। उसके नीचे पद्मराग-मणि जड़ी हुई मुद्रिका थी, जो हाथीदाँत के कंकणों और शंख के बने हुए वलयों के बीच रखी हुई थी। उसके नीचे दो शिरीष-पुष्प का आकृति के कर्णावतंस थे, जो महीन हेम-गुणों के हार के बीच रखे हुए थे। एक हाथीदाँत की छोटी-सी डिबिया में पीला सिन्दूर भी रखा हुआ था। बस।

देवरात अभिभूत, निश्चेष्ट! थोड़ी देर तक वे वैसे ही बैठे रहे। ऐसा जान पड़ा जैसे उनके सारे इन्द्रिय-व्यापार बाहर से हटकर भीतर की ओर सिमट आये हों। धीरे-धीरे उनमें नयी चेतना आयी। उन्होंने सारे अलंकारों को फिर से यथास्थान रखा। सबके ऊपर पत्र रखने लगे तो देखा कि अन्तिम पन्ने की पीठ पर कुछ और भी लिखा है। उस पर उनका ध्यान नहीं गया था। यह लिखावट बाद की रही होगी। इसमें न तो काजल की स्याही थी, न शलाका की लेखनी। इसे लाल रंग की चमकदार स्याही से लिखा गया था। लिखा था—'अन्यच्च! बड़ी साध यह भी थी आर्य, कि कभी प्रत्यक्ष पूछती कि आपने जो कहा था कि आपका बासी घाव मेरी कविता से ताजा हो गया था, वह क्या था? क्या मंजुला उस घाव की पीड़ा को रचमात्र भी कम करने योग्य है! पर बात मुँह से निकल ही नहीं पायी। हाय अधमे, इतनी लज्जा भी क्या?'

देवरात को हूक-सी उठी। वे कराहकर रह गये। ऐसा लगा जैसे किसी ने मर्मस्थल को ही छेद दिया है। आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली।

वे देर तक भ्रमित की भाँति, चकित की भाँति, सोये हुए की भाँति
ध्यानमग्न बैठे रहे। मंजुला की एक-एक मुद्रा उनके सामने प्रत्यक्ष-सी उपस्थित
होने लगी। प्रथम बार राज-सभा में जब उसे देखा था, तो उसका सिर तमक
उठा था। अभिमानिनी मंजुला ने उनकी ओर इस प्रकार देखा था, मानो किसी
घृणास्पद व्यक्ति को देख रही हो। उसने तिरस्कार-भरी दृष्टि डालकर तुरन्त
हटा ली थी, जैसे किसी पदार्थ के संसर्ग में उसमें दोष आ जाने की आशंका
हो। देवरात के चेहरे पर उस दिन उल्लास और विषाद एक साथ दौड़ आये
थे। वे उसकी ओर साभिलाष-सी दृष्टि से देखते रहे। गणिका ने उपेक्षा की
थी, पर उसके अन्तर्यामी ही जानते थे कि वह छिपी दृष्टि से उनके साभिलाष
म्लान मुख को देखकर क्रूर आनन्द पा रही थी। उसे यह समझने में रस मिला
था कि यह साधुवेशी देवरात लम्पट है, भण्ड है। किसी दिन यह उसके तलवे
चाटने का प्रयास करेगा, यह वह निश्चित मान बैठी थी। पर देवरात पर कुछ
और ही बीत रही थी।

देवरात के वृद्धातिवृद्ध प्रपितामह अग्निमित्र के प्रमुख सेनानियों में थे।
सिन्धुनदी के तट पर यवनों को शिकस्त देने में उनका विशेष योगदान था। वे
प्रख्यात यौधेय क्षत्रिय वंश के थे। उन्हीं दिनों उन्हें कुलूत राज्य का सामन्त-पद
दिया गया था। शुंगों के पतन के बाद भी यह राज्य बना रहा। देवरात के
पिता यज्ञरात ने दीर्घकाल तक राज्य किया था। उनके शासनकाल में प्रजा
में बहुत शान्ति और विश्वास था। देवरात जब अट्ठारह साल के हुए, तो
उनकी विमाता की कुक्षि से एक और भाई उन्हें प्राप्त हुआ। उनकी विमाता
देवरात से भयभीत रहती थी। उन्हें भय था कि देवरात ज्येष्ठ पुत्र होने के
कारण राजा होंगे और उनका पुत्र इससे वंचित रह जायेगा। वे नाना प्रकार
से देवरात को अपदस्थ करने का उपाय करने लगीं। देवरात को राजा बनने
का कोई लोभ नहीं था। उन्होंने विमाता को आश्वस्त करना चाहा कि वे छोटे
भाई को ही राजा बनायेंगे। पर प्रजा इस समाचार से चिन्तित हुई। प्रजा
देवरात को बहुत प्यार करती थी। प्रजा के इस व्यवहार से देवरात की माता
ने और भी चण्ड-रूप धारण किया। देवरात जब उन्नीस वर्ष के हुए, तो उनके
पिता ने उनका विवाह औशीनर वंश की एक रूपवती कन्या शर्मिष्ठा से कर
दिया। शर्मिष्ठा रूप, गुण और शील में सचमुच शर्मिष्ठा थी। देवरात
ऐसी पत्नी पाकर कृतार्थ हो गये। दोनों का प्रेम बहुत गाढ़ था। प्रजा
में देवरात और शर्मिष्ठा राम-जानकी की भाँति श्रद्धा, विश्वास और
प्यार की दृष्टि से देखे जाने लगे। विमाता की प्रतिक्रिया और भी तीव्र
होती गयी। ऐसे ही समय हूणों का आक्रमण पश्चिमी सीमान्त पर हुआ।
उसका धक्का कुलूत के पार्वत्य प्रदेश को भी अनुभूत हुआ। देवरात को पिता

ने इस विपत्ति से रक्षा करने का भार दिया। वे यौधेय सेना के सेनापति के रूप में गान्धार की ओर रवाना हुए। शर्मिष्ठा ने कोई कातरता नहीं दिखायी, पर भीतर-ही-भीतर वह मुरझा अवश्य गयी। देवरात ने बड़ी बहादुरी से हूणवाहिनी को विध्वस्त किया। लेकिन उनकी विमाता ने झूठमूठ ही वह को देवरात के मारे जाने का समाचार दे दिया। शर्मिष्ठा को बड़ा शोक हुआ। कहा जाता था कि उसके शरीर से स्वयं अग्नि की ज्वाला निकली और वह सती हो गयी। पर अधिक जानकार लोगों का विश्वास था कि विमाता ने स्वयं चिता सजाकर उसे सती होने को उत्साहित किया था। विजयी देवरात लौटे तो उनका संसार नष्ट हो चुका था। उन्हें शोक और निराशा ने विक्षिप्त बना दिया। राजपाट छोड़कर वे रमता राम बन गये और देश-विदेश घूमते रहे, पर कहीं शान्ति नहीं मिली। अन्त में हलद्वीप में उन्हें शान्ति मिली। हृदय का घाव ताजा हो गया, पर चित्त का विक्षोभ जाता रहा। देवरात के अन्तर्यामी ही इसका कारण जानते थे, और किसी को इसका रहस्य मालूम नहीं।

हुआ यह कि जब राजा का आमन्त्रण स्वीकार कर देवरात प्रथम बार राजसभा में गये तो मंजुला भी आयी हुई थी। उसके नृत्य का उस दिन आयोजन था। देवरात ने मंजुला को देखा और आश्चर्य से ठक् हो गये। उन्हें ऐसा लगा कि शर्मिष्ठा ही स्वर्ग से उतरकर आ गयी है। वही रूप, वही रंग, वही कान्ति, वही हँसी, मंजुला का कद जरूर जौ-भर छोटा था, पर उससे कोई विशेष अन्तर नहीं आता था। उनके हृदय में टीस अनुभूत हुई, पर साथ ही सन्तोष भी हुआ। जिस रूप को देखने के लिए उनका हृदय व्याकुल था, वह अब भी देखने को मिल सकता है। यह नहीं कि वे शर्मिष्ठा और मंजुला के अन्तर को नहीं समझ सके। भिन्न है, पर फिर भी उसका हल्का आभास मिल रहा है। वे साभिलाष दृष्टि से एकटक मंजुला को देखते रह गये। मंजुला ने उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा, देवरात को भण्ड तापस समझकर घृणा-भरी आँखों से चोट पहुँचानी चाही, पर देवरात को निधि-सी मिल गयी। मंजुला के बोल भी वैसे ही मीठे थे। जब वह गाती, तो उनका अंग-अंग पुलक-कम्प से सिहर उठता। देवरात इस लोभ से हलद्वीप में रुक गये कि कभी-कभी यह रूप देखने को मिलेगा। आज मंजुला भी नहीं है, वह रूप भी इस धरती से उठ गया है। रह-रहकर उनके हृदय में शर्मिष्ठा और मंजुला आती रहीं। देवरात निश्चेष्ट बैठे रहे। वे व्याकुल थे, व्यथित थे। हाँ देवि, बासी घाव ताजा हो गया था। इसके लिए प्राण देकर भी तुम्हारे ऋण से उद्धार नहीं होगा। हाय, बासी घाव अब ताजा नहीं होता। देवरात आज सचमुच अकिंचन हैं। कैसे बताऊँ देवि, तुम्हारे दर्शन-मात्र से क्यों सारा सत्त्व उमड़ आता था। तुम इस घाव का क्या उपचार कर सकती थी, शुभे! घाव का बार-बार ताजा हो

जाना क्या साधारण उपचार था ? कृतज्ञ हूँ देवि, आज घाव पर घाव हो गया है, फिर भी, जो जी रहा हूँ सो तुम्हारे उपचार के सहारे ही। इस रोग की औषधि मृणालमंजरी है। तुम्हारा प्रसाद पाकर मैं धन्य हुआ हूँ। आश्वस्त हूँ देवि, मुझे शर्मिष्ठा और मंजुला का सम्मिलित विग्रह मिल गया है। हाय देवि, कैसे बताऊँ कि तुमने इस शून्य हृदय मे विश्वास का पारावार हिल्लोलित किया है, उल्लास की झंझा बहा दी है। आज जो हृदय शान्त है, जीवन लक्ष्यहीन नही जान पड़ता, पूजा निष्फल नही हो रही है, सेवा चरितार्थ बनती जा रही है, वह भी तुम्हारी ही कृपा है। तुममे मैंने शर्मिष्ठा को देखा था। मेरे हृदय-विहारी देवता ने तुम्हारे भीतर मृणालमंजरी को देकर मेरी शर्मिष्ठा को नया रूप दे दिया है। तुमने माध्यम की कल्पना की थी, मैंने रूपवती माध्यम-मूर्ति पायी थी। क्या कहूँ देवि, जो तुम्हारी, शर्मिष्ठा की और मेरी स्नेहमूर्ति कन्या को सुखी बना सके। हाय देवि, कितनी बार तुम्हें देखकर लगा, शर्मिष्ठा ही मिल गयी है। कितनी बार मुँह से परिचित सम्बोधन 'प्रिये' आ-आकर लौट गया है। कितनी बार हृदय ऐसी उछालें भरता रहा है कि मानो कूदकर तुम्हारे हृदय मे प्रवेश कर जायेगा, कितनी बार भुजाएँ ऐसी फड़की हैं जैसे संयम के सारे बन्धन तोड़कर तुम्हे कस लेंगी, कितनी बार, कितनी बार! मेरे हृदय में बैठी शर्मिष्ठा ने हर बार सावधान किया है—धोखा है, छलना है, भ्रान्ति है, और हर बार मेरी उमड़ी हुई मानस-तरंगें तट-देश पर पछाड़ खाकर गिरी हैं। देवि, तुम्हे नही मालूम, पर मुझे मालूम है। हाय देवि, बासी को ताजा करने का रहस्य जानना चाहती तो? जानती तो तुम्हे कैसा लगता? विधाता ने बाह्य रूप का इतना साम्य देकर न जाने क्या करना चाहा था। अब देखता हूँ, आन्तर रूप भी वही है, वैसा ही कोमल है, वैसा ही कमनीय, वैसा ही कल्पनाशील। जो जीते-जी नही कह सका वह अब कहना चाहता हूँ, पर अब क्या लाभ है प्रिये।

देवरात के सामने शर्मिष्ठा की मनोहारिणी मूर्ति उदित हो आयी। हाय रानी, तुमने अपने ऊपर विश्वास क्यो खो दिया। जिसे तुम्हारी जैसी सती नारी के सतीत्व का कवच प्राप्त हो, वह कही मृत्यु का शिकार बन सकता है? तुमने बड़ी जल्दी की, प्रिये। हाय, तुम चली गयी, पर अभागा देवरात आज भी जीवित है। हाय रानी, मृत्यु के बाद भी तुम जिस निष्ठा के साथ देवरात की रक्षा कर रही हो उसका विश्वास जीवित अवस्था मे तुमने कैसे खो दिया? तुमने प्रेम का उज्ज्वल रूप आचरण से स्पष्ट कर दिया। अभागा देवरात क्षण-क्षण मरकर भी, तिल-तिल जलकर भी, कहाँ उसे छू सका? आज नीचे से ऊपर तक जल रहा हूँ रानी। कोई सहायता करनेवाला नही है। मृणाल तुम्हारी ही कन्या है, तुम्हारा ही रूप है, तुम जानती भी नही। जिस मंजुला को तुमने सदा मृग-

मरीचिका बताया है उसी के पेट से इसका जन्म हुआ है। मैं नहीं जानता, तुम नहीं जानती, पर है यह हमारी ही कन्या। आओ रानी, आज अपनी बेटी के मंगल-विवाह के अवसर पर आओ! दीन देवरात पर तरस खाओ! आओ!

हाय, दो माताएँ जिसकी हों, वह आज मातृहीना है! हाय रे भाग्य, देवरात आज अपूर्ण है, असहाय है, अवलम्ब है!

बेटी मृणालमंजरी, क्या देकर तुझे विदा करूँगा? तेरे चले जाने के बाद तेरा यह भाग्यहीन पिता क्या जीवित रह सकेगा? हे स्वर्ग के पितृ-पितामहगण, तुम्हारे भरोसे इस कन्या को छोड रहा हूँ। हा विधाता!

देवरात का हृदय फट जाना चाहता है। शर्मिष्ठा छोड़कर चली गयी, मंजुला बिना आये ही चली गयी और दोनों की नयनतारा मृणाल कसकर बाँधकर जाना चाहती है। हाय बेटी, तू भी चली जायेगी?

पिता के लौटने में देर हो रही थी। उधर मृणाल भावी वियोग की आशंका से उदास बैठी थी। कब पिताजी आयें, कब उनकी गोद में मुँह छिपाकर वह रोकर मन हल्का करे। परन्तु कहाँ, पिताजी तो अपने उपासना-गृह में गये तो वहीं के हो रहे। लौटते क्यों नहीं? इतनी देर तो कभी नहीं हुई। मृणाल व्याकुल भाव से उनकी बाट जोहती रही। अब वह शंकित होने लगी। कुछ हो तो नहीं गया? क्यों नहीं आ रहे हैं! वह धीरे-धीरे पैर दबाकर चलती हुई उपासना-गृह की ओर गयी। द्वार का कपाट बन्द था। वह कान लगाकर आहट लेने लगी। देवरात उस समय बेसुध थे। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। वे फफक-फफककर रो रहे थे। हाय बेटी, अकिंचन पिता को क्षमा कर देना। तुझे कुछ भी नहीं दे सका। दो माताएँ जिसकी हों, वह मातृहीना, अनाथ! हा विधाता!

मृणाल ने सुना तो फूट पडी। पिताजी मेरे लिए व्याकुल हैं। वह जोर-जोर से चिल्ला उठी—'पिताजी, हाय पिताजी!' और पछाड़ खाकर गिर पडी। जैसे किसी ने रस्सी से बाँधकर जोर से खींच लिया हो, इस प्रकार देवरात का ध्यान एकाएक कन्या की आवाज से खिंच गया। वे धडफडाकर उठे और मृणाल को गोद में लेकर प्यार करने लगे। स्वप्न टूट गया। वे फूट-फूटकर रो पडे।

देर तक मृणाल को गोदी में लिये हुए देवरात रोते रहे। देर तक पिता की गोदी में अलसशिथिला मृणाल सुबकती रही। किसी ने कुछ नहीं कहा। दोनों समझते रहे कि दोनों के मन पर क्या बीत रही है। अन्त में देवरात ने ही साहस बटोरा। बेटी का मुँह अपनी ओर किया। माथा सूँघा, ललाट चूम लिया। बोले, 'बेटी, तू दो माताओं की प्यारी बेटी है। पर आज दोनों ही नहीं हैं। रह गया है यह अभागा अकिंचन पिता देवरात! विवाह के अवसर

पर पिता अपूर्ण होता है, देवरात तो और भी अपग है। मुझे ही तेरी माता का काम करना है। हाय बेटी, विश्वास हिल रहा है, आस्था टूट रही है। क्या करूँ। प्राण व्याकुल हैं। तू शर्मिष्ठा का सतीत्व और मजुला की कला-चातुरी लेकर उतरी है। तेरी एक माता नारायण की करुणा का अवतार थी, दूसरी उनकी स्मित-रेखा का प्रत्यक्ष विग्रह थी! बेटी, तू नारी-धर्म का प्रतिमान बनेगी, तू पवित्रता की मर्यादा सिद्ध होगी, तू सतीत्व का निदर्शन होगी। तुझे देखता हूँ तो लगता है कि गोपवेशधारी विष्णु की वेणुमाधुरी का रूप है। तेरा अकिंचन पिता तुझे कुछ दे नहीं सकता, पर मेरी प्यारी बेटी, स्वर्ग से तेरी ही माताएँ वह सब देंगी, जो बेटी को दिया जा सकता है।'

मृणाल ने दो माताओं की बात पहली बार सुनी। उसे आश्रम मे सुश्रूषा और सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से आयी हुई पौर-वधुओं से यह पता चल गया था कि वह हलद्वीप की नगरश्री मजुला की औरस पुत्री है। उसे यह भी पता था कि वह देवरात की पालिता कन्या है। पर दो माताओ की बात उसकी समझ मे नही आयी। वह देवरात की ओर आँखें फाड़कर देखती रही। उसने एकमात्र जनकत्व और जननीत्व नहीं है। देवरात उसके पिता, माता, गुरु सब कुछ थे। बाकी बातें उसके लिए गौण थी। देवरात ने उसे कभी यह नही बताया था कि उसकी जननी कौन है, यद्यपि वे जान गये थे कि मुखरा पौर-वधुएँ उसे सब-कुछ बता चुकी हैं। परन्तु आज जिस प्रकार यह बात कह रहे है उससे लगता है कि किसी अतल गाम्भीर्य की वेदना से सिक्त होकर ये शब्द उनके मुँह से निकल रहे हैं। वे कुछ कहना चाहते हैं, कह नही पा रहे हैं। उनका चित्त व्याकुल है, उत्क्षिप्त है, निर्मथित है। मृणाल ने अपने कोमल बाहुओ से उनका गला इस प्रकार जकड़ लिया जैसे वह नन्ही-सी बालिका हो। भरे स्वर मे बोली, 'मेरे एक ही पिता हैं, वही माता हैं, वही सब-कुछ है। पिताजी, मुझे और कुछ न बताओ। मैं इससे अधिक कुछ नही जानना चाहती।'

देवरात इन शब्दो की सच्चाई के जानकार थे, पर कहे बिना उनसे रहा नही जा रहा था। केवल कहने का ढग क्या हो, यही प्रश्न उनके सामने था। कहना वे अवश्य चाहते थे। आज नही कह सके तो फिर कभी नही कह सकेंगे। बोले, 'बेटी, यह जो अपने पिता को देख रही है न, उसमे तीन प्राणियों का निवास है। एक तेरी प्रथमा माता है—शर्मिष्ठा। औशीनरो की बेटी, यौधेयो की बहू, देवरात की सब-कुछ—उसका प्राण, उसका मन, उसकी सम्पूर्ण सत्ता। दूसरी है तेरी जननी मजुला—छन्दो की रानी, लय की नर्मसंगिनी, माधुर्य की उत्सभूमि। वह थी देवरात की आशा, प्रेरणा, जीवनदात्री, मन.संयमिनी, प्राण-रक्षिणी। तीसरा यह अकिंचन, अधूरा, निरवलम्ब, असहाय, तेरा पिता देव-

रात। तू एक-तिहाई से भी कम देख रही है बेटी ! तेरी प्रथमा माता स्वर्ग से प्रसन्न आशीर्वाद बरसा रही है। देवरात जो मनुष्य की कुछ सेवा कर पाता है, तुझे कुछ प्यार दे पाता है वह सब उसी की कृपा से सम्भव हुआ है। वह मेरे जीते-जी चली गयी, बेटी ! संसार ने कभी ऐसा सुना है ? उसे एक क्षण के लिए भी मेरा वियोग असह्य था। वह चली गयी, देवरात जी रहा है। मैं तुझे गोद में लेकर सो जाता था तो वह तुझे प्यार करती थी, तेरी देखभाल करती थी। तुझे यदि कुछ भी कष्ट होता था तो वह स्वर्गीय ज्योति के रूप में उतरती थी। मैंने प्रत्यक्ष देखा है बेटी, वह क्षण-भर के लिए भी तुझे नहीं भूलती। वही तेरी रक्षा करेगी। वह दिव्य लोक में है। वह निखिल चराचर की जननी भुवनमोहिनी है, वह अखण्ड सौभाग्य की रानी है, वह सतीत्व की अधिदेवता है, वह कुलवधुओं की मानरक्षिका है। वह तुझे कभी कष्ट में नहीं पड़ने देगी। जब कभी तुझे कोई ग्लानि हो, उसे अवश्य स्मरण कर लिया कर। देखेगी बेटी, कैसी दिव्य मूर्ति है तेरी माता शर्मिष्ठा ! यह देख।' देवरात ने बड़े यत्नपूर्वक छिपाकर रखे हुए चित्र-आवरण को हटाया। यह उनके अपने हाथों बनाया हुआ शर्मिष्ठा का चित्र था। मृणालमंजरी ने देखा तो उसकी आँखें कानों तक फैल गयीं। चित्र के किनारों पर कहीं-कहीं धब्बे पड़े हुए थे। उन्हें वह पोंछने लगी। देवरात ने कहा, 'वह कुछ नहीं, मेरी अंगुलियों का पसीना लग गया है।' मृणाल की आँखों में पानी भर आया। कैसी दिव्य मूर्ति है, कैसा प्रसन्न मुख, कैसी करुणावर्षिणी आँखें ! तो यह उसकी प्रथमा माता है ! उसे अधिक सोचने का अवसर न देकर देवरात ने कहा, 'देख बेटा, यह तेरी जननी है, छन्दों की रानी, मंजुला ! दोनों को देख बेटा, एक ही जैसी नहीं दिख रही हैं ? मंजुला के दर्शन न हुए होते तो मैं विक्षिप्त हो गया होता, मर गया होता।' मृणाल ने दोनों माताओं को देखा। वपुस्-वपुस्-तनु एक ! हाय-हाय, यह भी क्या सम्भव है ? क्या विधाता के पास भी साँचे होते हैं ? दोनों एक ही साँचे में तो ढली हैं ! उसे उन दो माताओं की पुत्री होने का गर्व अनुभव हुआ। देवरात अधीर थे। बोले, 'बेटी, दुनिया जानती है कि मंजुला गणिका थी, मैं जानता हूँ कि वह नारायण की स्मित-रेखा के समान पवित्र और मनोहर थी। भाव-विह्वला, भक्तिमती लीलारूपा। तुझे जन्म देकर उसने अपने को चरितार्थ माना था। मृत्यु के पूर्व वह तेरे लिए यह अलंकार छोड़ गयी है। ले, बेटा, देख इन्हें। ये उसके हृदय के समान ही सुन्दर हैं, उतने ही मूल्यवान। देवरात तो कुछ नहीं दे सकेगा, बेटी ! तेरी माताओं के अभाव में वह पंगु है, असहाय है।'

मृणाल ने पिता को कभी इतना बोलते नहीं देखा था। आज उनका रोम-रोम वाचाल हो उठा है। मृणालमंजरी की आँखों से अश्रुधारा बह चली।

देवरात स्तब्ध !

एकाएक वे चचल हो उठे। जैसे कुछ नया दिख गया हो, एकदम नया! बोले, 'दे सकता हूँ बेटी, दे सकता हूँ। अपना सर्वस्व उलीचकर दे सकता हूँ। ये दोनो चित्र—चित्र नहीं, प्राण—तुझे देता हूँ। ले बेटा, सम्हाल के रख।'

सात

श्यामरूप देर तक मथुरा की गलियो मे घूमता रहा। चतुष्पथो पर स्थापित विशाल यक्ष-मूर्तियो को वह आश्चर्य और भय के साथ देखता। उनका ऊँचा कद, भारी-भरकम डील-डौल, चामरधारी दक्षिण हस्त, कटिविन्यस्त मुद्रा मे चिपके-से बायें हाथ, बड़े-बड़े कुण्डल, मोटे कड़े, महीन उत्तरीय और पंचरश्मी धौतवस्त्र उसे विचित्र प्रकार से आकर्षित करते थे। उसने ऐसी मूर्तियाँ इतनी प्रचुर संख्या मे पहले नही देखी थी। लोग इन मूर्तियो को प्रणाम करते और प्रदक्षिणा करके चल देते। एक विशाल मूर्ति अश्वत्थ वृक्ष के नीचे खड़ी की गयी थी। उसके पास तिकोनी लाल पताकाएँ लहरा रही थी। श्यामरूप उसे देखकर ठिठक गया। इस मूर्ति का दाहिना हाथ अभय मुद्रा मे था। गले मे एक तिखूँटा हार चिपका हुआ था। मुखाकृति भद्दी और भयजनक थी। पूछने पर उसे मालूम हुआ कि यह मणिभद्र यक्ष की मूर्ति है। समुद्र के रक्षक देवता हैं। नगर के सेठ लोग व्यापार के लिए जब बाहर जाते हैं और धन कमाकर जब बाहर से लौटते हैं तो मणिभद्र यक्ष की पूजा बड़ी धूमधाम से करते हैं। ये मथुरा के जाग्रत देवता हैं। इस चतुष्पथ से बायी ओर एक भव्य मन्दिर दूर से ही दिखाई दे जाता था। श्यामरूप उधर ही बढ़ गया। निस्सन्देह वह मन्दिर नया था, पर वहाँ किसी प्रकार की भीड़ नही थी। इतने सुन्दर मन्दिर की यह अवस्था देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ। निकट जाकर उसने देखा तो तोरण द्वार पर ही लिखा पाया—'पचवृष्णिवीरा'। उसे कुछ कुतूहल हुआ। हल्द्वीप के आभीरो मे चतुर्व्यूह की पूजा प्रचलित थी। यहाँ पाँच वृष्णिवीरो को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। चार वृष्णिवीर—सकर्षण (बलराम), श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—तो विश्वविख्यात हैं। यह पाँचवाँ कौन है? मन्दिर भीतर से बन्द था। बाहर बहिर्द्वार पर दोनो ओर मकरवाहिनी गगा की अभिराम मूर्तियाँ उत्कीर्ण थी और चौखटो पर शख, चक्र, हल, मुसल, गदा और पद्म का

अभिप्राय देकर कल्पवल्ली उरेही गयी थी। ऊपरी चौखट के मध्य स्थान पर एक अपूर्व तेजस्वी मूर्ति भी उत्कीर्ण थी, जिसके मुख के चारों ओर सूर्य के समान प्रभामण्डल उद्भासित हो रहा था। श्यामरूप उस तेजोमयी मूर्ति को कुतूहल के साथ देखने लगा। उसकी मांसपेशियों का सुगठित तनाव उसे बहुत आकर्षक लगा। अंग-अंग से तेज और लावण्य साथ-साथ प्रवाहित हो रहे थे। जिस समय श्यामरूप भावमग्न होकर इस शिल्पचातुरी का अवलोकन कर रहा था, उसी समय भीतर से मन्दिर का फाटक खुला और एक वृद्ध ब्राह्मण कुछ सशंक भाव से चारों ओर देखते हुए बाहर निकले। श्यामरूप को सन्दिग्ध दृष्टि से देखकर वे चुपचाप आगे बढ़ गये और तेजी से राजमार्ग पर आ गये। श्यामरूप भी उनके पीछे-पीछे राजमार्ग पर आ गया। ब्राह्मण ने जरा सन्दिग्ध भाव दिखाते हुए कहा, 'कौन हो भद्र, यहाँ क्या कर रहे हो?'

श्यामरूप ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विनीत स्वर में बोला, 'परदेसी हूँ, आर्य! यह सुन्दर मन्दिर देखकर रुक गया। भीतर तो नहीं देख सका, पर बाहर-बाहर जो कुछ देखा, उसी से चकित हो गया हूँ। अच्छा आर्य, ये 'पंचवृष्णिवीरा:' कौन हैं?'

वृद्ध ने श्यामरूप की ओर कुतूहलपूर्वक देखा और हँसते हुए बोले, 'सचमुच परदेसी जान पड़ते हो, भद्र! यह मथुरा तीन लोक से न्यारी है। इसमें नयी-नयी बातें रोज ही देखने को मिलती रहती हैं। कुषाण राजाओं ने यहाँ पंच-ध्यानी बुद्धों की उपासना चलायी। उन्हें धकेलकर भारशिव नाग राजा बन गये, तो उन्होंने पंचमुख शिव की उपासना चला दी। इनको आभीर राजा भद्रसेन ने धकेला और चतुर्व्यूह में एक और वृष्णिवीर जोड़कर पाँच वृष्णिवीरों की पूजा चला दी। पाँच अवश्य होने चाहिए, चाहे बुद्ध हों, शिव हों या विष्णु हों! वृद्ध ने हँसकर बताना चाहा कि यह बात कुछ विनोदजनक ही है। परन्तु श्यामरूप का कुतूहल बढ़ गया। आग्रहपूर्वक उसने पूछा कि ये पाँचवें वीर कौन हैं? वृद्ध ब्राह्मण ने कुछ गम्भीर होकर कहा, 'आयुष्मान्, चतुर्व्यूह तो जानते हो न? संकर्षण (बलराम), वासुदेव (श्रीकृष्ण), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये ही चार प्रसिद्ध वृष्णिकुल के वीर हैं। इधर जब पद्मावती के आभीर सामन्त भद्रसेन ने मथुरा पर आक्रमण किया तो इन चार के अतिरिक्त एक अन्य लहुरा वीर भी इन चारों के साथ जोड़ दिये गये। लहुरा वीर साम्ब हैं। कहते हैं इस लोग इन्हीं के प्रताप से विजयी हुए थे। तुम चौखट के मध्य भाग में जिस तेजस्वी मूर्ति को देख रहे हो, वह साम्ब की ही मूर्ति है। इन्हें ही लहुरावीर कहा जाता है। बलराम को बुल्ला वीर कहा जाता है। बुल्ला अर्थात् विपुल, बड़ा; और लहुरा का अर्थ है छोटा। सबसे बड़े वृष्णिवीर बलराम हैं और सबसे छोटे साम्ब। लहुरा वीर जाग्रत देवता हैं। भद्रसेन के सैनिकों ने लहुरा वीर का जय-

जयकार करते हुए कुषाणराज विमित को इस प्रकार ध्वस्त कर दिया जैसे प्रचण्ड आँधी पेड़ों को उखाड़कर फेंक देती है। उन्होंने ही इस मन्दिर की स्थापना करायी। परन्तु भगवान् की कुछ विचित्र लीला है। पता नहीं क्या चूक हुई कि लहुरा वीर अप्रसन्न हो गये और विमित के पुत्र धर्मघोष ने भद्रसेन को दस वर्षों के भीतर ही भगा दिया। अब तो वह कुषाण साम्राज्य के नये मगने देख रहा है। आज इस मन्दिर में आने में भी लोग डरते हैं। मैं राजभय की उपेक्षा करके सेवाकार्य चलाये जा रहा हूँ, पर मन में अनेक प्रकार की आशंकाएँ उठती रहती हैं। कल ही मैंने स्वप्न में लहुरा वीर के दर्शन किये हैं। वे मुझे अभय दे रहे थे और कह रहे थे कि पूर्व से कोई परमवीर आ रहा है, जिसे वे अपना तेज देकर भेज रहे हैं। वही फिर से इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बढ़ायेगा। पर स्वप्न का क्या विश्वास। कभी मनुष्य वही बातें स्वप्न में देखता है, जिनकी उसे कामना होती है। अभीप्सित-दर्शन भी माया ही है।' वृद्ध चुप हुए और कुछ उद्विग्न भी लगे।

श्यामरूप ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा, 'हो सकता है आर्य कि आपका स्वप्न फलित हो। परन्तु यदि धृष्टता मार्जित हो तो मैं इस नगर के बारे में कुछ और जानने का प्रसाद पाना चाहता हूँ।'

इस बार वृद्ध ने श्यामरूप को ध्यान से देखा। वृद्ध को उसके गठे हुए शरीर और चौड़ी छाती को देखकर आश्चर्य हुआ। बोले, 'क्या जानना चाहते हो भद्र। तुम तो अच्छे मल्ल जान पड़ते हो। तुम क्या यहाँ किसी मल्ल-समाह्वय में बुलाये गये हो?'

श्यामरूप ने हाथ जोड़कर कहा, 'मुझे बिलकुल पता नहीं है कि यहाँ कोई मल्लयुद्ध की प्रतियोगिता भी हो रही है। मैं तो बिलकुल ही नया आदमी हूँ, परन्तु इस समय तो मैं थककर चूर हो गया हूँ। पिछले कई दिनों से मुझे खाने को भी कुछ नहीं मिला है। जो व्यक्ति प्राय एक मास से बुभुक्षित हो, वह मल्ल-प्रतियोगिता में जाकर क्या कर लेगा। मैं तो जानना चाहता हूँ कि इस नगरी में मल्ल-विद्या का सम्मान करनेवाले कोई श्रीमन्त हों तो उनका आश्रय मैं कैसे पा सकता हूँ? मैं कुछ दिन इस नगरी में रहना चाहता हूँ। किन्तु मुझे इस नगरी के बारे में कुछ भी मालूम नहीं।'

वृद्ध ने श्यामरूप के मुरझाये हुए चेहरे को ध्यान से देखा। बोले, 'भद्र, मल्ल-विद्या के सम्मानदाता तो यहाँ अवश्य हैं, परन्तु अभी तो तुम सचमुच बहुत क्लान्त जान पड़ते हो। इस नगरी में कई श्रीमन्तों से मेरा परिचय है, जो मल्ल-विद्या के बड़े प्रेमी हैं, परन्तु पहला काम तो यह जान पड़ता है कि तुम्हारे लिए थोड़े विश्राम की व्यवस्था की जाये। अगर तुम अन्यथा न मानो तो अभी मेरी कुटिया पर चलकर विश्राम करो, स्नान करो, भोजन करो, और फिर कुछ

धन्य बात सोचो। निर्धन ब्राह्मण हूँ, किन्तु फिर भी सेवा तो कर ही सकता हूँ। श्राश्रो!' वृद्ध ने बड़े स्नेह के साथ श्यामरूप की पीठ थपथपायी और उसको कुछ बोलने का अवसर दिये बिना, हाथ पकड़कर अपने साथ ले लिया।

उपाध्यायपल्ली में एक छोटे-से किन्तु साफ-सुथरे घर में वृद्ध रहा करते थे। वे सचमुच निर्धन थे, लेकिन श्यामरूप को उनके स्नेह में बहुत-कुछ मिल गया। वृद्ध ने उसे स्नान करने को कहा और स्वयं उसके भोजन आदि की व्यवस्था में जुट गये। जब श्यामरूप नहा-धोकर लौटा तो उन्होंने उसे कुशासन पर बैठाया और स्नेहार्द्र वाणी में पूछा, 'तुम किस कुल में उत्पन्न हुए हो, बेटा ?'

श्यामरूप को बड़ी लज्जा मालूम हुई। उसकी वाणी रुद्ध हो गयी। पिछले कई वर्षों का जीवन आँखों के सामने नाच गया। वह वृद्ध के सामने झूठ भी नहीं बोल सका और सच कहने का साहस भी खो बैठा। अपना यज्ञोपवीत दिखाता हुआ केवल यही कह सका, 'संस्कारभ्रष्ट हूँ आर्य !'

वृद्ध ने स्नेह के साथ कहा, 'ब्राह्मण-कुमार हो ? मैंने क्षत्रिय समझा था। कोई बात नहीं, परमात्मा ने तुम्हें उत्तम शरीर-सम्पत्ति दी है। तुम श्रेष्ठ विद्या के जानकार हो। इसमें म्लान होने की क्या बात है ? आओ, भोजन करो।' यह कहकर वृद्ध ने जो कुछ भी बन पड़ा था वह लाकर श्यामरूप के सामने रख दिया। श्यामरूप की आँखों में आँसू आ गये। बोला कुछ नहीं, चुपचाप खाने लगा। वृद्ध ने स्नेहपूर्वक पूछा, 'नाम क्या है बेटा ?'

श्यामरूप और भी संकोच में पड़ गया। क्या नाम बताये ! अनायास मुँह से निकल गया, छबीला पण्डित !

वृद्ध की आँखें आश्चर्य से टँगी रह गयीं। बोले, 'क्या कहा बेटा, छबीला पण्डित ! तुम क्या वही मल्ल हो जिसने श्रावस्ती में मद्रदेश के अज्जुक मल्ल को पछाड़ा था ?'

श्यामरूप ने संकोचपूर्वक कहा, 'हाँ आर्य, श्रावस्ती में मैंने ही अज्जुक मल्ल को पछाड़ा था। वह सचमुच महाबलशाली था। अखाड़े में जब उतरता था तो विकटाकार दैत्य के समान दिखाई देता था। यह तो गुरु की कृपा ही कहो आर्य, कि मैं उसे पराजित करने में समर्थ हुआ। नहीं तो वह बल और आकार में मुझसे तिगुना था।'

वृद्ध ने उल्लसित होकर कहा, 'साधु वत्स, तुम्हें देखकर आँखें जुड़ा गयी हैं। मथुरा में जब तुम्हारी विजय का समाचार पहुँचा था तो लोगों को विश्वास ही नहीं हुआ। अज्जुक ने यहाँ के सारे मल्लों को मात दी थी। परन्तु श्रावस्ती से जब यह समाचार आया कि अज्जुक परास्त हुआ है तो लोगों ने तरह-तरह की बातें फैलायीं। किसी ने कहा—कोई दूसरा अज्जुक होगा; किसी और ने कहा—यह निरा गप्प है। अज्जुक को कोई नहीं पछाड़ सकता। परन्तु जो

लोग साधुशील हैं, गुणियों का सम्मान करना जानते हैं, उन्होंने प्रतिवाद नहीं किया। वे चाहते थे कि छबीला पण्डित को मथुरा की मल्लशाला का मल्ल स्वीकार किया जाये। परन्तु ऐसा हो नहीं सका, क्योंकि यहाँ बहुत दुर्जन रहते हैं जो अकारण दूसरों की निन्दा करते हैं। लेकिन जाने भी दो। मुझे आज का दिन बड़ा शुभ जान पड़ता है कि तुम बिना बुलाये इस नगरी में आये हो। तुम निश्चय ही यहाँ सम्मान पाओगे। लेकिन अभी अपना नाम तुम किसी को न बताना। मथुरा किरातों, विदूषकों और कम्पुओं से भर गयी है। इसमें गुण का सम्मान बाद में होता है, गुणी का अपमान पहले। लोभी राजा की धर्महीन राजसभा परनिन्दकों और चुगलखोरों से आक्रान्त हो गयी है। मैं तुम्हारे नाम को सस्ता बना देता हूँ। कोई पूछे तो अपना नाम 'आर्यक' बताना, छबीला नहीं।' वृद्ध की आँखें स्नेह से आर्द्र हो आयीं। पुलकित होकर उन्होंने प्यार से श्यामरूप के सिर पर हाथ फेरा और गद्गद भाव से बोले, 'मथुराधिपति वासुदेव तुम्हारा कल्याण करेंगे बेटा! यहाँ की जनता तुम्हें 'मल्ल-मौलिमणि' के विरुद से सम्मानित करेगी। शरत्कालीन चन्द्रिका की भाँति तुम्हारा उज्ज्वल यश संसार में फैलेगा। मैं तुम्हें कल किसी गुणज्ञ श्रीमन्त के निकट पहुँचाऊँगा। मेरी शक्ति का विषय बहुत थोड़ा है, परन्तु इतना तो मैं कर ही सकता हूँ।' श्यामरूप वृद्ध के स्नेह से बिलकुल ही भीग गया। उसने अपने हाथों को पीठ की ओर करके अर्द्धमुक्त अवस्था में ही अपना ललाट वृद्ध के चरणों में रख दिया। वृद्ध ने और भी स्नेह-जड़ित वाणी में कहा, 'उठो बेटा, भोजन समाप्त कर लो। मेरा आशीर्वाद अवश्य सफल होगा।'

श्यामरूप ने यह सोचा भी नहीं था कि मथुरा में उसका नाम पहले ही पहुँच चुका है। वह मन-ही-मन गर्व अनुभव कर रहा था और सोचने लगा था कि परमात्मा ने उसकी मल्ल बनने की अभिलाषा पूरी कर दी है। क्षण-भर में श्यामरूप के सामने अपना विगत जीवन खेल गया। न जाने किस पुण्य से उसे वृद्धगोप का स्नेह मिला। उसने सुन रखा था कि उसके माता-पिता स्नान करते समय बोधसागर में डूबकर मर गये थे। वृद्धगोप ने उसे पिता का सम्पूर्ण वात्सल्य देकर पाला था। वह साहसी प्रकृति का युवक था। वृद्धगोप उसे धर्म-शास्त्र का पण्डित बनाना चाहते थे। उनकी दृष्टि में ब्राह्मण कुमार का यही एकमात्र रूप हो सकता था। परन्तु उसके मन में साहसिक कार्यों के प्रति प्रबल आकर्षण था। विधाता की ओर से उसे प्रचुर शरीर-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। धर्म और दर्शन के सूक्ष्म विवेचन में उसे बिलकुल रस नहीं मिलता था। अट्ठारह वर्ष की कच्ची उमर में ही वह बड़े-बड़े पहलवानों को पछाड़ दिया करता था। परन्तु वृद्धगोप को यह सब पसन्द नहीं था। वे श्यामरूप को ब्राह्मण पण्डित के रूप में देखना चाहते थे और आर्यक को कुशल मल्ल बनाना

चाहते थे। आभीर-पल्ली का वातावरण मल्ल-विद्या के अनुकूल था और धर्म-शास्त्रीय विवेचन के लिए बिल्कुल प्रतिकूल। देवरात के आश्रम में उसने कुछ पढ़ा-लिखा अवश्य था, परन्तु मन उसका साहसिक कार्यों की ओर ही लगा था। वृद्धगोप ने उसे पल्ली से हटा दिया, किन्तु क्षिप्तेश्वर महादेव के मन्दिर की पाठशाला में उसे एकदम प्रतिकूल वातावरण में रहना पड़ा। वहीं उसने नटों की एक यायावर मण्डली से परिचय प्राप्त किया और उसी के साथ एक दिन चुपचाप खिसक गया।

नटों का चौधरी जम्मल स्वयं बड़ा कुशल मल्ल था। उसने श्यामरूप को उपयुक्त चेला पाया। उसने मल्ल-विद्या के साथ नट-विद्या की भी शिक्षा उसे दी। रस्से पर चलना, ऊँचे बाँस पर सिर पर घड़ा लिये हुए चढ़ जाना, लम्बे बाँस के सहारे ऊँचे-ऊँचे पेड़ों को लाँघ जाना उसे धर्मशास्त्र और दर्शन के विवेचन की अपेक्षा अधिक प्रीतिकर जान पड़े। नटों का यायावर जीवन भी उसे बड़ा आकर्षक लगा। आज यहाँ, कल वहाँ घूमता हुआ वह अनेक देशों में नट-मण्डली के साथ कलाबाजी भी दिखाता रहा और मल्ल-विद्या भी सीखता रहा। अनेक जनपदों और नगरियों को देखना उसे बड़ा ही कौतूहलजनक जान पड़ता था। दो-तीन वर्षों में वह अच्छा-खासा पहलवान और फुर्तीला नट बन गया। उसके ब्राह्मण-संस्कार प्रायः लुप्त हो गये। लेकिन यज्ञोपवीत उसने नहीं छोड़ा। उसे वह कभी गले में लटका लेता था, कभी कमर में बाँध लेता था, लेकिन फेंक नहीं सका।

चौधरी ने स्नेह और आदर के साथ उसे 'छबीला पण्डित' कहना शुरू किया और नट-मण्डली में यही उसका नाम पड़ गया। जम्मल चौधरी के मन में यह बात कभी दूर नहीं हुई कि छबीला पण्डित ब्राह्मण है। मल्ल के रूप में छबीला पण्डित का नाम और यश फैलने लगा था। पर श्रावस्ती में उसने जब मद्रदेश के अज्जुक मल्ल को पछाड़ा तो उसकी कीर्ति बड़ी तेज़ी से दूर-दूर तक फैल गयी। जम्मल चौधरी को अज्जुक के बल-पौरुष का पता पहले ही था। एक बार वह उससे पिट भी चुका था, परन्तु उसी समय उसे उसकी कमजोरी का भी पता चल गया था। वह उससे बदला लेना चाहता था। छबीला के बल-पौरुष और कौशल को बहुत निकट से देखकर उसे विश्वास हो गया था कि अज्जुक को यही मात दे सकता है। श्रावस्ती के मल्ल-समाह्वय में वह जान-बूझकर गया था। अज्जुक के दैत्याकार रूप को देखकर बड़े-बड़े नामी पहलवान आतंकित हो गये थे। परन्तु जम्मल ने छबीले को उत्साहित करते हुए कहा था, 'पण्डित, उसके भयंकर रूप की चिन्ता न करो। तुम्हीं को परमात्मा ने इसका गर्व चूर्ण करने के लिए पैदा किया है। बहुत कम पहलवान मैंने ऐसे देखे हैं जिनके दोनों धड़ चलते हैं। अज्जुक तो बिलकुल एकधड़ा है। मैं भी एकधड़ा हूँ।

परमात्मा ने तुम्हें ही दोनों पद (बायां और दाहिना) का कौशल दिया है। साहस न खोना। अखाड़े में उतरते ही बिजली की तरह टूट पड़ना। एकदम बायीं ओर झटका देना और दाँव मार देना। सड़े फिस्से से भी काम चल जायेगा। मेरी हार का कारण यह था कि मेरे दोनों पद नहीं चलते। अज्जुक की भी यही कमजोरी है। रणमान की चिन्ता न करो। बस इतना याद रखो कि पहला काम बायीं ओर झटका मारना है। दाहिनी ओर कोई भी दाँव मार सकते हो। अज्जुक मद्रदेशी मल्ल है। वह चालाकी और धोखे का उस्ताद है। सिर्फ इनसे बचने का प्रयत्न करना। देशी मल्ल उत्साह में अपनों से बीस होता है। सड़े फिस्से में उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।' फिर बड़े प्यार से उसकी पीठ थपथपाते हुए चौधरी ने कहा था, 'बेटा, गुरु के अपमान का बदला भी लेना है।' छबीले ने भी वैसा ही किया जैसा जम्मन ने सिखाया था। पलक गिरते-न-गिरते उसने बायीं ओर झटका मारा कि अज्जुक लड़खड़ा गया। जब तक वह अपने को सम्हाले तब तक छबीला फिस्सा मार बैठा और दूसरे ही क्षण उसकी छाती पर सवार दिखाई दिया। सहस्रों कण्ठों से निकली छबीला पहिलवान की जय-ध्वनि आकाश फाड़ने लगी थी। जम्मन की मण्डली के लिए यह बड़ा आनन्ददायक दिन था।

पर उस दिन एक घटना और भी घटी थी, जिसने श्यामरूप के जीवन में नया मोड़ ला दिया। उस रात को नट-मण्डली ने जमकर मदिरापान किया। पुरुष तो पीकर मुक्त हो ही गये, स्त्रियाँ भी मत्त हो उठीं। नट-मण्डली में युवतियाँ श्यामरूप से देवर का नाता रखती थीं। वे सदा उसके साथ कुछ-न-कुछ ठिठोली करती रहती थीं, श्यामरूप केवल हँस दिया करता था। न कभी कोई उत्तर देता, न किसी की ओर आँख उठाकर देखता। उस रात को इन भाभियों में असयत उल्लास दिखाई दिया। उन्होंने उसे घेर लिया और नाना भाव से उसका मनोरंजन करना शुरू किया। एक प्रौढ़ा भाभी ने कहा, 'देवर, आज आनन्द मनाने का दिन है। तुम्हारी भाभियों का निश्चय है कि तुम हममें से किसी एक को चुन लो। जिसे चुनोगे, वही तुम्हारी सदा के लिए चेरी हो जायेगी।' श्यामरूप हँसकर रह गया। इस प्रकार का परिहास वह कई बार सुन चुका था। एक ने आगे बढ़कर कहा, 'मेरे रहते यह किसी दूसरी को क्यों चुनेगा?' वह श्यामरूप के पास आ गयी। उसे धक्का मारकर एक दूसरी प्रौढ़ा बोली, 'नहीं देवर, तुम भोलेपन में आकर गलती न कर बैठना। मुझे चुनोगे तो बिना मिहनत के चार बच्चे भी मिल जायँगे। हाँ!' एक और युवती ने उसे डाँटा, 'चल हट, चार ही क्यों, तेरा वह तुझे छोड़ेगा? बिचारे देवर के सिर पर तेरे चार पिल्लों के साथ-साथ एक सवट्टा (सौत-पुरुष) भी सवार हो जायेगा। ना देवर, ऐसा कभी न करना। मुझे चुनो, मैं अपने मरकहे दूल्हे को बिलकुल छोड़ दूँगी।' वह सच-

युव श्यामरूप की बगल में आ बैठी। श्यामरूप इस प्रकार के परिहास से घबरा गया। वह पीछे हटा तो प्रौढ़ा मासी ने उस स्त्री को वहाँ से हटाते हुए कहा, 'चल हट, हमारा देवर अनसूँघा फूल सूँघता है।' और भीड़ में से एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की लजीली लड़की को घसीटकर ले आयी। बोली, 'पसन्द है न देवर!' श्यामरूप ने देखा कि वह लड़की लज्जा से सिकुड़ी हुई अपने को छुड़ाने के लिए छटपटा रही है। प्रौढ़ा हँसती हुई बोली, 'अनसूँघा फूल है। तुम्हारी ही तरह वैष्णव है। सबने पिया है, यह नाक-भौं सिकोड़ती रही।' फिर उसे छोड़ती हुई और भोंडी हँसी हँसती हुई बोली, 'पिया के हाथ नहीं पिया तो क्या पिया।' उसने बुरी तरह आँखें नचायी। श्यामरूप को अब भागने के सिवा और कोई रास्ता नहीं था। वह भाग खड़ा हुआ, पर वह लजीली लड़की उसके मन में एक विचित्र करुणा उद्रिक्त कर गयी। कौन है यह? कभी तो नहीं देखा था। श्यामरूप को वह बालिका बड़ी करुणाजनक लगी थी। वह उसका परिचय पाने के लिए व्याकुल हो गया। कुछ दिनों तक वह मण्डली में दिखायी नहीं दी तो श्यामरूप के पूछने पर एक दिन उसी प्रौढ़ा मुखरा मामी ने बताया कि उसका नाम मादी था। श्रावस्ती के ही निकट के किसी गाँव की अवमानिता कन्या थी। बिचारी सब समय रोती रहती थी। परेशान होकर चौधरानी ने उसे अच्छे दाम पर मथुरा की किसी गणिका के दलाल के हाथ बेच दिया। वह रोती हुई गयी थी।

श्यामरूप इस संवाद से घबरा उठा था। मन-ही-मन उसका दुःख दूर करने का उसने निश्चय कर लिया, और नट-मण्डली को छोड़कर उस लड़की को खोजने के उद्देश्य से ही मथुरा आ पहुँचा था। यहाँ आकर वह दिङ्मूढ़ हो गया था। कैसे खोजे, कहाँ खोजे।

जब-जब उसे उस करुणा-कातर बालिका का ध्यान आता, तब-तब एक विचित्र प्रकार की हूक उसके मन में उठती। कहाँ होगी बिचारी! कितनी डरी हुई होगी! कितनी रो रही होगी! हाय, न जाने उसे किस प्रकार रखा गया होगा। उसका मस्तिष्क चिन्ताओं से इस बुरी तरह जकड़ गया था कि वह और सोचने का अवसर ही नहीं पाता था। ऐसा जान पड़ता था कि मस्तिष्क की शिराएँ फटी जा रही हैं। उसके अन्तरतर से यह ध्वनि बराबर निकलती थी कि वह बालिका यहीं कहीं है। परन्तु कहाँ है? वह इधर-उधर भटकता रहा। ऐसे ही समय इस वृद्ध ब्राह्मण से भेंट हो गयी। यह उसे शुभ शकुन-सा लग रहा था। वह वृद्ध का अयाचित स्नेह पाकर धन्य हो गया था। बड़े विनय और आदर के साथ हाथ जोड़कर बोला, 'आर्य, मेरे भाग्य-देवता प्रसन्न हैं जो आपका वात्सल्य पाने का मुझे अवसर मिल गया है। मैं सोच नहीं पा रहा हूँ कि आपसे किस प्रकार उऋण हो सकता हूँ।'

वृद्ध ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, 'नहीं बेटा, ऐसा नहीं कहते। तुम्हारे जैसे गुणी का सम्मान करके मैं ही धन्य हुआ हूँ। ऐसे दरिद्र-गृह में किसी तेजवान का आगमन पूर्व-जन्म के पुण्यों से ही होता है। मैं ही धन्य हुआ, बेटा! पर मेरी साध तब पूरी होगी जब मैं तुम्हें मथुरा के 'मल्ल-मौलिमणि' के रूप में देख सकूँगा। हाँ, यह पूछना तो मैं भूल ही गया कि तुम किस देश से आये हो? कहाँ के निवासी हो?'

श्यामरूप ने उत्तर दिया, 'हलद्वीप का निवासी हूँ, आर्य!'

वृद्ध को एक बार फिर धक्का लगा, 'हलद्वीप! क्या वही हलद्वीप, जहाँ का निवासी गोपाल आर्यक है!'

अब श्यामरूप को धक्का लगा। पिछले सात बरसों से न जाने कितनी बार गोपाल आर्यक की स्मृति उसे व्याकुल बनाकर उद्वेग-चंचल कर चुकी थी। न जाने कितनी बार गोपाल आर्यक का भोला मुँह याद करके उसकी छाती फटने को आयी थी। परन्तु प्रयत्नपूर्वक वह उसे भुला देना चाहता था। सोचता कि आर्यक सुनेगा कि उसका भाई नटों की मण्डली में भर्ती हो गया है, तो न जाने कैसी घृणा उसके मन में उत्पन्न होगी! वह अपने पुराने इतिहास को भुला देना चाहता था और मन-ही-मन संकल्प करता था कि वह अपने को अकेला समझेगा। ऐसा अकेला जिसके न कोई पीछे था, न आगे है। इस विचार ने उसके मन में एक निरंकुश भाव उत्पन्न कर दिया था। आज पूरे सात वर्षों के बाद सुदूर मथुरा में अनजान वृद्ध के मुँह से गोपाल आर्यक का नाम सुनकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। बोला, 'हाँ आर्य, हलद्वीप तो वही है, किन्तु आप गोपाल आर्यक को कैसे जानते हैं?'

वृद्ध की आँखों में कौतूहल दौड़ आया, 'तुम्हें हलद्वीप छोड़े हुए कितने दिन हो गये वत्स?'

'सात वर्ष से भी कुछ ऊपर हो गये होंगे, आर्य!'

'अच्छा, तभी तुम्हें गोपाल आर्यक का कोई समाचार मालूम नहीं। तुमने गोपाल आर्यक को बहुत छोटा देखा होगा। है न यही बात।'

'हाँ आर्य, बहुत छोटा। बिलकुल दुधमुँहा!'

'सुना है बेटा, वह बहुत ही प्रतापी सेनापति बना है। कहते हैं कि हलद्वीप से पूर्व की ओर वह कहीं भगा जा रहा था एक अत्यन्त सुन्दरी युवती को साथ लेकर। जहाँ गंगा और सरयू का संगम है, उसी स्थान पर किसी लिच्छवि राजकुमार से टक्कर हो गयी। झगड़े का कारण वह सुन्दरी स्त्री ही बतायी जाती है। यद्यपि लिच्छवियों का पुराना गौरव अब नहीं रहा, परन्तु फिर भी उनका यश अभी तक बना हुआ है। लिच्छवियों का लोहा सारी दुनिया मानती है। सुना है कि हर लिच्छवि राजकुमार ही होता है। शक्ति और श्रद्धा दोनों

के वे धनी हैं। कोई पचास लिच्छवि युवक एक ओर थे और आर्यक अकेला था। जिन दुर्दान्त लिच्छवियों ने किसी का लोहा नहीं माना, वे आर्यक के बाहुबल का लोहा मान गये। सुना जाता है कि वह अकेला ही शस्त्र-सज्जित लिच्छवि-व्यूह में इस प्रकार घिर गया जैसे मदमत्त हाथियों के झुण्ड में कोई किशोर सिंह-शावक घिर गया हो। पहर-भर तक वह अकेला ही जूझता रहा, लेकिन अन्त में लिच्छवियों ने उसे बन्दी बना लिया। जब उसे बन्दी बनाकर तीरभुक्ति ले जाया गया तो उस वीर पुरुष के दर्शन के लिए हजारों की संख्या में जनता उमड़ आयी। लिच्छवियों के 'गणमुख्य' ने जो सुना तो उसे बन्धनमुक्त कर दिया और लिच्छवि-युवकों को डाँटते हुए कहा, 'तुमने लिच्छवियों का नाम कलंकित किया है। लिच्छवि-गण वीरों का सम्मान करता है। तुमने उस गण की मर्यादा को कलंकित किया है।' उसने गोपाल आर्यक का राजकीय सम्मान किया। उसकी पत्नी को लौटा दिया और उसे समस्त लिच्छवि-गणराज्य में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने की आज्ञा दे दी।' वृद्ध ने थोड़ा रुककर ऊपर की ओर देखा और कहा, 'जब वासुदेव भगवान् प्रसन्न होते हैं तो विपत्ति में भी सम्पत्ति देते हैं।'

ब्राह्मण देवता थोड़े म्लान हुए। उन्होंने उदासी-भरे स्वर में कहा, 'मथुरा से तो अब धर्म-कर्म उठ ही गया है। यहाँ कुछ भी अनर्थ क्यों न हो जाये, कोई पूछनेवाला नहीं है। सुना है, तीरभुक्ति में एक बड़ा अधिकारी होता है, जिसे 'विनय-स्थिति स्थापक' कहते हैं। उसी ने वहाँ के राजकुमारों को दण्ड दिया है। कहा जाता है कि वे चम्पारण्य में निर्वासित किये गये हैं। इधर मथुरा में यह हाल है कि म्लेच्छ राजा स्वयं प्रजा का शील नष्ट करने पर तुला है। भगवान् वासुदेव की लीला-भूमि न जाने कब तक इस प्रकार के अनाचार का अखाड़ा बनी रहेगी! ऐसा लगता है कि गोपाल आर्यक के रूप में वे फिर इस पवित्र लीला-भूमि की सुधि लेने आ रहे हैं। परन्तु धर्म-स्थापना के कार्य में कुछ विघ्न पड़ने के समाचार भी सुनाई दे रहे हैं।'

श्यामरूप साँस रोककर गोपाल आर्यक की कहानी सुन रहा था। उसके शरीर में रोमांच हो आया था, बाँहें फड़क रही थीं, ललाट पर पसीने की बूँदें उभर आयी थीं। अधीरतापूर्वक उसने पूछा, 'फिर क्या हुआ आर्य?'

वृद्ध ने कुछ धीमी आवाज में कहा, 'सुनी-सुनायी बातें कह रहा हूँ, वत्स! सुना है कि लिच्छवियों की कन्या पाटलिपुत्र के राजा चन्द्रगुप्त से ब्याही है। लिच्छवियों से विवाह-सम्बन्ध होने के बाद चन्द्रगुप्त बहुत शक्तिशाली हो उठा है। पहले तो वह एक बहुत सामान्य राजा था। सुना है, प्रयाग और साकेत के बीच कोई छोटा-सा राज्य था, वह वहीं का साधारण राजा था लेकिन अब तो मगध साम्राज्य के खोये हुए यश को फिर से लौटा लाने के लिए उसका संकल्प

दृढ हो गया है। उसकी सेनाएँ गंगा और यमुना के संगम तक बढ आयी है। अब तो मथुरा के दुर्बल शासको का हृदय भी कंपित हो उठा है। एक ओर तो शक-यवनों से वे आतंकित हैं और दूसरी तरफ गुप्तो की सेना बढती आ रही है। पता नही, मथुरा के भाग्य मे क्या बदा है ?' वृद्ध ने दीर्घ निःश्वास लिया।

लेकिन श्यामरूप तो गोपाल आर्यक की कहानी सुनने को उत्सुक था। मथुरा के भाग्य का लेखा-जोखा उसके लिए विशेष महत्त्व की बात नही थी। उसने अधीर भाव से पूछा, 'आर्य, मैं गोपाल आर्यक के बारे मे जानना चाहता हूँ। उसके बारे मे आपने क्या सुना है ?'

वृद्ध हँसने लगे। बोले, 'अपना गाँव बडा प्रिय होता है बेटा। तुम्हें अपने गाँव के लडके की चिन्ता है, मुझे सारी मथुरा की। जो मैंने सुना है वह तुम्हें बताता हूँ। सुना है कि उन दिनो चन्द्रगुप्त का बेटा समुद्रगुप्त अपने ननसाल आया हुआ था। समुद्रगुप्त गोपाल आर्यक की वीरता से प्रभावित हुआ और दोनो मे गाढी मित्रता हो गयी। वह गोपाल आर्यक को अपने साथ पाटलिपुत्र ले गया और गोपाल आर्यक को एक छोटी-सी सेना देकर हलद्वीप पर आक्रमण करने के लिए भेजा। लोग बताते है कि हलद्वीप के राजा से गोपाल आर्यक की अनबन हो गयी थी। आर्यक ने उस राजा को पराजित किया और हलद्वीप के राज्य पर अधिकार कर लिया। समुद्रगुप्त ने आर्यक को हलद्वीप का राजा घोषित करवा दिया। इधर समाचार आये हैं कि समुद्रगुप्त अब पाटलिपुत्र के सिंहासन पर विराजमान है और गोपाल आर्यक को उसने 'महाबलाधिकृत' के पद पर अभिषिक्त किया है। यह राजधानी है बेटा! यहाँ जितनी किम्वदन्तियाँ फैलती हैं वे सब विश्वासयोग्य नही होती। इधर एक और प्रवाद फैला है कि समुद्रगुप्त को जब यह पता चला कि गोपाल आर्यक के साथ जो युवती लिच्छवि गणराज्य मे बन्दी बनी थी वह उसकी ब्याहता बहू नही है, बल्कि किसी और की पत्नी है तो वह बहुत अप्रसन्न हुआ। सुनने में आया है कि गोपाल आर्यक की ब्याहता बहू कोई मृणालमंजरी है, जिसे उसने हलद्वीप मे छोड दिया था और स्वय किसी परस्त्री को लेकर भाग गया था। लोग कहते हैं कि गोपाल आर्यक की वास्तविक पत्नी मृणालमंजरी बहुत ही सती-साध्वी और पतिव्रता स्त्री है। ऐसी बहू का अकारण परित्याग करना निःसन्देह महापाप है और गोपाल आर्यक ने यही पाप किया है। समुद्रगुप्त के रोष से बचने के लिए गोपाल आर्यक फिर कही लोप हो गया है। मथुरा मे यह समाचार बहुत आश्वस्तकारी सिद्ध हुआ है। यहाँ गोपाल आर्यक का नाम भय और आतंक पैदा किया करता था। यह महिमाशालिनी नगरी थोडी देर के लिए आश्वस्त हुई है। सुना गया है कि समुद्रगुप्त की सेनाएँ साहस खो बैठी हैं और अहिच्छत्रा से आगे बढने को प्रस्तुत नही हैं।'

श्यामरूप ने कहानी का जो उपसंहार सुना वह उसके लिए बड़ा ही पीड़ादायक सिद्ध हुआ। उसका मुखमण्डल विवर्ण हो गया तथा होंठ सूखने लगे। आर्यक की वीरता की कहानी सुनकर वह जितना ही उल्लसित हुआ था, उतना ही मर्माहत हुआ उसकी चरित्रहीनता का समाचार पाकर। उसे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई थी कि गोपाल आर्यक का विवाह मृणालमंजरी से हो गया। परन्तु जब उसने यह सुना कि गोपाल आर्यक ने उसे ऐसे ही त्याग दिया है, तो उसका मन क्रोध और घृणा से भर गया। आर्यक क्या इतना हीन चरित्र का युवक सिद्ध हुआ? उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। परन्तु वह दूसरी युवती कौन थी जिसके साथ आर्यक भाग गया था? वृद्ध ने उसे चिन्ताकातर देखकर आश्वस्त करते हुए कहा, 'राजनीति में यह सब हुआ करता है बेटा! सुना गया है कि समुद्रगुप्त अब पछता रहा है और वह आर्यक जैसे सेनापति को कभी हाथ से न जाने देगा। फिर, ये सब सुनी-सुनायी बातें हैं। इनमें कितना सच है और कितना झूठ, यह कौन बता सकता है? मथुरा में रहोगे तो रोज ही नये-नये समाचार सुनोगे। सब बातों को सत्य मान लेना बुद्धिमानी नहीं है। राजधानी में बहुत-सी बातें जान-बूझकर तोड़ी-मरोड़ी जाती हैं। तुम चिन्ता न करो बेटा, आर्यक निश्चित रूप से फिर समुद्रगुप्त का सेनापति बनेगा। मथुरा की हालत तो आजकल बहुत बुरी है। कौन जाने किस दिन तुम्हें यहीं पर गोपाल आर्यक से मिलने का अवसर मिल जाये।

आठ

श्यामरूप को वृद्ध ब्राह्मण के प्रयत्नों से अच्छा आश्रय मिल गया। राजा के पितृव्य चण्डसेन स्वयं मल्ल-विद्या के निष्णात थे, और उनके आश्रय में अनेक मल्ल रहा करते थे। श्यामरूप को देखते ही उनकी गुणज्ञ आँखों ने पहचान लिया कि यह युवक यशस्वी मल्ल होगा। उनका आश्रय पाकर श्यामरूप भी प्रसन्न हुआ। मथुरा के मल्ल-समाह्वय में उसने बड़ा यश प्राप्त किया। देखते-देखते वह मल्ल-मण्डली में सम्मानित स्थान प्राप्त करने में सफल हुआ। वृद्ध ब्राह्मण ने छबीला नाम को संस्कृत बना दिया। उसका नाम शार्विलक ही प्रसिद्ध हुआ। शार्विलक अर्थात् छबीला! यद्यपि उन दिनों मथुरा के राजवंश में भय और आतंक बना हुआ था तथापि मथुरा की साधारण जनता अपने ढंग

से चलती जा रही थी। नृत्य-गीत का आयोजन यथानियम होता रहता था। मल्लशालाएँ नित्य नवीन मल्लो के आगमन से बराबर आकर्षण का केन्द्र बनी हुई थी। सरस्वती-विहारो मे काव्य-गोष्ठियो का काम निर्विघ्न चलता रहता था और लाव-तित्तिर, मेष, कुक्कुट आदि की लडाइयो की प्रतिस्पर्द्धा मे जनता खुलकर भाग लेती थी। इसीलिए श्यामरूप को मथुरा मे यश प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही हुई।

एक दिन चण्डसेन के आमन्त्रण पर विशाल मल्ल-प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। उस दिन राजा के साले मातृदत्त के प्रसिद्ध मल्ल मागू और शार्विलक की भिडन्त थी। मागू मद्रदेश का बहुत ही नामी पहलवान था। लोगो मे उसके बारे मे अतिरजित कहानियाँ प्रचलित थी। कहा जाता था कि भोजन करने के बाद जब वह अपनी मूँछे धोता था तो उनसे सेर-भर घी नित्य निकलता था। उसके आहार मे प्रतिदिन प्रचुर मास की व्यवस्था हुआ करती थी। कहा जाता था कि वह प्रात काल नित्य एक बडे बकरे के ताजे खून से जलपान करता था। प्रसिद्ध था कि एक बार राजा के मदमत्त हाथी को उसने थप्पड मारकर ही गिरा दिया था। उसके बाहुबल के बारे मे प्रचलित कहानियों की सच्चाई के बारे मे तो कुछ कहना कठिन है, लेकिन जनता मे तो वह भीम का अवतार ही माना जाता था। राज-श्यालक मातृदत्त अपने मल्ल की विजय के बारे मे बिलकुल आश्वस्त थे। परन्तु चण्डसेन भी शार्विलक के बाहुबल से कुछ कम आश्वस्त नही थे। मथुरा की जनता इस प्रतियोगिता को देखने के लिए समुद्र की भाँति उमड़ पडी। चण्डसेन ने बहुत बडी मल्ल-रंगभूमि का आयोजन किया था। शाल के सौ खम्भो पर विशाल पटवास का आयोजन था। अखाडा नीचे केन्द्र की ओर बनाया गया था और उसके चारो ओर लम्बी सोपान-वीथियाँ बनायी गयी थी, जो ऊपर क्रमश चौडी होती गयी थी। इस मल्लशाला मे पन्द्रह सहस्र नागरिको के बैठने की व्यवस्था थी। राज्य की ओर से सशस्त्र दण्डधरो की व्यवस्था की गयी थी ताकि उत्तेजित जन-समूह कुछ उत्पात न कर बैठे। तीक्ष्ण कुन्तवाही सौ अश्वारोही सैनिक पटवास के चारो ओर शान्ति-रक्षा के लिए तैनात थे। हर कोने मे प्रत्येक स्थान पर सशस्त्र दण्डधर खडे किये गये थे। जनता मे अधिकाश मागू की शक्ति के प्रति विश्वास रखनेवाले थे। ऐसे लोग बहुत कम थे जिन्हे शार्विलक के बाहुबल पर भरोसा था। प्रत्येक दर्शक ने मन-ही-मन अपना पहलवान तय कर लिया था। निस्सन्देह मागू मल्ल के प्रति अधिकाश लोगो का झुकाव था। राज-श्यालक मातृदत्त अपनी मण्डली के साथ अखाडे की दाहिनी ओर बैठे थे और चण्डसेन उसी प्रकार मल्ल-मण्डली से समावृत होकर बायी ओर विराजमान थे।

दोनो पहलवान अखाडे मे उतरे। भूमि-वन्दना करके उन्होने अपने-अपने

अन्नदाताओं को प्रणाम किया और गुंथ गये। दर्शक-मण्डली में अपार उत्तेजना का संचार हुआ। साँस रोककर लोग मल्ल-कौशल का अवलोकन करने लगे। मागू शार्विलक से दुगुना था। ऐसा जान पड़ता था कि पहाड़ के समान किसी हाथी के साथ सिंह-किशोर गुंथ गया हो। जिन लोगों को यह आशा थी कि हार-जीत का फैसला कुछ ही क्षणों में हो जायेगा, उन्हें निराश होना पड़ा। कुश्ती देर तक चली। जिन लोगों ने समझा था कि शार्विलक चींटी की तरह मसल दिया जायेगा, उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मागू उसको कसकर पकड़ भी नहीं पा रहा है। उसकी फुर्ती देखने लायक थी। दोनों ही मल्ल पसीने से तर हो गये थे। कोई एक घड़ी की विकट भिड़न्त के बाद लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि मागू चित हो गया है और शार्विलक उसकी छाती पर सवार है। तुमुल जय-निनाद और साधुवाद से मागू ऐसा निस्तेज हुआ मानो उसकी सारी शक्ति शार्विलक में संक्रमित हो गयी हो। चण्डसेन ने उल्लसित होकर शार्विलक को छाती से लगा लिया। देखते-देखते जन-समुद्र शार्विलक के जय-घोष से तरंगित हो उठा। उस दिन मथुरा की जनता ने निःसन्दिग्ध रूप से शार्विलक को मल्लों का मौलिमणि मान लिया। आयोजन समाप्त हुआ। शार्विलक के लिए एक ओर जहाँ इस यश ने बहुत दिनों की अभिलाषा की पूर्ति का वरदान दिया, वहीं दूसरी ओर वह सदा के लिए क्रूर राज-श्यालक भानुदत्त का द्वेष-भाजन भी बन गया। भानुदत्त प्रजा में बड़े ही क्रूर और घृणास्पद व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध था। लोगों ने उसे मथुरा का क्रूर ग्रह मान रखा था। आज के अपमान-बोध से उसके चित्त में भयंकर प्रतिक्रिया होगी, इस विषय में किसी को भी सन्देह नहीं था। लेकिन चण्डसेन भी कम शक्तिशाली नहीं थे। जनता का विश्वास था कि भानुदत्त मथुरा के लिए धूमकेतु की तरह अनिष्टकर होकर आया है। उनका यह भी विश्वास था कि इस भयंकर क्रूरकर्मा राज-श्यालक से मथुरा की मान-रक्षा यदि कोई कर सकता है तो वह चण्डसेन ही है। इस मल्ल-प्रतियोगिता के परिणाम से प्रजा के हृदय में एक प्रकार का प्रच्छन्न सन्तोष भी दिखायी दिया। लोगों ने ऐसा समझा कि अब चण्डसेन और भानुदत्त में खुलकर विरोध हो जायेगा।

शार्विलक जब अपने आवास-स्थल पर पहुँचा तो वहाँ एक सशस्त्र राजकीय दण्डधर उसकी प्रतीक्षा करता हुआ दिखायी दिया। शार्विलक ने उस दण्डधर की ओर ध्यान नहीं दिया। उस दिन नगरी में इस प्रकार के सशस्त्र दण्डधर हर नुक्कड़ पर तैनात थे। परन्तु जब शार्विलक उस दण्डधर के पास पहुँचा तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति 'साँवरू भैया' कहकर उसके चरणों पर लोट गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कौन व्यक्ति है जो उसे इस नाम से जानता है। क्षण-भर ठिठककर वह पहचानने का प्रयत्न करने लगा।

उसे उठाया, फिर ध्यान से उसके चेहरे की ओर देखा और स्तब्ध रह गया। यह तो हलद्वीप का वीरक है! यहाँ कैसे आ गया? उसे याद आया, आर्यक के साथ खेलनेवाला झम्मन दुमाध का लड़का वीरक। वह अचरज के साथ बोल उठा, 'वीरक, तू यहाँ कैसे!' वीरक बोला, 'भाग्य का मारा यहाँ आ गया हूँ भैया! मगर मैंने तुम्हें कैसे पहचान लिया! जब तुम अखाड़े में उतरे तभी मैंने मन-ही-मन कहा कि यह जरूर साँवरू भैया हैं, मगर पूरा विश्वास नहीं हुआ। पर जब तुम्हें नजदीक से देखा तो पूरा विश्वास हो गया। मैं कहीं साँवरू भैया को पहचानने में गलती कर सकता हूँ!' शार्विलक ने प्यार से उसकी पीठ थपथपायी। बोला, 'देख रे वीरक, मैं साँवरू भैया नहीं, शार्विलक हूँ। मुझे शार्विलक भैया कहकर ही पुकार। आ मेरे साथ, तुझसे बहुत-सी बातें करनी हैं।' वीरक चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

वीरक ने शार्विलक को हलद्वीप की बहुत-सी बातें बतायीं। जब उसने बताया कि वृद्धगोप उसके चले जाने के बाद कितने दुःखी हुए, कितने ज्योतिषियों और तान्त्रिकों से उसका अता-पता बताने का अनुरोध किया, महीनों तक किस प्रकार खाना-पीना भी भूल गये, तो शार्विलक की आँखों में आँसू आ गये। उसने रोकर कहा, 'वीरक, मैंने बड़ा पाप किया है जो ऐसे देवता-तुल्य पिता को दुखी बनाया।' वीरक ने गोपाल आर्यक के बारे में भी नये समाचार दिये। उसने बताया कि गोपाल आर्यक तुम्हें खोजने के लिए आश्रम से भाग खड़ा हुआ। परन्तु भृगु-आश्रम के विष्णु मन्दिर के अर्चक ने उसे पकड़कर वृद्धगोप के पास पहुँचा दिया। उसने एकाध बार और भी भागने की कोशिश की, लेकिन हर बार पकड़ लिया गया। साल-भर बाद वृद्धगोप ने देवरात की सलाह से उसे बाँधने का प्रयत्न किया और उसका विवाह मृणालमंजरी से कर दिया गया है। वीरक ने मृणालमंजरी की प्रशंसा करते हुए कहा, 'वह साक्षात लक्ष्मी है भैया! जब से घर में आयी, सारा घर जगमग हो उठा है। खेतों में फसल दुगुनी होने लगी है, गायों के दूध बढ़ गये हैं और सारा गाँव खुशहाल हो उठा है। आर्यक भैया का मन भी घर में लग गया है। रह-रहकर वह तुम्हें याद करते अवश्य हैं, परन्तु अब भागने का प्रयत्न नहीं करते। कैसा गबरू जवान हुआ है, कहते नहीं बनता। मैं तो उसे बीस वर्ष का जवान देखकर ही आया था, लेकिन लगता था जैसे कोई मदमत्त हाथी हो। राजुन दादा भी मान गये हैं कि उनका यह शिष्य एक दिन अपने पौरुष से ससार को चकित कर देगा। उसके पुट्ठे देखने लायक हैं। छाती ऐसी चौड़ी हो उठी है जैसे वज्र का कपाट हो। शरीर ऐसा गठा हुआ और चिकना है कि देखनेवाले की आँखें फिसल जाती हैं। उसके साथ जब भाभी बैठती हैं तो ऐसा लगता है कि राम-जानकी का ही जोड़ा है। लोग उसे अवतार मानते

है भैया ! गाँव की स्त्रियाँ मृणालमंजरी को मैना-मांजर-देई कहती हैं, और कहती ही नहीं सचमुच मानती हैं कि वह देवी है। शुरू-शुरू मे जाति मे इस विवाह का विरोध भी हुआ था। लोग कहते थे कि वृद्धगोप वेश्या की लडकी को घर मे ला रहे है। लेकिन अपने शील, सौजन्य और दयालुता से उसने सबका हृदय जीत लिया है। तुन्दिल गोप जो पहले खूँटा तुडवाने को तैयार थे, अब इतने प्रसन्न हैं कि जब उनकी नयी बहू आयी तो पहले भाभी के चरण छू लेने पर ही वह घर में लायी गयी।'

शार्विलक अर्थात् श्यामरूप यह सब सुनकर गद्गद हो गया। वह आर्यक के बारे में बहुत सुनना चाहता था, लेकिन वृद्ध ब्राह्मण से उसने जो कुछ सुना था वह उसके चित्त को कुरेद रहा था। वह जानना चाहता था कि आर्यक के बारे मे उस तरह की कहानी क्यों फैल गयी। उसने आतुरतापूर्वक पूछा, 'आगे क्या हुआ बीरक ?' बीरक थोडा हिचका। ऐसा जान पडा कि उसके मन मे दुविधा है कि आगेवाली बात कहे या नही। शार्विलक ने आतुरता के साथ कहा, "बीरक, सब कह जा। कुछ छिपा मत। मेरा मन सुनने को व्याकुल है।' बीरक ने हकलाते हुए कहा, 'कह ही तो रहा हूँ भैया।' और फिर रुआँसे स्वर मे बोला, 'विवाह के दो वर्ष बाद वृद्धगोप ने संसार ही छोड दिया। गोपाल आर्यक अनाथ हो गया। तुम इधर चले आये और पिता स्वर्ग सिधार गये। तुम ही बताओ उस गरीब की क्या हालत हुई होगी ! लेकिन उसकी सहनशक्ति और धीरता अद्भुत है। उसने इस दुःख को बहादुरी के साथ झेला है। गाँव के वृद्धों ने उसकी देख-रेख में कोई कमी नहीं आने दी है। सभी कहते हैं कि आर्यक हलद्वीप का यश सारे ससार में फैलायेगा। इसे कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। मेरे पिता ने मुझसे कहा कि बीरक, तू आर्यक की सेवा कर। उसे कोई तकलीफ हुई तो तेरी चमड़ी उधेड़ दूंगा। सो मैं भैया की सेवा मे लग गया। बड़ा सुखी था मैं। भाभी ने तो मुझे कभी यह समझने ही नही दिया कि मैं दूसरी जाति का हूँ और दूसरे घर का हूँ। बडा सुखी रहा मैं। लेकिन विधाता से यह सहा नही गया। मुझे हलद्वीप छोडकर भागना पडा। भाग्य खोटा हो तो कोई क्या कर सकता है भैया !'

बीरक अपने भाग्य का दुखड़ा और भी रोना चाहता था, परन्तु शार्विलक का चित्त बुरी तरह से उत्क्षिप्त हो गया। 'क्या कहा बीरक ! पिता भी नहीं रहे ! भोला आर्यक अनाथ हो गया और मैं भूलचक्रांकित साँड की तरह अनर्गल घूम रहा हूँ ! हाय बीरक, जिसने मुझ अनाथ को इतने प्रेम से पाल-पोसकर बड़ा किया उस देवतुल्य पिता के भी मैं किसी काम नहीं आ सका !' शार्विलक फूट-फूटकर रो पडा, 'बता बीरक, उस भोले बालक की क्या दशा हुई होगी। बेचारा ऊपर से बोला कुछ नही होगा। भीतर से उसका चित्त

इस अभागे श्यामरूप को याद जरूर करता होगा। उस मदनन की पुत्री-श्री मृणालमंजरी की क्या दशा हुई होगी?' शार्विलक ने अपना सिर पीट लिया। धीरक ने उसे सम्हालते हुए कहा, 'भैया, धीरज रखो।' शार्विलक ने कातरस्वर कहा, 'कैसे धीरज रखूँ धीरक, तू भी तो छोड़कर चला आया! क्यों चला आया, क्यों चला आया! क्यों चला आया तू! अरे भाग्यहीन, कुछ दिन तो सहारा देना।' अब धीरक के रोने की बारी थी। 'ठीक कहते हो भैया, मैं सचमुच भाग्यहीन हूँ। मैं छोड़कर आया नहीं, मुझे भागना पड़ा, भागना पड़ा।' शार्विलक के मन में शंका हुई, 'भागना पड़ा? क्यों भागना पड़ा?' 'बताता हूँ, भैया! तुम थोड़े शान्त हो जाओ।' धीरक ने कहा।

धीरक बोला, 'मृणालमंजरी का विवाह करके आचार्य देवरात जो आश्रम से निकले तो निकले। कुछ भी पता नहीं चला कि वे कहाँ चले गये। उनके जाने के बाद और वृद्धगोप की मृत्यु के बाद हलद्वीप का राजा निरंकुश हो गया। आये दिन प्रजा को लूटा जाता है, बहू-बेटियों का शील नष्ट किया जाता है, खेतों की खड़ी फसल काट ली जाती है। आर्यक के अतिरिक्त और किसी में साहस नहीं था कि इन अत्याचारों का विरोध करता। हलद्वीप के नगर-सेठ वसुभूति का घर दिन-दहाड़े लूट लिया गया। राज-दरबार में कोई सुनवाई नहीं हुई, उलटे उसे अपमानित होकर लौटना पड़ा। बेचारा किसी और का सहारा न पाकर आर्यक के पास आया। बोला, 'बेटा तुम्हारे पिता जीवित थे तो किसी का साहस नहीं था कि वह इस प्रकार अकारण भले आदमियों का अपमान करे। अभी तुम बालक हो, तुमसे मैं क्या कहूँ! लेकिन और जाऊँ भी कहाँ? मैं तो अपने परिवार को लेकर किसी और राज्य में चला जाऊँगा, परन्तु जाने के पहले तुम्हें अपनी विपदा सुना जाता हूँ, इस आशा से कि जब समर्थ होगे तो इस दुखिया की बात याद रखोगे।' आर्यक की भौंहें तन गयीं, बोला, 'तात, बालक हूँ, लेकिन हलद्वीप में अनर्थ हो, यह मुझे सह्य नहीं है। आप हलद्वीप छोड़ने की बात न सोचें। इस बालक की नसों में भी वृद्धगोप का रक्त बह रहा है। आप निश्चिन्त होकर घर जायें। आज से निरीह प्रजा की रक्षा का भार आर्यक के कन्धों पर आ गया। आप आश्वस्त होकर जायें।' वसुभूति ने दुलार के साथ आर्यक की ठोडी पकड़ ली, 'नहीं मेरे प्यारे, ऐसा साहस न करो। राजा इन दिनों चाटुकारों के हाथ में है। वह तुम्हारा भी अनिष्ट कर सकता है।' आर्यक कुछ बोला नहीं, केवल अनुनय के साथ इतना ही कह सका, 'तात, देश-त्याग न करें।' वसुभूति आशीर्वाद देकर घर लौट गया और दूसरे दिन सुना गया कि वह रातों-रात कहीं अन्यत्र चला गया है।

आर्यक ने जब यह सुना तो अत्यन्त व्याकुल हो उठा। मुझे बुलाकर कहा,

'वीरक, धिक्कार है इस जवानी को। धिक्कार है इस बाहुबल को। जो पुत्र पिता के यश की रक्षा नहीं कर सका, उसका जन्म अकारथ है। तुम गाँव के नौजवानों से मेरी ओर से कहो कि जो प्राण देने को प्रस्तुत हों वे हमारे साथ आ जायें। राजा का गर्व चूर्ण करने के लिए आर्यक अकेला ही पर्याप्त है, परन्तु उसके साथ और भी कुछ समानधर्मा लोग हों तो क्या कहना!' बिजली की भाँति यह बात सारे गाँव में फैल गयी और सभी नौजवान आर्यक को घेर-कर खड़े हो गये। हलद्वीप के राजा ने सुना तो उसने भी आर्यक को चींटी की तरह मसल डालने की प्रतिज्ञा की। लेकिन अत्याचारों का ताँता रुक गया और विरोध राजा और आर्यक में आकर केन्द्रित हो गया। प्रजा पूर्ण रूप से आर्यक के पक्ष में हो गयी। वृद्धों ने आशीर्वाद दिया, माताओं ने बलैया ली, बहू-बेटियों का मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया। आर्यक बिना अभिषेक का राजा सिद्ध हुआ। जहाँ कहीं भी पत्ता खड़कता था, हमारे नौजवान पहुँच जाते थे। दो-चार बार सैनिकों से हमारी मुठभेड़ भी हुई, लेकिन बात बहुत आगे नहीं बढ़ी। राजा डर गया। चाटुकार चुप्पी मार गये। कुछ दिन ऐसे ही बीते। मैं छाया की तरह भैया के साथ रहने लगा। भाभी ने मुझसे कहा था, 'वीरक, तू एक क्षण के लिए भी भैया का साथ न छोड़ना। बहू-बेटियों की शील-रक्षा के लिए, दुखियों की मान-रक्षा के लिए प्राण भी देना पड़े तो न झिझकें। उन्हें सदा उत्साहित करता रह। मेरा सतीत्व उनकी रक्षा करेगा, तू चिन्ता न कर। आवश्यकता पड़ने पर तू अपनी भाभी को भी सिंहिनी की भाँति दहाड़ती पायेगा। मैं इस समय उनका साथ नहीं दे सकती। इसलिए तुमसे प्रार्थना कर रही हूँ कि उन्हें अकेला न रहने दे।'

शार्विलक को रोमांच हो आया। उसकी छाती दुगुनी हो गयी। एकाएक बोल उठा, 'साधु आर्यक! साधु मृणालमंजरी! तुम लोगों से ऐसी ही आशा थी।' वीरक थोड़े उत्तेजित स्वर में बोला, 'राजा के दुष्ट सभासद उसकी मति मारते हैं। उसकी आड़ में भले घर की बहू-बेटियों का शिकार करते हैं। यदि आर्यक भैया न होते तो हलद्वीप आज श्मशान बन गया होता।' फिर जरा प्रसन्नता से मिलता हुआ धीरे-से बोला, 'भाभी हम लोगों के साथ जाना चाहती थीं भैया, लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया। उन दिनों उनके पैर भारी थे। अब तो कोई बच्चा भी हुआ होगा।'

शार्विलक उछल पड़ा, 'सच वीरक, तू सच कहता है! तू तो मेरे कानों में अमृत उँडेल रहा है!'

'सच कहता हूँ भैया, तुमसे मैं झूठ बोलूँगा! मेरी माँ ने खुद बताया था। वह दिन-रात भाभी के पास रहती है। मुझे डाँटती थी कि भाभी से इधर-उधर की बातें न किया कर। उसका शरीर भारी है। पहले तो मैं कुछ

समझ नहीं पाया भैया, लेकिन बाद में माँ ने समझाकर बताया कि बच्चा होनेवाला है। तब से मैं लड़ाई-झगड़े की बात उनसे नहीं बताता था और आर्यक भैया के पेट से तो कोई बात निकलती ही नहीं थी। एक दिन ऐसा हुआ कि मैं आर्यक भैया के साथ हलद्वीप के बाजार से लौट रहा था। घुप्प अँधेरा था। हम दोनों के हाथ में लाठी के सिवा दूसरा कोई शस्त्र नहीं था। ऊपर-ऊपर से सारा हलद्वीप शान्त जान पड़ता था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता था कि राजा के भेड़ियों के मुँह लहू का स्वाद लग गया था। वे लुक-छिपकर अब भी अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे थे। हम दोनों जब नगर की सीमा से बाहर निकले तो एक आम्र-वाटिका में रोने का स्वर सुनायी पड़ा। स्पष्ट ही कोई ऐसी बात थी, जो असाधारण जान पड़ती थी। हमारे कान खड़े हुए। हमने धीरे-धीरे उस स्थान की ओर बढ़कर रहस्य जानने का प्रयत्न किया। अँधेरे में कुछ दिखायी नहीं दे रहा था, केवल एक करुण क्रन्दन सुनायी पड़ रहा था। वाटिका के बाहर तो ताराओं की झिलमिलाहट से थोड़ा प्रकाश भी आ रहा था, किन्तु भीतर तो एकदम सूची-भेद्य अन्धकार था। वाटिका में स्पष्ट ही जान पड़ता था कि कुछ दुर्वृत्त लोगों ने किसी बालिका को पकड़ रखा है। आवाज केवल उसी गरीब की आ रही थी। अँधेरे में पेड़ तक तो दिखाई नहीं दे रहे थे, आदमी का तो कहना ही क्या! फिर कितने आदमी थे और उनके हाथ में क्या-क्या शस्त्र थे, यह जानना तो असम्भव ही था। आर्यक भैया ने बुद्धिमानी की। भीतर न घुसकर बाहर से ही उन्होंने सिंह की भाँति दहाड़ा और धरती पर लाठी पटककर कहा, 'मैं आर्यक आ गया हूँ। दुष्टों को अपने किये का फल भोगना होगा। सावधान!' मैंने भी उनके स्वर-में-स्वर मिलाकर दहाड़ा। न तो किसी के बोलने की आवाज आयी और न किसी के भागने का ही लक्षण दिखायी दिया। सिर्फ रोनेवाली स्त्री ही 'बचाओ-बचाओ' कहती हुई आर्यक भैया की ओर दौड़ी। उसकी आवाज से हम समझ गये कि वह हमारी ही ओर आ रही है। फिर सिंह-गर्जन के साथ आर्यक भैया ने कहा, 'कोई भय की बात नहीं है। आर्यक के रहते कुल-ललनाओं का शील कोई नष्ट नहीं कर सकता। अभी इन नरक के कीड़ों को उचित स्थान पर पहुँचाता हूँ।' मगर कहाँ, उस स्त्री के सिवा न तो कोई आगे आया, न भागा। किसी ओर पत्ता खड़कने की आवाज न आयी और वह स्त्री दौड़ती हुई आकर आर्यक भैया से एकदम लिपट गयी। उसके बाल अस्त-व्यस्त थे, वस्त्र इधर-उधर हो गये थे और वह 'बचाओ-बचाओ' का कातर चीत्कार करती जा रही थी। मैं तो बुरी तरह से डर गया।

'मुझे ऐसा जान पड़ा कि यह भूतों का खेल है। मेरी आँखों से लुत्ती निकलने लगी और जब वह स्त्री आर्यक भैया का गला पकड़कर एकदम चिपट गयी तो मारे डर के मैं बेहोश हो गया। मुझे कोई सन्देह नहीं रहा कि हम

लोग भूतों के चक्कर में पड़ गये हैं। फिर क्या हुआ, यह तो मुझे नहीं मालूम, लेकिन थोड़ी देर बाद भैया ने ही मेरा सिर सहलाया और जोर-जोर से आश्वस्त करते हुए बोले, 'डर नहीं वीरक, डरने की इसमें क्या बात है!' मेरी आँखें खुली तो मैंने देखा कि वह स्त्री आर्यक भैया की बगल में बैठी है। उसके मुख पर किसी प्रकार का भय का भाव नहीं था, उलटे वह थोड़ा-थोड़ा हँस भी रही थी। लेकिन भैया, तुम मानो या न मानो, ऐसा सुन्दर रूप मैंने नहीं देखा था। लोग स्त्रियों के मुख को पूर्णिमा के चाँद-जैसा कहते हैं। मगर मैंने पहली बार सचमुच पूर्णिमा के चाँद-जैसा मुख देखा। आर्यक भैया ने कहा, 'वीरक, यह पड़ोस के गाँव के श्रीचन्द्र की बहू चन्द्रा है। विपत्ति में फँस गयी थी, इसलिए डर गयी है। चलो, इसको इसके घर पहुँचा आयें। इसमें घबराने की कोई बात नहीं।' मेरा तो कलेजा धक्-से रह गया। इस चन्द्रा ने कई बार आर्यक भैया पर डोरे डालने की कोशिश की थी। चिट्ठियाँ भी भेजी थीं, पर आर्यक भैया को वह अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकी। उसकी चिट्ठियाँ उन्होंने मामी को दे दी थीं। मामी ने एक बार परिहास में मुझसे इन चिट्ठियों की बात बता दी थी। मेरे मन में कोई सन्देह नहीं रहा कि इस वराकी ने यह नया जाल रचा है। मेरे मुँह से तो निकल ही रहा था कि यह तो छैंछी (भ्रमती) है, परन्तु आर्यक भैया ने मेरे मन का भाव ताड़कर मुझे कुछ बोलने से रोक दिया। बाद में तो मुझे पक्का विश्वास हो गया कि वह छैंछी है।'

शार्विलक ने टोका, 'देख रे वीरक, कुलवधुओं के बारे में ऐसी हलकी बातें नहीं किया करते।' अब वीरक रुआँसा हो गया। बोला, 'मेरी बात तो सुन लो। तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि मैं जो कह रहा हूँ वह सब ठीक है।' शार्विलक ने कहा, 'सुन तो रहा हूँ। लेकिन तुझे यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि कुलवधुओं के बारे में कभी ऐसी हलकी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।' वीरक ने कुछ विवशता का भाव दिखाते हुए कहा, 'लो भैया, बाँध लिया। मगर मेरा तो देस ही छूट गया।' 'सो कैसे?' शार्विलक ने पूछा।

'बता रहा हूँ। पहले तो यह स्त्री इसी बात का हठ पकड़े रही कि वह आर्यक भैया के साथ उनके घर जायेगी। पर वे बराबर उसको यही सिखाते रहे कि उसे अपने घर जाना चाहिए। जब मैंने देखा कि वह बुरी तरह आर्यक भैया के गले पड़ना चाहती है तो मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने कहा, 'तुम सीधे अपने घर चलो। मैं तुम्हें ले जाऊँगा। आर्यक भैया को अभी बहुत काम करने है।' और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा के मैंने हाथ में लाठी उठायी और कहा, 'चलो'। जरा रोष के साथ मैंने आर्यक भैया से कहा, 'तुम घर जाओ।' मेरे क्रोध का प्रभाव पड़ा। वह स्त्री मेरे पीछे-पीछे चल पड़ी। रास्ते में उसने ऐसी-ऐसी बातें कहीं कि जिन्हें अब भी स्मरण करता हूँ तो मेरा मुँह लज्जा से

नौ

मथुरा मे फिर एक बार खरभर मच गयी। सुना गया कि आर्यक के स्थान पर पाटलिपुत्र के सम्राट ने किसी और दुर्धर्ष सेनापति को नियुक्त किया है और कड़ा आदेश दिया है कि दस दिन के भीतर मथुरा पर अधिकार कर लिया जाये। यह भी सुना गया कि नया सेनापति सम्राट् का अत्यन्त विश्वासपात्र कोई भटार्क है, जो सम्राट् के परिवार का भी सदस्य है। इस समाचार ने मथुरा के जीवन मे खलबली पैदा कर दी। बड़े-बड़े सेठ और सामन्त भागने लगे। राजा भागे तो नही, पर आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त भाग निकलने की पूरी तैयारी कर लेने के बाद ही युद्ध की तैयारी मे लगे। राज-पितृव्य चण्डसेन ने सच्चे शूर की भाँति मथुरा मे रहकर ही शत्रु से लोहा लेने का निश्चय किया, पर इतनी सावधानी उन्होने भी बरती कि अपने परिवार को चुपचाप उज्जयिनी भेजने की व्यवस्था कर ली। श्यामरूप के बल, पौरुष और शील पर उन्हे पूरा विश्वास हो गया था। उन्होने श्यामरूप को परिवार के साथ जाने का आदेश दिया। श्यामरूप कुछ चिन्तित हुआ, पर स्वामी की आज्ञा का पालन करने के सिवा उसके पास कोई रास्ता नही रह गया था। माँदी की चिन्ता उसे बराबर बनी रही। उसके मथुरा आने का उद्देश्य ही माँदी का पता लगाना था। पता लग नही रहा है, लगेगा, ऐसी आशा भी नही है। बीरक आता है, नित्य आकर कह जाता है कि माँदी का पता वह अवश्य लगायेगा। पर कहाँ लगा पा रहा है!

वह उदास हो गया। उसे उज्जयिनी जाना पड़ेगा। माँदी का पता अब कभी नही लगेगा। वह गयी सो गयी। एक क्षण के लिए बिजली की जो रेखा कौंधी थी वह उसके मस्तिष्क और हृदय को आर-पार चीर गयी थी। क्यों ऐसा हुआ? यह क्या एक क्षण की घटना है? श्यामरूप का मन कहता है कि यह एक दिन की बात नही है, यह जन्म-जन्मान्तर की कहानी है। नही तो माँदी से उसका क्या सम्बन्ध है, कौन होती है वह उसकी? क्यों वह इतना व्याकुल है? ऐसा तो होता ही रहता है। क्या रखा है इस अकारण उधेड़-बुन मे?

परन्तु श्यामरूप जितना ही भूल जाना चाहता है उतना ही वह उलझता जाता है। शख की चूड़ी बनानेवालो की एक कराती होती है—छोटी-सी आरी। वह नीचे से ऊपर जाती बार भी काटती है, ऊपर से नीचे आते समय भी काटती है। श्यामरूप की व्यथा इसी कराती के समान है। याद करने के प्रयत्न मे भी काटती है, भुला देने के प्रयास मे भी काटती है। श्यामरूप बेचैन है।

उसे माँदी की बातें याद आयी। मुखरा भाभियों का भोंड़ा परिहास याद आया, माँदी का विवश चेहरा याद आया, अपनी शिराओं की झनझनाहट याद आयी और फिर रात-भर उठती रहनेवाली हूक याद आयी। क्या हो गया था उस दिन, सारा दिग्मण्डल ही घूम गया था, ब्रह्माण्ड ही केन्द्रस्खलित-सा हो गया था, दिगन्त ही गतिशील हो उठा था।

उज्जयिनी जाना पड़ेगा, माँदी की खोज का कार्य रुक जायेगा। श्यामरूप फिर भी जीवित रहेगा। उसका मन बीती हुई घटनाओं में उलझ गया। उसे याद आयी भोंड़े परिहास के दूसरे दिन की सन्ध्या। वह नटों के आवास से थोड़ी दूर हटकर एक आम के पेड़ के नीचे उदास बैठा था। हाय, उसी सन्ध्या को तो उसका हृदय बिंध गया था।

बड़ी ही मर्मन्तुद थी वह सन्ध्या। उसे सारी बातें साफ दिख रही थीं··· एकदम साफ। उस दिन श्यामरूप के मन में विचारों का बवण्डर उठ रहा था। ऐसे ही समय उसके पीछे किसी ने आवाज दी थी, 'किस अलबेली का ध्यान कर रहे हो देवर?' श्यामरूप ने मुड़कर देखा था, वही प्रौढ़ा मुखरा भाभी खिलखिलाकर हँस रही है। श्यामरूप भी यथानियम हँस दिया था। मन-ही-मन बोला था—मोह-बुद्धि का। भाभी निकट आ गयी थीं। बिचारी हृदय से श्यामरूप को वात्सल्य-रंजित प्यार की दृष्टि से देखती थी। उसके असंस्कृत शब्द केवल ऊपरी आवरण-मात्र थे। उसके अन्तर में शुद्ध प्रेम था जो सहज वात्सल्य से और भी उज्ज्वल हो उठा था। अपनी टोकरी से कुछ ताजा शहद निकाल-कर बोली थी, 'देखो, तुम्हारे लिए कैसी मीठी वस्तु ले आयी हूँ!' श्यामरूप ने हँसते हुए कहा था, "भाभी, तू सब समय मेरे लिए मीठी चीजें ले आती है!' प्रौढ़ा ने गद्गद होकर कहा था, 'भोलेराम, उस दिन इससे भी मीठी चीज ले आयी थी। मगर तुम तो भाग ही गये!' और खिलखिलाकर हँस पड़ी थी। श्यामरूप को कैसा-कैसा लगा था! बोला था, 'भाभी, तू बड़ा बुरा परिहास कर गयी उस दिन। पता नहीं, वह बिचारी कौन लड़की थी। तू उसे घसीट लायी। बिचारी लाज से लाल हो गयी थी।' अब तो भाभी और ठहाका मारकर हँस पड़ी थी। बोली थी, 'माँदी की बात करते हो? लजा तो गयी थी, मगर दस बार उसने मुझसे कहा था कि छबीला पण्डित के पास जाना तो मुझे भी साथ ले लेना। मैं क्या जानूँ कि देखने को आँखें भी तरसती हैं और दिखाने पर गाल भी लाल हो जाते हैं!' श्यामरूप ने भाभी के निश्छल भोलेपन को आश्चर्य से देखा था। भाभी हँस-हँसकर लोटपोट हो रही थी।

अवसर देखकर श्यामरूप ने पूछा था, 'अच्छा भाभी, यह माँदी कौन है? कब से हमारे साथ है?' भाभी ने बताया था कि माँदी थोड़े ही दिनों से आयी है। श्रावस्ती के पास की ही किसी बस्ती की है। माँ-बाप उसके नहीं हैं।

कहते हैं किसी गरीब ब्राह्मण की बेटी है। पता नही क्या बात हुई थी, घरवालों ने निकाल दिया था। फिर किसी नटिनी के साथ हमारे दल मे आ गयी थी। बहुत रोती थी। क्या करे बिचारी ? चौधरानी ने उसे अपने पास ही रख लिया था। यहाँ तो उसे निकलने नही दिया जा सकता। सो छिपकर ही रहती थी। हम लोग कुछ और आगे बढ जायेंगे तो उसे भी काम पर भेज दिया जायेगा। अभी तो नयी है। फिर चौधरानी का कहना है कि उसे किसी अच्छी जगह दिया जा सकता है। इस दल के साथ रहने योग्य तो है नही। सुन्दर है। नगर मे किसी गणिका के यहाँ बेच देने पर अच्छा पैसा मिल सकता है !'

श्यामरूप सन्न रह गया था। मामी इस प्रकार कह रही थी मानो यह कोई बहुत मामूली बात हो, किसी प्रकार का अधर्म या पाप इसमे है ही नही। श्यामरूप ने कहा था, 'यह तो उचित नही है मामी ! हमारे दल को ऐसा काम तो नही करना चाहिए।' मामी फिर हँसी थी, 'यह तो होता ही है देवर ! तुम्हारी कई मामियाँ ऐसे ही दल मे आयी है। बहुएँ विपदा की मारी आ जाती हैं तो उन्हे दुत्कारा तो नही जा सकता और इस दल मे कितनी खप सकती है ? कही-न-कही तो उनको ठिकाने लगाना ही पडता है। जो जरा सुन्दर होती हैं उनकी माँग होती है, नही होती, वे हमारी तरह काम-धन्धा कर पेट पालती हैं। पिछले साल ही तो एक ऐसी सुन्दर लडकी आयी थी। दो दिन मे ही ग्राहक मिल गये। इसके भी मिल जायेंगे। चौधरानी कहती है कि मथुरा या उज्जयिनी मे किसी गणिका के यहाँ इसकी अच्छी कदर होगी।'

श्यामरूप का हृदय धक्-धक् करने लगा था। चौधरी जम्मल, उसका मल्लविद्या गुरु, यह काम करता है ! उसका हृदय उस दुखिनी बाला के लिए रो उठा था। सोचने लगा था, कैसे लोगों के बीच रह रहा है ! पर फिर उसने मामी के सहज निर्विकार चेहरे को भी देखा था। कहती है, 'यह तो होता ही रहता है। विपदा की मारी वधुओं को कही-न-कही ठिकाने तो लगाना ही पड़ता है।' मानो विपदा की मारी वधुएँ कही भी बेच दी जायें, कोई दोष नही होता। यह सब क्या है ? मगर इस बालिका के पास अपने कुल-परिवार मे लौट जाने का उपाय भी तो नही है। श्यामरूप व्याकुल भाव से सोचने लगा था, चौधरी पाप कर रहा है या पुण्य ?

उसका मन बुरी तरह मथित हो उठा था। उस बालिका का भोला, निरीह, सलज्ज मुखमण्डल उसे याद आया था। हाय, हाय, यह क्या अनर्थ होने जा रहा है ? यह लडकी बेच दी जायेगी। सो भी किसी गणिका के हाथ ? श्यामरूप का क्या कोई कर्तव्य नहीं है इस मामले मे ?

देवर को जल्दी पडाव पर पहुँचने का आदेश देकर, मामी चली गयी थी और श्यामरूप के हृदय मे विचित्र हाहाकार की झंझा पैदा कर गयी थी।

परन्तु श्यामरूप ने निश्चय कर लिया था कि वह ऐसा नहीं होने देगा। वह सावधानी से चौधरानी के पास सुरक्षित बालिका पर दृष्टि रखने लगा था। नट-मण्डली आगे बढ़ती गयी। अहिच्छत्रा का रास्ता छोड़कर वह मथुरा की ओर जाने की तैयारी कर रही है, यह बात श्यामरूप से छिपी नहीं रही। बड़ी सावधानी से वह अपने मनोभावों को छिपाये रहा। सोचता रहा, कोई अनुकूल अवसर मिलने पर वह इस लड़की को अपने साथ लेकर दल छोड़ देगा। पर उस लड़की से वह मिल नहीं सका। कभी-कभी वह दिख अवश्य जाती थी। उसे देखकर श्यामरूप की आँखें झुक जाती थीं और उस बालिका की भी। उसका उदास मुख बड़ा ही मनोहर होता था। पर श्यामरूप को उससे पूछने का साहस नहीं हुआ था। जब कभी दिखती, उसके मुख की वेदना पहले से भी अधिक गहरी दिखायी देती। श्यामरूप की छाती फटने को आती। अपने पौरुष पर उसे क्रोध भी आता। क्यों नहीं वह उस दु:खिनी की मर्मव्यथा को जानने का प्रयत्न करता? एक दिन उसने दृढ़ संकल्प किया था कि उस लड़की से वह किसी-न-किसी प्रकार मिलेगा अवश्य। उस दिन साहस बटोरकर वह चौधरानी के पास गया था। चौधरानी ने बड़े स्नेह से उसका स्वागत किया था। श्यामरूप ने साहस बटोरकर पूछा था कि मांदी क्या कर रही है। चौधरानी ने सन्देह से उसकी ओर देखा था और जानना चाहा था कि मांदी से उसे क्या काम है? श्यामरूप कोई उत्तर नहीं दे सका था। चौधरानी ने उपदेश देने के स्वर में उससे कहा था, 'लड़कियों के बारे में निरर्थक प्रश्न नहीं किया करते।' श्यामरूप लज्जित होकर लौट आया था। उसके मन में अपने प्रति धिक्कार का भाव भी आया था और उसी दिन दल छोड़कर भाग जाने की इच्छा भी हुई थी। पर उस बेचारी लड़की का क्या होगा, यह सोचकर अनमना-सा रह गया था।

समय बीतता गया। मथुरा के निकट वे लोग पहुँच गये। श्यामरूप बहुत ही खिन्न रहने लगा।

प्रौढ़ा मामी एक दिन एकान्त में फिर मिल गयी। श्यामरूप को उदास देखकर उसे व्यथा हुई। बोली, 'देवर, आजकल तुम बहुत उदास रहने लगे हो, क्या बात है? श्यामरूप कुछ उत्तर नहीं दे सका। मामी ने ही बात बढ़ायी थी। 'सुना है देवर, चौधरी तुम्हारे ब्याह की बात सोच रहे हैं। जब से उन्होंने सुना है कि तुम मांदी के बारे में पूछताछ करने गये थे तब से उन्हें यही चिन्ता सता रही है। मैंने चौधरानी से साफ-साफ कह दिया है कि मेरे देवर को चाँद-सी बहू मिलनी चाहिए, हाँ! इसमें मैं उनके मन की नहीं होने दूँगी। सोचते क्या हैं वे लोग! हमारे देवर को लच्छिमी बहू नहीं मिलेगी तो ब्याह-वाह नहीं होगा। कोई भैंस-सी नटिनी गले मढ़ देंगे तो मैं नहीं सह सकूँगी। हाँ, बताये

देती हूँ।'

श्यामरूप को सुनकर आश्चर्य हुआ था कि मांदी के बारे में पूछने का यही परिणाम निकला। वह मामी की ओर चकित दृष्टि से देखता रह गया था। मामी ने व्याख्यान जारी रखा, 'मैं तो कहती थी, मांदी के साथ ही देवर का ब्याह कर दिया जाये। वह बिचारी बड़ी सुखी होती। एक दिन मैंने उसके मन की बात जान ली थी। वह तैयार थी। मैं सोच रही थी कि तुमने पूछूं, पर इस चट चौधरानी को आभास मिल गया। चटपट उसे मथुरा के दलालों के हाथ बेच दिया। पैसे के लिए वह सब कर सकती है। बेचारे चौधरी की तो कुछ चलती ही नहीं। वे तो मांदी के साथ तुम्हारे ब्याह की बात सोच ही रहे थे। कल दोनों में खूब लड़ाई हुई। मगर बिचारे करें भी तो क्या करें। मांदी तो चली गयी।'

मामी की बात से श्यामरूप को आश्चर्य हुआ था। वह सोच रहा है कि क्या ही अच्छा होता यदि मामी ने यह न बताया होता कि उसने मांदी का मन जान लिया था। निश्चय ही जिस दिन मामी से उसकी बात हुई थी वह वही दिन था जिस दिन अचानक मांदी के उदास चेहरे पर उसे देखकर एक मन्द-स्मित की रेखा उभर आयी थी और वह अपराधी की भाँति जल्दी-जल्दी भाग गयी थी। वह मन्द-मधुर हँसी श्यामरूप के कलेजे को बेध गयी थी। उस हिम्मत में मानो साभिप्राय आश्वासन था, मानो उसमें एक संदेशा था—'उस दिन की बात का बुरा न मानना, मैं प्रसन्न हूँ।' क्यों नहीं समझा तूने मूर्ख। तुझे समझना चाहिए था। मांदी क्या ढोल बजाकर अपनी स्वीकृति की सूचना देती! मुग्धाओं की यही तो रीति है। धिक् मूर्ख श्यामरूप।

मांदी उस दिन हल्की-सी सफेद साड़ी पहने थी। उसके प्रफुल्ल चंपक के समान मुख पर झीना घूंघट था। श्यामरूप को देखकर उसकी आँखें चंचल हो उठी थीं—मानहुँ सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन!

और फिर वह हँसी भी क्या थी, जैसे क्षण-भर के लिए कुहरे के घने आवरण को भेदकर ऊषा की किरणें दिख गयी हों, जैसे बादलों की परत फोड़कर चन्द्रमरीचियाँ चमक उठी हों। श्यामरूप उस मन्दस्मित को नहीं भूल सकता। वह उसे निरन्तर मथ रहा है। कब तक मथता रहेगा? हाय, विद्रुम पात्र में रखे मोती उस लाल-लाल अधरों में थिरक गयी मुसकान के सामने फीके हैं, प्रवालमणि के पुष्पाधान में हँसते हुए मल्लिका-कुसुम भी उसके सामने निष्प्रभ हैं। एक क्षण में श्यामरूप ने क्या पाया, क्या खोया!

श्यामरूप को स्मरण है कि मामी की बात सुनकर वह उस दिन एकाएक व्याकुल होकर खड़ा हो गया था—'कब चली गयी, मामी? मथुरा गयी? कहाँ गयी, कब गयी, रोते-रोते गयी? हाय मामी, तूने पहले क्यों नहीं

बताया ?'

भाभी ने सोचा भी नहीं था कि वह ऐसा व्याकुल हो उठेगा। उसने सहज भाव से ये बातें कह दी थीं। जो होना था, सो हो गया। श्यामरूप अब सार्विलक बनकर मथुरा आ गया है और अब स्वामी के कार्य से उज्जयिनी जा रहा है। विधाता ही वाम हैं !

वीरक भी दो-तीन दिनों से नहीं आया। पता नहीं क्या बात हो गयी है। आता है तो श्यामरूप का मन थोड़ा बहल जाता है।

अचानक वीरक की उल्लास-मुखर वाणी सुनायी पड़ी। श्यामरूप को उसकी वाणी में आशा की झलक मिली। उसने उल्लसित स्वर में कहा, 'संवरू भैया, मौंदी के बारे में कुछ पता लगा है।' श्यामरूप एकदम उतावला हो उठा। 'कहाँ है वह ? तुमने देखा है ? बता वीरक, मैं बहुत व्याकुल हूँ।'

वीरक ने हँसते हुए कहा, 'यहाँ तो नहीं हैं। उज्जयिनी की ओर गयी हैं। वहाँ गयी है, यह भी नहीं मालूम। पर वह मथुरा से उज्जयिनी की ओर गयी है, इतना निश्चित है। यह भी पता चला है कि जिस गिरोह के यहाँ वह बन्दी है, उसके मुखिया का नाम कपोतक है। बस भैया, आज इतना ही पता चला।' श्यामरूप ने जब खोद-खोदकर पूछना शुरू किया तो वीरक ने वह कहानी बता दी। बताने के पहले भूमिका रूप में यह भी कह दिया कि कहानी ज्यों-की-त्यों सुना रहा हूँ ताकि तुम स्वयं इसकी प्रामाणिकता का निर्णय कर सको। फिर थोड़ा हँसते हुए बोला, 'मुझे थोड़ा सन्देह है कि इस कहानी के कथा-नायक के मस्तिष्क की सभी कड़ियाँ दुरुस्त हैं या नहीं। कुछ आश्चर्य नहीं यदि कुछ कड़ियाँ एकदम हों ही नहीं। अच्छा, तो सुनो।'

श्यामरूप के मन में थोड़ी हलचल हुई, पता नहीं क्या सुनने को मिले। पर वह सावधान होकर बैठ गया और पूरा सुनने का आग्रह प्रकट किया। वीरक ने कहा, 'बात यों हुई संवरू भैया, कि कल मैं राजकीय कार्य से यथा-नियम रात-भर राजमार्ग पर पहरा देता रहा। प्रात:काल घर लौट रहा था कि रास्ते में एक अधमरा-सा आदमी सड़क पर कराहता दिख गया। ऐसा लगता था कि उसे किसी ने बुरी तरह पीटा है। उसके मुँह से मद्य की गन्ध भी आ रही थी। मैंने डाँटकर पूछा, 'कौन है' ? उसने कराहते हुए कहा, 'त्रेता ने मार डाला, पावर ने चूस लिया, हाय !'[1] मेरी समझ में नहीं आया कि कह क्या रहा है। डपटकर पूछा, 'अरे, क्या बक रहा है ?' उसी प्रकार आधी जड़ता, आधी

---

१. त्रेता हृत सर्वस्व. पावर पतनाच्च शोषित शरीरः।
नर्दित दर्शितमार्गः कटेन विनिपातितो यामि॥

—मृच्छकटिक

चेतना मे लडखडाता हुआ वह कहने लगा, 'नर्दित ने चूस लिया, कट्टा ने मूस लिया, हाय !' अब मेरी समझ मे आया। निश्चय ही जुआड़ी है। त्रेता (तीया), पावर (दूआ), नर्दित (नक्का) और कट्टा (पूरा)—इन दांवो का नाम ले रहा है।[1] समझ मे आ गया कि जुए मे हारा है और कदाचित पैसा न दे सकने मे असमर्थ होने के कारण पिट गया है। मैंने आसपास दृष्टि फिराई तो एक गन्दी पानशाला भी दिख गयी। यह भाग्यहीन यही जुआ खेलने आ गया होगा। उसे पैर से ठोकर मारते हुए मैंने डांटा, 'जुआ खेलता है पापण्ड, चल, अभी तुझे इसका मजा चखाता हूँ।' जुआडी ने आँख खोली। देखा, सामने राजा का दण्डधर खडा है। भय से वह धडफडाकर उठ खडा हुआ। कातर भाव से हाथ जोडकर बोला, 'माथुर और दुर्दरक ने बुरी तरह पीटा है, बाबूजी। केवल दस सुवर्ण के लिए इतना मारा है। उन्हे पकडिए। मैं तो परदेशी हूँ।' मुझे कुतूहल हुआ। परदेशी होने से अपराध कम हो जाता है ? जरा और डॉटकर कहा, 'परदेशी है तो जुआ क्यो खेलने आया रे ?' जुआड़ी ने डरते-डरते कहा, 'मेरे साथियो ने मुझे गाडी मे से धकेलकर बाहर कर दिया। जुआ न खेलता तो क्या करता ? यह विद्या बडी उत्तम विद्या है। जुआ तो युधिष्ठिर भी खेलते थे। मैं तो उन्हे अपना गुरु मानता हूँ। देखो न, धन भी पाया जुए से, घर और घरनी जुए से, खाया-पीया जुए से, सब-कुछ खोया जुए से।[1] मगर बडा मारा है मालिक, बडा मारा है। यहाँ के लोग बडे लठ है। श्रावस्ती मे हारनेवाले को कोई मारता नही। उनको अवश्य दण्ड मिलना चाहिए। एक का नाम माथुर है, एक का दुर्दरक। पूरे पिशाच हैं दोनो।'

'उसकी बहकी-बहकी बातो से मुझे हँसी आ गयी। बोला, 'तो तू श्रावस्ती से यहाँ जुआ खेलने आया है। तुझे तेरे साथियो ने गाडी से क्यो धकेल दिया रे युधिष्ठिर के चेले !' जुआडी बोला, 'नाराज क्यो होते हो बाबू, जुए मे जोखिम तो उठाना ही पडता है। श्रावस्ती मे जुआ खेलकर बहुत जीता था, बहुत हारा भी था, युधिष्ठिर का चेला तो हूँ ही। उन्होने द्रौपदी को दाँव पर रख दिया तो मैंने भी रदनिका को दाँव पर रख दिया। हार गया। युधिष्ठिर भी हार गये थे। किसी तरह दस सुवर्ण इकट्ठा किया कि फिर से नया घर बसाऊँ। देखा, तीन गाडियाँ लादे कपोतक अपनी कमाई पर निकला है। उसका काम ही स्त्रियों का क्रय-विक्रय है। मैंने एक लडकी को खरीदना चाहा। नाम उसका मांदी था, बेहद सुन्दर थी। बडा घाघ है वह। सौ सुवर्ण माँगता

---

१. द्रव्य लब्ध द्यूतेनैव, दारा मित्र द्यूतेनैव।
दत्त भुक्त द्यूतेनैव, सर्व नष्ट द्यूतेनैव॥

—मृच्छकटिक

था, मैं पाँच से ऊपर नहीं जा सका। सोचा, थोड़ा मोल-भाव करने से दम तक पर राजी हो जायेगा। बात करते-करते गाड़ी पर बैठ गया। लोभी तो है, मगर गप्पी भी है। बैठा लिया और गप्प हाँकता रहा। मथुरा तक आते-आते मैं दस सुवर्ण तक उठ गया था, पर वह भाग्यहीन टस-से-मस नहीं हुआ। कहता रहा, 'मथुरा में सौ सुवर्ण तो बातों-बातों में मिल जाएँगे।' पर मथुरा में इन दिनों आतंक छाया है। लोग घबराये हुए हैं, गणिकाएँ भाग रही हैं। कपोतक का टिप्पस नहीं बैठा। वह उज्जयिनी की ओर बढ़ा। उसे किसी ने बता दिया था कि उज्जयिनी में सौ-सौ सुवर्ण तो मामूली लड़कियों के मिल जाते हैं। मैंने सोचा कि यही मौका है। कह दिया कि भाँड़ी को दस सुवर्ण में दे दो नहीं तो राजा के पास व्यवहार (मुकदमा) करूँगा। उसने कुछ कहा तो नहीं, पर भाव दिखाया कि राजी हो गया है। बोला, 'नगर के बाहर चलो तो सब हो जायेगा। मैं बातों में आ गया। कुछ दूर जाने पर उसने अपने आदमियों को इशारा किया। वे झपटकर मेरी ओर बढ़े और हाथ-पैर बाँधकर किनारे फेंक दिया। स्वयं उज्जयिनी की ओर बढ़ गये। रात-भर उसी तरह पड़ा रहा। ऊपर से झमाझम पानी बरसता रहा। रात यों ही बीत गयी। सवेरे कुछ लोग उधर से निकले और मुझे बन्धन-मुक्त किया। किसी तरह फिर मथुरा आया, जुआ खेला, कमाया, फिर खेला और फिर हार गया। आज बुरी तरह पीटा भाग्यहीनों ने। भाग्य ही बेकार हो गया है मेरा। नहीं तो इन्हीं हाथों से सैंकड़ों सुवर्ण जीते-हारे हैं।' मुझे सचमुच क्रोध आ गया। डाँटकर बोला, 'भाग्यहीन, युधिष्ठिर की बराबरी करना चाहता है!' जुआड़ी ने अनुनय के साथ उत्तर दिया, 'क्रोध क्यों करते हो बाबू, क्रोध बुरी चीज है। युधिष्ठिर कभी क्रोध नहीं करते थे। लोगों ने उनका कितना-कितना अपमान किया, पर क्रोध उन्होंने नहीं किया। जुआड़ी के शास्त्र में क्रोध वर्जित है। माथुर और दुर्दरक पापी हैं, वे क्रोध करते हैं।' मुझे उसकी बातें रोचक लगीं। हँसते हुए पूछा, 'तुम तो ज्ञानी जान पड़ते हो! कहाँ सीखा इतना ज्ञान?' जुआड़ी ने तुरन्त उत्तर दिया, 'जुए से।' उसकी आँखों में चकित कर देनेवाली सरलता थी। अपने ज्ञान और ज्ञान-प्राप्ति के साधन के बारे में उसे रंचमात्र दुविधा नहीं थी। बोला, 'सौ बार सोचा कि अब नहीं खेलूँगा, पर कौड़ी की खनखनाहट सुनते ही सब भूल जाता है, जैसे ब्रह्म समाधि के समय समस्त जगत्प्रपंच भूल जाता है। मथुरा में मेरा कौन है? किसी को तो नहीं जानता। पर कल रात को इस रास्ते से जा रहा था। सोचा, पानशाला में एक चषक पान कर लूँ। पीकर उठ भी नहीं पाया था कि पीछे से आवाज आयी—मम पाठे (मेरा दाँव है)। सुनते ही उधर दौड़ गया। कत्ता का शब्द, मम पाठे की ध्वनि, आहा! ब्रह्मानन्द और होता क्या है?' मैंने फिर डाँटा, 'क्या बक-बक कर

रहा है। ब्रह्मज्ञानी बनता है।' प्रफुल्ल होकर बोला, 'ब्रह्मज्ञान ही है बाबू, संसार की नश्वरता, जगत्प्रपंच की असारता, अनिकेत-भावना, एकाग्र बुद्धि, सब मिल जाते हैं इससे। मांदी नही मिली, तो भी जैसा हूँ वैसा ही हूँ। मिल भी जाती तो क्या फर्क पडता ? और मिल ही जाती तो कै दिन मेरे साथ टिकती ? कपोतक कहता था कि वह तो किसी छबीला पण्डित पर रीझी हुई है। कुछ दिनो मे वह उसे ठीक कर लेगा, पर कौन जाने !'

सुना तो मुझे प्रसन्नता ही हुई। मांदी का कुछ पता तो चला। जुआडी को डांटते हुए बोला, 'दुर्दरक और माथुर के बारे मे व्यवहार करेगा न ? चल मेरे साथ।' जुआडी अब पूरी तरह होश मे आ गया था। इधर-उधर देखकर बोला, 'व्यवहार ? व्यवहार तो जुआडियो के शास्त्र मे निषिद्ध है। यह तो धर्म का मार्ग है, इसमे व्यवहार क्या !' कहकर वह तेजी से भागा। मैं उसे दूर तक भागते देखता रहा। पागल है क्या !'

श्यामरूप का चेहरा खिल गया, जैसे सूखते धान को पानी मिल गया हो। परमात्मा ने दया करके ही उसे उज्जयिनी जाने का अवसर दिया है। अब सन्देह कहाँ रहा ! हर्ष के साथ बोला, 'वीरक, मैं तेरा बहुत कृतज्ञ हूँ। मैं उज्जयिनी जा रहा हूँ। तू भी चलेगा वीरक ? कुछ दिन साथ-साथ रहेगे। स्वामी की गोपनीय आज्ञा है। यदि चलना चाहे तो तुझे भी साथ ले जाने की व्यवस्था करा लूंगा।'

वीरक ने उछलकर कहा, 'अवश्य चलूंगा भैया, मथुरा से जी भर गया है।' श्यामरूप ने उसे साथ ले लेने की व्यवस्था करने का वचन दिया।

दस

विदिशा से उज्जयिनी जाने का मार्ग यद्यपि ऊँचे-नीचे पहाडो के भीतर से ही जाता था तथापि वह काफी प्रशस्त था। उस पर दो रथ आसानी से चल सकते थे। दो व्यक्ति बात करते हुए उसी मार्ग पर चले जा रहे थे। इनमें से एक ठिगने कद का गोल-मटोल शरीरवाला था। उसके शरीर पर यज्ञोपवीत इस प्रकार दिखायी दे रहा था, जैसे किसी बबूल के पेड़ पर मालती की माला आडी करके डाल दी गयी हो। उसके दाहिने कन्धे पर एक पीला उत्तरीय था और कमर मे पचरंग अधोवस्त्र बँधा हुआ था। एक हाथ में एक छोटी-सी

पोटली थी जिसमें, पता नहीं, क्या-क्या बँधा था। ... फिर से
उपेक्षा करके एक लाल रंग का वनटोप दूर से ही दि
हाथ में बाँस की एक लाठी थी, जो ऊबड़-खाबड़ प
था कि रास्ता चलने में सहारा देना उसका मुख्य उद्देश
पर त्रिपुण्ड्र की धवल रेखाएँ पसीने से बुरी तरह ध
ऐसा जान पड़ता था कि अकाल-वृष्टि के कारण कोई
छोटे नालों से भिन्न हो गयी है। उसके होंठ मोटे-मोटे
छोटी-छोटी आँखें बिल्वफल में चिपकायी हुई कौड़ियों ... आकर्षक दीख रही थी। सिर घुटा हुआ था, किन्तु पीछे की ओर एक मोटी-सी चोटी भी लटक रही थी। जब चलता था तो उसके पैर नाचने-से लगते थे। उसके साथ चलनेवाला व्यक्ति बहुत ही सौम्य प्रकृति का जान पड़ता था। उसका कद लम्बा था, शरीर गौरवर्ण था और पहनावे में कौशेय उत्तरीय और कौशेय अधोवस्त्र भी थे। इस आदमी को फूलों का शौक जान पड़ता था। शिखा में, गले में और बाहुमूल में उसने मालती की माला धारण कर रखी थी। उसके हाथ में एक वेत्रयष्टि थी, जो किसी समय निश्चित ही सुरुचिपूर्ण रही होगी, परन्तु अब धूलि-धूसर हो गयी थी। उत्तरीय को उसने बड़ी रुचि के साथ सुन्दर ढंग से सजाया था। उसके पास कोई गठरी नहीं, परन्तु कन्धे पर एक ऐसा झोला लटक रहा था, जो बड़ा ही सुरुचिपूर्ण और दोनों ओर से बन्द था। निश्चय ही उसने उसमें यात्रा के सम्बल-रूप कुछ पाथेय रखे होंगे। उसका ललाट प्रशस्त था, आँखें हरिण की आँखों की तरह मनोहर थीं, कान लम्बे और नाक किंचित् शुक-तुण्ड की तरह से आगे की ओर झुकी हुई थी। यद्यपि मार्ग की क्लान्ति के कारण उसके होंठ सूख गये थे, तथापि उनकी लाल-लाल कान्ति स्पष्ट ही उद्भासित हो रही थी। सारा मुखमण्डल आतप-म्लान कमल-पुष्प के समान आह्लाद और व्यथा दोनों ही प्रकट कर रहा था। इन दोनों साथियों में बड़ा अन्तर था। एक को देखकर लगता था कि किशोर सौन्दर्य मूर्तिमान होकर चल रहा है और दूसरे को देखकर लगता था कि प्रौढ़ कुरूपता रूप धारण कर निकल पड़ी है। लेकिन आश्चर्य यह था कि प्रौढ़ कुरूपता उल्लसित होकर चल रही थी और किशोर सौन्दर्य उदास होकर चला जा रहा था। पहले व्यक्ति का नाम था माढव्य और दूसरे का चन्द्रमौलि। माढव्य विदिशा के पास ही के किसी गाँव के ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ था, परन्तु चन्द्रमौलि किसी दूर देश का निवासी जान पड़ता था। दोनों का संयोग आकस्मिक ही था, चलते-चलते साथ हो गया था। यद्यपि दोनों की अवस्था में बड़ा अन्तर था, परन्तु माढव्य ने अपनी सहज मस्ती के कारण चन्द्रमौलि को शीघ्र ही अपना बना लिया था। बड़ी सहानुभूति के साथ उसने चन्द्रमौलि की अन्तर्निहित

रहा है .भने का प्रयास किया था। चन्द्रमौलि कुछ लजीला और सकोची ; का था, परन्तु माढव्य के प्रेम और सहानुभूति से धीरे-धीरे खुलने लगा था।

माढव्य स्नेहपूर्वक पूछ रहा था, 'मित्र चन्द्रमौलि, तुम क्या अकेले इस गहन विन्ध्याटवी को पार करते आ रहे हो ?'

चन्द्रमौलि ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, 'अकेला ही आ रहा हूँ आर्य ! मार्ग मे मैने अनेक पर्वतो और नदियो को देखा है, वनचरो से मित्रता स्थापित की है, वन्य-जन्तुओ के भय से बचने के लिए मार्ग बदला है, ग्राम-वधुओ का अतिथि-सत्कार ग्रहण किया है और अनेक साधु पुरुषो का सत्सग भी प्राप्त किया है। विन्ध्याचल की ऊबड-खाबड चट्टानो पर रेवा नदी को अनेक धाराओ मे फैलकर बहते देखा है। देखकर ऐसा लगता है आर्य, जैसे किसी ने बडे हाथी को भभूत से प्रयत्नपूर्वक चीत दिया है। जगली हाथियो के दल-के-दल वहाँ के जंगलो मे विचरते देखे है और उनकी मदधारा से सिक्त रेवा नदी मे स्नान करने का अवसर पाया है। बडा ही मनोहर दृश्य है वह आर्य, जब ऊपर बादल छा जाते हैं और नीचे हरे कदम्ब के फूलों पर भौरे मँडराते हैं और कच्छ-भूमि मे कदली-पुष्प इस प्रकार प्रफुल्लित हो उठते हैं जैसे प्राण-धारा ही पाषाण-पिण्ड को भेदकर ऊपर उठ आयी हो। दूर तक केवल पुष्पो की सुगन्धि, वल्लरियो का उल्लास-नर्तन, वृक्षो की स्तब्ध समाधि पाषाण-परम्परा मे जीवन के सगीत का स्वर भरती रही है। मैंने सीधा रास्ता छोडकर पर्वत-शिखरों पर आरोहण किया है, उन्मद मयूरो का नृत्य देखा है, जगली जामुनो के पके फलो का आस्वादन करते हुए भालुओ की तृप्त मुद्रा देखी है, क्षुद्र जलाशयो मे मोथा के अकुर कुतरते हुए वन्य वराहो की विश्रब्ध आनन्ददायिनी मुद्रा का रसास्वादन किया है, रास्ते मे श्रान्त होकर रोमन्थन करते हुए स्वर्णमृगो के झुण्ड-के-झुण्ड देखे है। परन्तु आर्य माढव्य, मेरा हृदय इन सारे तृप्ति और आनन्द के दृश्यो के भीतर भी भयकर मरुभूमि की भाँति भाँय-भाँय करता रहा है। रस के उद्वेलित समुद्र मे वह पिपासाकुल बना रहा है। आर्य, कही कुछ खो गया है जिससे मेरा अन्तर्जगत् बाह्य जगत् की शोभा के साथ ताल मिलाकर नही चल रहा है।

माढव्य ने चन्द्रमौलि के चेहरे की ओर देखा। उसे बडा करुण जान पडा। चन्द्रमौलि की पीठ थपथपाते हुए उसने सहानुभूति-पगे स्वर मे कहा, 'मित्र, तुम तो कवि जान पडते हो ! मगर एक बात सुनो ! तुम मुझे आर्य न कहा करो। सारा गाँव मुझे दादा कहता है। तुम भी दादा कहो। मैं तुम्हारा दादा हूँ और तुम मेरे मित्र। देखो, मेरे माँ-बाप ने बडे प्रेम से नाम रखा था माधव शर्मा। गाँववालों ने बना दिया मघोश्रा। यही नाम राज-दरबार मे पहुँच

गया। तुम्ही बताओ, यह मैं कैसे सहन कर सकता था ! मैंने उसे फिर से संस्कृत बनाया। राजा से कहा—मधौआ नहीं माढव्य। महाराज ने हँसकर अपनी सहमति प्रकट की। तब से उज्जयिनी में मैं महापण्डित माढव्य के नाम से ही विख्यात हूँ। राज-सम्मान मिला तो गाँववालों का भी रुख बदला, दादा कहने लगे। अब मैं बेटे का भी दादा हूँ, बाप का भी दादा हूँ। बहू का भी दादा हूँ, ससुर का भी दादा हूँ। जिधर निकलता हूँ, बच्चे उधर ही 'दादा-दादा' का शोर करते हुए निकलते हैं। ससुराल गया तो सालियाँ भी दादा कहती पायी गयी। अब तो मित्र, यदि कोई मुझे दादा नही कहता तो मैं समझता हूँ कोई ऊत है ऊत ! इसलिए कहता हूँ मित्र, कि तुम मुझे दादा कहा करो, नही तो तुम भी ऊत समझे जाओगे, यद्यपि लगते तुम कवि हो।'

चन्द्रमौलि ने कहा, 'अवश्य कहूँगा। आप जब गाँव-भर के दादा हैं तो मेरे भी दादा हैं।'

माढव्य प्रसन्न हुआ, 'समझदार जान पडते हो। कभी-कभी कवि लोग भी समझदारी की बात करते हैं। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। परन्तु तुम्हें ठीक पहचाना है न मैंने ! तुम समझदार भी हो और कवि भी।'

चन्द्रमौलि ने विषाद की हँसी हँसकर कहा, 'हो सकता है दादा कि मेरे अन्तर्जगत् में कवि निवास कर रहा हो। परन्तु मैं उसे पूर्ण रूप से उपलब्ध नही कर पा रहा हूँ। मेरे चित्त में निश्चय ही कोई व्याकुल वेदना है जो मुझे मथित करती है, आन्दोलित करती है और विह्वल बनाती है। श्लोक मैंने बहुत लिखे हैं दादा ! मैंने नागरिक जीवन की विलासवती ललनाओं के शृंगार प्रसाधनों और भोगलिप्सा का चित्रण करने के उद्देश्य से ही श्लोक लिखना शुरू किया था। उस समय मैं समझता था कि विभ्रम और विलास का मादक वर्णन ही कविता है। यह समझकर मन-ही-मन मैं उत्फुल्ल होता था कि मैं शृंगार-रस का उद्गाता कवि हूँ। परन्तु उन दिनों मुझे नहीं मालूम था कि प्रकृति के कण-कण में एक अद्भुत वेदना विलसित हो रही है। मैं जब निर्झर को वेगपूर्वक नीचे की ओर दौड़ता देखता हूँ तो मन रो उठता है। क्यों इतनी व्याकुलता है इसमें ? किससे मिलने के लिए यह दुष्कर अभिसार-यात्रा शुरू हुई है ? प्रथम मेघ-वर्षण के समय जब धरती के आँचल में छिपे हुए बीज अंकुर के रूप में फट पड़ते हैं तो मेरा हृदय हाय-हाय कर उठता है। किस अज्ञात प्रियतम के लिए यह कसमसाहट है ? कौन है। वह जिसे पाने के लिए अग-जग में व्याप्त प्राण-शक्ति व्याकुल हो उठी है ? मैं व्याकुल हो उठता हूँ दादा, जब देखता हूँ कि इन पर्वतों पर फैली हुई विशाल वनराजि रूप से, रंग से, गन्ध से न जाने किस अज्ञात प्रियतम के लिए आँख बिछाये बैठी है ! क्या यह सारा आयोजन केवल बात-की-बात है ? क्या इसका कोई प्रयोजन नहीं है ? और,

दूर की बात छोड़ो, मेरे ही मुँह से जो अजस्र श्लोकधारा उमडती है उसी का क्या उद्देश्य है ? यदि वनस्थली के पुष्प-पल्लवों का सम्भार निरर्थक नही है तो इस श्लोकधारा का भी कोई उद्देश्य होना चाहिए। कौन है जो इस उफनती हुई वाग्धारा का लक्ष्य है। अब तक मैंने जो कुछ किया है वह मुझे निरुद्देश्य, निरर्थक, बन्ध्य और लक्ष्यहीन जान पडता है। मैं सचमुच व्याकुल हूँ दादा !'

माढव्य ने आश्चर्य के साथ किशोर कवि की ओर देखा। बोला, 'मित्र, मैं तुम्हारी पूरी बात नही समझ पा रहा। या तो तुम मूर्ख हो या पागल। मैंने ऐसी बातें भी नही सुनी कि श्लोक लिखने का भी कोई ऐसा लक्ष्य होता है। मै तो श्लोक लिखने का एक ही लक्ष्य जानता हूँ—'धन कमाओ, यश कमाओ, सुख से रहो। घर मे कोई अच्छी गृहिणी ले आओ, सद्गृहस्थ बनो। राजा का सम्मान पाओ, प्रजा का मनोरजन करो और बस !' देखो बन्धु ! मैं राजसभा मे रह चुका हूँ। बहुत-से कवियो को देख चुका हूँ। खुद भी कभी-कभी श्लोक बनाने का प्रयत्न कर चुका हूँ, परन्तु तुम्हारे जैसा लक्ष्य पाने के लिए व्याकुल कवि मैंने आज तक नही देखा। मेरी ब्राह्मणी एक बार ऐसी उलटी-पुलटी बातें कर रही थी। कह रही थी, 'मन बडा व्याकुल हो रहा है। रुलाई आ रही है। जी नही लगता।' मैंने पूछा, 'क्यो ?' बोली, 'पता नही।' मैं समझ गया कि इसके मस्तिष्क मे कुछ विकार आ गया है। मैंने कहा, 'देवीजी, सीधे मैके चली जाओ।' वह इस पर भी राजी नही हुई। फिर इस सोटे को देखते हो न, इसी का सहारा लिया। चुपके से चली गयी। दो महीने बाद अपने-आप लौट आयी। मैंने पूछा, 'मन व्याकुल तो नही है ?' बोली, 'ठीक है।' फिर माढव्य ठठाकर हँसा, 'मगर तुम्हे कहाँ भेजूँ मित्र ? गृहिणी की दवा तो मैके मे है। तुम्हारी कहाँ है ?'

चन्द्रमौलि बुरी तरह आहत हुआ। दीर्घ निःश्वास लेकर बोला, 'तुम तो परिहास करने लगे दादा, मगर मेरी भी दवा कही-न-कही तो होगी ही। कुछ दिन अगर तुम्हारा साथ रहा तो मैं भी ठीक होकर ही रहूँगा।' चन्द्रमौलि ने दीर्घ निःश्वास लिया।

अबकी बार माढव्य की आँखें भर आयी। बोला, 'सखे, बुरा मान गये ? मैंने तो तुम्हारा मन फेरने के लिए ही ऐसी बात कही थी। सभी जानते है कि माढव्य मूर्ख है। तुम भी जान लो। उसे समय-असमय का ज्ञान नही रहता। शायद मुझसे चूक हो गयी हो। बुरा न मानो मित्र, मुझे अपना सच्चा हितू समझो। मूर्खता करूँ तो हँस देना। मगर एक बात जानने की इच्छा हो रही है। वही तो पूछूँ ?'

चन्द्रमौलि इस बार सचमुच हँसा। बोला, 'पूछो दादा, तुम्हारी बातें

बड़ी प्यारी लगती है। क्या जानना चाहते हो?'

माढव्य ने कहा, 'जानना यह चाहता हूँ मित्र, कि तुम क्या माढव्य से भी बड़े मूर्ख हो? सारी दुनिया जानती है कि माढव्य से बड़ा मूर्ख और कोई नहीं। परन्तु माढव्य जानता है कि वह कितना चतुर है। जानते हो मित्र, सारी दुनिया अपनी कुशलता का मूल्य वसूल करती है, लेकिन माढव्य अपनी मूर्खता का दाम वसूल करता है। राजसभा में मूर्खता भी बिकती है मित्र, और माढव्य ही उसे बेचता है। वह विदूषक बनकर अपनी मूर्खता का दाम राजा से कसकर वसूलता है। अब तो तुम मानोगे न कि सबसे बड़ा मूर्ख होकर भी माढव्य चतुर है?'

चन्द्रमौलि ने विकसित नेत्रों से माढव्य को देखा और कहा, 'अवश्य, तुम चतुर हो दादा!'

माढव्य ने आँखें नचाकर कहा, 'माढव्य से बड़ा मूर्ख कौन होगा, जानते हो? पहला वह जो अपनी चतुरता का दाम न वसूल कर सके। दूसरा वह जो अपने को बिना दाम बेच आये। ठीक है न सखे?'

चन्द्रमौलि ने हँसते हुए कहा, 'इसमें क्या सन्देह है!'

माढव्य आकाश की ओर देखता हुआ बोला, 'मुझे सन्देह हो रहा है मित्र, कि तुम दूसरी श्रेणी के मूर्ख हो। कहीं बिना मोल के बिक आये हो। है न ठीक?'

चन्द्रमौलि हँसने लगा। माढव्य ने हाथ में यज्ञोपवीत लेकर सूर्य की ओर देखा और बोला, 'सूर्य देवता को साक्षी रखकर कह रहा हूँ मित्र, माढव्य ही इस मूर्खता से तुम्हारा उद्धार करेगा।'

चन्द्रमौलि इस बार जोर से हँस पड़ा। थोड़ी कृतज्ञता का भाव भी उसकी आँखों में दिखायी दिया। बोला, 'तुम्हारे-जैसा दादा पाकर मैं धन्य हुआ हूँ। मगर तुमने अपने ऊपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व ले लिया है, क्योंकि मैं कहाँ बिना मोल ही बिक आया हूँ, इसका पता भी तुम्हें ही लगाना पड़ेगा।'

माढव्य हँसने लगा। बोला, 'देखने में ही अपरिपक्व जान पड़ते हो मित्र, तुम्हें पकड़ में ले आना जरा मुश्किल मालूम पड़ता है। इस समय तो मैं तुम्हें जैसा-जैसा बताऊँ, वैसा-वैसा करते जाओ। पहला काम करना होगा उज्जयिनी में चलकर राजा की स्तुति करना, बढ़िया श्लोक बनाकर। बाकी मैं देख लूंगा। और देखो, वह जो व्याकुल वेदना वाली बात है न, उसे मेरे जैसे मूर्खों को मत बताना। उज्जयिनी में उनकी संख्या कम नहीं है।' फिर जरा रहस्यमयी मुद्रा में आँख चमकाते हुए माढव्य ने कहा, 'वहाँ कुमारी कलाकार ही भरे पड़े हैं। माढव्य अगर मूर्ख है तो राजसभा वाले बैल हैं। यह सब बातें उसी से कहना जो तुम्हारा समानधर्मा हो। सबसे कहते फिरोगे तो पागल करार दिये जाओगे। मेरा प्रस्ताव स्वीकार है न मित्र?'

चन्द्रमौलि ने अनुतप्त स्वर मे उत्तर दिया, 'राज-स्तुति !'

माढव्य ने हँसते हुए कहा, 'हाँ, राज-स्तुति ।'

चन्द्रमौलि बोला, 'यही नही होता दादा, और सब कर लेता हूँ ।'

माढव्य ने चन्द्रमौलि की पीठ को फिर थपथपाया, 'राज-स्तुति का मतलब तुम नही जानते । वह केवल शब्द होता है, अर्थ नही । अर्थ मन मे होता है और शब्द जबान पर । लेकिन राज-स्तुति एक ऐसा विषय है जिसका अर्थ कही नही रहता । वह मूर्खो द्वारा, मूर्खो का किया हुआ, मूर्खतापूर्ण कथनमात्र है । लेकिन तुम उसकी भी चिन्ता छोडो । देवता की स्तुति तो कर सकते हो ?'

चन्द्रमौलि असमजस मे पड गया । बोला, 'देवता की स्तुति राजा की स्तुति कैसे हो जायेगी ?'

'हो जायेगी, किसी देवता का यश वर्णन करके अन्त मे कह दो, 'पातुवः' (तुम्हारी रक्षा करें) । नही समझे ? अच्छा, तुम श्लोक बना देना, मैं ठीक कर दूँगा । जानते हो मित्र, माढव्य मे सब गुण है, सिर्फ श्लोक बनाने नही आते । बडे-बडे नुस्खे रटे, लेकिन श्लोक नही बना । मगर छोडो भी इस बात को । यह बताओ कि कहाँ के रहनेवाले हो ?'

चन्द्रमौलि जैसे धूल से भरे आँगन से निकलकर बाहर आ गया हो । अब माढव्य उससे बेढगे प्रश्न नही करेगा, इस आशा से उसे आश्वस्ति हुई । बोला, 'मैं हिमालय के मध्यवर्ती यक्ष-भूमि का निवासी हूँ ।'

माढव्य को आश्चर्य हुआ, 'रहनेवाले हिमालय के हो और आ रहे हो विन्ध्याचल पार करके !'

चन्द्रमौलि ने दीर्घ नि श्वास लिया, 'हाँ दादा, पैर मे सनीचर बँधा हुआ है । देश-देश की खाक छानता आ रहा हूँ ।'

माढव्य ने एक बार फिर चन्द्रमौलि को सिर से पैर तक देखा और दोनो चुपचाप आगे बढने लगे ।

माढव्य ने एकाएक पीछे मुडकर देखा कि चन्द्रमौलि कुछ चिन्तित मुद्रा मे धीरे-धीरे चल रहा है । उसने निकट आकर प्रेमपूर्वक उसकी पीठ थपथपायी, 'थक गये हो क्या बन्धु ?'

चन्द्रमौलि ने धीरे से उत्तर दिया, 'नही तो !'

माढव्य के मन मे न जाने क्यो उस तरुण यात्री के प्रति विचित्र-सा वत्सल भाव उमड आया । बोला, 'तुम नही, मैं थका हूँ । आओ, थोडा इस पेड की छाया के नीचे विश्राम कर लें ।' और उसे खीचता हुआ पेड़ की छाया के नीचे ले गया और बिना किसी भूमिका के धप्प से बैठ गया । चन्द्रमौलि को समझने मे देर नही लगी कि माढव्य उसी के विश्राम के लिए स्वय थकने का बहाना

कर रहा है। उसके मन मे इस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। कैसा दयार्द्र हृदय है।

किंचित् विश्राम करने के बाद माढव्य ने उससे प्रश्न किया, 'मैंने सुना है मित्र, कि हिमालय में अप्सराओं का निवास है। तुमने तो देखा होगा? तुम्हारे साथ मेरी मित्रता हुई है तो किसी दिन मैं भी चलकर अप्सराओं को देखना चाहता हूँ।'

चन्द्रमौलि का चेहरा प्रफुल्ल हो उठा। बोला, 'हिमालय सचमुच ही अप्सराओं का निवास है दादा! आपने जिन अप्सराओं की चर्चा सुनी है, उनकी तो मैं नही जानता, लेकिन मेरे मन मे नारी-सौन्दर्य का जो उत्तम रूप है, वह मैं हिमालय मे सर्वत्र देखता हूँ।'

माढव्य बोला, 'यह तो तुम अपने मन की बात बता रहे हो। उतना तो मैं भी जानता हूँ। यही मेरी ब्राह्मणी से कुछ उन्नीस-बीस होती होगी। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि तुम्हारे-जैसा कवि मेरी ब्राह्मणी को देखकर तिलोत्तमा ही समझेगा। मैं तो देवयोनि की अप्सराओं की बात पूछ रहा हूँ। मेरे घर के पास एक बडी-सी झाडी है। बचपन से ही सुनता आ रहा था कि उसमे कोई चुडैल रहती है। जानते हो, मेरे किशोर मित्र, एक दिन चाँदनी रात मे मैंने सचमुच उसे देख लिया। अहा, क्या रूप था उसका! तुम देखते तो जरूर कोई श्लोक बनाते। मगर मैं सोचने लगा कि लोग उसे चुडैल क्यो कहते हैं? अप्सरा क्यों नही कहते? अप्सराएँ भी तो अपना रूप आप बना लेती हैं और जब चाहती हैं तो गुम हो जाती है! अब बताओ, तुमने कैसी अप्सरा देखी?'

चन्द्रमौलि हँसा। बोला, 'दादा, तुमने जैसी अप्सरा की बात सुनी है वैसी अप्सरा तो मैंने नही देखी, लेकिन हिमालय की भूमि सचमुच ऐसी है कि वह देव-वधुओं की क्रीडा-स्थली कही जा सके। सुन्दरियो के शृंगार मे काम आनेवाली गैरिक रंग की चट्टाने दूर-दूर तक फैली हुई है। जब कभी उनके ऊपर बादलो का संचार होता है तो ऐसा जान पडता है कि असमय मे ही सन्ध्या-काल आ उपस्थित हुआ। क्योंकि बादलो के कोर पर उन धातुमयी शिलाओं की रंगीनी छा जाती है और सारा पर्वत अकाल सन्ध्या की शोभा से जगमगा जाता है। सुन्दरियाँ जिन रंगो से अनेक प्रकार का प्रसाधन करती हैं और प्रेम-प्लुत अवस्था मे जिनकी स्याही बनाकर प्रणय-गीत लिखा करती हैं, वे धातुरस वहाँ प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होते है और प्रेम-पत्र लिखने के लिए तो वहाँ भोज-पत्रों के घने जंगल भरे पड़े हैं। मेरे गाँव से कुछ और ऊँचाई पर किन्नर देश है, जहाँ की सुन्दरियो का वंशीवादन लोक-विश्रुत है। ये वंशियाँ एक विशेष प्रकार के कीचक नामक बाँस से बनती हैं। इनका घना जंगल दूर-दूर तक फैला हुआ है। देवदारु और शाल वृक्षो की कतारें सचमुच मनमोहक होती हैं। मदमत्त

गजराज अपनी खुजली मिटाने के लिए जब शाल वृक्षों पर घिस्सा देते हैं तो वनस्थली आमोद-मग्न हो जाती है। हिमालय सब प्रकार से अभिराम है दादा! तुम्हारे मन मे जिस प्रकार की अप्सराओ की कल्पना है, उसे मैं ठीक-ठीक पकड नही पा रहा हूँ। परन्तु हिमालय के गाँव-गाँव मे ऐसी सुन्दरियाँ तुम्हें मिलेंगी, जिनका भोलापन और सौन्दर्य कचन मे जडी हुई मणि की तरह तुम्हे अभिभूत कर देगा। मणियो की जन्मभूमि, गजमुक्ताओ का आश्रय-स्थान, वर्ण-गन्ध-सम्पन्न पुष्पो की मादक शोभा, निर्भरों का अनवरत सगीत, विविध भाँति के पक्षियो का कल-कूजन, बाल-व्यजन धारण करनेवाली चमरी गायो की नयनाभिराम शोभा, कृष्णसार मृगो की उन्मद मण्डलियाँ, सब हिमालय को देवभूमि बना देती है।' चन्द्रमौलि अभिभूत की भाँति बोल रहा था।

माढव्य ने बीच मे ही टोका, 'सुना है मित्र कि हिमालय मे हिम बहुत होता है। वडी सर्दी पडती है। जब मैं सुनता हूँ कि महीनो वहाँ बर्फ पडी रहती है तो मेरी ठठरी काँप उठती है।'

चन्द्रमौलि जरा उदास होकर कहने लगा, 'सो तो है दादा! लेकिन एक बार यदि तुम योजनो तक फैले हुए रुई के फाहों की तरह सजे हुए हिमाच्छादित शिखरो को देखो तो सर्दी की बात भूल जाओगे। ऐसा जान पडेगा कि ताण्डव-मत्त धूर्जटि का अट्टहास ही जमकर हिम बन गया है। शत-शत योजनों तक इस पुजीभूत अट्टहास के समान हिम-परम्परा बढती गयी है। हिमालय पृथ्वी का मानदण्ड है दादा। ऐसा जान पडता है कि विधाता ने निखिल ब्रह्माण्ड को तौलने के लिए ही एक विशाल तराजू बनाया है, जिसमे विशाल हिमालय मानदण्ड है और पूर्व और पश्चिम के महान् समुद्र उस तराजू के पलडे है। एक बार तुम मेरे साथ मेरा गाँव देखने अवश्य चलो दादा!'

माढव्य बोला, 'खतरा है मित्र, एक तो यदि मैं अप्सराओ का देश देखने का सकल्प करूँ तो मेरी ब्राह्मणी अखण्ड उपवास का व्रत लेगी और अगर इसकी उपेक्षा करके वहाँ पहुँच भी जाऊँ तो फिर इधर लौटने की कोई आशा नही। शिव से पार्षद अवश्य मुझे अपने गणो मे भरती कर लेंगे। मेरा मानदण्ड मेरी ब्राह्मणी है। अप्सराओ की कल्पना करता हूँ तो उससे जौ-भर इधर-उधर की बात सोचता हूँ, और शिव के गणो की बात सोचता हूँ तो अपने-आपसे जौ-भर इधर-उधर समझता हूँ। ना बाबा, मेरा हिमालय और कैलास तो घर मे ही पडा है। अब चलो, तुम्हे उज्जयिनी दिखाऊँ। यहाँ भी तुम्हे अप्सराएँ मिलेंगी और वे सारी बातें किसी-न-किसी रूप मे मिल जायेंगी, जिनके कारण तुम इतने *उच्छ्वसित हो रहे हो। मेरा मन कहता है कि एक बार अगर तुम उज्जयिनी* देखोगे तो यक्षपुरी को भूल जाओगे।'

चन्द्रमौलि के चेहरे पर प्रसन्नता की रेखा दिखायी पडी, 'दादा, तुम जहाँ

रहोगे वहाँ स्वर्ग अपने-आप आ जायेगा। मैं तुम्हारे साथ अवश्य उज्जयिनी चलूँगा।' फिर दोनों उठ खड़े हुए और उज्जयिनी की ओर चलने लगे।

चन्द्रमौलि ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, "उज्जयिनी! जानते हो दादा, उज्जयिनी देखने के उद्देश्य से ही निकला हूँ। इस नाम में ही एक जादू है। उज्जयिनी अर्थात् ऊपर की ओर जीतने की अभिलाषा रखनेवाली। मेरे हृदय में जब अकारण भयंकर ज्वाला धधकने लगती है तो मैं अनुभव करता हूँ कि इस विराट विश्व में व्याप्त शिव और शक्ति की जो अनादि लीला चल रही है, वह उससे अलग नहीं होनी चाहिए। वही विराट् लीला तो, दादा, कण-कण में, रूप-रूप में स्फुरित हो रही है। उज्जयिनी ऊर्ध्वगामिनी अभिसार-यात्रा का प्रतीक है। पुराण-मुनियों ने बताया है कि शिव भी देवी का हृदय जय करने के लिए उतने ही उत्सुक और चंचल हैं जितना देवी शिव का। जिस प्रकार नीचे से ऊपर की ओर अभिसार-यात्रा की चेष्टा चल रही है, उसी प्रकार ऊपर से नीचे की ओर भी अवतरण हो रहा है। शिव ने किसी समय पार्वती के प्रेम का प्रत्याख्यान किया था। उस समय देवी ने तपस्या की आयोजना की थी। उनकी आँखों के सामने रूप का आकर्षण व्यर्थ और असफल हो गया था। योगी के नेत्र से निकली हुई आग ने मन में उत्पन्न होनेवाले चंचल विकारों के देवता को जलाकर भस्म कर दिया था। भग्नमनोरथा पार्वती ने तपस्या के द्वारा शिव का हृदय जीता था। हिमालय का कण-कण हिमालय-पुत्री के प्रत्याख्यानजन्य दुःख से आर्द्र है और तपस्याजन्य विजय से उल्लसित है। किन्तु उज्जयिनी की कहानी कुछ और है। पुराकाल में ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके त्रिपुर नामक महाअसुर ऐसा दुर्दान्त हो गया था कि समस्त यज्ञ-याग बन्द हो गये थे और देवता लोग त्राहि-त्राहि कर उठे थे। केवल पार्वती में ऐसा तपोबल था जो इस महाविनाशकारी शक्ति का ध्वंस कर सकता था। देवता और शास्त्रों की रक्षा के लिए महाकाल वन में स्वयं महादेव को इस बार तपस्या करनी पड़ी। उद्देश्य था देवी को प्रसन्न करना। शिव ने विकट तपस्या की, तब जाकर देवी कहीं प्रसन्न हो सकीं। उन्हीं की कृपा का फल था कि शिव को पाशुपत-अस्त्र प्राप्त हुआ। इस अस्त्र को पाकर ही शिव त्रिपुर को तीन खण्डों में विध्वस्त करने में समर्थ हुए। इस विजय के कारण ही इस पुरी का नाम उज्जयिनी पड़ा। पुराण-मुनियों की बतायी हुई इस कथा में बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है दादा! जब देवी की तपस्या से शिव प्रसन्न हुए थे, तो मनोजन्मा देवता को भस्म करने में समर्थ हुए थे। परन्तु, जब शिव की तपस्या से देवी प्रसन्न हुईं, तो शिव को वह शक्ति प्राप्त हुई, जिससे उन्होंने तीन लोक के कण्टक महा-असुर का नाश कर दिया। शिव की प्रसन्नता से जो मनोजन्मा देवता नष्ट हुआ वह शरीरहीन होकर आज भी अग-जग में व्याप्त है। परन्तु देवी की प्रसन्नता

से जो असुर नष्ट हुआ सो सदा के लिए नष्ट हो गया। इसीलिए उज्जयिनी ऊपर की ओर जीतनेवाली पुरी है। मैं जब सोचता हूँ दादा कि शिव रूप में द्विधा विभाजित शिव और शक्ति, पुरुष और नारी के रूप में विद्यमान हैं और जब देखता हूँ कि नारी को प्रसन्न करने के लिए पुरुष की तपस्या कहीं दिखायी ही नहीं देती तो मेरा मन व्याकुल हो जाता है। देवता और शास्त्रों को नष्ट करनेवाले विचार कैसे नष्ट होंगे यदि पुरुष ने तपस्या द्वारा नारी को प्रसन्न करने का यत्न नहीं किया? पुरुष उद्धत पौरुषबल पर भरोसा करता है और मोहन-आनन्ददायिनी शोभा और चारुता का तिरस्कार करता है। वह उसे भोग की सामग्री समझता है, मनोरंजन का साधन मानता है, अपना आश्रित समझकर उसके साथ अवांछनीय व्यवहार करता है। नतीजा जो होना चाहिए वह हो रहा है। धरती मदमत्त पौरुष से कसमसा उठी है, उद्धत सैन्य-शक्ति के पदचाप से शेषनाग का फणमण्डल व्याकुल हो उठा है। सर्वत्र केवल मार-काट, लूट-पाट, नोच-खसोट का ववण्डर आसमान को रजोलिप्त बना रहा है। प्रकाश की कहीं क्षीण रेखा भी नहीं दिखायी दे रही है। सारा आर्यावर्त विध्वंस की ओर बढ़ा जा रहा है। मैं उज्जयिनी में महाकाल के दरबार में आवेदन करने जा रहा हूँ कि 'देवता, बहुत हो चुका। यह उद्दाम ताण्डव क्षण-भर के लिए रोको। एक बार फिर ऐसा प्रयत्न करो कि शोभा और शालीनता की महिमा लोगों में प्रतिष्ठित हो। देवी का स्मयमान दक्षिण मुख संसार की रक्षा करे। *बड़ी वेदना लेकर उज्जयिनी जा रहा हूँ दादा!'*

माढव्य ने आँखें फाड़कर चन्द्रमौलि की ओर देखा, बोला, 'पण्डित जान पड़ते हो मित्र। देखने में तो दुधमुँहे लग रहे हो, लेकिन बातें पते की कर रहे हो। संसार-भर की अशान्ति का तो मुझे पता नहीं, लेकिन इतना निश्चित जानता हूँ कि मेरी ब्राह्मणी जब तक प्रसन्न रहती है तब तक घर में अशान्ति बनी रहती है। मगर मेरे नौजवान मित्र, तुम कुछ बहकी-बहकी बातें कर रहे हो। मुझे तो इतना ही मालूम है कि विदिशा नगरी के तीक्ष्ण-धार करवाल अगर न होते तो यवन नरपतियों ने धरती को श्मशान बना दिया होता। दुर्दान्त यवन-वाहिनी को अगर रोका जा सका है, तो विदिशा में बननेवाले शस्त्रों के बल पर ही। तुम समझते हो कि यवनराज आन्तलिकित ने अपने राजदूत हेलियोडोरस को गरुडध्वज के साथ प्रचुर उपहार भेजकर राजाधिराज भागभद्र के दरबार में भेजा था, वह क्या यों ही मित्रता की बात थी? विदिशा का यह गरुडध्वज प्रचण्ड पौरुष का *निदर्शक है। इस विदिशा के लोहे का ही प्रताप था कि शुङ्ग-*सेनाओं की विराट् जय-ध्वनि ने सिन्धु-तट के उस पार की म्लेछवाहिनी को चकित-कम्पित कर डाला था। आज विदिशा की यह जो दुर्दशा देख रहे हो वह उस पौरुष के अभाव के कारण ही है। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम महाकाल

देवता के दरबार में जाकर पौरुष-बल को क्षीण करने की प्रार्थना क्यों करोगे ? तुम्हारी बात मेरी समझ में ठीक-ठीक नहीं आ रही। क्या तुम नारी-सेना का संगठन करना चाहते हो ?'

चन्द्रमौलि हँसने लगा, "नहीं दादा, तुमने मेरी बात पूरी तरह समझी नहीं। शायद मैं समझा भी नहीं सकूँगा। मैं इस देश या उस देश की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं सम्पूर्ण संसार की बात कर रहा हूँ। मैं हूणों के या यवनों के उद्धत पौरुष-दर्प से ही चिन्तित हूँ। मैं उनको मनुष्य की कोटि में गिनने को भी प्रस्तुत नहीं हूँ। भुक्खड़ भेड़ियों की तरह निरीह प्रजा पर टूट पड़नेवाले मनुष्य बन ही नहीं पाये हैं। मेरा हृदय इसलिए व्याकुल है कि मैं एकांगी पौरुष-दर्प को परास्त करने का उपाय उसी प्रकार के एकांगी पौरुष-दर्प को नहीं मान पाता। शोभा और शालीनता की उपेक्षा करनेवाले मनुष्य नहीं, असुर हैं। शोभा और शालीनता का जो आदर करते हैं और उसकी रक्षा करने में जो असमर्थ हैं, वे कापुरुष हैं। मैं आदर का भाव भी चाहता हूँ और रक्षा करने की सामर्थ्य भी। महाकाल से मेरी प्रार्थना यह होगी कि देवता, जो शोभा और शालीनता का सम्मान करना नहीं जानते उन्हें सम्मान करने की बुद्धि दो, और जो सम्मान करना जानते हैं उन्हें उसकी रक्षा करने की शक्ति दो। मैं न बर्बरता को बर्दाश्त कर पाता हूँ, न कापुरुषता को। यही तो व्याकुलता है, दादा ! उज्जयिनी की कहानी में यही तो बताया गया है कि देवी की प्रसन्नता से शिव को असुर-विध्वंस करने में समर्थ शस्त्र प्राप्त हुआ। शोभा और शालीनता के प्रसाद रूप में प्राप्त अस्त्र ही अजेय होता है, दादा !'

चन्द्रमौलि का सहज कोमल स्वर आवेश में कुछ उत्तेजित हो गया था। उसके मुखमण्डल पर भी लाल कान्ति झलक उठी थी। माढव्य फिर कुछ परिहास की बात करने जा रहा था। इसी समय दूर से भागते हुए उसी तरफ बढ़नेवाले किसी व्यक्ति की पदचाप सुनायी पड़ी। थोड़ी ही देर में वह व्यक्ति भागता हुआ माढव्य और चन्द्रमौलि के निकट आ पहुँचा। निस्सन्देह वह बहुत परेशान नजर आ रहा था। शायद देर तक वह भागता चला आ रहा था। चन्द्रमौलि और माढव्य को देखकर वह ठिठक गया। माढव्य ने कुछ आगे बढ़कर उससे पूछा—'क्या बात है ?'

उस आदमी ने भयत्रस्त दृष्टि से पीछे की ओर देखा और बोला, 'अगर तुम लोग उज्जयिनी जा रहे हो तो लौटो। वहाँ बड़ी विध्वंस-लीला चल रही है। मुझे पकड़ने के लिए सशस्त्र दण्डधर इधर भी बढ़े आ रहे हैं। वे देवताओं के विध्वंसक हैं, ब्राह्मणों के शत्रु हैं, प्रजा के उत्पीड़क हैं। जल्दी किसी छिपने लायक स्थान की ओर भागो, नहीं तो वे तुम्हें खण्ड-खण्ड करके कुत्तों और सियारों को खिला देंगे।'

भय के मारे माढव्य चीख उठा। चन्द्रमौलि के ललाट पर भी चिन्ता की रेखाएँ उभरी। परन्तु वह विचलित नही हुआ। उस मनुष्य ने कहा, 'सब बताता हूँ। पहले छिपने की जगह खोजो। एक बार मेरे हाथ में कोई शस्त्र आ जाने दो और फिर मैं अकेले पूरी सेना को देख लूँगा। इन म्लेच्छो ने मुझे किसी प्रकार का शस्त्र लेने का अवसर ही नही दिया। मैं प्रतिशोध लूँगा। मैं जीवित रहना चाहता हूँ। इस समय भागो। कही छिपकर मेरे और अपने प्राणों की रक्षा करो।' उस मनुष्य की विशाल भुजाएँ, कपाट के समान वक्षस्थल, कसी हुई पेशियाँ, और लम्बे गठे हुए शरीर को देखकर विश्वास होता था कि वह जो कुछ कह रहा था वह दर्पोक्ति मात्र नही था। चन्द्रमौलि और माढव्य उसके साथ पार्वत्य मार्ग की ओर भागने लगे।

ग्यारह

आर्यक विजयी सेनापति के रूप मे विख्यात हो चुका था। पर जिस समय उसकी कीर्ति बहुत ऊँचे शिखर पर पहुँच रही थी उसी समय उसका दुष्ट ग्रह भी उच्चस्थान पर आ गया था। वह विरक्त होकर सेनापति का काम छोडकर भाग खडा हुआ। बहुत दिनो तक वह गहन विन्ध्याटवी मे निरुद्देश्य भटकता रहा। उसे अपने ऊपर ही क्रोध था। क्यो वह ऐसा शिथिल चरित्र का व्यक्ति है? क्यो वह कही जम नही पा रहा है? कीर्ति की भूख उसकी मिटी नही है, पर वह ठीक समझ नही रहा है कि कीर्ति क्या चीज है? उसने सुना है कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि लोग अनन्त काल तक यश गाते रहे। यह शरीर नाशवान है, यह रुग्ण होता है, वृद्ध होता है, मर जाता है। पर एक यश का शरीर है—यशःकाय। उसमे न रोग होता है, न जरा आती है, न मृत्यु का आक्रमण होता है। यह 'यशःकाय' मनुष्य के पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। आर्यक उसी यशःकाय को प्राप्त करने को व्याकुल है। परन्तु पा नही रहा है। विन्ध्याटवी उसे सोचने की प्रेरणा देती है। पत्थरो की छाती भेदकर निकले हुए विराट् वृक्ष उसे जीवनी-शक्ति की महिमा बताते है। कहते हैं, पुरुष वह है जो *पाषाण को छेदकर, आँधी की उत्पाटिनी शक्ति की उपेक्षा कर, पाताल से अपना भोग्य खीच लाता है।* आर्यक *पाषाण-भेद के लिए व्याकुल* है, आँधी की उपेक्षा करने को कृत-सकल्प है। पर कही कोई बाधा है जो उसे पथभ्रष्ट कर देती है। क्या है वह?

एक शिलाखण्ड पर बैठा हुआ वह सोच रहा है। सोचता जा रहा है, पर कोई परिणाम नहीं निकल रहा है। वह थककर चूर हो गया है पर शारीरिक क्लान्ति ने मानसिक उत्तेजना की वृद्धि ही की है। कहीं एक बड़ी कमजोरी उसके चरित्र में है जो उसे भागने को बाध्य करती है। उत्साह उसमें कम नहीं है, दीन-दुखियों की सहायता के लिए प्राण-दान का उसका संकल्प ज्यों-का-त्यों बना हुआ है, सम्मुख युद्ध में अकेले ही सहस्रों को ललकारने की उसकी क्षमता में रत्तमात्र कमी नहीं आयी है, अनुगतों के लिए सर्वस्व उलीचकर दे देने की उसकी उदारता आंशिक रूप से भी शिथिल नहीं हुई है, स्वामी के लिए सब कुछ निछावर कर देने की उसकी प्रतिज्ञा में कहीं भी त्रुटि नहीं आयी है, फिर भी उसे भागना पड़ा है। उसका चित्त अनुतप्त है। उसमें कहीं भयकर अपराध का भाव है। क्यों? क्यों ऐसा हुआ? उसका शील कहीं-न-कहीं म्लान हो गया है। वह जानता है, पर जानकर भी अनजान बना फिरता है। वह सब जानता है, लेकिन ठीक समझ नहीं पा रहा है। जानना वस्तुस्थिति के प्रत्यक्षीकरण का नाम है, समझना वस्तुस्थिति की कारण-परम्परा की अवगति का नाम है। आर्यक जानता है, समझ नहीं रहा है।

हलद्वीप के भर राजा रुद्रसेन के विरुद्ध उसी ने सम्राट् को उकसाया था। पाटलिपुत्र के सिंहासन पर आसीन होते ही उन्होंने आर्यक का आह्वान किया। बोले, 'आर्यक, तुम मेरे केलि-सखा हो। हलद्वीप के रुद्रसेन का मान-मर्दन करने का काम मैं तुम्हें ही सौंपना चाहता हूँ।' आर्यक ने उस आज्ञा को उल्लास के साथ स्वीकार किया था। परन्तु चलते समय उसका मन बैठ गया था। वहाँ मृणालमंजरी से भेंट होगी। क्या मुँह लेकर उसके सामने वह उपस्थित होगा? मृणाल को उसने क्यों छोड़ दिया? उसका क्या अपराध था? पर आर्यक का भी क्या अपराध था? चन्द्रा उसके गले पड़ गयी। उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए वह भागा। पर चन्द्रा उसका पीछा करती गंगा पार भी आ पहुँची। उसने घृणा से मुँह फेर लिया। लेकिन चन्द्रा है कि हटने का नाम ही नहीं लेती। आर्यक को भय था कि लोग क्या सोचेंगे। वह और भी पूरब की ओर भागा। चन्द्रा ने पीछा नहीं छोड़ा। उसे कायर पुरुष कहती, सेवा में जुट जाती और आर्यक पानी-पानी हो जाता। चन्द्रा उद्वेल प्रेम है। प्रेम, जो सीमा नहीं जानता, उचित-अनुचित का विवेक नहीं रखता, जो सदा उफनता ही रहता है। चन्द्रा का प्रेम एक भयंकर बुभुक्षा है, एक सतत अतृप्त पिपासा। उसे समझ में नहीं आता कि इसमें दोष क्या है, क्यों आर्यक भागा-भागा फिर रहा है। क्या वह मृणाल और आर्यक दोनों को समान रूप से प्रेम नहीं कर सकती? आर्यक को वह कायर और डरपोक कहती है। परन्तु आर्यक उसका कृतज्ञ भी है। उसी के कारण वह सम्राट् समुद्रगुप्त के निकट पहुँच सका। हलद्वीप-विजय का अव-

सर भी उसी के इशारे पर प्राप्त हुआ। पता नहीं क्यों, सम्राट् चन्द्रा के किसी इंगित की उपेक्षा नहीं कर सकते।

आर्यक ने हलद्वीप पर गुप्त-सम्राट् की ध्वजा फहरायी। महाराज समुद्रगुप्त 'उत्खात-प्रतिरोपण' की नीति में विश्वास करते थे। जिसे उखाड़ा उसी को फिर से रोप दिया। समुद्रगुप्त की यह नीति ही भावी गुप्त-साम्राज्य की सफलता की नींव थी। जिस राजा का राज्य जीता उसे ही अपना अधीनस्थ राजा बना दिया। यही 'उत्खात-प्रतिरोपण' कहा जाता था। परन्तु हलद्वीप में उन्होंने ऐसा नहीं किया। उखाड़ा रुद्रसेन को, सिंहासन पर आरोपित किया गोपाल आर्यक को। आर्यक हलद्वीप का अधिपति बन गया। आर्यक को कैसा-कैसा लगा! उत्सव हुए, यज्ञ-याग हुए, पर अभिमानिनी मृणालमंजरी नहीं आयी। आर्यक को ही जाना पड़ा। कैसा देखा उसने अपनी प्राणप्रिया मृणालमंजरी को! मुँह पीला पड़ गया था, केश लटियाकर एक वेणी बन गये थे, हिरण की आँखों से प्रतिद्वन्द्विता करनेवाली आँखें भीतर धँस गयी थीं। वह एक मलिन श्वेत साड़ी पहने हुए थी। पास में दो-ढाई वर्ष का बड़ा ही कमनीय-कान्ति बालक था। हलद्वीप के अधिपति आर्यक ने जाते ही मृणाल के चरणों पर सिर रख दिया, 'देवि, प्रिये, क्षमा करो इस भण्ड को!' मृणाल घबड़ाकर खड़ी हो गयी। आँखों से अविरल अश्रु-धारा बह चली। वाणी रुद्ध हो गयी। वह ताकती रही, जड़ की भाँति, स्तब्ध की भाँति। बच्चा भय और कुतूहल से आर्यक की ओर देखता रहा। उसने अपनी माँ से तुतलाकर पूछा, 'माँ, यह कौन है?' मृणाल की संज्ञा लौट आयी। बोली, 'अपने भाग्य से पूछ बेटा!' आर्यक रो पड़ा। मृणाल ने आर्यक को उठाया। आज आर्यक के मन में मृणाल की वही स्नेहार्द्र मूर्ति बार-बार उठ रही है। हाय-हाय, मैंने कैसी देवी को कष्ट दिया? और क्यों? कुछ बात भी तो हो! लोग क्या सोचेंगे? यह एक चिन्ता ही उसे बुरी तरह ध्वस्त कर देती है। लोग क्या सोचेंगे, लोग क्यों सोचेंगे!

शिलापट्ट को कसकर पकड़ लिया आर्यक ने, मानो गिरकर लुढ़क जाने का भय हो। वह व्यथित भाव से कराह उठा, क्या उसका सारा जीवन इस एक ही प्रश्न की चट्टान पर टूट-टूटकर बिखर जायेगा? हलद्वीप से फिर दूसरे युद्ध-क्षेत्र पर जाने में थोड़ा कष्ट हुआ। मृणाल को वह इतनी जल्दी छोड़कर नहीं जाना चाहता था। क्षमा मिलने पर वह थोड़ा प्रगल्भ भी हुआ था। लेकिन मृणाल ने उसे रुकने नहीं दिया। उसके कारण आर्यक के यश में रंचमात्र भी मलिनता आये, यह उसे बिलकुल स्वीकार नहीं था। वह चाहती थी कि चन्द्रा भी वहीं आकर उसके साथ रहे। पर आर्यक चन्द्रा को भूल जाना चाहता था। महाराजाधिराज के बलाधिकृत के रूप में उसने विद्रोही और

विरोधी राजाओं का दमन किया। उसे मथुरा तक विजय करने की आज्ञा थी। प्रत्येक युद्ध में वह सिंह की भाँति लड़ा। समुद्रगुप्त की विजय-पताका का अभियान कहीं नहीं रुका। इसी बीच एकाएक उसे सम्राट् का रोष-भरा पत्र मिला। सम्राट् को पता चल गया था कि चन्द्रा उसकी विवाहिता वधू नहीं है। पता देनेवाली स्वयं चन्द्रा थी। सम्राट् ने लिखा था कि उनके बलाधिकृत को इस प्रकार के पाप-कार्य में लिप्त जानने पर प्रजा में असन्तोष होगा और राजशक्ति को धक्का पहुँचेगा। सम्राट् ने आर्यक की वीरता से सन्तोष प्रकट किया था, पर उसके असदाचरण से रोष प्रकट किया। वही प्रश्न सम्राट् के सामने था—'लोग क्या सोचेंगे?' आर्यक की आँखों से लुत्ती निकलने लगी। सेना के लोग भी आज नहीं तो कल इस बात को अवश्य जान लेंगे। वे क्या सोचेंगे? जो लोग श्रद्धा से आज जय-जयकार करते हैं वे कल घृणा से मुँह फेर लेंगे। वे क्या सोचेंगे? कौन उसकी बात सुनेगा, कौन उस पर विश्वास करेगा? कल हर सैनिक के मन में घृणा की लहर उठेगी। उनका सेनानायक परस्त्री-लम्पट है, वह अश्रद्धेय है, अपावन है, कुल-धर्म से पतित है। रात-भर उसे नींद नहीं आयी। नहीं, अब उसका पत्ता कट गया, अब उसका यश म्लान हो गया। अब वह सेना का संचालन नहीं कर सकेगा। उसे भाग जाना चाहिए। लोग क्या सोचेंगे? वह सचमुच भाग खड़ा हुआ। अपने सबसे विश्वस्त सहयोगी भटार्क को बुलाकर उसने कहा, 'तात, मुझे आवश्यक कार्य से कुछ दिन बाहर रहना होगा। तब तक तुम सेना का संचालन करते रहो।' और चुपचाप वहाँ से खिसक गया था। अपनी परमप्रिय तलवार के सिवा उसने कुछ भी साथ नहीं लिया। पूरब की ओर जाने में भय था, इसलिए वह पश्चिम की ओर बढ़ता गया। उसे स्वयं नहीं मालूम कि वह कहाँ जा रहा है। केवल चलता ही चला है, दिङ्मूढ़ की भाँति। नदियाँ मिली हैं, पार कर गया है; पर्वत मिले हैं, लाँघ गया है; जंगल आये हैं, रौंद गया है। कहाँ, क्यों? लोग क्या सोचेंगे? यह एक प्रश्न उसके सारे किये-कराये को ध्वस्त कर देता है। उसकी सारी वीरता यहीं टकराकर चूर-चूर हो जाती है। उसके लिए लोकापवाद दुर्भेद्य चट्टान बन जाता है।

शिला-पट्ट पर आर्यक बैठा था, फिर लेट गया। दूर तक गिरिशृंखला की ऊबड़-खाबड़ अधित्यका, वनपनसों के झाड़, खदिर की वनस्थली, महुओं की उच्चशीर्ष वृक्षावली। दूर तक कोई मनुष्य नहीं दिखायी देता। निश्चय ही इसमें हिंस्र जन्तु भी हैं। दिखायी नहीं दे रहे हैं, पर कभी भी दिखायी दे जा सकते हैं। आर्यक का मन व्याकुल है। रह-रहकर उसका चित्त अपने असफल जीवन को कोसता है। कोई सहारा नहीं। पिता स्वर्ग सिधार गये। गुरु देवरात जो घर से निकले सो लुप्त ही हो गये। माई श्यामरूप का कहीं अता-पता नहीं।

पर मृणालमंजरी है : सेवा और सतीत्व की मर्यादा, तपस्या की स्रोतस्विनी, साहस की उत्सभूमि, पर मृणाल को उसने कितना कष्ट दिया ! क्या कारण था ? यही कि लोग क्या सोचेंगे। उसके चित्त मे मृणालमंजरी की दीप्त किन्तु शुष्क कान्ति उभर आयी। 'अपराधी हूँ देवि, तुम क्षमा कर सकती हो, मैं कैसे क्षमा करूँ अपने इस दुर्बल चरित्र को ?' लोग क्या सोचेंगे !

आर्यक क्लान्त था, शरीर और मन दोनों से अवसन्न। कहाँ आ गया है वह ! वह बुरी तरह उद्विग्न था। बिजली की तरह उसके मन मे एक बात चमक उठी। यही क्यों सोचा जाये कि लोग क्या सोचेंगे। यह भी तो मन में प्रश्न उठना चाहिए कि मृणाल क्या सोचेगी ? मृणाल ने जब भरे नयनों से उसे युद्ध के अभियान के लिए विदा किया था तो क्या उसने सोचा था कि उसका पति भाग खड़ा होगा ? जब वह सुनेगी कि यह भाग्यहीन आर्यक भाग गया है तो वह क्या सोचेगी ? उत्तर की कल्पना करके वह चीख उठा। हाय, दुनिया-भर की बात सोचनेवाला आर्यक कभी अपनी सती-साध्वी पत्नी की बात सोचता ही नही ! धिक् !

ऐसा जान पड़ा कि आर्यक की छाती पर आरा चल रहा है। क्या अज्ञ अभाजन लोगों की बात का ही मूल्य है ? मृणाल जैसी शीलवती साध्वी की बात कभी उसके मन मे क्यों नहीं उठी ? क्या मृणाल के प्रति उसका प्रेम झूठा है ? हाय, आर्यक का यह सहारा भी क्या मृग-मरीचिका है ? वह फिर एक बार मृणाल की मानसी मूर्ति के चरणों पर गिर पड़ा। उसे शान्ति मिली। ऐसा लगा कि मृणाल उसके सिर पर हाथ फेर रही है। कह रही है, घबराते क्यों हो, मैं जो हूँ। वह शिलापट्ट पर लुढ़क गया और सो गया। स्वप्न मे उसने देखा कि मृणाल उसका सिर अपनी गोद में लेकर बैठी है। कह रही है, 'लोक का भय मिथ्या है। कर्तव्य का निर्णय बाहर देखकर नहीं किया जाता। तुम्हारा निर्णायक तुम्हारे भीतर है। जो भी तुम्हारे पास है, उसी से उसकी पूजा करो। कमजोरियाँ जब उसे समर्पित कर दी जाती हैं तो शक्ति बन जाती है। सदा बाहर ही न देखो, कुछ भीतर भी देखो। लोक-भय झूठी प्रवंचना है, आत्म-भय दुर्भेद्य कवच है। मेरे प्यारे, अपने को देखो। मेरे लहुरावीर, तुम्हें अन्याय से लोहा लेना है। कौन क्या कहता है, कहने दो। तुम्हारा अन्तर्यामी क्या कहता है, वही मुख्य वस्तु है। घबराने की क्या बात है ! मैं मृणाल हूँ, सिंहवाहिनी की उपासिका, महिषमर्दिनी की अभिलाषिणी ! भूल गये मेरे प्यारे, मेरे लहुरावीर, मेरे मानस-सिंह ! अभी महिष-मर्दन का काम बाकी है।' आर्यक गाढ़ निद्रा मे स्वप्न देख रहा है। वह अमृत-रस की वर्षा मे भीग रहा है।

अचानक उसे लगा कि कोई जगा रहा है। कह रहा है, '*उठ जा रे बटोही। छिप जा कहीं। वे मेरा पीछा करते आ रहे हैं, तुझे भी मार डालेंगे।*

वे जंगली भैंसों के समान निर्घृण हैं। उठ, छिप जा कहीं। मैं अकेला हूँ। निःशस्त्र हूँ। भाग रहा हूँ। प्राण-भय से नहीं, प्रतिशोध की इच्छा से। लौटूंगा, एक-एक को यमराज के द्वार पहुँचाऊँगा। एक-एक को रगड़ूँगा। आज अकेला हूँ, निःशस्त्र हूँ। उठ, छिप जा कहीं।'

आर्यक को होश आया। यह कौन है जो जंगली भैंसों की बात कर रहा है? भैंसा—महिष। अन्तिम बात कहते-कहते वह आदमी दूर निकल गया था। आर्यक ने देखा, एक महा बलवान् मनुष्य तेजी से भागता जा रहा है। जब तक वह उससे कुछ पूछे तब तक वह और दूर निकल गया। आर्यक को लगा कि स्वर कुछ पहचाना हुआ है। थोड़ी देर तक वह सोचता रहा कि यह परिचित स्वर किसका हो सकता है। अचानक याद आ गया। यह तो श्यामरूप का स्वर था। एकदम श्यामरूप का। निस्सन्देह यह श्यामरूप की आवाज़ थी। वह चिल्ला पड़ा, 'भैया, मैं आर्यक हूँ! तुम अकेले नहीं हो! भैया, भैया, रुको!' स्वर आकाश में दूर तक फैलकर रह गया। जहाँ पहुँचना चाहिए था वहाँ नहीं पहुँचा। आर्यक दौड़ा—'भैया, भैया!' पर वह आदमी अदृश्य ही हो गया।

आर्यक पीछे-पीछे दौड़ता गया, चिल्लाता गया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। जो मिलता है वही दूर निकल जाता है। पता नहीं, वह किधर चला गया। हाय, आर्यक का भाग्य ही ऐसा है। वह हताश होकर बैठ गया। उसका मन कहता है, निश्चय ही यह और कोई नहीं, श्यामरूप था। कौन लोग उसके पीछे पड़े हैं? निःसन्देह वे लोग भयंकर रक्त-पिपासु होंगे। आ ही रहे होंगे। कहीं छिपने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें देखकर ही उनके बल-पौरुष का अनुमान लगाया जा सकता है। श्यामरूप कह गया है, वह लौटेगा। शस्त्र उसके पास नहीं है। आर्यक के पास है। उसने अपनी तलवार की ओर देखा। फिर आश्वस्त होकर छिपने का स्थान ढूंढने लगा। पगडण्डी पकड़कर कुछ दूर चला। छिपने लायक स्थान नहीं दिखा। फिर लौटकर पुरानी जगह पर पहुँचने का प्रयास किया। पर कदाचित् वह दूसरी ओर था। वह और पीछे की ओर मुड़ा। एक सघन झाड़ी की ओर बढ़ा। कदाचित् वहाँ छिपने का स्थान मिल जाये। वहाँ से चारों ओर देखा जा सकता है और शत्रु के बलाबल का अन्दाजा भी लगाया जा सकता है। वह झाड़ी के पास पहुँचा। उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि एक मोटा-सा ठिगना आदमी गाढ़ी नींद में सो रहा है। निश्चय ही यह भी भागता-भागता आया है। छिपने का स्थान पाकर एकदम सो ही गया है। हाथ की टेढ़ी लकड़ी हाथ में ही है। एक लाल-सा कनटोप सिर पर ही पड़ा हुआ है, जिसके अन्दर से उसकी मोटी चुटिया निकल आयी है। कन्धे पर की पोटली कन्धे से ही जुड़ी हुई है, पर तकिये का काम दे रही है। अब भी

वह निकट आया, पानी रखकर बोला, 'बन्धु, मैं अपने अकारण हितू के बारे में कुछ अधिक जानने का प्रसाद पा सकता हूँ ?' आर्यक ने मन्दस्मित के साथ कहा, 'कुछ विशेष बात नहीं है बन्धु, सैनिक हूँ, भटकता हुआ आ गया हूँ। पूर्व का निवासी हूँ। अभी एक व्यक्ति भागा जा रहा था। उससे मालूम हुआ कि कुछ दुर्वृत्त लोग इधर उत्पात करते हुए बढ़े आ रहे हैं। मुझे कहीं छिप जाने की सलाह देकर वह भाग खड़ा हुआ। मैं इधर छिपने का स्थान ढूँढते-ढूँढते आ पहुँचा हूँ। यहाँ इन महानुभाव को सोया देखकर रुक गया। अब मैं आप लोगों के बारे में जानकर सुखी हूँगा।' चन्द्रमौलि ने प्रसन्नता प्रकट की। बोला, 'बन्धु, हम दोनों भी भय से ही इधर आ छिपे हैं। ये सोये हुए सज्जन पण्डित माढव्य शर्मा हैं, सहृदय, गुणज्ञ, अकारण बन्धु। मैं चन्द्रमौलि हिमालय की यक्ष-भूमि के निकट का निवासी हूँ। दक्षिणापथ की यात्रा करके लौट रहा हूँ। हम दोनों रास्ते में मिल गये हैं। हमें भी उस भागते हुए मनुष्य ने सावधान किया और हम लोग इधर आ गये हैं। हमारा अहोभाग्य है कि हमें अनायास एक वीर पुरुष की मैत्री प्राप्त हो गयी है।'

दोनों में शीघ्र ही मित्रता हो गयी। चन्द्रमौलि कुछ क्षणों तक इस नये मित्र की ओर ध्यान से देखता रहा। उसे गोपाल आर्यक के मुख में एक अपूर्व तेज दिखायी दिया। विनीत भाव से उसने पूछा, 'बन्धु, तुमने अपना ठीक परिचय नहीं दिया। मुझे लग रहा है कि मैं एक महान् पुरुष-सिंह के निकट बैठा हूँ। यदि अनुचित न समझो तो कुछ अधिक बताने की कृपा करो।' आर्यक ने और भी नम्रता दिखायी, 'नहीं मित्र, मैं साधारण किसान-सन्तान हूँ। सैनिक हूँ। परन्तु मन मेरा क्षुब्ध है। मैं कुछ खिन्न हूँ कि अपने को अपने से ही छिपाना चाहता हूँ। तुम मुझे गोपाल समझो। यही मेरा कुल, यही मेरा परिचय।'

चन्द्रमौलि यह तो समझ गया कि गोपाल अपने को छिपाना चाहता है। पर उसे अधिक जानने का प्रयोजन भी क्या है, यह सोचकर बोला, 'बन्धु गोपाल, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी जानने का आग्रह नहीं करूँगा, पर मेरी इच्छा इतनी अवश्य है कि यह बता दूँ कि मैं तुम्हें निस्सन्देह नर-केसरी मान चुका हूँ। तुम जो भी हो, मेरी श्रद्धा और सद्भावना के विषय हो। मन मेरा भी क्षुब्ध है। मैं भी समाधान खोजने का प्रयासी हूँ। परन्तु इतना ही जान पाया हूँ कि अपने अन्तर्यामी ही एकमात्र समाधानकर्ता हैं। मेरे निजी मानस की विक्षुब्धता केवल मेरे ही मानस में अँटती है। संसार में सर्वत्र उसके किसी-न-किसी अंश का साम्य मिलता है। हर पेड़-पौधा कुछ-न-कुछ उसका आभास दे जाता है, पर बन्धु, एकत्र वे साम्य अगर कहीं ठीक-ठीक विद्यमान हैं तो केवल मेरे मन में ही हैं। उसे बाहर की रूप-सामग्री के माध्यम से किसी

प्रकार पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। शब्द उसे क्या प्रकट करेंगे। मैं समझता हूँ मित्र, तुम्हारी व्यथा भी केवल तुम्हारी ही है। तुम मेरे आग्रह पर कुछ कथा भी दो तो मैं पूरा समझ नहीं सकूँगा। अच्छा है, इसे अपने तक सीमित रखना ही अच्छा है।' गोपाल आर्यक को सुनकर विस्मय हुआ। तो क्या दूसरे लोग उसकी बात कभी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते? वह चुप भाव से चन्द्रमौलि की ओर देखता रहा। उसे लगा कि वह असाधारण व्यक्ति से बात कर रहा है। बोला, 'लगता है मित्र, कि तुम ठीक कह रहे हो, पर मैं पूरी तरह तुम्हारी बात समझ नहीं पा रहा हूँ।'

आर्यक को याद आया कि वह आदमी मृदु-मन्द स्वर में जो श्लोक गा रहा था उसमें कदाचित् इसी प्रकार का कोई भाव था। उसे इस व्यक्ति के प्रति एक सहानुभूति-भरी संवेदना भी अनुभूत हुई। बोला, 'बन्धु, तुम अभी कुछ गाते जा रहे थे। अन्तिम पंक्ति बड़ी करुण थी। क्या उस श्लोक में ऐसी ही कोई बात थी जो तुम अभी समझा रहे थे? अगर कुछ अन्यथा न समझो तो मैं पूरा सुनने का अभिलाषी हूँ।' फिर कुछ व्याकुल विनय के स्वर में बोला, 'सुना दो न मित्र, मुझे बहुत अच्छी लगी थी वह पंक्ति!' चन्द्रमौलि ने हँसते हुए कहा, 'काव्य-रसिक जान पड़ते हो मित्र! वह एक श्लोक था। मैंने एक दिन यों ही बना लिया था। सुनना चाहते हो तो सुनाये देता हूँ।' चन्द्रमौलि सहज भाव से बिना किसी भूमिका के धीरे-धीरे सुनाने लगा, इस बात का पूरा ध्यान रखकर कि निद्रित साहचर्य जाग न जायें। बड़ा ही करुण मधुर स्वर था। श्लोक इस प्रकार था—

> श्यामास्वंग चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
> वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
> उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
> हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति॥

(हाय प्रिये, श्यामा लताओं में तुम्हारे अंगों का सादृश्य मिल जाता है, चकित हरिणियों की दृष्टि में तुम्हारा दृष्टिपात दिख जाता है, मोरों के बर्हभार में तुम्हारे केशों की शोभा देखने को मिल जाती है, पहाड़ी नदियों की पतली धार की लहरों में तुम्हारे भ्रूविलास की चारुता देखने को मिल जाती है, पर हाय कोपन स्वभावे, तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर की शोभा का सादृश्य एक जगह तो कहीं भी नहीं मिलता!)

वाणी इतनी आर्द्र थी कि आर्यक की आँखें छलक आयीं। चन्द्रमौलि ने ठीक ही समझाना चाहा था कि तुम्हारी वेदना के किसी-न-किसी अंश का सादृश्य मिल जाता है, पर पूरा कहीं नहीं मिलेगा। कैसी गाढ़ वेदना होगी यह! कितना विचित्र! आर्यक को लगा कि यह तो उसके अपने ही हृदय की

मर्म-व्यथा है। थोड़ी देर वह चुप बैठा रहा। फिर उल्लसित स्वर में बोला, 'समझ रहा हूँ मित्र, पर पूरा नहीं समझ पा रहा हूँ।' चन्द्रमौलि के चेहरे पर स्निग्ध प्रसन्नता दिखायी पड़ी, 'पूरी तरह कौन समझ सकता है मित्र, यही तो रोना है!' और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। आर्यक अवाक्!

आर्यक एकटक चन्द्रमौलि की ओर देखता रहा। उसे बहुत दिन पहले की बात याद आ गयी। गुरु देवरात उसे समझा रहे थे कि वक्ता की इच्छा से ही शब्द का अर्थ निश्चित नहीं होता। कुछ मीमांसक दार्शनिक ऐसा कह गये हैं कि शब्द की एक ही शक्ति होती है, वक्ता का तात्पर्य। शब्द का अन्तिम और निश्चित अर्थ वही होता है जो कहनेवाले के मन में होता है। और किसी शक्ति को मानना आवश्यक नहीं है। पर आचार्य देवरात ने समझाना चाहा था कि ऐसी बात नहीं है। शब्द का अर्थ केवल वक्ता की इच्छा का विषय नहीं है, श्रोता और सन्दर्भ भी उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ते-घटाते रहते हैं। आर्यक की समझ में वह बात नहीं आयी थी। आज चन्द्रमौलि भी कुछ उसी प्रकार की बात कह रहा है। क्या जो कुछ वह सुनता है वह कहनेवाले तात्पर्य से कुछ भिन्न हुआ करता है? चन्द्रमौलि ने ही पुनः अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा, 'मित्र गोपाल, मैं यह अनुभव करता हूँ कि मैं जब कभी अपनी व्याकुलता छन्दों की भाषा में अभिव्यक्त करना चाहता हूँ तो सुननेवाले उसका ठीक अर्थ नहीं समझते। कुछ-न-कुछ वह बदलकर ही उन तक पहुँचती है। मेरे हृदय के साथ जिसका एकतान हो गया रहेगा वही मेरी बात पूरी तरह समझ पायेगा। ऐसे समान हृदयवाले कम ही होते हैं, बहुत कम। मैं ऐसे लोगों को ही 'सहृदय' कहता हूँ। हृदय के अतल गाम्भीर्य की वेदना कदाचित् ऐसे सहृदय ही समझ सकते हैं। अधिकतर लोग कुछ-का-कुछ समझ लेते हैं। इसीलिए कुछ कहने और करने के विषय में और लोग क्या सोचते हैं, इसकी परवाह मैं कभी नहीं करता। लोकापवाद झूठ पर आधारित झूठा प्रपंच है। लोक-स्तुति उससे बड़ा धोखा है।'

आर्यक को धक्का लगा। वह अभी तक लोगों के सोचने को ही महत्त्व देता आया है और यह सुकुमार युवा कहता है कि वह लोगों के सोचने की परवाह नहीं करता। सहृदय जो समझे वही समझना ठीक है, बाकी क्या समझते हैं, वह उपेक्ष्य है। आर्यक के मन में अनायास मृणालमंजरी आ उपस्थित हुई। मृणाल ही एकमात्र सहृदय है। उसने दीर्घ निःश्वास लिया, 'ठीक कहते हो बन्धु, कोई विरला ही हृदय की वेदना समझ पाता है। सब लोग सहृदय नहीं होते।'

अब तक माढव्य शर्मा की नींद कदाचित् टूट चुकी थी। कदाचित् वे अन्तिम वाक्यों को सुन चुके थे। उठकर एकाएक बैठ गये। बोल उठे, 'सखे चन्द्रमौलि,

ये कौन हैं?' चन्द्रमौलि ने प्रसन्न भाव से कहा, 'हमारे मित्र गोपाल हैं, दादा! महावीर हैं, पुरुष-सिंह!' माढव्य ने प्रसन्न दृष्टि से आर्यक को देखा। बहुत उल्लसित स्वर में बोले, 'स्वागत है वीरवर, *क्या पूछ रहे हो इस कवि किशोर* से? यह पता नहीं तुम्हें क्या उलटा-सीधा समझा दे। सुनो, माढव्य भी मानता है कि पूरी बात कोई नहीं समझता। सहृदय भी थोड़े ही होते हैं। जो होते हैं वे भी थोड़ी देर के लिए ही। सहृदयता एक बीमारी का नाम है। एक बार मुझे भी इस बीमारी का शिकार बनना पड़ा था। पर उस दिन से अपना हृदय इस चुटिया में रख दिया है। अब निश्चिन्त हूँ। जान पड़ता है इस किशोर कवि *को तरह तुम्हें भी सहृदयता का रोग है। मैं दोनों को ठीक कर दूँगा। चिन्ता की* बात नहीं है। अच्छे चिकित्सक के पास आ गये हो।'

आर्यक के चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी। चन्द्रमौलि भी हँस पड़ा। बोला, 'दादा, तुम्हें यह बीमारी कैसे लग गयी थी?' माढव्य गम्भीर मुद्रा में थोड़ी देर चुपचाप दिगन्त की ओर देखते रहे। फिर परम ज्ञानी की भाँति बोले, 'सुनो, एक बार मेरी ब्राह्मणी मान करके अपने मैके चली गयी। मुझे सहृदयता का *दौरा आया। तुम ठीक कहते हो कि जो सहृदय होता है वही किसी बात का* या काम का अर्थ पूरी तरह समझ पाता है। मैं पूरी तरह समझ गया कि वह क्या चाहती है। दौड़ा-दौड़ा ससुराल पहुँचा। उद्देश्य था उसकी इच्छा के अनुसार उसकी खुशामद करूँ। यही वह चाहती थी। थका-माँदा श्वसुर-गृह में प्रवेश किया ही था कि छोटी साली मिल गयी। हर नाटक के पहले कुछ पूर्वाभ्यास की आवश्यकता होती है। मैं जिस नाटक के अभिनय के लिए आया था *उसके लिए भी थोड़ा पूर्वाभ्यास आवश्यक था। सहृदयता का दौरा पूरे चढ़ाव पर* था ही। सो मैंने उसी की स्तुति शुरू कर दी, 'हे पूर्णचन्द्रनिभानने, अयि दुग्धमुग्ध मधुरच्छविशालिनि, अहो शरच्चन्द्रमरीचिकोमले, इत्यादि। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। चलते-चलते सिर पर एक चपत भी लगाती गयी, ठीक इसी शिखामूल में। मैंने कहा, 'अयि आताम्रबालतरुपल्लवकोमलांगुले, बड़ी चोट लगी।' साली देवी ने और भी खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, 'कहाँ?' मैंने कहा, 'हृदय *में!' वह अपनी सखियों को बुलाकर कहने लगी, 'देखो, देखो, जीजाजी का* हृदय उनकी चुटिया में है।' अब तुम लोग ही बताओ कि मैंने जो कहा वह कहाँ समझा गया! मैंने तो मित्रो, उसी दिन से अपना हृदय चुटिया से बाँध लिया है। मैं मानता हूँ कि जो कहा जाता है, वह पूरी तरह से समझा नहीं *जाता।'*

आर्यक और चन्द्रमौलि हँसते-हँसते दोहरे हो गये। एक साथ ही बोल पड़े, *'ठीक कहते हो दादा!'*

बारह

मृणालमंजरी अकेली पड गयी। आर्यक के अचानक भाग जाने के समाचार से हलद्वीप और आसपास के क्षेत्रों में किम्वदन्तियों की बाढ़ आ गयी। जिसने सुना उसी ने कुछ जोड-घटाकर अपने मन के अनुकूल बनाकर उसका प्रचार किया। मृणालमंजरी सुनती और सिर धुनती। उसे आर्यक की वीरता और साहस पर अखण्ड विश्वास था, पर कुछ समझ नही पा रही थी कि आर्यक ने सेना छोडी तो क्यो छोडी। उसे लग रहा था कि अगर वह साथ होती तो आर्यक को बल मिलता। वह ऐसा कुछ न करता। लेकिन वह अब क्या करे। निराश होकर वह गोवर्धनधारी बालकृष्ण की मूर्ति की ओर देखती और कातर भाव से प्रार्थना करती, प्रभो, आर्यक को किसी प्रकार मिला दो ताकि मैं उसके अभाव को भर सकूँ। वह अन्य कार्यों से मन हटाकर गोवर्धनधारी की सेवा मे लग गयी। छोटा शिशु शोभन कुछ भी नही समझ पा रहा था। वह भी माँ के साथ-साथ गोवर्धनधारी की सेवा के आयोजन मे लगा रहता। गाँव मे भी उदासी छायी हुई थी। मृणाल के प्रति गहरी सहानुभूति सारे गाँव मे थी। ग्राम-तरुणियाँ मृणाल के मनोरंजन के जो भी उपाय करती उनका प्रभाव उलटा ही पडता। विचारी समझ ही नही पा रही थी कि कैसे मृणाल को सान्त्वना दी जाये। मृणाल ने कई बार उनसे कहा था कि मुझे क्यो प्रसन्न करना चाहती हो। प्रसन्न करो इन गोवर्धनधारी को जिनकी प्रसन्नता मुझे भी प्रसन्नता दे सकती है और तुम लोगो को भी।

कार्तिकी पूर्णिमा को ग्रामतरुणियों ने गोवर्धन-धारण की लीला करने का निश्चय किया। वह लीला बड़ी ही मनोहर थी। गोवर्धनधारी कृष्ण एक हाथ मे वंशी लिये हुए और दूसरे हाथ की उँगली ऊपर किये खडे थे। तरुणियाँ उनके चारो ओर उल्लसित होकर नाच रही थी। प्राय: सारा नृत्य अशिक्षित चरणन्यास से बोझिल हो उठा था। वर्षा-नृत्य में नूपुरो की झीनी ध्वनि उत्पन्न करने का उनका प्रयास बहुत सफल नही सिद्ध हो रहा था। मृणाल पहले तो हँसती रही, पर एकाएक उसमे भावावेश आया और उन्मत्त भाव से थिरक उठी। तरुणियों का उत्साह सौ-गुना बढ गया, पर वे मृणाल के इशारे पर रुक गयी। फिर तो मृणाल की मेखला, नूपुर और कंकणवलय के युगपत् क्वणन की ऐसी समा बँधी कि मूसलाधार वर्षा का पूरा ध्वनिचित्र उपस्थित हो गया। मृणाल देर तक भाव-मदिर नर्तन से अभिभूत रही। फिर वह गोवर्धनधारी के पास आकर ठिठक गयी। उसके इशारे पर तरुणियाँ फिर नाचने लगी। मृणाल श्रान्त होकर गोवर्धनधारी के पास त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हो गयी। अशिक्षित

मनुष्य जो कुछ देखता है वह किसी-न-किसी वास्तविक परिस्थिति का ही रूप होता है। परन्तु उनकी बात मेरी समझ में कभी नहीं आयी। बहुत-से लोग जागते में भी सपना देखते हैं। वे काल्पनिक जगत् का निर्माण करके अपने-आपको भुलावा देते रहते हैं। यह भी एक प्रकार का सपना ही है। मैं भी किसी समय आर्यक के बारे में बड़े-बड़े सपने देखा करता था, परन्तु सब झूठ है बिटिया। जागे का सपना। सोये के सपने से भी कहीं अधिक झूठ है।' सुमेर काका के सदा प्रसन्न चेहरे पर विषाद की काली रेखा उभर आयी। मृणाल ने टोका, 'तुम्हारे सपने कभी झूठ नहीं हो सकते, काका ! तुम्हारा चित्त सात्विक है, निष्कलुष है, मन हृदय पवित्र है। तुम्हारे मन में उनके सम्बन्ध में जो सपने थे वे सब केवल आशीर्वाद ही नहीं, वरदान थे। वे सत्य होकर रहेंगे, पवित्र मन की कल्पना अवश्य साकार होती है। मेरी बात गाँठ बाँध लो काका। तुमने जो कुछ भी सोचा था, सब ठीक होगा। मुझे केवल यही लगता है कि मैंने जो सपने में देखा है, वह सत्य है। वे अन्धकार में रास्ता खो बैठे हैं। मृणाल से वे दीपक के प्रकाश की आशा रखते हैं। कुछ ऐसा उपाय बताओ काका, कि मैं उनके पास उज्ज्वल दीपशिखा ले जा सकूँ।'

सुमेर काका के सामने सचमुच ही प्रकाश की ज्योति उद्भासित हो उठी। उनकी फक्कड़ाना मस्ती में ज्वार आया, बोले, 'मेरे पास तो पहुँच गयी रे ! तूने तो, बेटी, अपूर्व दीपशिखा प्रज्वलित कर दी। तू नहीं जानती तेरा सुमेर काका हार गया था। देवरात से कभी नहीं हारा, लेकिन आर्यक से हार गया था।'

मृणाल को अच्छा लगा। थोड़ा उत्फुल होकर बोली, 'काका, मैं अकेली पड़ी-पड़ी ऊब गयी हूँ। मेरा निश्चित विश्वास है कि वे कहीं भटक गये हैं। मैं क्या उनकी कुछ भी सहायता करने योग्य नहीं हूँ ? पिताजी ने एक बार मुझसे कहा था कि देख मैना, जैसे हर व्यक्ति का एक मन होता है वैसे ही एक समष्टि चित्त भी है। व्यक्तियों का मन, समष्टि चित्त का एक अंग ही होता है। अगर ऐसा न होता तो प्रत्येक मनुष्य लाल रंग को लाल ही रंग नहीं देखता, किसी को कष्ट में देखकर उद्विग्न न होता, किसी को प्रसन्न देखकर आह्लादित नहीं होता। पूरे समष्टि-मानव का एक चित्त है। उसी का अंग होने के कारण व्यक्ति-चित्त दूसरों के समान ही सुख-दुख का अनुभव करता है। बहुत दूर से भी कोई व्यक्ति यदि किसी अन्य व्यक्ति को गाढ़ अनुभूति के साथ स्मरण करे, लगन के साथ पुकारे या अपने दुःख को संवेदित करना चाहे तो समष्टि-चित्त के माध्यम से वह उस व्यक्ति-विशेष के चित्त में उसी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है। उस समय मैं उनकी बात समझ नहीं सकी थी। लेकिन अब मेरी प्रत्येक शिरा उस बात के स्मरण-मात्र से झनझना

उठती है। मुझे लगता है कि वे कहीं निविड़ व्यथा से व्याकुल होकर मुझे पुकार रहे हैं। कह रहे हैं, 'मैना, मैं व्याकुल हूँ। मैं रास्ता नहीं पा रहा हूँ। मैं भटक गया हूँ। जल्दी आओ और मुझे प्रकाश की ज्योति दो।' मैं सुन रही हूँ काका, उनके क्लान्त-श्रान्त मुख को प्रत्यक्ष-सा देख रही हूँ। वे मुझे पुकार रहे हैं। हाय काका, वे कितने व्याकुल हैं ! परन्तु मैं यह नहीं सोच पा रही हूँ कि उन तक कैसे पहुँच जाऊँ ?'

सुमेर काका की आँखें आश्चर्य से कान तक फैल गयी। बोले, 'बेटी, मैं तो अट्ट गँवार हूँ। मुझे इन बातों का न तो कोई ज्ञान है, न अनुभव। लेकिन एक दिन मैंने भी एक विचित्र सपना देखा। तेरे यहाँ आने से पहले मैं बहुत उदास हो गया था। मुझे एक बार तेरी याद आती थी, एक बार देवरात की और एक बार आर्यक की; तेरे ऊपर दया आती थी, देवरात पर तरस आता था और आर्यक पर क्रोध आता था। मुझे बार-बार देवरात का सौम्य-शान्त मुखमण्डल याद आ जाता था। मैं सोचता था—देवरात ने इस लड़के से कैसी-कैसी आशाएँ लगा रखी होंगी और यह इतना निकम्मा निकला ! फिर मैं सोचता था—बेचारे देवरात को अगर पता चले कि उनकी प्यारी बेटी कितनी असहाय हो गयी है, तो उनकी क्या दशा होगी ? मैं जाग्रत अवस्था में ही यह अनुभव कर रहा था कि देवरात कह रहे हैं—'सुमेर भाई, जल्दी करो, जाओ बिटिया के पास। वह अकेली पड़ी है।' सोचते-सोचते मुझे नींद आ गयी। उस समय मैंने सपना देखा। सपना क्या था बेटा, लगता था जैसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। ऐसा लगता था कि आसमान में हल्के-हल्के बादल छाये हुए हैं। उस पार से कोई मीठे स्वर में पुकार रहा है—'आर्य देवरात, तुम मुझे भी भूल गये ? मेरी बिटिया को भी भूल गये ?' चारों ओर देखता हूँ, कहीं कोई नहीं है। केवल यह करुण-कातर स्वर रह-रहकर सुनायी दे रहा है। मैं इधर-उधर देखने लगा। देवरात हैं किधर ? फिर क्षण-भर में दृश्य बदल गया। ऐसा लगा कि दूर दिगन्त के कोने से देवरात की ही कण्ठध्वनि सुनायी पड़ी। कोई दिखायी नहीं दे रहा था, पर यह वाणी देवरात की ही थी। ठीक जैसी वह बोलते थे, वैसी ही। मुझे उस मोहक गम्भीर वाणी को पहचानने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं हुआ। साफ सुनायी दिया, 'भूलना चाहता हूँ देवि, पर भूल नहीं पा रहा हूँ। स्वयं को भूलना चाहता हूँ, तुम्हें भूल जाना चाहता हूँ, मृणाल को भूल जाना चाहता हूँ, पर भूल नहीं पा रहा हूँ। भूल सकता तो मुक्त हो जाता।' बादलों से आवाज आयी, 'भूलो मत आर्य, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। मुझे शान्ति मिले, तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी। अपनी शान्ति की मृगमरीचिका में मेरी शान्ति की बलि न दो। जब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी, तुम्हें कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। मैं संसार के इस पार से देख रही

हूँ। अपनी शान्ति के लिए तपस्या करना सबसे बड़ा स्वार्थ है। यह सबसे बड़ी छलना भी है। औरों की शान्ति के लिए अशान्त होना ही सच्ची साधना है। आर्य देवरात, मैं साधनहीन हूँ। मनुष्य को जो ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय मिली है, जिनके द्वारा वह दूसरों की शान्ति का प्रयत्न कर सकता है, वह मेरे पास नहीं है। मैं केवल भाव-मात्र हूँ। तुम्हारे पास ये साधन अब भी विद्यमान हैं। छोड़ दो अपनी इस छलनामयी झूठी तपस्या को, तुम जो साधना पहले करते थे, वही सच्ची साधना है। मनुष्य के दुःख से दुःखी होना ही सच्चा सुख है।' देवरात की आवाज काँपने लगी। मुझे स्पष्ट सुनायी दिया, 'तुम्हारा कहना सत्य हो सकता है देवि, देवरात व्याकुल है। वह तुम्हारी इस बात को समझने का प्रयत्न करेगा।' फिर एकाएक वह आवाज मेरे बहुत नजदीक आ गयी, 'सुमेर भाई, मृणाल के पास जाओ। वह असहाय है। अकेली है। उसे सान्त्वना दो।' मेरी नींद एकाएक खुल गयी। कहीं तो कुछ भी नहीं था। मैंने अपने मन को समझा लिया कि थोड़ी देर पहले जो सोचता था वही सपने में देख रहा हूँ। पर तू जो कह रही है बेटी, यदि वह सच है तो मानना होगा कि देवरात भी कहीं मेरी और तेरी बात सोच रहे हैं।'

मृणाल की आँखों में आँसू आ गये। उसे ऐसा लगा कि उसकी प्रत्येक शिरा झनझना उठी है। 'निस्सन्देह काका, पिताजी मुझे और तुम्हें याद कर रहे हैं। परन्तु ठीक से स्मरण करो, उन्होंने मेरे लिए कोई रास्ता नहीं बताया। कुछ-न-कुछ बताया होगा काका, याद करके कहो।' सुमेर काका ने स्मरण शक्ति पर बल देने का प्रयास किया, बोले, 'और तो कुछ याद नहीं आ रहा है, बेटा! मैंने तो इस सपने को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया था। मुझे तो यही लगा था कि जो बात जागते में सोच रहा था वही मैंने सपने में देखी है। मैं जो तेरे यहाँ चला आया, वह सपने के कारण नहीं, जाग्रत अवस्था में सोच-समझकर।'

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। मृणाल बोली, 'काका, तुम एक बार बता रहे थे कि विन्ध्याचल में कोई नये सिद्ध आये हैं, जो महिषमर्दिनी की पूजा का प्रचार कर रहे हैं। सुना है कि वे भूत-भविष्य सब बता सकते हैं। एक बार मुझे उनके पास ले चलो न! मैं उनसे पिताजी के बारे में और आर्यक के बारे में कुछ प्रश्न पूछूँगी। सिद्ध लोग मनुष्य का पता-ठिकाना भी बता दिया करते हैं। ले चलोगे काका?'

सुमेर काका को मृणाल के भोलेपन पर हँसी आ गयी। 'देख बिटिया, तू जहाँ कहेगी वहीं तेरा काका तुझे ले जायेगा। पर मुझे इन सिद्धों पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं है। तेरा काका तो उतना ही मानता है जितना कि मानने योग्य होता है। भूतकाल कोई बता दे यह तो मेरी समझ में आ रहा है, पर

भविष्य कैसे बतायेगा ? जो दावा करता है कि भविष्य बता देगा, वह ढोंगी है।' मृणाल का चेहरा म्लान हो गया। उसे काका की बात से दुःख हुआ। काका ने उसके मन की बात ताड़ ली। बोले, 'बुरा मान गयी बेटा ! तेरा काका गँवार है। उसकी बातों का बुरा न माना कर। चल, तेरे साथ मैं चलूँगा। उसका ढोंग तो मैं चलने नहीं दूँगा। यदि काम की बात कुछ करेगा तो सुन लूँगा। भूत-भविष्य तो वह क्या बतायेगा, लेकिन तेरे मन को सन्तोष हो जायेगा।' मृणाल ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'अवश्य ले चलो काका, पर मेरी एक बात मान लो। तुम यह सब सिद्ध के सामने मत कहना। मैं पूछूँगी और तुम चुपचाप सुनोगे।'

सुमेर काका को मृणाल का यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा। उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा था कि सिद्ध अगर उल्टा-सीधा कुछ कहता रहेगा तो उन्हें चुप क्यों रहना चाहिए। किन्तु हाथ घुमाकर उन्होंने स्वीकृति-सूचक मौन धारण किया। मानो अभी से चुप रहने का अभ्यास कर रहे हों।

लेकिन सिद्ध के पास जाने का कार्यक्रम रुक अवश्य गया। हुआ यह कि जब सुमेर काका बाहर आये तो लड़कों का एक दल कूदता-फाँदता-चिल्लाता आकर कह गया कि चन्द्रा आ रही है। सुमेर काका को चन्द्रा के नाम से ही चिढ़ थी। उन्होंने मृणाल से बातचीत करते समय पूरी सावधानी बरती थी कि चन्द्रा का नाम या प्रसंग न आने पावे। कभी-कभी वे यह भी सोचते थे कि चन्द्रा अगर मिल जाये तो डण्डों से उसकी खबर लेंगे। अब सचमुच चन्द्रा दिख जानेवाली है और उनका डण्डा भी उनके हाथ में ही है। मारे क्रोध के उनका चेहरा लाल हो गया। उनकी निश्चित धारणा थी कि आर्यक के पतन के मूल में यही दुश्चरित्रा स्त्री है। यह हतभाग्या इस गाँव में आने का साहस कैसे कर सकी है ? क्या लज्जा-जैसी कोई वस्तु विधाता ने इसे दी ही नहीं ? उनके मन में क्रोध से भी अधिक घृणा का भाव आया। ना, इसका मुँह देखना भी पाप है। पर वह आ कहाँ रही है ? क्या मृणाल को चिढ़ाने आ रही है ! अगर ऐसा हुआ तो काका उसका झोंटा पकड़कर घसीटेंगे और यमराज के घर का रास्ता दिखा देंगे। इस घर में तो उसे पैर नहीं रखने देंगे। जनम की अभागिन, करम की छूँछी, चरित्रहीना, कुल्टा ! सुमेर काका के मन में और भी अपशब्द आ रहे थे, परन्तु चन्द्रा सचमुच ही आ गयी। आते ही उसने अत्यन्त मधुर वाणी में कहा, 'कौन, सुमेर काका है ? प्रणाम करती हूँ काका, मैं चन्द्रा हूँ।' सुमेर काका ने घृणा से मुँह फेर लिया। लेकिन चन्द्रा ने तो नत-जानु होकर काका के पैरों पर सिर ही रख दिया।

अजब ढीठ है यह बराकी ! बे-मन से काका ने आशीर्वाद दिया, 'सुखी रह, सच्चरित्र बन, परमात्मा तेरा मुँह काला न होने दें।' फिर बोले, 'जा यहाँ

से, यह कुल-वधू का घर है। तू यहाँ कैसे ग्रायी ? जा, ग्रपने घर जा। भाग जा, जल्दी भाग जा ! तूने ग्रपना भी मुँह काला किया ग्रौर हलद्वीप का भी काला किया। जा, जा यहाँ से, हट !'

चन्द्रा ने ग्रविचलित-ग्रस्खलित मृदु वाणी में कहा, 'कुल-वधू नहीं तो क्या हूँ तात ! ग्रपने घर ही तो ग्रायी हूँ। मैं नहीं जाऊँगी तो मेरी बहन मृणाल की कौन देख-रेख करेगा। श्यामरूप भाग गया, ग्रार्यक भाग गया, देवरात भाग गया। मैंने सुना तो दौड़ी चली ग्रायी। छोटा बच्चा भी तो है काका। मेरे रहते वह क्यों कष्ट पायेगा ? मैं उसे कैसे छोड सकती हूँ ?' काका को धक्का लगा। चन्द्रा की वाणी मे स्नेह था, वेदना थी, ग्रात्मीयता थी। उन्होने ग्रब उसकी ग्रोर दृष्टि फिरायी। चन्द्रा है ! उन्हे ग्राश्चर्य हुग्रा। चन्द्रा एक बहुत साधारण हल्की नीली साडी पहने थी। उसका सुन्दर मुख सूखा-सूखा दिखायी दे रहा था। ग्रधरोष्ठ काले पड़ गये थे। ग्रलकार के नाम पर एक सोने का कंगन हाथो मे इस प्रकार झूल रहा था, मानो ग्रब गिरा, ग्रब गिरा ! गोल गोरे मुख के ऊपर केश लटिया गये थे, पर सिन्दूर की मोटी रेखा सावधानी से ग्रंकित दिखायी दे रही थी। चन्द्रा ही तो है ! नील परिधान की छाया से उसका चन्द्रमा के समान मुख नीलाभ ज्योति से झिलमिला रहा था। काका ने ग्राश्चर्य के साथ उसकी शायक ग्राभा देखी। हाँ, चन्द्रा ही तो है—मनहु कलानिधि झलमलत कालिन्दी के नीर ! पर सुमेर काका ने उसका जो रूप सोचा था उससे कितनी भिन्न है ! ग्रवश्य कोई निदारुण ग्रन्तर्वेदना की ज्वाला उसके भीतर दीर्घकाल से सुलग रही है। काका का मन पसीज गया। बोले, 'कुल-वधू तो तू थी ही, पर यह सब क्या किया भाग्यहीने !' चन्द्रा की बडी-बड़ी ग्राँखें डबडबा गयीं। रुग्राँसी होकर बोली, 'पाप नही किया काका !'

पाप नहीं किया ? कैसी निर्विकार मुद्रा है चन्द्रा की ! काका का सरल चित्त चकित हो उठा। वे एक बात ही जानते ग्राये हैं। पापी ग्राँखें चुराता है। उसके मन का विकार उसके वाक्यो से प्रतिफलित होता रहता है। चन्द्रा की वाणी सहज है, ग्राँखें साफ है, मन मे कही कोई ग्रपराध-भावना नही है। *काका हैरान है। बोले, 'क्यो री चन्द्रा, यहाँ जो सब बातें फैली हैं वे सब झूठ* हैं ? तू ग्रपने पति को छोडकर ग्रार्यक के साथ भाग नही गयी थी ? बोल चन्द्रा, ये सब बातें झूठ हैं ?'

चन्द्रा ने ग्रस्खलित वाणी मे कहा, 'मैं क्या जानूं काका, कि यहाँ क्या-क्या बातें फैली हैं ग्रौर उनमे *कौन बात झूठ है ग्रौर कौन सच ! तुम एक-एक* करके पूछोगे तो सब बताऊँगी। फिर तुम स्वय सच-झूठ का निर्णय कर लेना। ग्रच्छा काका, स्त्री का विवाह पुरुष से ही होता है न ?'

'ग्रौर किससे होगा री ?'

'और स्त्री का विवाह पुरुष से न होकर किसी ऐसे से हो जाये जो पुरुष न हो ? क्या ऐसा विवाह किसी भी दृष्टि से मान्य होगा ?'

'काका ने तड़ाक से उत्तर दिया, 'नहीं।'

चन्द्रा ने फिर एक बार सुमेर काका के चरणों का स्पर्श किया। इस बार उसका आँचल भी हाथ में था। बोली, 'अब तुम्हें जो पूछना हो, पूछो। सबका उत्तर दूँगी।'

काका को कुछ विचित्र-सा लगा। उनके मन में यह बात कभी आयी ही नहीं कि स्त्री का विवाह किसी ऐसे से हो सकता है जो पुरुष न हो। वे कुछ सोचने लगे। चन्द्रा ने उन्हें विशेष सोचने का समय नहीं दिया। बोली, 'मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे पिता ने एक ऐसे मनुष्य-रूपधारी पशु से कर दिया जो पुरुष है ही नहीं। मैं उसे पति नहीं मान सकती। हलद्वीप के मुँह में कालिख लगता है तो सौ बार लगा करे। जो समाज इस प्रकार के विवाह की स्वीकृति देता है वह अपने मुँह में कालिख पहले ही पोत लेता है। मैंने आर्यक को ही अपना पति माना था। वह मेरा था, और रहेगा। मैं उसके साथ भागकर कहीं नहीं गयी। वह भागा जा रहा था, मैं साथ हो ली थी। फिर कहीं भागा है, उसकी खोज में हूँ। मैं आर्यक की पत्नी हूँ और बनी रहूँगी। मैं अपने घर आयी हूँ, मैं अगर कुल-वधू नहीं हूँ तो संसार में कोई कुल-वधू आज तक पैदा ही नहीं हुई।'

काका हैरान। इसी समय मृणालमंजरी का छोटा शिशु बाहर आया। चन्द्रा ने झपटकर उसे गोद में उठा लिया और बार-बार उसे चूमने लगी। एकाध बार शिशु ने भागने की चेष्टा की, लेकिन चन्द्रा ने उसे भागने नहीं दिया। काका अभी तक अपने को सम्हाल नहीं पाये थे। शिशु माँ-माँ कहकर चिल्ला उठा। चन्द्रा ने उसे और कसकर छाती से चिपका लिया। बोली, 'मैं ही तो तेरी माँ हूँ रे।' आवाज सुनकर मृणाल बाहर निकली। वह चकित होकर देखने लगी, यह कौन स्त्री है! शिशु ने कातर भाव से कहा, 'देख माँ, मुझे छोड़ नहीं रही है।' चन्द्रा ने और कसकर उसे छाती से लगा लिया। हँसते हुए कहा, 'तेरे बाप को छोड़ा नहीं, तुझे कैसे छोड़ सकती हूँ।' मृणाल कुछ समझ नहीं पा रही थी। काका ने ही बताया, चन्द्रा है! एक बिजली की धारा सट-से मृणाल के पैरों से उठी और सिर तक बह गयी। चन्द्रा ने मृणाल को देखा तो बच्चे को छोड़कर उसी से लिपट गयी, 'मेरी मैना, मेरी प्यारी बहन मैना! देखती क्या है रे, मैं तेरी दीदी चन्द्रा हूँ। हाय, तुझे बड़ा कष्ट हुआ। आर्यक महापापिष्ठ है जो तुझे ऐसी अवस्था में छोड़कर चला गया! कायर! गँवार!' फिर उसने मृणाल को इस प्रकार उठा लिया जैसे वह कोई गुड़िया हो। वह उसे सिर से पैर तक चूमती रही। लगातार। मृणाल लज्जा

से विजडित हो उठी। बोली, 'दीदी, भीतर चलो!' पर कहने की आवश्यकता नही थी। चन्द्रा ही उसे और बच्चे को लेकर भीतर चली गयी। ऐसा लगा, वह चिर-परिचित घर मे चिर-परिचित स्वजनों के साथ सहज भाव से जा रही हो। काका काठ की मूर्ति की तरह जैसे थे वैसे ही बने रहे। न हिले, न बोले, न आगे बढ़े—न ययौ न तस्थौ।

गांव की स्त्रियां धीरे-धीरे इकट्ठी होने लगी, काका जहाँ-के-तहाँ देर तक उसी तरह खड़े रहे। दूर से स्त्रियों के कलकण्ठ से गाने की मधुर ध्वनि उनके कानो से टकरा-टकराकर के लौट गयी, उनकी चेतना उसी प्रकार जडीभूत बनी रही। अन्त मे वे हारे हुए जुआरी की तरह वहाँ से लडखडाते हुए चल पड़े। भीतर कोई स्त्री गा रही थी—

अह समाविअमग्गो सुहय तुए ज्जेव णवरि णिव्वुदृठो।
एण्हि हिअए अण्ण, अण्णं वाआइ लो अस्स॥
(सजन निवाह्यो एक तुम, आरज-पथ, पथ मैन।
आजि काल्हि के लोग तो, कुछ हियरे कछु बैन॥)

एकाएक उनका ध्यान अतीत की ओर मुड गया। वह तो मंजुला की गायी गाथा है। मंजुला के घर के सामने से वे एक बार जा रहे थे, उसी समय वह बड़े व्यथापूर्ण स्वर मे यह गाथा गा रही थी। आज कौन वहाँ गान गा रही है!

तेरह

उज्जयिनी मे महाकाल देवता का निवास है। महाकाल केवल गति-मात्र हैं, निरन्तर धावमान गति, एक क्षण के लिए भी न रुकनेवाला प्रचण्ड वेग। देवरात महाकाल के दरबार मे पहुँचकर भी शान्ति नही पा सके। वे स्थिति की खोज मे हैं। महाकाल के धावमान वेग से वे केवल खिचे जा रहे है और फिर भी उनके भीतर चलते रहनेवाले तूफान की गति मे कोई कमी नही आ रही है। शान्ति चाहिए, पर महाकाल देवता प्रचण्ड नर्तन मे व्यापृत हैं। उनके एक-एक पद-सचार से महाशून्य प्रकम्पित हो रहा है और उस प्रचण्ड गति से समुत्थित कम्पन से सृष्टि मृत्यु-धारा मे स्नान कर नित्य जीवन की ओर अग्रसर हो रही है। जो कुछ पुराना है, जीर्ण है, सडा-गला है, वह ध्वस्त होता जा रहा है, नवीन के निर्माण मे प्रत्येक पग पर मृत्यु का ताण्डव दिखायी दे रहा है।

काल की यह प्रचण्ड धारा रुक नहीं सकती, मृत्यु और जीवन की यह परस्पर सापेक्षिता दूर नहीं हो सकती। परन्तु रुको महाकाल, एक क्षण के लिए रुको। देवरात रुकना चाहते हैं। कोई प्रार्थना कारगर नहीं हो रही है। वे केवल कातर भाव से पुकार सके, 'रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्!' हे रुद्र, तुम्हारा जो प्रसन्न मुख है उसी के अनुग्रह द्वारा मेरी रक्षा करो। परन्तु, सिप्रा की तरंगों में उस प्रसन्न मुख का दर्शन नहीं हो सका। देवरात दिग्भ्रान्त हो गये थे। उन्हें लगता था जैसे वे लोहे के टुकड़े हों और कोई अदृश्य चुम्बकीय शक्ति उन्हें खींच रही हो।

देवरात शान्ति नहीं पा सके। वे नैमिषारण्य के जंगलों में भटके, काशी की शीतल गंगा-धारा में अवगाहन करते हुए आगे बढ़े, त्रिवेणी-तट पर कल्पवास में विरमे, यमुना की निर्मल धारा में स्नान करते-करते मथुरा पहुँचे और अन्त में उज्जयिनी में महाकाल के दरबार में उपस्थित हुए। साधु-संग, शास्त्र-चर्चा देव-दर्शन, व्रतोपवास—सब किया, पर शान्ति कहीं नहीं मिली। न वे श्रोत्रियों की प्राणदुहिता को भूल सके और न हलद्वीप की नगरश्री की माया काट सके। वे सब-कुछ करते गये, यन्त्रचालित की भाँति। उन्हें अनुभव हुआ कि महाकाल का अकुण्ठ नर्तन रुकनेवाला नहीं है। समस्त सुख-दुख को रौंदता हुआ वह चल रहा है—निर्मम, निर्मोह!

देवरात इस निर्मम-निर्बाध ताण्डव को समझ नहीं सके। महाकाल की मूर्ति में उन्हें केवल दुर्निवार वेग की विभीषिका का ही दर्शन हो सका। उन्हें यह प्रचण्ड गति केवल क्रूर परिहास-सी दिखायी पड़ी। जो-कुछ है वह होने को बाध्य है, मानो कोई विराम-विहीन घूर्णाचक्र उबा देनेवाले एकघृष्ट स्वर में घूम रहा है और उस अबाध वेग में नक्षत्र-मण्डल से लेकर अणु-परमाणु तक उद्भूत और विनष्ट होने को बाध्य हैं। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि केवल उद्भव और विनाश के लिए विवश है, उसी प्रकार जैसे सान-चक्र पर रखे लौहखण्ड से छिटकी सहस्रों चिनगारियाँ छिटकने, भटकने और बुझने को बाध्य हैं। ऐसा भी निरुद्देश्य-निर्लक्ष्य वेग किस काम का? मनुष्य केवल जन्म-मरण के दुरन्त वात्याचक्र में पच-पचकर मरने के लिए ही बना है? अनन्त वेग के लिए छोटे-मोटे सहस्रों आदि और अन्त निरर्थक परिहास-मात्र हैं? काल-चक्र के सिंहासन पर आसीन महादेव, क्यों बनाया था तुमने माया-ममता के द्वारा जकड़े हुए सुकुमार मानव-हृदय को? इस हृदय में जो दारुण झंझा बह रही है वह क्या तुम्हारे प्रचण्ड वेग के इंगित पर ही बह रही है? इसका भी कोई अन्त नहीं है इसमें भी कहीं ममता का स्पर्श नहीं है, यह भी अपनी सत्ता के लिए आप ही प्रमाण है? महाकाल देवता, बड़ी दुर्निवार है तुम्हारी माया! देवरात सिप्रा की वारिधारा में भी एक अतृप्त अधीर वेग को ही देख सके। शान्ति कहाँ है?

महाकाल का प्रसन्न मुख उन्हें कहीं नहीं दिखायी दिया। देख सके केवल निर्बाध वेग की निर्मम प्रचण्ड ज्वाला।

वे खोये-खोये-से खड़े रहे। भक्तगण आते-जाते रहे, उन्हें लगा जैसे सब-के-सब किसी प्रचण्ड जीवन-धारा के फेन-बुद्बुद हों।

मन्दिर-द्वार से दूर कोई बड़ी ही मधुर वाणी में धीरे-धीरे गा रहा था। देवरात उस छन्दोबद्ध सगीत के अन्तिम चरण को सुनकर एकाएक चौंक पड़े। गानेवाला गा रहा था—'न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः' (पिनाक धारण करनेवाले देवता (शिव) के यथार्थ स्वरूप को जानने-समझनेवाले नहीं हैं! वह और भी गाता रहा। एक बार उसने कुछ ऐसा कहा जिसे सुनकर देवरात स्तब्ध रह गये। कवि ने जो कुछ कहा उसमें शिव के भयंकर और मोहन रूपों की चर्चा थी। उपसहार मे कहा था—शिव विश्वमूर्ति है, उनके रूप की अवधारणा नहीं करनी चाहिए।

देवरात का मन इस प्रकार उसकी ओर खिंच गया जैसे किसी ने पाश फेंककर बलात् खींच लिया हो। वे सचमुच ही क्या विश्वमूर्ति शिव की अवधारणा नहीं कर रहे हैं? क्या फर्क पड़ता है यदि शिव मनोहर वेश मे दिख जाते हैं या यदि वे भयकर रूप मे दिखायी दे जाते है? विश्वमूर्ति शिव विभूषणों से जगमगाते मनोहर वेश मे हों तो, और भयकर सर्पों की डरावनी माला धारण किये हों तो, वे सब प्रकार से वन्दनीय हैं, मनोरम या भयकर तो मनुष्य के सीमित चित्त का विकल्प-मात्र है। जो सर्वरूप है, सर्वमय है उसके लिए दुकूल और हाथी के रक्तरंजित चर्म का परिधान तो बहुत नगण्य विकल्प हैं। उसके हाथ में कपाल कर्पर है या माथे पर चन्द्रमा जगमगा रहा है, यह भी कोई बात की बात हुई! विश्वमूर्ति, बस विश्वमूर्ति हैं। रूप-रूप मे उन्हीं की लीला मुखरित है। एकांगी दृष्टि से क्यों देख रहे हो? समग्र दृष्टि से देखो।

देवरात को विचित्र लगा। कौन है यह किशोर गायक? कितनी मधुर-वाणी में गा रहा है, कितनी तन्मयता के साथ! 'न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः।' वाह, क्या अमृत-सी वाणी है—'न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपु.।' विश्वमूर्ति के रूप की अवधारणा ही तो वे कर रहे थे।

देवरात को लगा कि वे सचमुच अवधारणा के शिकार हो गये हैं। सहस्रों विषय इन्द्रियों से टकराते हैं। मन उन्हीं का सचय करता है जो अच्छे लगते हैं। इसी का नाम धारणा है। जो सचय योग्य होते तो हैं, पर मन उन पर रम नहीं पाता, उनकी धारण का नाम ही अवधारणा है। सचय भी करते हो, रमते भी नहीं, यह कैसी माया है? किशोर गायक ठीक कह रहा है, सर्वव्यापक के एक अंश-मात्र को हृदय में संचित करके भी उसकी अवधारणा करना 'वदतो व्याघात' है, अपनी ही बात का अपने से ही प्रतिवाद करना है। धारणा

केवल इसलिए विकृत होती है कि मनुष्य धारणीय के स्वरूप को ठीक समझ नहीं पाता। देवरात ने महाकाल को विश्वमूर्ति के रूप में नहीं समझा। वे केवल पिनद्धभोगि (सांप-लपेटा) रूप से कातर हो उठे हैं। पर यह तरुण गायक है कौन ? देवरात को लगा कि इन छन्दों का रचयिता वह स्वयं है। केवल गायक नहीं, कवि भी है।

विचित्र है यह कवि। एकाग्रभाव से सिप्रा की चटुल तरंगों को देख रहा है। नि.सन्देह उसे केवल विनाशकारी प्रचण्ड वेग कुछ भिन्न वस्तु का साक्षात्कार हो रहा है, वह गा रहा है, बड़ी सावधानी से, धीरे-धीरे। समाधिस्थ भी नहीं है, असंयत भी नहीं है। शोभा देखकर वह मुग्ध अवश्य हो रहा है, पर उत्क्षिप्त नहीं है। बहुत सावधान तो है, पर रागोत्क्षिप्त एकदम नहीं। कितनी कमनीय हैं उसकी बड़ी-बड़ी पद्म-पलाश-सी आँखें। देवरात भी मुग्ध होकर उसे देखने लगे। मुग्धता भी संक्रामक होती है, नहीं तो इस तरुण गायक की मुग्धता से वे से मुग्ध हो गये।

देवरात ने सोचा, इससे कुछ बात करनी चाहिए। बड़ा ही मधुर लगता है इसका शील। वे उसके निकट जाकर खड़े हो गये। तरुण गायक ने उन्हें नहीं देखा। वह अपने मे ही मस्त बना धीरे-धीरे गाता रहा। ऐसा लगता था उसके मन में रह-रहकर विभिन्न भावों की तरंगें उठ रही हैं, और वह विना प्रयास छन्दों मे उन्हें मूर्त करता जा रहा है। कहीं-न-कहीं उसके मन मे भी कोई व्यथा होगी। देवरात उस चारुदर्शन युवक से बात करने के लिए व्याकुलता अनुभव करने लगे। क्या बात करें, कैसे उसे सम्बोधित करें, यह निश्चय नहीं कर सके। देर तक वे उत्सुक की भाँति खड़े रहे।

तरुण गायक चुप हो गया। वह अंजलि बाँधकर किसी अज्ञात देवता को प्रणाम करने की मुद्रा में दिखायी दिया। फिर चलने को प्रस्तुत हुआ। उठा तो ऐसा लगा जैसे किसी अनुभाव राशि को चीरकर निकल रहा हो। वह चल पड़ा। देवरात ने चुपचाप अनुसरण किया।

कुछ दूर तक धीरे-धीरे चलने के बाद वह एकाएक तेज चलने लगा। देवरात को लगा कि उसमें अचानक कोई नया भाव आ गया है। वे भी तेज चलने लगे। युवक अपने मे आप ही रमा जान पड़ता था। उसने फिरकर देखा ही नहीं। अब देवरात ने अधीर भाव से टोका, 'सुनो आयुष्मान्, मैं कुछ जानना चाहता हूँ।' युवक ने पीछे फिरकर देखा। देवरात को देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ, पर उसके चेहरे पर आह्लाद का भाव भी आया। बोला, 'अवहित हूँ आर्य, क्या पूछना चाहते हैं।', देवरात ने कहा, 'आयुष्मान्, मैं देवरात हूँ, तीर्थों में भटकता फिर रहा हूँ, शान्ति पाने के लिए। पर मेरी व्याकुलता दूर नहीं हुई है। तुम्हारे मधुर कण्ठ से अभी मैंने जो कुछ सुना है

उससे मुझे विश्वास हुआ है कि तुमसे मुझे प्रकाश मिल सकता है। भद्र, तुम्हे देखकर मुझे ऐसा लगा है कि मेरे जन्म-जन्मान्तर का पुंजीभूत पुण्य ही प्रत्यक्ष विग्रह धारण कर उपस्थित हो गया है। बोलो, आयुष्मान्, तुम कौन हो? कौन-सा कुल तुम्हे पाकर पवित्र हुआ है, कौन भाग्यशालिनी माता तुम्हे जन्म देकर कृतार्थ हुई है?' युवक के प्रफुल्ल चेहरे पर प्रसन्नता की लहरें खेल गयी। कुछ विनयमिश्रित व्रीडा के साथ बोला, 'आर्य, मेरा प्रणाम स्वीकार करें, पर आप तो मुझे लज्जित कर रहे है। आप मुझे अनुचित गौरव दे रहे है। केवल आशीर्वाद का अधिकारी हूँ। मेरा नाम चन्द्रमौलि है। हिमालय की गोद मे खेला हूँ। अब पूरे भारतवर्ष को देखने की लालसा से घर से निकल पडा हूँ।' देवरात को और भी कुतूहल हुआ। उल्लसित भाव से बोले, 'साधु आयुष्मान्, मैंने तुम्हे देखकर ही तुम्हारे शील और विनय का अनुमान कर लिया था। भगवान ने तुम्हे जैसा ही रूप, वैसा ही शील, वैसी ही वाणी दी है। बहुत प्रीत हूँ वत्स, तुम जो कविता अभी गा रहे थे वह बडी ही मधुर और नयी-नयी-सी लग रही थी।' चन्द्रमौलि के मुख पर सकोच-मनोहर मन्दस्मित दिखायी दिया। बोला, 'आपका बालक हूँ, आर्य! अनपहचानी वेदनाएँ मुझे व्याकुल बना देती हैं। कभी-कभी सोचता हूँ आर्य, कि किसी देवता के आशीर्वाद से मुझे छन्दो की वाणी का वरदान मिल जाता तो सारी वेदनाएँ उँडेल देता। कहाँ मिला आर्य, मैं व्याकुल हूँ! नदियो का प्रवाह मुझे प्रलुब्ध करता है, अरण्यों की शोभा मुझे आकर्षित करती है, शस्य-श्यामल मैदान मुझे खीचते हैं, जनपद-जनो के सहज व्यवहार मुझे मोहित करते हैं, नगरो की विलासलीला मुझे उल्लसित करती है। क्या परिचय दूँ अपना, मैं सबकी ममता मे बँधा हूँ, पर मेरा अपना कोई नही दिखायी देता। मैं सर्वत्र किसी व्याकुल अभ्यर्थना से खिंच जाता हूँ। पाने की लालसा से नही, लुटाने के लोभ से। मेरा क्या परिचय हो सकता है आर्य? जो पाना नही चाहता वह क्यो व्याकुल हो जाता है, यह रहस्य मेरी समझ मे नही आता। पर व्याकुलता मुझमे है। शान्ति क्या होती है, यह मुझे नही मालूम आर्य! पर मुझे ऐसा लगता अवश्य है कि सच्चा सुख अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोडकर उपलब्ध माधुर्य रस को लुटा देने मे है। भटक मैं भी रहा हूँ आर्य! लुटा सकना इतना आसान नही है!'

देवरात चकित होकर सुनते रहे। युवक अपने मन की बात कह रहा है पर कितने सुन्दर ढग से। हाय देवरात, तुमने पाने की लालसा से कहाँ छुटकारा पाया? युवक के अधरो पर मन्द-मन्द मुसकान थी, पर आँखें सजल थी। शायद वह जो कह रहा था उसका ठीक-ठीक अर्थ देवरात की पकड़ मे नही आ रहा था। पर वे और भी उत्सुकता के साथ बोले, 'आयुष्मान्, तुम सच्चे

कवि जान पड़ते हो, पर अपने-आपको छिपा भी रहे हो। मैं अधिक जान सकता तो कृतार्थ होता, पर जितने का अधिकारी हूँ उससे अधिक का लोभ नहीं करूँगा। मैंने तुम्हारे मुख से मनोहारिणी और प्राणतोषिणी कविता सुनी है। इतना पर्याप्त होना चाहिए कि तुम कवि हो। मुझमें अकारण उत्सुकता जाग उठी, क्योंकि मैं कवि को उसके सारे वातावरण में प्रतिष्ठित देखना चाहता था।' युवक अत्यन्त विनीत भाव से बोला, 'आर्य, क्षमा करें। मैंने भी कई बार रम्य वस्तुओं को देखकर, मधुर शब्दों को सुनकर अकारण उत्सुकता अनुभव की है। जाने क्यों हृदय मसोस उठता है, जैसे कोई पुराना सम्बन्ध हो, पर याद न आ रहा हो। अच्छा आर्य, क्या यह नहीं हो सकता कि पूर्व-पूर्व जन्मों में कोई सम्बन्ध इन वस्तुओं से रहा हो और अब याद नहीं आ रहा हो, केवल चित्त-भूमि पर एक हल्की-सी अस्पष्ट रेखा-भर रह गयी हो।" देवरात को यह बात बहुत अद्भुत लगी। अनुभव तो उन्होंने भी किया है, पर ऐसी बात तो उनके मन में नहीं उठी। क्या इस अकारण स्नेहोद्रेक के उत्पादक युवक के साथ भी उनका जन्मान्तर का कोई सम्बन्ध है? अवश्य होगा। कह रहा है, हिमालय की गोद में खेला है। इतना सम्बन्ध तो है ही। वे भी हिमालय की गोद में पले हैं। पर यह तरुण कवि कुछ अधिक बताना नहीं चाहता। मगर इतना ही बहुत है। देवरात का मन स्नेहसिक्त था।

थोड़ी दूर साथ-साथ दोनों चलते रहे। एक स्थान पर वह रुक गया। बोला, 'आर्य के सत्संग से बहुत आनन्दित हुआ। पर यहाँ मेरे एक मित्र आयेंगे। मुझे प्रतीक्षा करनी होगी। मैं तो यहाँ नया आया हूँ। आर्य को क्या कुछ देर यहाँ विश्राम करने में कोई बाधा है? यदि बाधा न हो तो यहाँ आप भी थोड़ा विश्राम कर लें, मेरे मित्र बड़े विनोदी हैं। उनसे मिलकर आपको भी प्रसन्नता होगी।'

देवरात को अच्छा लग रहा था। उन्हें इस युवक कवि में शील, सौजन्य और प्रतिभा का मिलित रूप मिल रहा था। वे युवक के साथ ही एक टीले पर बैठ गये। युवक विनीत भाव से बोला, 'आर्य देवरात, मेरा मन कहता है कि मैं किसी असामान्य महानुभाव को देख रहा हूँ। आप कह रहे हैं कि आप भटके हुए हैं, प्रकाश खोज रहे हैं, शान्ति पाना चाहते हैं, किन्तु अविनय क्षमा करें, मुझे ऐसा कहने की अनुमति दें कि आपकी यह भव्य आकृति, आजानु-लम्बित बाहु, प्रशस्त ललाट और घनकुंचित केशराशि आपको सामान्य मनुष्यों से अलग कर रही है। आर्य, आप कैसे भटक सकते हैं? विधाता ने आपको प्रकाश देने के लिए इस धरित्री पर भेजा है। मैं कुछ अलीक तो नहीं कह रहा हूँ आर्य?'

देवरात को लगा जैसे कोई हृदय में चिपके हुए शल्य को उखाड़ने के

लिए हिला रहा हो। यह वेदना बडी ही दारुण सिद्ध हुई। पर वे थाह भी नही भर सके। चन्द्रमौलि भी ग्रोर इस प्रकार ताकने लगे जैसे कोई अपराध कर बैठे हों।

चन्द्रमौलि का मन उनकी उस मुद्रा से थोड़ा विचलित हुआ। हाथ जोड़कर बोला, 'कुछ अनुचित कह गया होऊँ तो क्षमा करें आर्य। मैंने आपको दुखी बनाने का अपराध किया है!' देवरात ने स्नेहमिश्र वाणी में कहा, 'नहीं वत्स, तुम ठीक ही कह रहे होगे। मुझे भटकना नहीं चाहिए था, पर भटक गया हूँ, मोह-कातर नही होना चाहिए था, पर हो गया हूँ। कदाचित् मैं विधाता के दरबार में अपराधी सिद्ध हूँगा। कदाचित् वे मुझसे जो कराना चाहते थे वह मैं नही कर सका। योगी नहीं बन सका, भोगी नही बन सका, कर्मी नही बन सका, त्यागी भी नही बन सका। प्रकाश देने योग्य 'स्नेह' नहीं था, जलने योग्य 'दशा' भी नही थी। प्रकाश कैसे दे सकूँगा वत्स, जलता हूँ तो नीरस काठ की तरह धधक उठता हूँ, केवल ताप दे पाता हूँ, आलोक नही दे पाता। विधाता ने कराना कुछ और चाहा होगा, अपनी क्षुद्रता के कारण कर कुछ और रहा हूँ। तुम बता सकते हो आयुष्मान्, कि जो स्नेह पाता रहा वह अपने-आपको मिटाकर प्रकाश क्यो नही दे सका? मगर तुम अभी बालक हो, अपनी मर्मव्यथा से तुम्हे दुखी नही करूँगा। मैं अपना ही प्रतिवाद हूँ वत्स!'

चन्द्रमौलि को ऐसी आशा नही थी कि बात इस प्रकार व्यथावाली दिशा मे मुड जायेगी। वह सोच नही सका कि क्या कहने से सहज स्थिति लौट आयेगी। थोडी देर वह गुम-सुम बैठा ताकता रहा। फिर बात को दूसरी ओर मोडने के उद्देश्य से बोला, 'बडी दूर से नाना देशों का भ्रमण करता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। रास्ते मे विचित्र मनुष्यो के दर्शन हुए हैं। अपूर्व सुन्दरियो का साक्षात्कार हुआ है। हर जगह मैंने अनुभव किया है कि विधाता ने जिस उद्देश्य से ऐसे मनोहर रूपो की सृष्टि की होगी वह पूरा नही हो रहा है। कही कोई बाधा पड रही है। मनुष्य के बनाये हुए विधान विधाता के बनाये विधानो से टकराते हैं, उन्हे मोडते है, विरूप कर देते है। आपके साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ जान पडता है, आर्य। विधाता अपनी सृष्टि-परम्परा को आगे बढाने के लिए प्रकृति को निर्देश दे चुके हैं—'उतना ही, जितने से काम चल जाये।' वह अनेक रूप, रंग, वर्ण, प्रभा के द्वारा उसी निर्देश का पालन करती जा रही है। मनुष्य के चित्त ने इस निर्देश का औचित्य अस्वीकार कर दिया है। वह कहता है, 'उतना, जितना मुझे अच्छा लगता है।' और इन दोनो का द्वन्द्व विषम परिस्थितियो की सृष्टि कर रहा है। सारे कष्टों और दु.खो के पीछे यही द्वन्द्व है। 'जितने से काम चल जाये' और 'जितना मुझे अच्छा लगता है' का संघर्ष ही दु.ख है। पर मैं इसका न तो कोई समाधान ही

ढूंढ पाता हूँ और न इस द्वन्द्व की आवश्यकता का ही रहस्य समझ पाता हूँ।'

देवरात चुपचाप ताकते रहे। उनके चित्त के अतल गह्वर से आवाज आयी—'नया सही सुन रहा हूँ। यही शाश्वत वाणी बराबर सुनता रहा हूँ। पर इस बार वह बहुत स्पष्ट और वेधक होकर सुनायी दे रही है।'

चन्द्रमौलि ने देवरात की प्रतिक्रिया जानने के लिए थोड़ी देर मौन भाव से प्रतीक्षा करना उचित समझा, पर देवरात मौन ही रहे।

चन्द्रमौलि को आशंका हुई कि बात कहीं फिर अनुचित स्थान पर न टकरा जाये। वह और सतर्क भाव से बोला, 'बाल-बुद्धि से विचार करता हूँ, इसलिए भूल-चूक तो होगी ही आर्य, पर कितने ही महानुभावों को देखकर इस नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि विधाता की इच्छा पर कहीं-न-कहीं आघात अवश्य पहुँच रहा है। अभी हम लोग जब उज्जयिनी की ओर आ रहे थे। तो एक ऐसे ही सुलक्षण महावीर युवक से हमारा परिचय हो गया। संयोग ही कुछ ऐसा था कि वे मिल गये। देखकर मुझे लगा कि किसी अत्यन्त भाग्यशाली का सान्निध्य पा रहा हूँ, पर दुखी वे भी लगते थे। दुखी भाग्यशाली अपने-आपको छिपाया करता है। वह इतना संवेदनशील होता है कि हमेशा डरता रहता है, उसके व्यक्तिगत दुःख से किसी और को कोई कष्ट न पहुँचने पावे। मेरे ये नये मित्र गोपाल भी ऐसे ही थे। उन्होंने अपने को छिपाया। कहते थे, 'गोपाल ही मेरा नाम समझो, यही जाति समझो और यही विरुद मान लो।' मान लिया, पर मेरे दूसरे मित्र माढव्य शर्मा बड़े विनोदी हैं। खोद-खोदकर उन्होंने अन्त तक उन्हें पहचान ही लिया। वे गुप्त सम्राटों के प्रसिद्ध सेनापति गोपाल आर्यक थे। पत्नी-वियोग से म्लान थे और लोकापवाद-भय से कुण्ठित। मैंने थोड़ी सहानुभूति दिखायी तो रो पड़े। बड़ा महानुभाव व्यक्तित्व है उनका, पर सब होने पर भी बड़ी दुर्वह व्यथा ढोते फिर रहे हैं। नाम तो आपने भी सुना होगा आर्य।'

देवरात का हृदय धकधक करने लगा। बोले, 'गोपाल आर्यक ? नाम तो अवश्य सुना हुआ है बेटा, पर वे गुप्त सम्राटों के सेनापति हैं, यह तो मैं नहीं जानता। क्या ये वही गोपाल आर्यक हैं जो हलद्वीप के निवासी हैं ? तुमने उनको कैसे देखा, कहाँ देखा ?'

चन्द्रमौलि उत्फुल्ल हो गया। 'कहाँ के निवासी हैं, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर वे सम्राट् के सेनापति अवश्य थे। उनके अनुपम शौर्य की कहानी से सभी जनपद गूंज रहे हैं। पर वे हैं कि लोकापवाद-भय से छिपते फिर रहे हैं। मैं उनके विशाल कन्धों और प्रशस्त ललाट को देखकर ही समझ गया था कि वे कोई महावीर हैं, विधाता ने उन्हें अपार सामर्थ्य देकर दुखियों का दुःख दूर करने के लिए इस धरती पर भेजा है। पर वे भी आपकी ही भाँति कह रहे थे कि वे भटक गये हैं। मेरे साथ उनकी बड़ी गाढ़ी मित्रता हो गयी थी।' देवरात

उत्सुकता के साथ सुनते रहे। हो न हो यह महावीर और कोई नहीं, उनका प्यारा मित्र गोपाल आर्यक ही है। पर सेनापति कब हुआ? यह कहीं किसी और की बात तो नहीं कर रहा है? मिलते-जुलते नाम तो होते ही हैं। और अधिक जानने के उद्देश्य से उन्होंने पूछा, 'भद्र कवि, तुमने गोपाल के व्यक्तिगत जीवन के बारे में और कुछ सुना?' चन्द्रमौलि ने सहज भाव से कहा, 'हाँ आर्य, एक दिन मैंने उनके दुःख की बात जानने का प्रयत्न किया। वे समुद्र के समान गम्भीर जान पड़े। अपना दुःख छिपाये ही रहे। ये तो मुझे बड़ा कष्ट हुआ। मैंने कुछ रोष के साथ कहा कि मित्र गोपाल, तुम मुझ पर विश्वास नहीं करते, अपने दुःख का रंचमात्र भी आभास नहीं देते, मैं तुम्हारे कष्ट का सहभागी होने का सुयोग भी नहीं पा रहा हूँ। वे मेरी बात से विचलित हुए और एक क्षण की दुर्बलता में कह गये—'मित्र, सदा यही सोचता हूँ कि लोग क्या कहेंगे, एक बार भी यह नहीं सोचा कि मृणालमंजरी क्या सोचेगी। यह विषम शल्य हृदय में जा धँसा सो निकला ही नहीं।' उनके इस कथन से मैं अनुमान कर सका कि कोई मृणालमंजरी उनकी प्रिया होगी। इससे अधिक उनके बारे में मैं कुछ भी नहीं जान पाया, पर उनके महाशौर्य के बारे में कोई भी बिना बताये ही सब कुछ समझ सकता है। अन्तर्मदावस्थ गजराज को पहचानने में कोई कठिनाई होती है आर्य?'

अब सन्देह का अवसर ही नहीं रहा। गोपाल आर्यक मृणालमंजरी की बात कह रहा था। परन्तु वे ठीक समझ नहीं सके कि गोपाल के हृदय में दुःख किस बात का है। कौन-सा लोकापवाद उसे मथित कर रहा है? सुमद्रगुप्त का सेनापति कब बना? वे उन्मथित-से ताकते रहे, फिर कातर भाव से बोले, 'तुम्हारे ये मित्र इस समय कहाँ हैं आयुष्मान्? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।' चन्द्रमौलि ने कुछ उदास स्वर में कहा, 'यही तो कठिनाई है कि वे अपने को छिपाते हैं, अपनी यश-कीर्ति को छिपाते हैं और दुख-ग्लानि को भी छिपाते हैं। हुआ यह कि मेरे विनोदी मित्र माढव्य शर्मा ने उन्हें पहचान लिया। उन्होंने कुछ विनोद के साथ ही कह दिया कि मित्र गोपाल, मुझे कोई सन्देह नहीं कि जिस प्रबल पराक्रमी गोपाल आर्यक के नाम-श्रवण-मात्र से सम्पूर्ण उत्तरापथ काँप रहा है वह माढव्य से भी बड़ा मूर्ख है। माढव्य शर्मा लोकापवाद को पूँजी बना-कर अपना कारबार करता है और गोपाल आर्यक अपनी कीर्ति बेचकर लोका-पवाद की पूजा करता है। बस, इसी बात पर वे चुपके से खिसक गये। पता नहीं कहाँ चले गये। बहुत सुकुमार हृदय उन्हें विधाता ने दिया है। जरा-सा विनोद भी उसको क्षत-विक्षत कर देता है। मेरे मित्र माढव्य शर्मा बहुत दुखी हुए थे। उनका उद्देश्य उनका दिल दुखाना नहीं था, वे उन्हें फिर से उनकी सहज अवस्था में ले आना चाहते थे, पर परिणाम बड़ा दुखद हुआ। माढव्य शर्मा का विश्वास है कि वे कहीं उज्जयिनी में ही होंगे। बिचारे कल से ही

खोज रहे हैं। आते ही होंगे।

चन्द्रमौलि उच्छ्वसित भाव से अपने मित्र गोपाल आर्यक के विषय में बोलता गया। उसे देवरात के चेहरे पर खेलनेवाले भावों को देखने की सुधि ही नहीं रही। बोला, 'हम लोग बहुत डरे हुए थे आर्य। एक भागते हुए बलिष्ठ पुरुष ने हमें छिप जाने को कहते हुए बताया था कि कुछ हीन चरित्र के दुर्दान्त उसे मारने के लिए पीछा कर रहे हैं। गोपाल आर्यक जैसे महावीर को इसमें क्या भय होता? वे उन दुर्दान्तों को दण्ड देने के लिए उतावले हो गये। माढव्य पण्डित ने उन्हें ऊँच-नीच समझाकर रोक लेना चाहा, पर उस महावीर का निश्चय नहीं बदला। जब वे चल ही पड़े तो अगत्या हम भी साथ हो लिये। सच कहता हूँ आर्य, उनके साथ चलने से भय एकदम दूर हो गया, सूर्य के साथ चलनेवाले के पास कहीं अन्धकार फटक सकता है? हम लोग निर्विघ्न यहाँ पहुँच गये। गोपाल दुर्दान्तों को खोजते रहे, कहीं पा नहीं सके।'

देवरात कुछ बोले नहीं, दीर्घ निःश्वास लेकर रह गये।

चन्द्रमौलि समझ नहीं सका कि देवरात के हृदय में कौन-सा तूफान चल रहा है। थोड़ी देर दोनों ही चुपचाप दिगन्त की ओर देखते रहे। चन्द्रमौलि ने ही मौन भंग किया। बोला, 'आर्य, अन्यथा न समझें तो एक बात पूछूँ?' देवरात ने चुपचाप इंगित से बताया कि पूछ सकते हो। चन्द्रमौलि ने कहा, 'आप शास्त्र-मर्मज्ञ हैं, साधु-संग किया है, धर्माचरण से मन और वाणी को पवित्र बनाया है। इसीलिए आपसे पूछ रहा हूँ। यह क्या सत्य है जो पुराण-ऋषियों ने बताया है कि मनुष्य अपने पूर्व जन्म के पापों का ही फल भोग रहा है?' देवरात ने सहज भाव से कहा, 'ऐसी ही लोगों की धारणा है।' फिर ज़रा सजग होकर चन्द्रमौलि बोले, 'मैंने अनुभव से जो कुछ जाना है उसे निवेदन करना चाहता हूँ। मेरे मन में आशंका है कि मैं या तो पुराण-ऋषियों की विरुद्ध दिशा में चला गया हूँ या लोगों की ऐसी धारणा ही भ्रान्त है।' देवरात ने कुतूहल के साथ पूछा, 'तुम्हारा अनुभव क्या कहता है बेटा?' चन्द्रमौलि को थोड़ा संकोच हुआ। फिर कुछ रुक-रुककर कहने लगा, 'दो तरह की रचनाएँ होती हैं। इस प्रकार की रचनाएँ विधाता की सृष्टि हैं, दूसरी तरह की रचनाएँ मनुष्य की सृष्टि हैं। स्वयं मनुष्य पहली श्रेणी में आता है। मनुष्य और प्राकृतिक वस्तुओं, जीव-जन्तुओं, लता-पादपों की रचना एक ही कर्ता के द्वारा हुई है। इसीलिए हम इन प्राकृतिक वस्तुओं की निर्माण-विधि की आलोचना नहीं करते। वह जैसी बनी हैं, वैसी बनेंगी ही। हम उनसे सुख पा सकते हैं, दुःख पा सकते हैं—पर वे हैं; हम यह कहने के अधिकारी नहीं हैं कि वे क्यों वैसी बनी हैं। हम स्वयं भी उसी की सृष्टि हैं पर जो व्यवस्था मनुष्य ने बनायी है उसकी बात और है। उसमें दोष हो तो उसे बदला जा सकता है।' देवरात ने कुछ सोचकर

कहा, 'जरा समझाकर कहो बेटा !' चन्द्रमौलि बोला, 'मुझे ऐसा लगता है आर्य, कि मेरे मित्र गोपाल की व्यथा मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था की देन है। इस व्यवस्था की आलोचना करने और बदलने का अधिकार मनुष्य को मिलना चाहिए। विधाता ने उन्हें बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करने को इस धरित्री पर भेजा है, परन्तु मनुष्य की बनायी सामाजिक व्यवस्था ने विधि-व्यवस्था में हस्तक्षेप किया है। क्षमा करें आर्य, आप जो मानने को अटका हुआ अनुभव कर रहे हैं वह भी किसी-न-किसी रूप में विधि-विधान में मानवीय समाज-व्यवस्था का ही हस्तक्षेप होना चाहिए। मेरी बातों में दोष हो तो उसे क्षमा कर दें, यह बाल-बुद्धि का ही अनुभव है।'

देवरात आश्चर्य से चकित होकर सुनते रहे। उनके संस्कार इस तरह के विचार के विरुद्ध जा रहे थे, पर उनका अन्तर्मन इस कथन का मर्म समझने को व्याकुल हो उठा। बोले, 'तुम्हारी बात मान लूँ तो उस मूल भित्ति के भहरा जाने की आशंका है जिसे आज तक समस्त सामाजिक व्यवस्था को सामंजस्य देने का आधार समझता रहा हूँ। तुम्हारे कथन का अर्थ तो यह होता है कि शास्त्रों में जो समाज-सन्तुलन की व्यवस्था है वह मनुष्य की बनायी है, विधाता के इंगित पर नहीं बनी है। सारा अपौरुषेय समझा जानेवाला ज्ञान, विधि-विधान का अंग नहीं है। मनुष्य के बनाये घर-द्वार और ईंट-पत्थर के समान वह भी आलोच्य और परिवर्तितव्य है। ठीक कह रहा हूँ, आयुष्मान् ?'

चन्द्रमौलि ने सहज भाव से सिर हिलाया। देवरात सोच में पड़ गये। यह तरुण कवि साहसी जान पड़ता है। इतनी बड़ी बात इतने सहज ढंग से कह गया। उनके मन में अपनी जीवन-गाथा आलोच्य बनकर उपस्थित हो गयी। वे सोचने लगे कि क्या सचमुच ही मनुष्य-रचित व्यवस्था का हस्तक्षेप उनके जीवन को बार-बार मोड़कर कुछ-का-कुछ बनाने में उत्तरदायी नहीं है ? शायद है। मगर यह धर्म-कर्म, संयम-नियम क्या व्यर्थ के ढकोसले हैं ? क्या विधाता की बनायी सृष्टि से ये भिन्न हैं ? क्या गोपाल आर्यक किसी कृत्रिम सामाजिक विधान से आहत हुआ है ? क्या, कैसे ? कुछ देर मौन रहकर चन्द्रमौलि की ओर शून्य दृष्टि से ताककर उन्होंने निःश्वास लिया—'हुँ!' चन्द्रमौलि ने अनुनय के साथ कहा, 'बुरा मान गये आर्य ? मैं अपौरुषेय माने जानेवाले वाक्यों की अवमानना करने के उद्देश्य से ऐसा नहीं कह रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि वाक्य-मात्र सीमा में बँधे हैं, उनका आदि भी होता है और अन्त भी होता है। पर सीमा को मैं मामूली गौरव नहीं देता। सीमा मनुष्य को विधाता का दिया हुआ अनुपम साधन है। मैं अगर एक फूल बनाऊँ, चाहे वह चित्र हो, लकड़ी का बना हो, पत्थर का हो, सीमा के चौखटे में बँधा हुआ होगा। पर उसकी शोभा इसीलिए दीर्घजीवी हो जायेगी। विधाता के बनाये फूल क्षण-क्षण परि-

वर्तित होंगे, मुरझायेंगे, झड़ेंगे, फिर नये फल बनने में निमित्त बनेंगे, पर मेरा बनाया फूल अपेक्षाकृत स्थायी होगा। होगा न आर्य ? यह सीमा की महिमा है। अपौरुषेयत्व अधिक-से-अधिक एक उत्तम कल्पना है। मनुष्य उससे सीमा के भीतर असीम का इंगित पाता है।' देवरात ठक रह गये। हाय, विधाता की बनायी शर्मिष्ठा तो कब की समाप्त हो गयी, पर उन्होंने अपने हृदय में जो कमनीय मूर्ति गढ़ी है, वह तो अब भी ज्यों-की-त्यों है। देवरात ने सीमा के इस माहात्म्य को अभी तक नहीं समझा था। युवा कवि बरबस उन्हें समझने को प्रेरित कर रहा है। सीमा की भी अपनी महिमा है।

इसी समय माढव्य शर्मा हाँफते-हाँफते उपस्थित हुए। उन्होंने चन्द्रमौलि का अन्तिम वाक्य सुन लिया था। एकदम आकर धप्प-से बैठ गये, उनका कनटोप छिटक गया और मोटी चुटिया अस्तव्यस्त-सी उनके सारे मुण्ड पर बिखर गयी। हाँफते-हाँफते ही बोले, 'सीमा टूट रही है मित्र, भटार्क ने मथुरा जीत ली है। उज्जयिनी-नरेश पालक घबरा गया है। मगर धन्य है भटार्क, राज्य-पर-राज्य जीतता आ रहा है, पर गोपाल आर्यक के नाम से ही लड़ता आ रहा है। सुना गया है कि उसने मगध के सम्राट् को कड़ा पत्र लिखा है। कहता है, सेनापति तो हमारे गोपाल आर्यक ही हैं। सम्राट् ने पूज्य-पूजा का व्यतिक्रम करके गोपाल आर्यक को अनुचित पत्र लिखा है। सुना है, सम्राट् भी पछता रहा है। उज्जयिनी में तो भीषण आतंक छा गया है। प्रजा पहले से ही असन्तुष्ट है। राजा पालक के साथियों ने सबको चिढ़ा दिया है। सीमा टूट रही है। इस समय यह भाग्यहीन गोपाल न जाने कहाँ जा छिपा है। मैं कहता हूँ, सखे, पालक जायेंगे, गोपाल आर्यक का राज्य होगा। कहीं मिल गया तो प्रजा उसे कन्धे पर उठा लेगी। माढव्य शर्मा मन्त्री बनेगा मित्र, तुम बनोगे राजकवि ! सुना ? हाँ !

माढव्य उल्लास से उत्क्षिप्त थे। उन्होंने देखा ही नहीं कि चन्द्रमौलि के पास कोई और बैठा है। चन्द्रमौलि ने हँसते हुए कहा, 'दादा, आर्य देवरात को देखिए। महान् शास्त्रज्ञ और तपोनिष्ठ महात्मा हैं।' दादा उल्लास से आत्म-विस्मृत-से हो गये थे। अब सामने ज्वलन्त अग्निशिखा के समान तपस्वी की ओर देखकर विनीत भाव से बोले, 'अपराध हो गया आर्य, इस भोलेराम से आपकी मित्रता कब हो गयी ? इसकी कविता सुन रहे थे क्या ? अच्छे-भले को पागल बना देता है। अपने दादा को तो बिलकुल वश में कर लिया है। सर्वत्र सुन्दर ही देखता है। मेरा प्रणाम स्वीकार करें आर्य, मैं भूल गया था। वहाँ के रहनेवाले हैं ?'

देवरात हँसने लगे। उन्हें भी माढव्य शर्मा को दादा कहने की इच्छा हुई। 'तीर्थों में घूमता फिर रहा हूँ दादा, आपके ये तरुण मित्र सचमुच मोहते हैं।

मुझे इनकी बातो से बड़ी प्रेरणा मिल रही है।'

माढव्य ने मुँह बिचकाया। 'प्रेरणा? इसी से तो मैं घबराता हूँ आर्य, इसने न जाने गोपाल आर्यक को क्या प्रेरणा दी कि वह चुपचाप खिसक गया। मैं क्या जानूँ कि वह प्रेरणा के चक्कर मे है। उस दिन उसने मुझसे इतना ही कहा था कि 'दादा, मेरा मोह टूट गया है, मैं असाध्य-साधन करने जा रहा हूँ।' चला गया। भाग्यहीन, यहीं कहीं छिपा होगा। मिलेगा तो उसे बता दूँगा कि सबसे बडा असाध्य-साधन यही है कि माढव्य को मन्त्री बना लो। लोग ठीक बात ठीक ढग से समझते ही नही। सत्य कहता हूँ आर्य, जब समझने लगेंगे तो माढव्य जैसे सभी मूर्ख मन्त्री हो जायेंगे। इससे बडा असाध्य-साधन और क्या हो सकता है भला!'"

देवरात हँसने लगे। माढव्य शर्मा ने बनावटी रोष दिखाते हुए कहा, 'आप तो हँस रहे हैं, पर कवि मौन है। जानते हैं, क्यो? कविजी मुझे समझा चुके हैं। कहेंगे, मूर्ख विधाता की सृष्टि है, उसकी न आलोचना की जा सकती है, न उसमे परिवर्तन की बात सोची जा सकती है, पर मन्त्री मनुष्य की बनायी समाज-व्यवस्था की सृष्टि है, उसमे विधाता के बनाये मूर्ख की नियुक्ति ही विधि-विधान मे हस्तक्षेप होगा! है न यही बात, मेरे प्यारे मित्र! ले भाई, गुस्सा न कर, तेरा दादा मन्त्री नही बनेगा। गोपाल आर्यक आकर गिडगिडा-कर कहेगा—दादा, मेरे मन्त्री बन जाइए! और मैं कहूँगा—कदापि नही, तुम मुझसे विधि-विधान मे हस्तक्षेप करने का पाप कराना चाहते हो? जाओ, अपना रास्ता नापो! ले भई, अब तो खुश हो जा।' अब चन्द्रमौलि भी हँस पडा। बोला, 'दादा तुम कभी मन्त्री मत बनना। तुम जैसे हो, वैसे ही बने रहो। मगर गोपाल आर्यक के बारे मे तुमने कुछ बताया ही नही।' माढव्य शर्मा ने आर्य देवरात की ओर देखकर कहा, 'देखा न आर्य, मेरा मन्त्री होना अब खटाई मे पड गया। अभी गोपाल का ही क्या ठिकाना है। इतना ही पता लगा है कि नगर के पूर्वी छोर पर कोई एक जीर्ण उद्यान है, वहाँ कोई मनुष्य दिखायी दिया है जो उससे मिलती-जुलती आकृति का है। सुना है, राजा पालक के आदमी उसकी तलाश मे है। कानाफूसी चल रही है कि उसे बन्दी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, लेकिन पता नही क्या ठीक है और क्या नही।'

देवरात ने सुना तो एकदम विचलित हो उठे। वे उठ पडे और हाथ जोड-कर बोले, 'मित्रो, विदा लेता हूँ। आप लोगो की कृपापूर्ण मैत्री कभी भूलेगी नही। फिर कभी मिलना होगा कि नही, कौन जाने।

चन्द्रमौलि ने विस्मय के साथ उन्हे देखा, 'कहाँ जायेंगे आर्य, मैं भी तो आपकी ही भाँति यात्री हूँ। साथ हो लूँ?'

देवरात बोले, 'अभी तो अकेला ही जाऊँगा आयुष्मान्! कल अगर आप

दोनों कहीं मिल सकें तो एक बार और सत्संग का लाभ उठा लूँगा।'
कल उसी स्थान पर मिलने का निश्चय करके देवरात चल पड़े। उनके मन में दुश्चिन्ता थी।

चौदह

देवरात गोपाल आर्यक को खोजने निकल पड़े। उन्हें यह जानकर बड़ी चिन्ता हुई कि उज्जयिनी का राजा पालक उसे बन्दी बनाना चाहता है। पिछले कई वर्षों से वे तीर्थों और अरण्यों में भटक रहे हैं। उन्हें बिलकुल पता नहीं कि बीच में इतिहास ने कैसा पलटा खाया है। माढव्य शर्मा की बात से उन्हें ऐसा आभास मिला कि समुद्रगुप्त का विजय-अभियान पूरे वेग से चल पड़ा है। किसी प्रकार गोपाल आर्यक सम्राट् का विजेता सेनापति बन गया है। कदाचित् वह मृणालमंजरी को छोड़ आया है और किसी लोकापवाद से भीत होकर समुद्रगुप्त की सेना का नेतृत्व छोड़कर भाग खड़ा हुआ है। उन्होंने अनुमान से यह भी समझा कि कोई दूसरा सेनापति भटार्क इस समय उस विजयिनी सेना का नेतृत्व कर रहा है और गोपाल आर्यक का अत्यन्त विश्वसनीय अनुगत होने के कारण अब भी उसी के नेतृत्व को स्वीकार करता है। देवरात को कुछ बातें तो बिलकुल विश्वसनीय लगीं। गोपाल आर्यक निःसन्देह महावीर है और उसका शील भी ऐसा ही है कि जो भी उसके सम्पर्क में आयेगा वह उसके आचरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। सम्राट् समुद्रगुप्त से यदि उसका कभी सम्पर्क हुआ हो तो निश्चय ही वह उससे प्रभावित हुआ होगा। और एक बार अवसर मिलने पर गोपाल निस्सन्देह अपने शौर्य और पराक्रम से उसे आसमुद्र-धरित्री का विजेता बना देगा। गोपाल में महाशूर होने के लक्षण निश्चित रूप से विद्यमान हैं। पर लोकापवाद क्या है, यह वे नहीं समझ सके। मृणालमंजरी पर क्या बीत रही होगी, यह सोचकर वे बहुत ही विचलित हुए। पता नहीं, वह इस समय किस अवस्था में होगी। वे गोपाल आर्यक को खोजेंगे। मिला तो उसके हृदय की व्यथा दूर करेंगे। नहीं मिला तो एक बार फिर हलद्वीप को लौट जायेंगे। परन्तु उज्जयिनी उनका कोई परिचित स्थान तो है नहीं। गोपाल आर्यक को कहाँ खोजें, किससे पूछें, क्या पूछें? राजा यदि विरुद्ध है तो खुलकर किसी से पूछना ठीक नहीं जान पड़ता। माढव्य शर्मा कह रहे थे कि नगर के पूर्वी छोर पर कोई जीर्ण उद्यान है, वहाँ किसी ने उसके समान किसी पुरुष को देखा है। वे नगर के पूर्वी किनारे की ओर ही बढ़ते गये।

वे आगे बढते जा रहे थे, पर उनके मन मे विचारो का तूफान उठ रहा था। कवि ने ठीक ही कहा है कि सीमा की अपनी महिमा है। यह सीमा ही है कि शर्मिष्ठा उनके मानस मे ज्यो-की-त्यो विराजमान है, नवविकसित प्रफुल्ल स्वर्ण-कमल के समान वे उसे देख रहे है, पा रहे है, सदा पाते रहेगे। दुनिया बदल रही है, देवरात बदल रहे हैं पर शर्मिष्ठा स्थिर है, शाश्वत है, मोहन है। मजुला ने कहा था, मै बासी को ताजा कर सकती हूँ। देवरात ने भी मान लिया था कि बासी ताजा हो रहा है। शायद यह उनके मन का विकार था। कवि ने आज बता दिया है कि मनुष्य द्वारा सीमा मे रचित रचना बासी होती ही नही। देवरात को कुछ नया मिल रहा है। कवि ने उन्हे झकझोर दिया है। हाय प्रिये, देवरात मोहग्रस्त हो गया था। तुम्हे बासी समझना आत्मवंचना थी, विशुद्ध आत्मवंचना। तुम नित्य प्रफुल्ल, नित्य मनोहर, नित्य नवीन होकर सदा इस मानस-मन मे विद्यमान हो। तुम मेरे अन्तर्यामी की सृष्टि हो, शुद्ध चैतन्य के उपकरणो से बनी हो, कही भी उसमे जड तत्वो का स्पर्श नही है—विशुद्ध चैतन्य-मूर्ति ! मैं व्यर्थ ही भटक गया था। सीमा मे बँधी देवि, तुम चिर सत्य हो !

यह कवि कह रहा है कि अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर उपलब्ध रस को लुटा देना ही सुख है। कैसे मिलेगा यह सुख ? दीर्घकाल से ऐसा ही मानता आया हूँ, पर सुख कहाँ मिला ? इस प्रकार की चिन्ताओ मे उलझे हुए वे आगे बढते जा रहे थे। रास्ते पर कुछ लोग बात करते जा रहे थे। बातचीत के दो-चार शब्द उनके कानो मे पडे। बातचीत गोपाल आर्यक के बारे मे थी। वे ध्यान से सुनने लगे, पर थोडा दूर रहकर ही। एक दुबला-सा नौजवान कुछ उत्तेजित स्वर मे कह रहा था, 'देख लेना, ऐसा अत्याचार भगवान् भी नहीं सह सकेंगे। सबकी मर्यादा होती है। किसी के घर में घुसकर बहू-बेटियो पर कुदृष्टि डालने का परिणाम भयकर होगा। राजा का साला है तो क्या जो चाहे सो कर सकता है ? इसी पाप से इस राजा का सत्यानाश हो जायेगा।' दूसरा व्यक्ति धीरे-धीरे बोलने को कह रहा था, 'जानते नही, राजा के चर चारों ओर घूम रहे हैं। किसी ने जाके कुछ कह दिया तो चमडी उधेड ली जायेगी।' एक ठिगने-से ब्राह्मण देवता कह रहे थे, 'सत्यानाश हो जायेगा। रावण और कंस नही टिके तो यह म्लेच्छ राजा कै दिन टिकेगा। गोपाल आर्यक की सेना बढती आ रही है।' पहले व्यक्ति ने जरा आश्वस्त मुद्रा में पूछा, 'यह ग्वालारिक कौन है महाराज।' ठिगने ब्राह्मण ने डाँटा, 'तू मूर्ख ही रह गया रे भीमा, गोपाल आर्यक भी नहीं बोल सकता ?' उसने विनीत भाव से कहा, 'हम लोग तुम्हारे समान सामतर थोडे ही पढे हैं पण्डितजी, ठीक-ठीक बोल पाते तो हम भी तुम्हारी तरह पुजवाते न फिरते ? तुमने जो नाम बताया वह, क्या

कहा—गोवाल आरिक, बड़ा कठिन नाम है।' 'ग्वालारिक जैसा ही तो सुनायी पड़ता है देवता।' एक और व्यक्ति ने बीच में पड़कर कहा, 'इस बिचारे को क्यों डाँटते हो देवता वह तो बहुत दूर तक ठीक-ठीक ही उच्चारण कर रहा है, उधर मथुरा में तो लोगों ने और भी सक्षेप कर लिया है। वे अपने गीतों में ग्वालारिक भी नहीं कहते। कह देते हैं—'ल्वारिक 'या' लोरिक'। सुना नहीं वह प्राकृत दोधक जिसमे गोपाल आर्यक को महावराह की भाँति धरती का उद्धार करनेवाला कहा गया है? अब तो विदिशा के गाँवों मे भी ल्वारिक को अवतार कहकर उसकी कीर्ति-कथा गायी जाने लगी है। जो पूछ रहा है वह बताओ। हम लोग सुनने को व्याकुल हैं।'

ठिगने ब्राह्मण देवता को अच्छा नहीं लगा कि महावीर गोपाल आर्यक का नाम बिगाड़कर ल्वारिक कर दिया जाये, पर गँवार लोगों की मूर्खता से खिन्न होकर बोले, 'मूर्खो, नाम बिगाड़कर जो भी बना दो, उससे उस महावीर का क्या बिगड़ता है जिसने म्लेच्छ-मार से अकुलाई धरती का उद्धार किया है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को कान्हा या कन्हैया कह देते हो तो उनकी महिमा कुछ कम थोड़े ही हो जाती है। पर वह दोधक क्या है भाई रेमिल, सुना दो न!' रेमिल ने गुनगुनाना शुरू किया। वह कानों के पास हाथ ले जाकर आलाप करने जा ही रहा था कि भीमा ने उसका हाथ झटक दिया। बोला, 'धीरे-धीरे सुनाओ, चिल्लाकर गाने से तो सभी पकड़े जायेंगे।' रेमिल ने कहा, 'यह भी ठीक ही कह रहे हो। धीरे-धीरे ही सुना रहा हूँ।' फिर उसने धीरे-धीरे सुनाया—

बुड्डमाण धरई विम्रल, को उद्धरिहइ णाहु।
दन्तरूव करवालहरु ल्वारिकु विग्रहु वराहु॥
जाव ण ल्वारिक करि पड़इ सीह चवेडु चडक्कु।
ताव सु णरवइ मयगयहँ पइ पइ वज्जइ ढक्कु॥
(बूड़ि रही धरती विकल, को उद्धारिहि नाह।
दन्त रूप करवाल धर, लोरिक विकट वराह।
जु पै न लोरिक कर पड़इ, सिंह चपेट चटाक।
तौ लौं नृप मदमत्त गज, पग-पग बाजत ढाक॥)

ब्राह्मण देवता उत्फुल्ल हो उठे। 'वाह, गँवई-गाँव के लोग भी अद्भुत काव्य लिख देते हैं। गोपाल आर्यक वस्तुतः महावराह के अवतार हैं। उन्होंने धरित्री को एक दाँत पर उठा लिया था और गोपाल आर्यक ने तलवार की नोक पर उठा लिया है। मैं कहता हूँ, जिस दिन उनकी तलवार उज्जयिनी मे चमकेगी उस दिन म्लेच्छ राजा बिना युद्ध किये ही भाग जायेगा। पापी ने अपने साले शकार को नगर मे इस प्रकार छोड़ रखा है जैसे व्याध अपने

गुरो को ललकार देता है। चारुदत्त जैसे साधु सेठ को छेड़ने से तो अब उसके पाप का घड़ा पूरा ही भर गया है।' रेमिल ने कहा, 'क्या कहना है आर्य चारुदत्त का! ऐसा रूप, ऐसा शील, ऐसा विनय, ऐसा औदार्य, संसार में दुर्लभ है! सुना है आर्य, कि नगर की श्री आर्या वसन्तसेना उनके गुणों पर मुग्ध है। गणिका होने से क्या हुआ, उसके समान पतिव्रता मिलना भी दुर्लभ ही है। लोग कहते हैं, यह दुष्ट शकार उसके पीछे पड़ा है। उसने ऐसा दुराग्रह है कि बच्चू मात खाये हुए। निर्लज्ज पामर है। सुना जाता है कि वसन्तसेना को मरवा देना चाहता है। और यह नपुंसक राजा सब-कुछ जानकर भी चुप है।' भीमा अवसर पाकर बोल उठा, 'महाराज, दो ही तो इस नगरी के तिलक के समान पूजनीय हैं—धर्मनिधि आर्य चारुदत्त और शोभा की रानी आर्या वसन्तसेना। कल ही किसी को गाते सुना था—

दोज्जेव पूअणीआ इह णअरीए तिलअ भूदा अ।
अज्जा वसन्तसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ॥
(पूजणीय दुइ ही यहाँ, नगरी - तिलक ललाम।
वह वसन्तसेना सती, चारुदत्त गुनधाम।)

ठिगने ब्राह्मण ने उचककर कहा, 'मरवा देगा? क्या धर्म रसातल को चला जायेगा, कला का गला घोंट दिया जायेगा, शील का नाश हो जायेगा! हे भगवान्, यह पापलीला कब तक चलती रहेगी!' रेमिल बोला, 'अब अधिक नहीं चलेगी देवता। बड़ा हल्ला है कि गोपाल आर्यक छिपके आ गया है। राजा उसे पकड़ने की सोच रहा है। दो-एक दिनों में देखोगे, कुछ होके रहेगा।'

ठिगने पण्डितजी बोले, 'अनर्थ न हो जाये रेमिल, वसन्तसेना कलानिधि है। मैंने उसका नृत्य महाकाल के मन्दिर में देखा है। उसके एक-एक पद-निक्षेप में शोभा बरसती है। विधाता ने उसे अद्भुत कण्ठ दिया है। आलाप लेती है तो वायुमण्डल काँप उठता है, अन्तरतर से निकले हुए शब्दों से पत्थर पिघल जाते हैं, भक्ति तो मानो उसका रूप ही है। हाय, यह पापी उसे मरवा देगा?' रेमिल ने कहा, 'कह तो रहा हूँ देवता, कि गोपाल आर्यक आ गया है, यहाँ के पाप के अन्धकार को कोई चीर सकता है तो गोपाल आर्यक की तलवार ही। घबराओ नहीं, महाकाल के दरबार में देर होती है, अंधेर नहीं।'

ब्राह्मण देवता अनमने बने रहे। उन्होंने रेमिल की बात जैसे सुनी ही नहीं। कुछ भाव-गद्गद अवस्था में बोल उठे, 'रेमिल, गान-वाद्य की रुचि तो तुम्हें प्राप्त है, पर तुमने शायद वसन्तसेना के भक्ति-भरे नृत्य को नहीं देखा। वह भावानुप्रवेश की अधिष्ठात्री देवी है। आज से कई वर्ष पहले की बात है। उस समय वह सुकुमार बालिका ही थी, उसने 'कलादिगुरु' नृत्य किया था। कलादिगुरु नृत्य! समझे?' रेमिल कुछ असमंजस के साथ बोला, 'नहीं देवता,

यह नृत्य क्या होता है ? मैं नहीं जानता।' ब्राह्मण देवता ने कहा, 'कैसे जानोगे ? म्लेच्छ राजा के राज्य से तो यह सब उठ ही गया है। कलाविगुह नृत्य कभी मथुरा की विशेषता माना जाता था। भगवान् श्रीकृष्ण ने कालिय नाग के सहस्र फणों पर विकट नृत्य किया था। उसकी विशेषता यह थी कि नाचनेवाला बालक जानता ही नहीं था कि वह भयंकर मृत्यु के फूत्कारों से घिरा हुआ है, वह खेल रहा था, सहज भाव से। और मृत्यु का भीषण विग्रह कालिय नाग अपने विकराल फण-मण्डल के साथ चूर-चूर होता जा रहा था। वह पूर्ण रूप से जीवन के उगते अंकुर को विदारण करने पर तुला हुआ था और जीवन था कि किलकारी मारकर थिरक रहा था। वसन्तसेना ने भगवान् कृष्ण बनकर उस विकट-मनोहर नृत्य को उजागर किया था। मैं तो अपने गुरुजी के साथ देखने चला गया था। आहा, बड़े दुर्लभ योग से ऐसा नृत्य देखने का अवसर मिलता है। वसन्तसेना तो कृष्णमय हो गयी थी। उसका भावानुप्रवेश बस देखने ही योग्य था। मेरे गुरुजी तो ऐसे अभिभूत हुए मानो उन्हें साक्षात् भगवान् के ही दर्शन हो रहे थे। वह एक-एक थिरकन, एक-एक चारी, एक-एक किलकार, एक-एक पदाघात अपूर्व था। गुरुजी भाव-विह्वल होकर गा उठे थे—

एवं परिभ्रम हतौजसमुन्नतासम् ।
आनम्य तत् पृथुशिरः स्वधिरूढ आद्यः ।।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्र-
पादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त" ।।

रैमिल ने कहा, 'जरा गुरुजीवाले श्लोक का मतलब भी समझा दो देवता।'

'अब मतलब तुम्हें क्या समझाऊँ ? चपल बालिका वसन्तसेना ने जब यह श्लोक सुना तो एक बार फिर थिरक उठ पड़ी। पसीने से तर थी, पर गुरुजी के भाव-विह्वल स्वर से ऐसी प्रभावित हुई कि फिर उठ पड़ी। मतलब तो उसी ने समझा दिया। गुरुजी ने जो श्लोक पढ़ा था वह महर्षि द्वैपायन व्यास की रचना थी। उसका अर्थ समझना क्या कोई हँसी-खेल है ! पर धन्य है वसन्तसेना ! उसने एक-एक भाव को पकड़कर नाचना शुरू किया और छन्द और ताल की भाषा में उसे साकार कर दिया। लोकभाषा में तान दे-देकर वह गाती जाती थी। आशुकवित्व का वह वैभव बस देखने की ही बात थी। उसने गाया था—

ततत्थेई थेई नाचत शिशु हरि
निखिल कलादिगुरु
अत्यथिरकत चण्ड नागशिर,
चारु चारिका

भ्रमत निरन्तर।
धद्धधरित उन्नत फण शत -
ओज तेज हत
नमत भुजंगम,
झञ्झञ्झरत विषाक्त दर्प-मद
दद्दमकत मूर्धरत्न शत-
किरण समुज्जल
चरणाम्बुज द्रुत।
धद्धरकत नाग वधू उर
किलकत पुलकत
विहसत सुमधुर
ठठ्ठठ्ठमकत एक-एक सिर,
नाचत छम छम
फेरि फेरि फिरी
तत्तत्थेइ थेइ तत्तत्थेइ थेइ
निखिल कलादिगुरु!

सबने एक स्वर से कहा, 'धन्य है, धन्य है!'

सुनकर देवरात के हृदय मे प्रकाश की रेखा कौंध गयी। कलादिगुरु—जीवन के आदि देवता समस्त विध्वंसक जड शक्ति को अभिभूत करके नाच रहे हैं! आहा!

'जानते हो रेमिल, वसन्तसेना इस नगर की लक्ष्मी है। सत्यानाश हो जायेगा, यदि किसी ने उस पर उँगली उठायी।' इसी समय भीमा ने पीछे की ओर धीरे-धीरे चलते देवरात को देख लिया। कुछ फिसफिसाकर बोला और एक ओर खिसक गया। रेमिल भी डरा और पण्डित को अकेला छोडकर दूसरी ओर खिसक गया। ठिगने ब्राह्मण अकेले रह गये। जब तक भागे तब तक देवरात निकट आ गये। ब्राह्मण देवता सकपकाकर उनकी ओर देखने लगे और अन्दाजा लगाने लगे कि इस भलेमानस ने कुछ सुन तो नही लिया है। देवरात ने ऐसा चेहरा बना लिया कि जैसे कुछ सुना ही न हो। विनीत भाव से पास आकर बोले, 'आर्य, परदेशी तीर्थयात्री हूँ। अनुमति हो तो कुछ पूछना चाहता हूँ।' ब्राह्मण देवता डर गये थे। देवरात को घूरने लगे।

देवरात समझ गये कि ब्राह्मण देवता को उन पर सन्देह हो रहा है। अत्यन्त विनीत भाव से बोले, 'कुछ अनुचित हो गया हो तो क्षमा करें आर्य, परदेशी हूँ, इसलिए टोकने का साहस किया। मैं किसी और से पूछ लूँगा। कुछ अन्यथा न माने।' अब ब्राह्मण देवता कुछ पसीजे। बोले, 'भद्र, इन दिनों

उज्जयिनी में तीर्थयात्री कम आते हैं, गुप्तचर अधिक। पूछिए, आपको क्या पूछना है। जो जानता हूँ उसे छिपाऊँगा नहीं।' ब्राह्मण के स्वर में अब भी सन्देह विद्यमान था। देवरात ने कुछ न पूछना ही उचित समझा। बोले, 'आप ठीक कह रहे हैं आर्य, परदेसी पर सन्देह तो होना ही है। अच्छा, प्रणाम स्वीकार करें।' अब ब्राह्मण कुछ आश्वस्त जान पड़े। बोले, 'नहीं भद्र, हर परदेसी पर सन्देह करना उचित नहीं है। इन दिनों उज्जयिनी कुछ असाधारण परिस्थिति में है, इसलिए सन्देह होता है। हम स्वभाव से ऐसे नहीं हैं, परिस्थितियों से लाचार हैं।' देवरात ने विनीत भाव से कहा, 'ठीक कहते हैं आर्य, परिस्थितियाँ मनुष्य के व्यवहार में अन्तर तो ला ही देती हैं। मैं स्वयं उद्विग्न हूँ, इसलिए आपके उद्वेग को समझ सकता हूँ।'

ब्राह्मण पण्डित ने कुतूहल के साथ देवरात को देखा। फिर बोले, 'भद्र, चित्त में जमे हुए संस्कारों को जब ठेस लगती है तो उद्वेग होता है। हमारा राजा प्रजा के बद्धमूल संस्कारों पर चोट कर रहा है। कदाचित् म्लेच्छ देश में इन संस्कारों का ऐसा ही रूप नहीं है। इसीलिए म्लेच्छ राजा को हमारे संस्कारों को ठेस पहुँचाने में कोई दुविधा नहीं होती। सारी उज्जयिनी आज इसलिए उद्विग्न है कि हमारे संस्कारों की अवमानना हो रही है। नहीं तो प्रजा को राजा से द्वेष करने का कोई कारण नहीं है। परन्तु तुम क्यों उद्विग्न हो भद्र, तुम्हारे संस्कारों को कहाँ से ठेस पहुँची है?' देवरात को उद्वेग की ऐसी परिभाषा से थोड़ा आश्चर्य ही हुआ। वे उद्वेग को ऐसा-कुछ नहीं समझते थे। उनकी धारणा थी कि मन में कोई भी चिन्ता उद्वेग का कारण हो सकती है। बोले, 'आर्य, आप जैसा बता रहे हैं वैसा कारण तो मैं नहीं जानता, मैं तो अपने व्यक्तिगत पारिवारिक कष्टों से अभिभूत हूँ। शान्ति की खोज में भटक रहा हूँ, मिल नहीं रही है। इसी को मैं मानसिक उद्वेग कह रहा था।' ब्राह्मण पण्डित ने एक बार फिर उन्हें नीचे से ऊपर तक देखा। ऐसा जान पड़ा कि वे आश्वस्त हो आये थे। बोले, 'भद्र, तुममें सुपुरुष के लक्षण दिखायी दे रहे हैं। अभी तक मैं तुम्हें अविश्वास के साथ देख रहा था। मेरा नाम श्रुतिधर है। नाम ही नाम है, गुण वैसा नहीं है। नगरी के पूर्वी छोर पर मेरी छोटी-सी पाठशाला है। लोग उसे उपाध्यायकुल कहते हैं, प्राकृत में—'ओझाउल'। अगर कोई और करणीय न हो तो वहीं चलकर थोड़ा विश्राम कर लो। मुझे लगता है कि मैं तुम्हारी कुछ सेवा या सहायता कर सकूँगा। कुछ अन्यथा न मानो तो कहना चाहूँगा कि तुम्हारी आकृति असाधारण जान पड़ती है। तुम अपने को छिपा रहे हो। अच्छा भद्र, मैं तुम्हारा कुछ परिचय पा सकता हूँ?'

देवरात कुछ असमंजस में पड़ गये। फिर अत्यन्त विनीत स्वर में बोले, 'आर्य, आपके इस अकारण स्नेह से अनुगृहीत हुआ। मैं क्या अपना परिचय

बहुत है। जीवन-यात्रा के निर्वाह के लिए किसी के द्वार नही जाना पडता।' देवरात को अच्छा लगा। वे श्रुतिधर के विनय और शील से आह्लादित हुए। प्रसन्न भाव से बोले, 'देखो आर्य, भूल न जाना। मेरा यह शरीर क्षत्रिय का है। आपके प्रति मेरा वात्सल्य तो बराबर उसी प्रकार बना रहेगा जैसा श्यामरूप के प्रति है। पर गौरव को मुझे देना ही चाहिए। ब्राह्मण—तत्रापि विद्वान् ब्राह्मण—को सम्मान देना तो मेरा कुल-धर्म है।' श्रुतिधर ने विमर्शपूर्वक कहा, 'जानता हूँ आर्य, जानता हूँ। परन्तु जो बात आप नही जानते वह भी जानता हूँ।' आश्चर्य के साथ देवरात ने पूछा, 'वह कौन-सी बात है ?' श्रुतिधर ने कुछ इतस्ततः करते हुए कहा, 'यही कि श्यामरूप बिचारा इसी कारण से मारा गया। यदि आपने उसे ब्राह्मण-आचार मे दीक्षित करने के उद्देश्य से क्षिप्तेश्वर महादेव की पाठशाला मे न भिजवा दिया होता तो वह नटो की मण्डली के साथ न भागता और कदाचित् इतना कष्ट न भोगता। उसके मन मे बडी कचोट है आर्य !'

देवरात के हृदय मे विचित्र प्रकार की धडकन होने लगी। हा, श्यामरूप के भटक जाने का कारण क्या उनके यही रूढ विचार है ? उन्होने ही वृद्ध गोप को सलाह दी थी कि श्यामरूप ब्राह्मण-कुमार है, उसे अपने कुल-धर्म के अनुरूप वैदिक कर्मकाण्ड की शिक्षा देनी चाहिए। क्या कुल-धर्म और व्यक्तिगत रुचि मे विरोध भी होता है ? उन्हे अपने संस्कारो की सच्चाई मे कभी सन्देह नही हुआ था। आज पहली बार उनके ऊपर कडी चोट पडी है। श्रुतिधर ने उनके मन के क्षोभ को पहचाना, उन्हे देवरात का हृदय दुखाने का कष्ट भी हुआ। बात दूसरी ओर मोड़ने के उद्देश्य से बोले, 'विधाता जब कुछ करना चाहते है तो विचित्र सयोग दे देते है, आर्य ! श्यामरूप का भटक जाना अच्छा ही हुआ। अगर नट-मण्डली के साथ न भाग गया होता तो आज उसे भुवन-विश्रुत मल्ल होने की कीर्ति न मिली होती। अच्छा ही हुआ आर्य, मैंने आपको व्यर्थ ही व्यथा पहुँचायी। मेरे कहने का उद्देश्य केवल इतना ही था कि आप मुझे अपना स्नेह-भाजन शिष्य ही समझें। मुझे अनावश्यक सम्मान देकर लज्जित न करें। मुझे मेरा नाम लेकर ही पुकारें। यदि मेरी प्रार्थना आप नही स्वीकार करते तो सच मानिए आर्य, आपके कुल-धर्म के संस्कारो पर और भी चोट पहुँच सकती है, मैं पैर पकड़ लूँगा।' श्रुतिधर ने देवरात के हृदय को ठीक ढग से सहलाया। वे प्रसन्न मुद्रा मे कहने लगे, 'साधु आयुष्मान्, तुम्हारे इस शील-गुण से मैं पराजित हो गया हूँ। चलो, अपनी कुटिया मे। मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ। मैं तुम्हारी बातो से अपने को ही पा रहा हूँ। चलो, देर करने से क्या लाभ ?'

उज्जयिनी में एक बहुत पुराना बगीचा था, जिसे चण्डसेन के पूर्व-पुरुषों ने निर्माण कराया था। उसमें एक छोटा-सा प्रासाद और एक तालाब भी था। दीर्घकाल से उपेक्षित होने के कारण प्रासाद अत्यन्त जीर्ण हो गया था और इसे 'जीर्णोद्यान' कहा जाता था। किसी समय यह उद्यान और भवन निश्चय ही बहुत सुन्दर रहे होंगे। परन्तु अब यह मुतहा समझा जाने लगा था। उज्जयिनी में इसके बारे में अनेक भयजनक कहानियाँ प्रचलित हो गयी थीं। बहुत-से प्रत्यक्षदर्शियों ने इसमें विकराल आकृति के भूत देखने का दावा किया था। रात को उधर जाने का साहस बहुत कम लोगों को होता था। उज्जयिनी में उस समय पालक नामक शक राजा का राज्य था। मथुरा में इन्हीं के सौतेले भाई उपवदात राज्य करते थे। दोनों भाइयों में परस्पर विश्वास और प्रेम बताया जाता था। परन्तु साधारण प्रजा दोनों को म्लेच्छ समझती थी और दोनों से असन्तुष्ट थी। मुख्य कारण राजा और प्रजा के धार्मिक और सामाजिक आदर्शों का विरोध था। दोनों ही राज्यों के सैनिक प्रजा के धार्मिक विश्वासों का तिरस्कार करते थे और आये दिन सैनिकों के अत्याचारों की झूठी-सच्ची खबरें उड़ती रहती थीं। केवल चण्डसेन के प्रति जनता में श्रद्धा रह गयी थी, क्योंकि वे प्रजा की भावनाओं का आदर करते थे। मथुरा और उज्जयिनी एक ही वंश द्वारा शासित राज्य थे। चण्डसेन पालक और उपवदात दोनों के पितृव्य होने के कारण दोनों के ही सम्मान के पात्र थे। पर नगर में कुछ इस प्रकार की कानाफूसी चल रही थी कि वे पालक से किसी बात पर अप्रसन्न थे, इसलिए मथुरा चले गये थे। शार्विलक ने चण्डसेन के परिवार को चुपचाप इसी उद्यान-भवन में रखा था। चण्डसेन की आज्ञा से किसी प्रकार की कोई सफाई नहीं की गयी। भवन के भीतरी हिस्से को स्वयं शार्विलक और वीरक ने झाड़-पोंछकर साफ किया था। बाहर ज्यों-का-त्यों रहने दिया था। बाहर से देखनेवालों को बिल्कुल पता नहीं चलता था कि इसके भीतर कोई रह रहा है। शार्विलक भी अपने को छिपाकर ही इसकी देख-रेख करता था। इस कार्य में उसे अनायास ही बहुत अच्छी सहायता मिल गयी थी।

जीर्णोद्यान के टूटे हुए सरोवर की दूसरी ओर एक पाठशाला थी। साधारण जनता में यह 'ओझाउल' (उपाध्याय-कुल) के नाम से प्रसिद्ध थी। इसका खर्च स्वयं चण्डसेन चलाते थे। परन्तु वह खर्च नाममात्र का ही था। पाठशाला के आचार्य श्रुतिधर उज्जयिनी में सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। नगर के अनेक प्रतिष्ठित परिवारों के बालक उनसे शिक्षा प्राप्त करते थे। अपनी वृत्ति

के लिए उन्हे किसी के द्वार नही जाना पडता था। इन्ही श्रुतिधर से शार्विलक की मैत्री हो गयी। स्वयं चण्डसेन ने ही यह मैत्री करा दी थी। चण्डसेन का श्रुतिधर पर अगाध विश्वास था। उज्जयिनी में केवल ये ही एक मनुष्य थे जिन्हे यह जानकारी थी कि चण्डसेन का परिवार जीर्णोद्यान के भग्न प्रासाद मे निवास कर रहा है। श्रुतिधर की प्रेरणा पाकर उनके विद्यार्थियों ने जीर्णोद्यान के भूतो की कहानियाँ नगर मे और भी अधिक फैला दी थी। अनेक रूपो मे ये *कहानियाँ फैली थी, पर साथ-ही-साथ श्रुतिधर के अनजाने ही उनकी दैवी* शक्तियों का भी प्रचार होता रहता था। विद्यार्थियो ने ऐसी बातें भी गढ ली थी कि उनके गुरु ही जीर्णोद्यान के भूतो को वश मे रख सकते हैं। गुरु के प्रति अत्यधिक श्रद्धा के कारण उन्होंने उनकी अलौकिक शक्तियो का प्रचार बहुत बढा-चढाकर किया था। स्वयं श्रुतिधर का उसमे कोई हाथ नही था। परन्तु नगर मे वे सिद्ध पुरुष के रूप मे ख्याति तो पाने ही लगे थे।

श्रुतिधर का उपाध्याय-कुल (ओझाउल) इसी पुराने उद्यान मे था। किसी जमाने मे यह उद्यान बहुत मनोरम रहा होगा, लेकिन इस समय उसकी हालत बहुत अच्छी नही थी। ऐसा लगता था जैसे दीर्घकाल से उसको सुशिक्षित हाथो का यत्न नही मिला था। जिन स्थानो पर कभी चम्पक, सिन्दुवार, कर्णिकार, कदम्ब आदि मनोहर पुष्पोवाले वृक्ष रहे होगे, वहाँ अब अयत्नवर्द्धित करवीर और भाण्डरीक गुल्मो का आविर्भाव हो आया था। कुएँ से वृक्षो तक जानेवाली नालियो मे घास निकल आयी थी और केदारो मे दूब, कुश और सरकण्डो का प्रादुर्भाव हो आया था। उद्यान को घेरनेवाली दीवारो मे पीपल और बरगद के पेड निकल आये थे और गर्वपूर्वक अपनी जीवनी-शक्ति की घोषणा कर रहे थे। उद्यान किसी बडी योजना और सम्पत्ति से बना होगा। उसमे एक बडा-सा महल भी था और उसके मालिक के मनोविनोद के लिए बने हुए रंग-गृह और आस्थान-मण्डप भी थे, पर दीर्घकाल से उनकी कोई देख-रेख न होने मे वे बहुत जीर्ण लगने लगे थे यद्यपि उतने पुराने वे वास्तव मे थे नही। इस महल से थोडी दूरी पर बनी हुई श्रुतिधर की कुटिया सचमुच ही कुटिया थी। उसके बाहर एक विशाल बकुल वृक्ष था। उसकी छाया मे श्रुतिधर का अध्ययन-अध्यापन, पूजा-पाठ सब कुछ चलता था। कुटिया का उपयोग केवल बरसात के समय ही कुछ हो जाता था। बकुल वृक्ष के नीचे भूमि अवश्य साफ कर ली गयी थी और मिट्टी-पत्थर से कुछ वेदियाँ भी बना ली गयी थी।

चण्डसेन का परिवार बहुत छोटा था। उनकी पत्नी साध्वी महिला थीं। उनके पिता अनकदान पुरुषपुर के शक सरदार थे और बौद्ध-धर्मी थे। पुत्री को उन्होंने बौद्ध उपासना-पद्धति मे दीक्षित किया था। वे दिन-रात पूजा-पाठ मे लगी रहती थीं। अष्ट-सहस्री प्रज्ञा-पारमिता का वे नित्य पाठ किया करती

थीं, और बुद्ध-प्रतिमा के सामने ध्यानावस्थित होकर महायान शाखा के मन्त्रों का जप किया करती थी। उज्जयिनी के जीर्णोद्यान मे उन्हें और कोई कष्ट तो नही था, लेकिन एक दुख उन्हें अवश्य था। वे अपने नित्य नियमों के अनुसार श्रमण साधुओं को यथेष्ट दान नही दे पाती थीं, क्योंकि बाहर जाना सम्भव नही था और वहाँ श्रमणों को बुला लाने पर नगर मे उनके प्रच्छन्न आवास का पता लग जाने की आशका थी। उनके दो छोटे-छोटे पुत्र थे। आचार्य श्रुतिधर ने उन्हें अपनी पाठशाला मे ले लिया था और स्पष्ट निर्देश दे दिया था कि वे अपना सही परिचय किसी बालक को न दें। रात को उन्हें प्रच्छन्न रूप से माता के पास पहुँचा दिया जाता था। शार्विलक भी रात को ही स्वामिनी से मिलता था और आवश्यक आदेश प्राप्त करता था। वह पाठशाला मे एक ऐसे स्थान पर बैठकर जीर्ण प्रासाद पर कडी नजर रखता था जहाँ से प्रासाद-द्वार स्पष्ट दिखायी देता था। वीरक भी प्रासाद के एक अश मे रहता था और स्वामिनी की सेवा के लिए जो कुछ आवश्यक होता था उसे जुटा दिया करता था। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। आचार्य श्रुतिधर शार्विलक को छोटे भाई की तरह स्नेह देते थे। धीरे-धीरे उन्होंने शार्विलक के पूर्व जीवन की सारी बातों का पता लगा लिया। दोनों का दोनों पर पूर्ण प्रेम और विश्वास हो गया था।

एक दिन चण्डसेन की पत्नी ने शार्विलक को बुलाकर कहा कि उन्होंने भिक्षुओं के निमित्त कुछ दान सामग्री रखी है। उन्होंने आदेश दिया कि शार्विलक चुपचाप उसे बौद्ध-विहार में पहुँचा दे।

उज्जयिनी मे अनेक बौद्ध-विहार थे। सबसे प्रसिद्ध विहार श्रेष्ठिचत्वर के निकट था। नगर के बडे-बड़े महाजन इस विहार के अनुयायी थे। यहाँ सौ भिक्षुओं का निवास था। विहार के वरिष्ठ भिक्षु महानन्द स्थविर थे। उनकी विद्वत्ता और तपस्या की बडी ख्याति थी। यद्यपि श्रुतिधर बौद्ध मत के विरोधी थे, परन्तु वे भी महानन्द स्थविर के शास्त्र-ज्ञान के प्रशसक थे। उनसे परामर्श करके शार्विलक ने इसी विहार मे दान-सामग्री पहुँचाने का निश्चय किया।

विहार तक पहुँचाने का रास्ता श्रेष्ठिचत्वर के बीच से होकर जाता था। नगर से पूरी तरह परिचित न होने के कारण शार्विलक को कई लोगों से पूछकर रास्ता पहचानना पड़ा। वह सूर्यास्त के बाद ही निकला था। विहार से लौटते समय अन्धकार घना हो गया था, श्रेष्ठिचत्वर के सामने के रास्ते पर बड़े-बड़े मकानों के गवाक्षों से छन-छनकर हल्का प्रकाश पड रहा था, जिससे मार्ग साफ-साफ दिखायी देता था। शार्विलक इस हल्के प्रकाश से रास्ते का अन्दाजा लगाते हुए जीर्णोद्यान की ओर बढा जा रहा था। अचानक उसे किसी गली से चिल्लाने की आवाज सुनायी पड़ी। वह उधर ही मुडा और देखकर आश्चर्य

से स्तब्ध रह गया। एक प्रौढ़ व्यक्ति, जो वेश-भूषा में ब्राह्मण जान पड़ता था, दो-तीन दण्डधरों से उलझा हुआ था। दण्डधर उसे बुरी तरह पीट रहे थे। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—'देखो लोगो, आर्य चारुदत्त दरिद्र हो गये हैं तो ये पापी उनके घर में घुसकर महिलाओं का अपमान कर रहे हैं।' दरवाजे के भीतर से कोई स्त्री जोर-जोर से चिल्ला रही थी। उसके हाथ का दीया एकाएक गिर गया। वह और जोर से चीखने लगी। ऐसा जान पड़ता है कि उस स्त्री को पकड़ने के लिए दण्डधरों में से कोई भीतर घुस गया था और उसे उठा लेने की कोशिश कर रहा था। ब्राह्मण बुरी तरह चिल्ला रहा था। एक क्षण में उस स्त्री को भी घसीटकर बाहर ले आया गया। शार्विलक को समझने में देर नहीं लगी। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह सारा अत्याचार बीच नगर में हो रहा है, परन्तु कोई इस ब्राह्मण और इस स्त्री की सहायता करने के लिए बाहर नहीं आ रहा है। बाहर आना तो दूर रहा, कहीं कोई विरोध में एक शब्द भी नहीं कह रहा है। विचित्र आतंक था!

शार्विलक क्रोध से तमतमा गया। ऐसा अनर्थ उसने कभी देखा नहीं था। उसे एक क्षण के लिए लगा कि वह भण्डों और कापुरुषों की बस्ती में आ पहुँचा है। सिंह की भाँति वह दहाड़ उठा, 'कौन है जो स्त्रियों पर अत्याचार कर रहा है! मैं हूँ शार्विलक, मेरे सामने यह सब नहीं चल सकता, मैं एक-एक को मसल दूँगा।' आवेश में वह भूल ही गया कि उसे अपना परिचय नहीं देना चाहिए था, वह तो छिपकर उज्जयिनी में रह रहा था। वह तेजी से दण्डधरों पर टूट पड़ा, परन्तु उसे बहुत उलझना नहीं पड़ा। उसके नाम ने जादू का-सा काम किया। दण्डधर आपस में फुसफुसाये, यह शार्विलक कहाँ से आ गया! और तेजी से भाग गए। ब्राह्मण देवता सज्ञा-शून्य होकर गिर पड़े थे। भागते समय दण्डधरों ने उस स्त्री को ढकेलकर उनके ऊपर गिरा दिया था। अँधेरे में शार्विलक ने टटोलकर ब्राह्मण देवता को उठाया और उनके ऊपर बेहोश गिरी स्त्री को भी अलग किया। दण्डधरों के भाग जाने के बाद कुछ गृहस्थों में भी साहस का सचार हुआ। वे दीपक लेकर घटना-स्थल पर पहुँच गये। पानी मँगाया गया और दोनों को होश में लाया गया। होश में आते ही ब्राह्मण फिर तनकर खड़ा हो गया और आविष्ट के समान बोलता गया, 'आर्य चारुदत्त के घर में यह अत्याचार मेरे रहते नहीं हो सकता। यदि किसी ने इस दासी पर हाथ लगाया तो उसका सिर तोड़ दूँगा। शार्विलक ने ब्राह्मण देवता को आश्वासन दिया, 'घबड़ाने की कोई बात नहीं है, गुण्डे भाग गये हैं। मैं शार्विलक हूँ। मुझसे भी यह अत्याचार नहीं देखा जायेगा। मेरी ओर देखो, मैं गुण्डों का काल हूँ।' वहाँ जितने लोग थे शार्विलक को देखकर चकित रह गये। ब्राह्मण ने कहा, 'भद्र, तुम हमारे रक्षक होकर यहाँ आ गये, नहीं तो इन अत्याचारियों

ने इस घर की मान-मर्यादा नष्ट ही कर दी थी।' फिर एकाएक पीछे घूमकर चिल्ला पड़े, 'मदनिका! हाय-हाय! यह दूसरे घर की दासी यहाँ आकर अपमानित हो गयी। अब चारुदत्त पर किसी की आस्था रहेगी!' इसी समय मदनिका की संज्ञा भी लौट आयी। उसने अर्ध-चेतनावस्था में शार्विलक का नाम सुन लिया था। फटी-फटी आँखों से शार्विलक की ओर देखती हुई फफक-कर रो पड़ी, 'हाय, आर्य शार्विलक, तुम यहाँ कैसे पहुँचे! मैं माँदी हूँ।' शार्विलक एक क्षण के लिए सन्न रह गया। वह क्या सुन रहा है, यह माँदी है। पास खड़े मनुष्य के हाथ से दीपक लेकर उसने माँदी को अच्छी तरह देखा। माँदी ही तो है! जी मे आया कि एकदम उसे उठाकर छाती से लगा ले, परन्तु इतने लोगों के बीच वह ऐसा न कर सका। केवल आश्वासन देने के स्वर में इतना ही कह सका, 'माँदी, मदनिका, मैं शार्विलक ही हूँ।' थोड़ी देर तक विचित्र सन्नाटा रहा। फिर ब्राह्मण देवता ने ही मौन भंग किया, 'आर्य शार्विलक, आपके नाम और यश से परिचित हूँ, परन्तु ऐसी विषम स्थिति में आपके दर्शन होंगे, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैं हूँ आर्य चारुदत्त का मित्र मैत्रेय। यह चारुदत्त का निवास-स्थान है। यह मदनिका है। यह आर्या वसन्तसेना की नयी दासी है। आर्या वसन्तसेना ने इसके हाथों कुछ सन्देश आर्य चारुदत्त को भिजवाया था, परन्तु वे घर पर नहीं हैं। मैं इसे आर्या [illegible] के निवास-स्थान तक पहुँचाने के लिए जा रहा था कि अत्याचारी [illegible] का साला अपने दण्डधरों के साथ यहाँ पहुँच गया और बलपूर्वक [illegible] करना चाहा। अगर तुम न आ गये होते तो आज इस नगरी के [illegible] दो सहृदयों का अपमान हो गया होता। एक आर्य चारुदत्त [illegible] उनकी प्रिय सखी आर्या वसन्तसेना का। अपमान तो अब [illegible] अनर्थ नहीं हो पाया। मैं तो बुरी तरह से आहत हो [illegible] विचारी मदनिका को कितनी चोट आयी है! [illegible] ऐसा अनर्थ भी होने लगा। तुमने अपनी आँखों देखा कि [illegible] को किस बुरी तरह ताडित और अपमानित किया गया। [illegible] छाती धड़क रही है। काश, इसे किसी प्रकार से सुरक्षित [illegible] पर पहुँचा सकता। क्या तुम मेरी थोड़ी और [illegible] शार्विलक ने ब्राह्मण को आश्वस्त करते हुए कहा, [illegible] आप घर के भीतर जाकर विश्राम करें, [illegible] मदनिका मेरी पूर्व-परिचित है। मैं इसे आर्या [illegible] पहुँचा दूँगा।' फिर मदनिका की ओर [illegible] निवास पर जाने में तुम्हें कोई आपत्ति तो [illegible] मदनिका का चेहरा प्रफुल्ल हो गया। उसमें लज्जा की थोड़ी [illegible] बोली, '[illegible],

आप पर विश्वास न करूँ ऐसी अधमा नहीं हूँ। मैं पूर्णरूप से आश्वस्त हूँ कि आप मुझे केवल इसी समय निरापद स्थान में नहीं पहुँचा देंगे, परन्तु भविष्य में भी सदा-सर्वदा मेरी रक्षा करते रहेंगे।' शार्विलक के हृदय में इस गूढ़ अभिप्रायवाले वाक्य से गुदगुदी पैदा हो गयी। मैत्रेय से घर के भीतर जाने का अनुरोध करते हुए मदनिका से उसने कहा, 'चलो देवि, मैं तुम्हें आर्या वसन्तसेना के घर पहुँचा दूँ, परन्तु रास्ता तुम्हें ही बताना होगा। मैं इस नगरी में अपरिचित हूँ।'

मदनिका अर्थात् माँदी शार्विलक के साथ वसन्तसेना के घर की ओर चल पड़ी। थोड़ा एकान्त पाकर वह फफक-फफककर रो पड़ी, 'हाय, आर्य, मेरा उद्धार कैसे होगा! मुझे उन दुष्टों ने पाँच सौ सुवर्ण पर बेच दिया है। परन्तु मेरी मालकिन आर्या वसन्तसेना सचमुच देवी हैं। उनकी शरण में आकर मुझे सुख-ही-सुख मिला है, कोई कष्ट नहीं पहुँचा। परन्तु आर्य, मेरे हृदय में निरन्तर एक आँधी चलती रहती है। मेरे भाग्य में क्या यही बदा था? तुम फिर मिल गये हो, अब मुझे छोड़ो मत, मेरा उद्धार करो। अब मैं तुम्हारी हूँ।' रास्ते में एकाएक माँदी शार्विलक के चरण पकड़कर रो पड़ी। शार्विलक ने कहा, 'उठो माँदी, यह उपयुक्त स्थान नहीं है। तुम्हारे लिए ही पागलों की तरह मैं भटकता रहा हूँ। मथुरा से उज्जयिनी तक इसी आशा से आया हूँ कि तुम कहीं मिल जाओगी। सौभाग्य की बात है कि तुम मुझे मिल ही गयी। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तुम आर्या वसन्तसेना की शरण में हो। पाँच सौ सुवर्ण कोई ऐसी चीज नहीं है। मैं कहीं-न-कहीं से इतना धन इकट्ठा करूँगा और धर्मतः तुम्हें मुक्त करके अपने साथ रखूँगा। तुमने बहुत दुःख भोगा है, उसके लिए अपराधी मैं ही हूँ। मेरी ही कुण्ठा के कारण तुम्हें इतना भोगना पड़ा। अब तुम निश्चिन्त रहो। मैं शीघ्र ही तुम्हें मुक्त कराऊँगा और स्वयं तुम्हारे प्रेम-पाश में बँध जाऊँगा। शार्विलक अब तक उत्साहहीन होकर निर्जीव की भाँति पड़ा हुआ था। तुमने उसमें आशा और उत्साह भरा है। अब वह असाध्य-साधन करने को कृत-संकल्प है। चिन्ता न करो। एक सप्ताह के भीतर ही मैं तुम्हें अवश्य मुक्त करा लूँगा।'

माँदी के चेहरे पर उज्ज्वल प्रकाश प्रदीप्त हो उठा, बोली, 'सच कहते हो मेरे प्यारे, सिर्फ एक सप्ताह में मुझे छुड़ा लोगे?' शार्विलक ने उसी प्रकार हँसते हुए कहा, 'सच कहता हूँ प्रिये, सिर्फ एक सप्ताह का समय मुझे चाहिये।'

वसन्तसेना के आवास तक माँदी को पहुँचाकर शार्विलक बाहर से ही लौट पड़ा। माँदी ने बहुत आग्रह किया कि वह भीतर आर्या वसन्तसेना से मिल ले, परन्तु शार्विलक ने यह उचित नहीं समझा और बाहर से ही लौट पड़ा। थोड़ी दूर आकर उसने देखा कि माँदी अत्यन्त सतृष्ण नेत्रों से उसका लौटना देख

रही है, वह भीतर नही जा रही है। वह फिर लौट आया, बोला, 'प्रिये, क्या तुम्हे विश्वास नही होता कि मैं एक सप्ताह के बाद लौट आऊँगा ?' मांदी की आँखों से आँसू गिरने लगे, कुछ बोल नही सकी, केवल करुण नेत्रो ने बताया कि उसका विश्वास हिल रहा है। शार्विलिक ने कहा, 'विश्वास रखो और भीतर जाओ।' इस स्वर मे अनुनय नही था, आदेश था। मदनिका भीतर जाने लगी। अब शार्विलिक के ठिठकने की बारी थी। उसने देखा, मांदी भीतर जा रही थी, लेकिन उसकी आँखें बाहर आने को बाध्य कर रही थी। उसने फिर कहा, 'भीतर जाओ!' और बिना रुके चला गया।

वह इधर-उधर भटकता जीर्णोद्यान की ओर अग्रसर होने लगा। इसी बीच एक दण्डधर ने उसे पहचान लिया। उसने अपने एक साथी से कहा, 'यही दुष्ट है, पकड़ो।' फिर दोनो ने अन्य दण्डधरों को चिल्ला-चिल्लाकर पुकारा। चारों ओर से आवाजें आने लगी—'पकड़ो, पकड़ो, वह भागा जा रहा है···पकड़ लो।' कई सशस्त्र दण्डधर उसकी ओर लपके। शार्विलक के हाथ मे कोई शस्त्र नही था। उसके जी मे आया कि किसी दण्डधर का कोई शस्त्र छीन ले। यह सोचकर वह उनकी ओर लपका ही था कि दूसरी ओर से दस-पन्द्रह शस्त्रधारी दण्डधर उस पर झपट पड़े। एक क्षण मे उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। इस अवस्था में वह लड नही सकता। अगर वह घायल हो गया तो एक सप्ताह मे मांदी के पास आने की प्रतिज्ञा नही पूरा कर सकेगा। फुर्ती से सामने-वाले दण्डधर को ढकेलकर आगे निकल गया और बड़ी तेजी से राज-मार्ग पर दौड़ने लगा। उसने देखा कि दण्डधरों की एक विशाल वाहिनी उसके पीछे दौड रही है। वह बड़ी फुर्ती से भागता गया। उसे स्वय पता नही कि वह कितना दौड़ा। मन मे मांदी का करुण मुख था। उसे मांदी को छुड़ाना है। पाँच सौ सुवर्ण चाहिए, शस्त्र चाहिए, कहाँ मिलेगा यह सब। उसकी बाहरी चेतना सिमटकर इन्ही तीन बातो मे उलझ गयी थी—मांदी, सुवर्ण, शस्त्र। वह सोचता जाता था, दौड़ता जाता था—कहाँ ? कुछ पता नही।

उन दिनो दूर तक सवाद भेजने के लिए क्रोश पद्धति प्रचलित थी! 'क्रोश' चिल्लाकर आवाज देने को कहते थे, जितनी दूर तक आवाज स्पष्ट रूप से पहुँच जाती थी उतनी दूरी को भी 'क्रोश' ही कहा जाता था। प्राकृत-जन में यह शब्द घिस-घिसाकर 'कोस' बन गया था। उज्जयिनी मे प्रत्येक 'क्रोश' (कोस) पर एक दण्डधर-वाहिनी का अड्डा था। किसी कठिन स्थिति मे एक क्रोश-स्थान का दण्डधर चिल्लाकर आगेवाले क्रोश-स्थान के दण्डधरो को सूचना दे देता था। क्रोश-स्थान पर 'प्रहरी' नियुक्त रहते थे, जो साधारणतः नागरिकों को समय बताने के लिए घण्टा बजाया करते थे। घण्टे पर प्रहार करने के कारण ही ये लोग 'प्रहरी' कहे जाते थे। पर सार्वजनिक विपत्ति के समय ये लोग

निरन्तर घण्टे पर प्रहार करने लगते थे। शार्विलक को इस व्यवस्था के कारण बडी विपत्ति में पडना पडा। दण्डधरों ने श्रोता-स्थानों को चिल्लाकर सूचना दी—'चोर भागा जा रहा है।' शीघ्र ही नगर-भर के घण्टे टनटना उठे। सर्वत्र नागरिक सावधान हो गये, वह जिधर ही भागकर जाता था उधर ही लोग 'चोर-चोर' चिल्लाकर उसे पकडने का प्रयास करने लगे। एक ओर से भागता तो दूसरी ओर उसी विपत्ति मे पड जाता। कई जगह उसे व्यूहबद्ध लोगों का सामना करना पडा। अन्धकार उसका सहायक भी था, बाधक भी। वह फुर्ती से भागकर किसी अँधेरी गली में मुड जाता। वहाँ बाधा मिलने पर दूसरी ओर मुडता। उसे समझ में नही आ रहा था कि क्या करे। वह भाग रहा था, केवल भाग रहा था। सर्वत्र उसे एक ही ध्वनि सुनायी पडती थी—'चोर, चोर! पकडो, पकडो!' बिना सोचे-समझे वह भागता रहा। इस भाग-दौड मे रात *प्रायः बीत गयी। अब उसे अपने बच निकलने की आशा नहीं रही।* यो भी वह थक गया था। थकान से चूर हताश शार्विलक की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह नाक की सीध मे भागा। रास्ता सीधा था। आगे कोई आवाज नही थी। अँधेरे मे लुढककर नीचे गिर गया। छपाक-सा शब्द हुआ। शार्विलक ने अपने को नदी की गोद मे पाया, वह अवश भाव से पडा रहा। तैरने की कोशिश नही की, निढाल होकर अपने को धारा मे बहने दिया। अब भी नगर में खरभर थी। घण्टे टनटना रहे थे। उसने बहते रहने मे विश्राम पाया। सूर्य निकल आया था। वह दम साधकर बहता रहा। परिखा और नदी के संगम पर उसे आवर्त मे उलझना पडा। रही-सही शक्ति समेटकर वह आगे बढ गया। परिखा पीछे छूट गयी, नगर से वह बाहर आ गया। थोडी देर तक वह नदी की पुलिन-भूमि पर निढाल पडा रहा। भीगे हुए वस्त्र ज्वलन्त आतप से शरीर पर ही सूख गये। मध्याह्न तक वैसे ही पडा रहा, मूछित, निःसंज्ञ। तीसरे पहर आँख खुली। कहाँ है वह! कुछ पता नही। एकाएक कानो मे वही ध्वनि गूँज उठी—'चोर, चोर! पकडो, पकड़ो!' वह भडभडा-कर उठा और भागा। आवाज उसके भयभ्रान्त चित्त का विकल्प ही थी। कही कोई आवाज नही थी। केवल कानो मे एक प्रकार की भ्रान्ति समा गयी थी। रास्ते से वह अलग हट गया। जो कोई दिख गया उसे ही सावधान किया, पर रुका नही। वह पहाडी, जंगली ऊबड-खाबड मार्ग से भागता ही चला गया।

वह थककर चूर हो गया। अनेक विकट अरण्य मार्गों और ऊबड-खाबड गिरि-पथो को लाँघ गया था, अब चला नही जाता था। एक पहाडी कन्दरा मे वह परकटे बाज की तरह गिर गया। स्थान निरापद था, सन्ध्या उतर आयी थी। शार्विलक का अग-अग शिथिल हो गया था, पर मन मे जो आँधी चल रही थी वह ज्यों-की-त्यों थी—चाँदी, सुवर्ण, शस्त्र! उसे तीनो को प्राप्त करना होगा।

क्रम अवश्य उलटा होगा। पहले शस्त्र, फिर सुवर्ण, फिर मदी। मगर कैसे मिलेंगे ! पहले शस्त्र चाहिए। यह बहुत कठिन नहीं होगा, पर पाँच सौ सुवर्ण मुद्राएँ कहाँ मिलेंगी ? तीन ही रास्ते हैं—भिक्षा, ऋण और चोरी। भिक्षा वह नहीं माँगेगा। माँगे भी तो पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा उसे कौन दे देगा। और ऋण भी उसे कौन देगा ? क्या देखकर कोई उसे ऋण देगा ? वह सब प्रकार से नि:स्व है। अपनी कही जाने योग्य कुछ भी सम्पत्ति उसके पास नहीं है। और चोरी ? शार्विलक का अन्तरतर काँप उठा। नट-मण्डली के साथ रहता था, उस मण्डली के अनेक पुरुष चोरी में प्रवीण थे। पर नटों के चौधरी जम्मल ने उससे कभी चोरी करने को नहीं कहा। यही नहीं, भरसक वह इस बात का प्रयत्न करता था कि उसका होनहार शिष्य छबीला पण्डित जान भी न पावे कि नट लोग ऐसा पाप-कर्म भी करते हैं। उसे छबीला पण्डित को पवित्र और निष्पाप बनाये रखने में गर्व अनुभव होता था। आज छबीला पण्डित 'शार्विलक' बना घूम रहा है। क्या अब वह ऐसे पाप-कर्म में लिप्त होगा। देवरात का दुलारा, जम्मल का लाड़ला, चण्डसेन का विश्वास-भाजन शार्विलक अब चोरी करेगा ? फट जाओ धरित्री, इस पाप-चिन्तक को निगल जाओ ! धिक् !

शार्विलक सोच भी नहीं पा रहा है कि ऐसी पाप-चिन्ता उसके मन में क्यों आ रही है। मदी के कारण ? उसने आज तक किसी स्त्री की ओर कुदृष्टि नहीं डाली। मदी की ओर वह आकृष्ट हो गया। क्यों हो गया, वह ठीक-ठीक नहीं जानता। आरम्भ उसके प्रति करुणा से हुआ। क्या यह पाप था ? उसके अन्तर्यामी जानते हैं कि उसमें कलुष का स्पर्श भी नहीं था। पर जिस दिन मुक्ता भाभी ने कहा था कि मदी का छबीला के प्रति अभिलाष भाव है उस दिन उसकी शिराएँ झनझना उठी थीं। वह बुरी तरह आहत हुआ था। तब से जिस प्रकार लोहा चुम्बक के पीछे भागता है उसी प्रकार वह भी मदी के पीछे भाग रहा है। उसके अन्तर्यामी जानते हैं, इसमें उसका कोई दोष नहीं है। क्यों ऐसा हुआ ? शार्विलक कारण नहीं जानता। कहीं कोई झकझोर रहा है, मसल रहा है, चिथड़ रहा है। वह क्यों खिंचा, मन्त्र की भाँति, विवेक-हीन की भाँति ! सारा संसार चक्र की भाँति घूम रहा है। शार्विलक कर्तव्य-मूढ़ हो गया है। मदी फिर मिल गयी, पर क्या यह अच्छा हुआ ? उसका पहला पतन हुआ प्राण बचाने के लिए भागने के रूप में। उसे कभी प्राणों का ऐसा मोह नहीं हुआ। वह भागता रहा है, केवल एक मोह के कारण—प्राण बचाना है, मदी को पाना है। यह मोह पाप है। दूसरा पतन हुआ है इस पाप-चिन्ता के रूप में। उसके मन में चोरी की बात उठी है। शास्त्रकारों ने बताया है कि जो एक बार विवेकभ्रष्ट होता है उसका शतमुख विनिपात होता है। दो-मुख विनिपात तो हो ही गया। और भी होगा। शार्विलक, सावधान ! तुम्हारा

श्रौर भी विनिपात होनेवाला है।

शार्विलक सोच नहीं पा रहा है कि किस जगह वह विवेक से भ्रष्ट हुआ है। हुआ अवश्य है।

परन्तु मांदी को छुडाये बिना वह रह कैसे सकता है! उसे भूल जाना अगर विवेक है तो विवेक निश्चित रूप से घटिया चीज है। मांदी को वह भूल नहीं सकता। उसे छुडाने के लिए वह जो भी करेगा सब पुण्य-कार्य होगा। पाप इसमें नहीं है। पाप किसी श्रौर जगह है। मांदी को छुडाने का संकल्प पाप नहीं है, उसके लिए उपाय सोचना भी पाप-चिन्ता नहीं है। उसके अन्तर्यामी कहते हैं, यह पाप नहीं है। सारा सत्त्व गलकर मांदी के निकट ढरक जाना चाहता है। महामाया का त्रिभुवन-मोहिनी रूप प्राणों को जलाकर आलोकित हो रहा है। सोचना नहीं है, उसे करना है। बिना करनी के सोचते रहना ही कदाचित् असली पाप है! शार्विलक बेचैन है। कहीं कुछ फट रहा है, कुछ मथ रहा है। दारुण उद्वेग से हृदय फटा जा रहा है, फिर भी वह खण्ड-खण्ड होकर बिखर नहीं रहा है, शरीर विकल है, परन्तु चेतना नहीं छूटी है, सत्ता-भाव भी बना हुआ है, भीतर-ही-भीतर ज्वाला भभर रही है, लेकिन जला नहीं पा रही है। यह जल भी नहीं रहा है, केवल धुंधुआ रहा है, कोई क्रूरता से मर्मच्छेदन कर रहा है, पर प्राण नहीं निकल रहा है। शार्विलक व्याकुल है।

की ओर बढ़ा।

मन्दिर के पास पहुँचते ही उसे संकट का सामना करना पड़ा। एक वृद्ध उसकी ओर झपटे, 'आ गया यमराज का दूत। आगे बढ़ा तो हड्डी-पसली चूर कर दूँगा। ले जाना हो तो मुझे ले जा। खबरदार जो उधर बढ़ा।' वृद्ध ने सचमुच ही उस पर डण्डा चला दिया। शार्विलक इस संकट के लिए तैयार नहीं था, पर जब डण्डा सिर पर आ ही गया तो फुर्ती से उछलकर अपने को बचा लिया। वृद्ध के केश बिखरे हुए थे, आँखें लाल हो गयी थीं और नासिका का अग्रभाग बुरी तरह काँप रहा था। शार्विलक को लगा कि वृद्ध विक्षिप्त हैं। शरीर-सम्पत्ति के नाम पर उनके पास मुट्ठी-भर ठठरी ही थी, पर क्रोध से वे काँप रहे थे और अनर्गल गालियाँ बकते जा रहे थे। श्यामरूप हतबुद्धि !

इसी समय मन्दिर के भीतर से कोमल कण्ठ की आवाज आयी, 'हैं-हैं ! क्या कर रहे हो ?' एक वृद्धा तपस्विनी मन्दिर से बाहर आयीं। शार्विलक ने देखा तो आश्चर्य से ठक् हो गया। इस वृद्धावस्था में भी उनके मुखमण्डल से दीप्ति-सी झड़ रही थी। ललाट दर्पण के समान चमक रहा था। सम्पूर्ण शरीर से शालीनता बिखर रही थी। क्या पार्वती भी वृद्ध होती हैं ! साक्षात् पार्वती ही तो है। क्या शोभा ने वैराग्य धारण किया है, क्या तपस्या भी तप करती है, क्या कान्ति भी शरीर धारण करती है, दीप्ति को भी वार्द्धक्य का बाना धारण करना पड़ता है ? वह क्या देख रहा है ? उस वृद्धा ने आते ही वृद्ध को पकड़कर एक ओर किया। अत्यन्त मृदु कण्ठ से उन्हें डाँटा, 'तुम मनुष्य भी नहीं पहचान सकते ? यह यमदूत है कि ब्राह्मण बालक है ? तुम्हारा बेटा ही तो है ! क्यों क्रोध करते हो ? शिव आज प्रसन्न है। उन्होंने हमारा पुत्र लौटा दिया है। ध्यान से देखो !' वृद्ध ने ध्यान देने का प्रयत्न किया। पथराई आँखों से वृद्धा की ओर देखकर भीगे हुए स्वर में बोले, 'श्यामरूप है ? फिर एकदम झपटकर शार्विलक को छाती से लगा लिया, 'हाय, बेटा, तुझे मार दिया, अब नहीं मारूँगा, नहीं मारूँगा। तू अब बूढ़े बाप पर विश्वास कर, हाय बेटा !' वे सारी ताकत लगाकर शार्विलक को छाती से चिपकाते जा रहे थे। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था, पर वृद्ध के गाढ़ आलिंगन से उसे अपूर्व शान्ति भी मिल रही थी। वह वृद्धा की ओर चकित भाव से देख रहा था। श्यामरूप तो उसी का नाम है। यह वृद्धा उसे कैसे जान गयी। निश्चय ही यह साक्षात् भगवती हैं। वृद्ध की छाती से चिपका हुआ वह करुण नेत्रों से भगवती को देखता जा रहा था। उसका सिर वृद्ध की अश्रुधारा से सिक्त हो रहा था। यह कैसा विचित्र संयोग है !

वृद्धा ने बड़े प्यार से वृद्ध को समझाया, 'अभी इसे छोड़ दो। थका हुआ आया है। इसे मुझे ले जाने दो। तुम शान्त होकर शिवजी का ध्यान करो।'

वृद्ध ने शार्विलक का सिर सूंघा । कुछ कातर वाणी मे बोले, 'तू अब जायेगा तो नही बेटा !' शार्विलक के उत्तर देने के पहले ही वृद्धा बोल उठी, 'जायेगा क्यो नही ! सयाना हो गया है । कामकाज भी तो है । आता-जाता रहेगा । बूढे बाप और माँ को कैसे छोड सकता है ?' फिर शार्विलक की ओर देखकर बोली, 'आता-जाता रहेगा न बेटा ?' उत्तर की उन्हे अपेक्षा नही थी । वृद्ध से बोली, 'हाँ, आता-जाता रहेगा ! तुम क्रोध मत करना ।'

शार्विलक को विचित्र नाटक-सा दिखायी दे रहा था । वृद्ध ने डबडबायी आँखो से उसकी ओर देखा, बोले, 'मैंने यमदूत समझा था बेटा ! अब गुस्सा नही करूँगा ।' वृद्धा माता ने काटकर कहा, 'यमदूत पर भी क्यो करते हो ? वह अपने श्यामरूप को कहाँ ले गया है ? यही तो सामने है, देखो !' वृद्ध ने आश्वस्त होकर कहा, 'ठीक कहती हो ! यमदूत का कोई अपराध नही है । मेरी ही मति मारी गयी है । नही, अब किसी पर क्रोध नही करूँगा, किसी पर नही !'

शार्विलक इस सारे नाटकीय संवाद का मूक साक्षी बना रहा । उसे कुछ बोलने का अवसर ही नही दिया गया, यद्यपि मुख्य पात्र वही था । वृद्धा ने उसका हाथ पकडकर बडे प्यार से कहा, 'आ बेटा, तू थका-थका लग रहा है ।' वृद्ध चीत्कार के साथ बोल उठे, 'कभी क्रोध नही करूँगा, कभी नही ।' वे एकटक देखते रहे । फिर थके हुए-से, हारे हुए-से शिव मन्दिर की ओर चले गये ।

वृद्धा माता शार्विलक का हाथ पकडकर अपनी कुटिया मे ले गयी । शार्विलक मन्त्रमुग्ध-सा खिचता गया । उसे कुछ भी समझ मे नही आ रहा था ।

वृद्धा ने स्नेह-सिक्त स्वर मे उसे हाथ-मुँह धोने और जलपान करने को कहा । वह यन्त्र-चालित के समान आदेश-पालन करता गया । किसी माया के वश मे हो गया है क्या ?

जलपान के लिए कुछ फल-फूल के सिवा कुछ और नही था । परन्तु उसमे मातृत्व की गरिमा थी । श्यामरूप शार्विलक इस स्नेह-सिक्त जलपान से जहाँ अननुभूति तृप्ति पा रहा था वही रहस्य न समझ पाने के कारण सकुचित भी था । वह कुछ जानना चाहता था, परन्तु मुँह से कोई शब्द नही निकल पा रहा था । थोडी देर मे वृद्धा ने ही रहस्योद्घाटन किया, बोली, 'बेटा, बड़े भाग्य से तुम यहाँ आ गये । इनको तो तुम देख रहे हो न ? एकदम पागल हो गये हैं । क्रोधी तो ये शुरू से ही थे, परन्तु अब मस्तिष्क का साम्य एकदम नष्ट हो गया है । अच्छे विद्वान थे, लोगो मे सम्मान प्राप्त था, दूर-दूर से विद्यार्थी इनके पास शास्त्र का अध्ययन करने के लिए आते थे, पर अब कैसी अवस्था हो गयी है ! हमारे भाग्य मे विधाता ने केवल कष्ट ही लिखा था ।

इनके कारण मैं यमराज के दूत को बुला भी नहीं सकती। भगवान् ने जो सबसे सुन्दर प्रसाद दिया था उसे तो उठा ही ले गये, मुझे यह चिन्ता सताने लगी कि कहीं इन्हें भी न खो दूँ। गाँव में न जाने कितने लोगों से झगड़ा हो गया। जिसे मारने दौड़ते, वह भी दो-चार हाथ इन्हें लगा ही देता। गाँव में रहना मुश्किल हो गया। फिर मैं इन्हें लेकर इस निर्जन स्थान में आ गयी। यहाँ कोई मनुष्य आता ही नहीं। इसलिए ये कुछ शान्त रहने लगे। कोई बारह साल से मैं इस मन्दिर में शिव की आराधना कर रही हूँ। नित्य प्रार्थना करती हूँ कि प्रभो! जिसे ले लिया उसे तो ले ही लिया, जिसे रहने दिया है उसे सुबुद्धि दो। इनका मानसिक सन्तुलन ठीक कर दो और जीवन के अन्तिम क्षणों इनको सेवा करने की सुबुद्धि दो। मेरा गाँव यहाँ से थोड़ी ही दूर पर है। बीच-बीच में इन्हें छोड़कर चली जाती हूँ और जो कुछ भी इनके शिष्यों से मिल जाता है उसे ले आती हूँ और किसी प्रकार शिव की आराधना करती हुई मृत्यु के दिन गिन रही हूँ।

'बेटा, मैंने जो नाटक आज रचा है वह इन्हीं परिस्थितियों में। मेरे बेटे का नाम श्यामरूप था। इस लिए मैंने तुम्हें श्यामरूप कहा। ऐसा लगता है कि इन्हें विश्वास हो गया है कि तुम वही श्यामरूप हो। कौन जाने, आज से उनकी दशा सुधरने लगे! बेटा, तुमसे यहाँ रहने को तो नहीं कहूँगी, परन्तु अगर इनकी दशा सुधरने लगे तो यह आशा अवश्य करूँगी कि तुम कभी-कभी आ जाया करो। मेरा विश्वास है कि शिवजी ने ही इनके मानसिक उपचार के लिए तुम्हें भेजा है। बुरा न मानना बेटा, मैंने तुम्हारे बारे में कुछ पूछा ही नहीं, केवल अपना ही दुखड़ा रोती रही। यदि ये कभी तुमसे तुम्हारा नाम पूछें तो श्यामरूप ही बताना।'

वृद्धा थोड़ा रुकी और फिर दुलार से सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, 'तुम मेरे श्यामरूप ही तो हो। हाय बेटा, तुम क्या इस वृद्धा माँ को नहीं समझ सकते?'

वृद्धा की आँखों से आँसू झरने लगे। श्यामरूप भी डबडबा गया। बोला, 'माँ, मैं सचमुच श्यामरूप ही हूँ। कैसा विचित्र संयोग है। मैं अनाथ बालक हलद्वीप के वृद्धगोप दम्पति का पाला हुआ हूँ। मेरा नाम श्यामरूप ही है। मैंने सुना है कि मेरे पिता-माता किसी मेले में मुझे लेकर आये और किसी दुर्घटना में डूबकर मर गये। मैं अभागा बच गया। यह तो विचित्र बात है। माता, तुम कहती हो कि तुम्हारा श्यामरूप डूबकर मर गया। और यह श्यामरूप भी जानता है कि उसके माँ-बाप डूबकर मर गये। तुम अपने डूबे श्यामरूप को मुझमें देख रही हो और मैं अपने डूबे हुए माता-पिता को तुम लोगों में देख रहा हूँ। यह विचित्र संयोग नहीं है, माँ?'

वृद्धा माता चकित भाव से उसे देखने लगी, बोली, 'सचमुच विचित्र है बेटा ! मैंने अपने डूबे हुए लाल को पाया, तुमने अपने डूबे हुए माँ-बाप को पाया। अच्छा बेटा, आये कहाँ से हो ?'

श्यामरूप ने दीर्घ निःश्वास लिया, बोला, 'आ तो उज्जयिनी से रहा हूँ, माँ ! मथुरा में तुम्हारे इस पुत्र को 'मल्ल-मौलिमणि' का सम्मान मिला था, लेकिन इसका नाम बदल गया था। अब मैं शार्विलक नाम से जाना जाता हूँ। लेकिन मूल नाम श्यामरूप ही है। उज्जयिनी मे एक विचित्र सकट मे पड़कर भाग खड़ा हुआ। भागता-भागता यहाँ आकर छिपा। मुझे बिलकुल पता नही कि मैं उज्जयिनी से कितनी दूर और किस ओर आ गया हूँ। माँ, तुम्हारा यह लडका कायर नही है, परन्तु कुछ ऐसा ही संयोग बना कि प्राण बचाना आवश्यक हो गया। हाथ मे कोई हथियार नही था। कही से अस्त्र-संग्रह करके फिर मैं उज्जयिनी जाना चाहता हूँ। कुछ ऐसी बात है कि मुझे लौटना ही पडेगा। परन्तु माँ, अब तो मैं अपने माँ-बाप को पा गया हूँ। उज्जयिनी से फिर लौट-कर दर्शन करूँगा। तुम अवश्य मेरी माँ हो। मैं इस बात को कभी भी भूलूँगा नहीं !'

वृद्धा ने शिव-मन्दिर की ओर उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखा और मानो अपने से ही बोली, 'यह कैसी लीला है प्रभो।' फिर उन्होंने बडे प्यार से शार्विलक का सिर सहलाया, अस्तव्यस्त बालो को ठीक किया और देर तक एकटक उसकी ओर देखती रही। फिर वहाँ से दृष्टि हटाकर मन्दिर की ओर देखने लगी। थोड़ी देर तक वे अवश-भाव से एकटक उसी ओर देखती रही। वह दृष्टि विचित्र थी। उसमें कृतज्ञता भी थी, कातरता भी थी और उल्लास भी था। बीच-बीच में किसी अदृश्य श्रोता को लक्ष्य करके कुछ बोलती-सी जाती थी। शब्द अस्पष्ट होते थे, वाक्य अधूरे। अदृश्य श्रोता उसका अर्थ समझता था, शायद कुछ प्रत्युत्तर भी देता था, परन्तु शार्विलक उन प्रत्युत्तरो को नही सुन पाता था। देर तक एकटक देखते रहने के बाद वृद्धा के मुँह से शब्द निकले थे, 'प्रभो ! ममता में बाँधते हो, यह कैसी मुक्ति देते हो ?' अदृश्य श्रोता ने क्या उत्तर दिया, वह शार्विलक ने नही सुना। पर वृद्धा माता के कपोल दर-विगलित अश्रुधारा से भीग गये। आँखें खुली रही। कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोली, 'ठगते हो, ठगी को बढावा देते हो।' फिर मौन, फिर अश्रुपात। ममता में ही मुक्ति देते हो तो यह प्रपंचलीला क्यों ?' फिर बिना रुके अर्द्धस्फुट स्वर मे बोली, 'सब तो लिया तुमने, यह ममता भी क्यों नही ले लेते ! क्यों नाटक रच-रचके भरमाते हो ! तुम्हारी दया भी छलना है !' पता नहीं, अदृश्य श्रोता ने क्या उत्तर दिया। वृद्धा माता उसी प्रकार अभिभूत मुद्रा में ताकती रही। आँखों से अश्रुधारा उसी प्रकार झरती रही। फिर हारी हुई की

भाँति अपने-आपसे बोल उठीं , 'भाग्यहीना, सब छलना है, सब धोखा है, सब अभिनय है। क्यों व्यथा पाती है। व्यथा भी छलना है !'

शार्विलक कुछ समझ नहीं पाया कि माताजी के मन में क्या द्वन्द्व चल रहा है। कहीं मर्म पर चोट पहुँची है। उनका सारा अस्तित्व ही झनझना उठा है। वे मौन हो गयी हैं, पर कहीं अन्तरतर की अत्यन्त गहराई में कुछ झनझना उठा है। उनका सारा शरीर उद्विग्न-केसर कदम्ब-पुष्प के समान रोमांच-कंटकित हो उठा है। वे निर्वात-निष्कम्प दीप-शिखा की भाँति ऊर्ध्वमुख जल रही हैं। धरती का जड आकर्षण उसे नीचे नहीं खींच सकता। वे उत्फुल्ल हैं, रोमांचित हैं, निःस्पन्द हैं।

धीरे-धीरे वे सहज अवस्था में आने लगीं। आँखों की स्निग्धता लौट आयी, अधरों की लालिमा अपनी जगह आ गयी। नासापुट का स्पन्दन बन्द हो गया। उन्होंने स्निग्ध दृष्टि से श्यामरूप शार्विलक की ओर देखा। फिर श्यामरूप की ओर मुड़कर उन्होंने पूछा, 'कौन शस्त्र तुम्हें चाहिये, बेटा ! तुम क्या क्षत्रिय कुमार हो ?' श्यामरूप शार्विलक ने कुछ लज्जित होकर कहा, 'माता, हूँ तो ब्राह्मण कुमार ही, लेकिन संस्कार-भ्रष्ट हूँ।' वृद्धा ने गद्गद होकर कहा, 'कोई बात नहीं, बेटा ! परमात्मा ने तुम्हारे भीतर जो शक्ति दी है उसी का विकास करो, उसी को दीन-दुखियों के कष्ट दूर करने में उपयोग करो, उसी को अतिलात्मा पुरुष की सेवा में लगा दो। मैंने तो केवल इसलिए पूछा कि साधारणतः क्षत्रिय कुमार ही शस्त्र ग्रहण करते हैं। हम तो अकिंचन हैं। हमारे पास कोई शस्त्र नहीं है। केवल एक शस्त्र है जो इस मंदिर में मुझे मिला था। उसे देख लो, अगर तुम्हारे काम का हो तो ले जा सकते हो। वह शिव का ही वरदान है, इसलिए उससे कोई अनुचित कर्म नहीं करना।' शार्विलक एकदम उत्फुल्ल हो उठा, 'कहाँ है माता, मैं उसे देखूँगा। विश्वास करो माँ, अनावश्यक रूप से इस शस्त्र का उपयोग नहीं करूँगा। केवल दीन-दुखियों की रक्षा के लिए आवश्यक हुआ तो भगवान् शिव की अनुज्ञा से उपयोग करूँगा, परन्तु वह है कहाँ ? मैं देखना चाहता हूँ।' वृद्धा ने श्यामरूप को आश्वस्त किया और कहा, 'पहले तुम स्नान कर लो, कुछ विश्राम कर लो, फिर सन्ध्या समय मैं तुम्हें दिखा दूँगी।' इसी बीच वृद्ध सज्जन आ गये। उन्होंने आते ही शार्विलक के सिर पर हाथ फेरा। और बोले, 'बेटा श्यामरूप, तुम कहाँ-कहाँ भटक रहे हो ? अब इस बूढ़े को न छोड़ना बेटा !' श्यामरूप ने उनके चरणों पर सिर रख दिया और बोला, 'पिताजी, दो-चार दिन के लिए मुझे बाहर जाना होगा और फिर लौटकर आपके चरणों के पास आ जाऊँगा।' वृद्ध ने फटी-फटी आँखों से देखते हुए कहा, 'अब क्रोध नहीं करूँगा बेटा, कभी भी नहीं करूँगा।' वृद्ध के कातर स्वर से शार्विलक को कष्ट हुआ। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसने फिर चरणों में सिर रखकर कहा,.

'पिताजी, ग्राप कभी क्रोध न करियेगा।' वृद्ध ने उसे फिर छाती से चिपका लिया, 'कभी नहीं, कभी नहीं! ग्रब मैं तुझे शास्त्रार्थ-सभा में नहीं भेजूँगा। तुझसे शास्त्र-चर्चा भी नहीं करूँगा। तू जैसा है वैसा ही मुझे स्वीकार है।' कहकर वह चले गये।

सायंकाल वृद्धा माता शार्विलक को मन्दिर में ले गयी। वहाँ एक पत्थर से दबी हुई तलवार निकाली। बोली, 'देख बेटा, इससे तेरा काम होगा?' श्याम-रूप ने उस तलवार को उठाकर हाथ में लिया। भारी मालूम हुई। कोष में से निकालकर देखा तो ऐसा लगता था, जैसे सूर्य ही चन्द्रमण्डलाकार होकर चमक रहा है। किसकी तलवार हो सकती है यह! गद्गद होकर बोला, 'माँ, यह तो बहुत ग्रच्छी चीज है।' फिर माता के चरणों में सिर रखकर बोला, 'इसे दीन-दुखियों की रक्षा के ग्रलावा कहीं भी प्रयोग नहीं करूँगा। यह शिव का वरदान है, तुम्हारा ग्राशीर्वाद है। मेरा विश्वास है कि मुझे इसे चलाने की ग्रावश्यकता नहीं पड़ेगी। इसे देखकर शत्रु स्वयं निस्तेज हो जायेंगे। माँ, मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हूँ। माता ने बहुत प्यार से कहा, 'ले जा, यह तेरी रक्षा करेगी ग्रौर तुझे दीन-दुखियों की रक्षा करने का साहस देगी। यह तलवार कैसे यहाँ ग्रा गयी, यह मैं भी नहीं जानती। मैं यह भी नहीं जानती कि मेरे ग्राने के पहले की पड़ी है या बाद में किसी ने छोड़ दी है। एक दिन मन्दिर में झाड़ू देते समय एक पत्थर हटाने पर मुझे यह ग्रनायास मिल गयी। मैंने इसे छुग्रा तक नहीं। क्या करती इसे लेकर? यदि तुम्हारा काम हो जाये तो इसे शिवजी की सम्पति समझकर यहीं रख सकते हो। जान पड़ता है कि यह किसी महावीर की तलवार है।' शार्विलक ने सिर झुकाकर माता का प्रसाद ग्रहण किया।

सोलह

हलद्वीप शान्त था। ग्रार्यक के राजपद पर ग्रभिषिक्त होने से विरोधी दब गये थे। कुछ लोग तो राज्य छोड़कर ग्रन्यत्र चले गये थे। ग्रार्यक जब साम्राज्य-वाहिनी का महाबलाधिकृत होकर चला गया, तब भी वहाँ शान्ति बनी रही। सम्राट् के दूर के सम्बन्ध के मामा के पुत्र लगनेवाले लिच्छवि राजकुमार पुरन्दर ग्रमात्य-पद पर ग्रभिषिक्त थे। वही राज-काज देखते रहे। उन्होंने कई बार मृणालमंजरी से ग्रनुरोध किया कि वह ग्राकर प्रजा-पालन करे, परन्तु मृणालमंजरी ग्रपना गाँव छोड़ने पर राजी नहीं हुई। फिर भी पुरन्दर उसका

सम्मान रानी के रूप में ही करते रहे। कठिन समस्याओं के बारे में वे मृणालमंजरी की अनुमति अवश्य लेते रहे। यद्यपि मृणालमंजरी ने सदा यही कहा कि आर्य को जो उचित जान पड़े, वही करें। परन्तु इतनी-सी बात को भी वे आदेश ही मानते थे। मृणालमंजरी ने कभी अपने को रानी नहीं समझा। वह यथा-नियम व्रत-उपवास का तपोमय जीवन बिताती रही। प्रजा में पुरन्दर के व्यवहार से सन्तोष था। वह अपनी तपस्विनी रानी को पाकर प्रसन्न थी। राज-कार्य पुरन्दर ही सम्हाल रहे थे, पर कभी भी उन्होंने अपने को एक रानी के व्यवस्थापक से अधिक नहीं समझा। वे मृणालमंजरी के तपोमय जीवन में किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित करते थे, पर प्रजा में यह धारणा अवश्य दृढ़ करते रहते थे कि महीयसी रानी की अनुमति के बिना कोई पत्ता नहीं हिल सकता। प्रजा सन्तुष्ट थी। सारा काम-काज सहज गति से चल रहा था। कहीं कोई कठिनाई नहीं दिखायी देती थी।

परन्तु चन्द्रा के आने और मृणालमंजरी के साथ रहने लगने से नगर में थोड़ी अशान्ति दिखायी पड़ी। हलद्वीप के प्रायः सभी लोग चन्द्रा को चरित्रहीन नारी समझते थे। वह किसी और की ब्याहता बहू है, अपने पति को छोड़कर वह आर्यक के पीछे लग गयी। यह धर्म-कर्म के विपरीत आचरण था। उसके इस स्वैराचार से सबसे अधिक कष्ट स्वयं रानी मृणालमंजरी को हुआ और फिर भी वह उसी के साथ रहने लगी है। और कोई स्त्री होती तो उसकी खाल खिंचवा लेती, पर मृणालमंजरी है कि उसे बड़ी बहन का सम्मान देती है। इससे प्रजा में जहाँ मृणालमंजरी का मान और भी बढ़ गया, वहीं चन्द्रा के प्रति रोष और घृणा भी बढ़ गयी। चन्द्रा के पति श्रीचन्द्र ने अवसर देखकर अमात्य पुरन्दर के दरबार में व्यवहार (मुकद्दमा) खड़ा कर दिया। उसकी इच्छा केवल यह थी कि चन्द्रा को दण्ड मिले और आर्यक की दुर्गत हो। पुरन्दर बड़े असमंजस में पड़े। उनके मन में भी चन्द्रा के प्रति रोष था, पर इस व्यवहार में स्वयं राजा आर्यक के घसीटे जाने की आशंका थी।

असमंजस के और भी कई कारण थे। पुरन्दर को प्रामाणिक रूप से तो कुछ पता नहीं था, पर सारे हलद्वीप में लोग जान गये थे कि स्वयं सम्राट् ने आर्यक और चन्द्रा के सम्बन्ध को अनुचित ठहराया है और इस कार्य के लिए अपने प्रिय वयस्य और सेनापति आर्यक की भर्त्सना की है। इस प्रकार सम्राट् ने स्वयं निर्णय कर दिया है कि यह सम्बन्ध अनुचित है। व्यवहार में किसी-न-किसी बहाने सम्राट् का निर्णय भी घसीटा जायेगा। उन्होंने मृणालमंजरी से भी इस विषय में परामर्श लिया। मृणालमंजरी ने लज्जा और सकोच के कारण इस विषय में विशेष कुछ नहीं कहा, लेकिन दृढ़ता के साथ इतना अवश्य कहा कि धर्मतः यह मामला मेरे, चन्द्रा के और आर्यक के बीच का है, कोई चौथा

इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता—राज्य भी नहीं।' पुरन्दर मुनकर कुछ आश्चर्य के साथ बोले, 'क्या कहती हो देवि, इस सम्बन्ध में चन्द्रा के पति श्रीचन्द्र को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है ?' मृणालमंजरी ने दृढ़ता के साथ कहा, 'हाँ आर्य, धर्मतः श्रीचन्द्र चन्द्रा का पति नहीं है।' पुरन्दर इस दृढ़तापूर्वक कहे गये वाक्य से स्तब्ध रह गये। उन्हें मृणालमंजरी से ऐसा सुनने की कल्पना भी नहीं थी। उनकी चिन्ता और भी बढ़ गयी।

ऐसे व्यवहारों में मध्यदेश में प्राड्विवाक की राय ली जाती थी। शक-प्रभावित क्षेत्रों—मथुरा, उज्जयिनी आदि—में परामर्शदाता को 'प्राश्निक' कहा जाता था। दोनों का काम एक ही था। वे लोग वादी-प्रतिवादी और साक्षियों से प्रश्न करके सच्चाई का पता लगाते थे। अन्तर यह था कि प्राड्-विवाक स्थायी धर्माधिकारी होता था, जबकि प्राश्निक मामले की प्रकृति के अनुसार अस्थायी रूप से नियुक्त किया जाता था। मथुरा को अधिकार में लेने के बाद भारशिव नागों ने दोनों प्रथाओं को मान्यता दी थी। प्राड्विवाक चाहे तो अस्थायी प्राश्निक नियुक्त कर सकता था। मथुरा के हाथ से निकल जाने के बाद भी यह प्रथा चलती रही। हलद्वीप में तो अब भी यह प्रथा प्रचलित थी। यहाँ के प्राड्विवाक कान्तिपुरी से आये महान् धर्मशास्त्रज्ञ आचार्य पुरगोभिल थे, जो अपनी निष्पक्षता और धर्मप्रेम के कारण जनता में सम्मानित थे। राज्य के उलट-फेर के बाद भी वे अपने पद पर बने रहे। उनकी विद्वत्ता और धर्म-बुद्धि का सम्मान सभी वर्गों के लोग करते थे।

पुरन्दर ने प्राड्विवाक पुरगोभिल को परामर्श के लिए बुलाया। उन्हें आशा थी कि वे मामले की गुत्थियाँ सुलझा देंगे।

धर्म-मर्मज्ञ आचार्य पुरगोभिल पूजा-पाठ से निवृत्त होकर राज-भवन के लिए निकले तो द्वार पर ही सुमेर काका मिल गये। आचार्यपाद सुमेर काका को भली भाँति जानते थे। वे उनकी खरी बातों और फक्कड़ाना स्वभाव का आदर करते थे। सुमेर काका ने दण्डवत् प्रणाम किया। कुशल-प्रश्न के बाद आचार्यपाद ने काका के आगमन का कारण पूछा। काका ने हाथ जोड़कर कहा, 'अविनय क्षमा हो आर्य, यह जानते हुए भी कि आप राज-प्रतिनिधि अमात्य से श्रीचन्द्र के व्यवहार के विषय में वार्ता करने जा रहे हैं, मैंने आपको थोड़ी देर के लिए रोक देने की धृष्टता की है। मुझे केवल इतना निवेदन करना है कि यदि यह व्यवहार चलाने की अनुमति दी गयी तो मेरा भी एक अभि-योग विचारार्थ स्वीकृत होना चाहिए। अपने अभियोग के लिए प्रमाण देने को प्रस्तुत हूँ।' सुमेर काका की बात सुनकर आचार्यपाद रुक गये। बोले, 'तात सुमेर, मैं जानता हूँ कि तुम ऐसे प्रपंचों में नहीं पड़ते, निश्चय ही कोई गम्भीर बात होगी, जिससे तुम इस व्यवहार में अपने को उलझाना चाहते हो। मैं

तुम्हारा अभियोग सुनना चाहता हूँ। बोलो, मैं पूर्णरूप से अविहित हूँ।'

सुमेर काका ने बिना किसी भूमिका के अपनी बात कह दी, 'आर्य, हलद्वीप के सभी स्त्री-पुरुषों की तरह मैं भी चन्द्रा के आचरण का विरोधी था। मुझे भी उससे घृणा थी, परन्तु कुछ नयी जानकारी मुझे मिली है। मेरा अभियोग यह है कि श्रीचन्द्र में पुरुषत्व है ही नहीं और चन्द्रा के साथ उसका विवाह धर्म-सम्मत नहीं हुआ। यह विवाह चन्द्रा के पिता ने कन्या की इच्छा के विरुद्ध कराया है, जो मेरी दृष्टि में सामाजिक बलात्कार है। आपके सामने जो व्यवहार आनेवाला है उसकी मूल भित्ति ही यह है कि श्रीचन्द्र दावा करता है कि चन्द्रा उसकी पत्नी है। मेरी समझ में यह दावा ही गलत है। आर्य, मैं धर्मशास्त्रों का ज्ञाता नहीं हूँ। सीधी बात सीधे समझने का अभ्यासी हूँ। श्रीचन्द्र को मैं मिथ्याचारी समझता हूँ। उसने समाज को धोखा दिया है। आप मुझे शूल-विद्ध भी कर दें तो भी मैं इस मिथ्याचार का प्रतिवाद करूँगा। पुराण-ऋषियों ने क्या कहा है, मुझे नहीं मालूम। परन्तु सत्य सत्य है; बलात्कार बलात्कार। मुझे इतना ही कहना है। आगे आप और राज-प्रतिनिधि पुरन्दर जैसा चाहें निर्णय दें, परन्तु यदि आपने इस भित्ति को स्वीकार करके व्यवहार चलाया तो सुमेर उसका विरोध करेगा।'

आचार्यपाद सुनकर एकदम ठिठक गये। बोले, 'तात सुमेर, तुम बड़ी गम्भीर बात कह रहे हो, इसे प्रमाणित कर सकोगे?'

सुमेर काका ने अकुण्ठ-अस्खलित वाणी में उत्तर दिया, 'हाँ', और प्रणाम करके आचार्यपाद के उत्तर की अपेक्षा किये बिना चलते बने।

आचार्यपाद के मन में सैंकड़ों शास्त्र-वाक्य घूमने लगे। वे विचार-मग्न होकर धीरे-धीरे चलते हुए पुरन्दर के आवास पर उपस्थित हुए।

उचित स्वागत-सत्कार के बाद पुरन्दर और पुरगोभिल एकान्त में विचार करने के लिए बैठे। पुरन्दर ने संक्षेप में उनसे व्यवहार की बात और अपने मन की उलझन बतायी और साथ ही मृणालमंजरी की बातें भी उन्होंने खोल-कर आचार्यपाद के सामने रख दी।

आचार्यपाद आदि से अन्त तक चुप सुनते रहे। उनके चेहरे पर कोई विकार नहीं आया। सब सुन लेने के बाद उन्होंने राज-प्रतिनिधि अमात्य पुरन्दर की ओर वेधक दृष्टि से देखते हुए कहा, 'धर्मावतार, आप राजा के प्रतिनिधि हैं। आपके मन में यह उलझन है कि इस व्यवहार में हलद्वीप के वास्तविक राजा गोपाल आर्यक घसीटे जा सकते हैं। धर्म की दृष्टि में अनुचित कार्य करनेवाला दण्डनीय है, चाहे वह राजा हो या सामान्य जन। इसलिए इस उलझन की न तो कोई आवश्यकता है और न इसका कोई महत्त्व। धर्म की दृष्टि में गोपाल आर्यक या चन्द्रा का कोई भी अनुचित आचरण करता है उसे

दण्ड भोगना ही पड़ेगा। आपकी दूसरी उलझन यह है कि आपकी धारणा है कि सम्राट् ने स्वयं इस विषय को निर्णीत कर दिया है। यह धारणा भी निरर्थक है। धर्मतः राजा या महाराजाधिराज अकेले में बैठकर कोई निर्णय नहीं ले सकते। धर्मावतार, पितामह और शुक्राचार्य जैसे धर्मज्ञों ने यह कठोर निर्देश दिया है कि राजा या न्यायाधीश या मन्त्री किसी को भी अकेले में न तो विवाद सुनना चाहिए और न तो निर्णय लेना चाहिए। निर्णायक को पाँच दोषों से बचना चाहिए—राग, लोभ, भय, द्वेष और एकान्त में वादियों की बातें सुनना। इससे पक्षपात की आशंका बनी रहती है। यदि सम्राट् ने प्राड्-विवाक, मन्त्री, पुरोहित और धर्म-शास्त्रियों से परामर्श किये बिना कोई निर्णय लिया है तो उसका कोई मूल्य नहीं है, वह निरर्थक है। फिर आपके पास कोई ऐसा प्रमाण भी नहीं है कि सम्राट् ने सचमुच ही कोई निर्णय किया है। किया भी हो तो वह धर्म-सम्मत नहीं है। तीसरी बात यह है कि मुझे ऐसे व्यक्ति से एक सूचना मिली है जिसे राग-द्वेष से विचलित होते नहीं देखा गया है। सूचना यह है कि श्रीचन्द्र का यह दावा गलत है कि वह चन्द्रा का धर्म-सम्मत पति है। मुझे बताया गया है कि उसमें पुरुषत्व नहीं है और धर्मतः वह किसी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता। मुझे यह बताया गया है कि चन्द्रा की इच्छा के विरुद्ध उसके पिता ने किसी लोभवश यह विवाह कराया था। इन बातों के लिए प्रमाण की आवश्यकता है। परन्तु यह बात यदि प्रमाणित हो भी जाये तो उसके बाद भी समस्या उलझी ही रहेगी। इस विचित्र स्थिति में क्या करना चाहिए, अस्पष्ट ही है। धर्मशास्त्र में ऐसा कोई वचन नहीं दिखता जो इस प्रकार के जटिल व्यवहार का निर्णय करने में सहायक हो। अन्ततोगत्वा राजा ही इस विषय पर निर्णय दे सकता है। राजा की अनुपस्थिति में सबसे पहला अधिकार रानी का होना चाहिए। उनका निर्णय आपने सुन ही लिया है। फिर भी, उनका निर्णय भी एकान्त का निर्णय है, इसलिए अमान्य है।'

आचार्यपाद की इस स्पष्ट उक्ति से पुरन्दर और भी परेशान हुए। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आचार्यपाद धर्म-सम्मत बातें निर्भीकता के साथ कर रहे हैं, परन्तु उनकी परेशानी यह थी कि इससे कोई मामला सुलझ नहीं रहा था। उन्होंने विनीत भाव से कहा, 'आचार्यपाद के स्पष्ट धर्म-सम्मत कथन से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आपने सम्राट्, राजा, राज-प्रतिनिधि और रानी किसी को भी 'धर्म द्वारा अननुमोदित और असमर्थित मार्ग की ओर जाने का प्रतिवाद किया है। यह आप-जैसे धर्माधिकारी के उपयुक्त वचन हैं। परन्तु इस विवाद को सुलझाने का कोई रास्ता नहीं दिखायी दे रहा है। कैसे सुलझाया जाये, इस सम्बन्ध में आचार्यपाद का क्या विचार है?'

आचार्य पुरगोभिल ने कहा, 'धर्मावतार, मेरे कथन का उद्देश्य सम्राट्,

राजा या रानी की अवमानना बिलकुल नहीं है। मैं केवल धर्मसंगत निर्णय की ओर ही आपका ध्यान आकृष्ट कर रहा था। जो-कुछ भी होना चाहिए धर्म द्वारा अनुमोदित और समर्थित होना चाहिए। धर्म के आगे सभी समान हैं। किन्तु महाराज, मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरे पिता कान्तिपुरी के प्रसिद्ध धर्माधिकारी थे। मेरे पितामह मथुरा में नाग राजाओं के धर्माधिकारी थे। मैंने केवल धर्मशास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, बल्कि अपने पिता और पितामह से नवीन परिस्थितियों में नवीन धर्मसंहिताओं के निर्माण की कहानी भी सुनी है। मैंने सुना है कि शक और कुषाण नरपतियों ने अनेक विद्वत्-समाओं का आयोजन किया था, जिनमें धर्मज्ञ, अलूक्ष और सम्मर्शी धर्मवेत्ता उपस्थित हुए थे। विदेशी जातियों के आने के कारण समाज में नयी-नयी परिस्थितियों का प्रादुर्भाव हुआ है। उनके बारे में निर्णय देने में पुराने धर्म-सूत्रों और स्मृतियों के वचन प्राप्त नहीं होते थे। इन अलूक्ष और सम्मर्शी विद्वानों ने नयी धर्म-संहिताओं का निर्माण किया है। ऐसा मैंने अपने पिता के मुख से सुना है। मुझे ऐसा लगता है कि धर्म तो स्थिर और शाश्वत है, लेकिन इस व्यवहार की मूल भित्ति पर ही सन्देह किया गया है। इसका निर्णय मथुरा और उज्जयिनी की विद्वत्-समाओं में दिये गये निर्णयों के अनुसार ही किया जायेगा। इसलिए मेरे दो सुझाव हैं। पहला तो यह कि अपने राज्य के प्रचलित नियमों के अनुसार हमें सुयोग्य प्राश्निक नियुक्त करने चाहिए जो सम्बद्ध व्यक्तियों से पूछताछ करके इस बात का पता लगायें कि श्रीचन्द्र और चन्द्रा का विवाह जिन परिस्थितियों में हुआ था वह धर्मसम्मत अथवा वैध है या नहीं। मुझे आज्ञा दी जाये कि मैं इस बात के लिए अधिकारी प्राश्निक नियुक्त करूँ जो बता सकें कि श्रीचन्द्र में वास्तव में पुरुषत्व है या नहीं। इस बात की जानकारी मिलने में कुछ समय लगेगा। इस बीच किसी विश्वसनीय व्यक्ति को मथुरा और उज्जयिनी भेजकर विद्वत्-समाओं के नये निर्णयों को प्राप्त कर लिया जाये। इस नवीन धर्म-संहिता को हम श्रुति और स्मृति की कोटि में तो नहीं रखेंगे, परन्तु श्रुति और स्मृति के मूल उद्देश्यों को समझने में सहायक के रूप में उनका उपयोग करेंगे। वस्तुत: जो व्यवहार इस समय हमारे सम्मुख है उसका निदर्शन अधिकतर शकों और यवनों द्वारा प्रभावित आर्य-जनों के समाज में ही मिल सकता है। सारी बातों का विवेचन करके विद्वान् अलूक्ष और सम्मर्शी ब्राह्मणों ने जो निश्चय किया होगा वह अवश्य हमारे काम आयेगा।'

राज-प्रतिनिधि अमात्य पुरन्दर ने शान्ति और धैर्य के साथ आचार्यपाद की बातें सुनीं। किन्तु ऐसा लगा कि वे आचार्य की बातों को गौरव के साथ सुन तो रहे हैं पर उनका अनुमोदन नहीं कर पा रहे हैं। जिज्ञासु भाव से वे बोले, 'आर्य, अज्ञजन का अपराध क्षमा हो, बात स्पष्ट नहीं हो रही है। ये नयी परि-

स्थितियाँ क्या हैं? ये प्रच्छन्न प्रभाव कैसे हैं?' आचार्यपाद ने उसी गम्भीरता से कहा, 'आपके प्रश्न उचित है। मैं इसी प्रसंग से कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न करूँ। आपने देखा होगा धर्मावतार, कि आजकल लोक में एकान्तिक प्रेम-गाथाएँ बहुत प्रचलित हो गयी हैं। पहले इतनी नहीं थी। इस देश के कवियों ने गृहस्थी के अनेक उत्तरदायित्वों के पालन के साथ चलनेवाले पति और पत्नी के प्रेम को ही उत्कृष्ट माना है। इधर ऐसी गाथाएँ प्रायः सुनने को मिलने लगी हैं जब प्रेमिका या प्रेमी विवाह के पूर्व गाढ़ प्रेम में आकंपित होते हैं और परिवार और समाज द्वारा खड़ी की गयी सारी बाधाओं का तिरस्कार करके मिलन का प्रयास करते हैं। लोक-चित्त में धीरे-धीरे ऐसी अविवाहित कुमारियों की प्रेम-प्रतिष्ठा के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है जो अपने प्रेम के मार्ग में खड़े किये गये सारे पारिवारिक और सामाजिक अवरोधों को निरस्त करके अभीप्सित प्रेमी से मिलने का प्रयास करती हैं। है न ऐसा ही धर्मावतार, या मैं अतिरंजना कर रहा हूँ?'

आचार्य पुरगोभिल जब गम्भीर शास्त्र-चर्चा कर रहे थे उसी समय स्त्रियों का कोई उत्सव भी राजभवन के भीतर चल रहा था। थोड़ी देर तक तो वह धीरे-धीरे ही चल रहा था, पर अब उसने उद्दाम रूप ग्रहण किया। ऐसा जान पड़ता था कि अन्तःपुर में कुछ गाने-बजानेवाली स्त्रियाँ गा-बजाकर राज-बालाओं का मनोरंजन कर रही थी। बाजे का स्वर तेज हो गया और ऐसा लगा कि साथ-ही-साथ कांस्य ताल और नूपुरों की झनकार में भी तेजी आ गयी। आचार्य और अमात्य अपनी गम्भीर वार्ता में खोये हुए थे। उन्होंने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आचार्यपाद ने ज्यों ही अपनी बात समाप्त की त्यों ही झम्म से नृत्यगान बन्द हो गया। उत्ताल वाद्यों के एकाएक शान्त हो जाने से वातावरण एकदम शान्त हो गया। कोलाहल इन दो गम्भीर विचारकों का ध्यान भंग नहीं कर सका था, पर उसके अचानक बन्द होने से जो शान्ति आयी वह अधिक मुखर सिद्ध हुई। दोनों का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ। बिना पूछे ही अमात्य पुरन्दर ने बताया कि कोई आभीर महिलाओं की मण्डली आने पड़ती है। ऐसे उद्दाम-मनोहर नृत्य उन्हीं की मण्डली किया करती है। परन्तु यह क्षण-भर की शान्ति अचानक टूट गयी। एक युवती कोमल कण्ठ से अकेली ही कुछ सुनाने लगी। कण्ठ मनोहर था, स्वर स्पष्ट था और जान पड़ता था वह जान-बूझकर प्रत्येक पद का स्पष्ट उच्चारण करती जा रही थी। आचार्य पुरगोभिल के कान उसी ओर लग गये—बिना किसी चेष्टा या इच्छा के। तरुणी ने एक-एक पद पर बल देते हुए गाया—

मत्थर-लोय-निवारिय पिय-उक्किखिरिय,
मुअइ धुअइ पुणु सुक्खइ संगम वारिय।

सुविणन्तरि बिन लहइ सुहय पिय तण-फरसु ।
को पुणु रहस्सालिंगणु-मोहणु मिलण-रसु ॥
सो जलउ सुवित्थरु पुरजन-वज्जणउ ।
जो पिय जण मिलणु णिवारइ मारइ सज्जणउ ।

(शास्त्र और लोक से निवारित प्रिय के लिए उत्कण्ठित तरुणी संगम के लिए व्याकुल होकर मर रही है, काँप रही है, सूख रही है। वह सपने में भी सुभग प्रिय के शरीर का स्पर्श नहीं पा रही है, फिर प्रत्यक्ष गाढ आलिंगन के सुख और मिलन के मोहन रस की तो बात ही कहाँ उठती है। यह शास्त्र और वह पुरजनों का वरजना जल जाये, जो प्रिय-मिलन का निवारण करता है और साजन को मार डालता है।)

इस कोमल कण्ठ से पठित छन्द के तुरन्त बाद कास्य-करताल झनझना उठे, मर्दल और सयवक गमगमा उठे और एक ही साथ अनेक नूपुरों का कल्लोल मुखर हो उठा। श्रोतृ-मण्डली में जोर का ठहाका हुआ, कदाचित् गाने-वाली ने किसी अश्लील मुद्रा में अपनी बात प्रकट कर दी थी।

आचार्य पुरगोभिल ने अमात्य की तरफ देखा और मुसकराते हुए कहा, 'सुन लिया धर्मावतार, हर गाँव में, हर हाट में, हर गली में ये गाने सुनायी देंगे। आज आप इसे केवल भावलोक का विद्रोह कहकर टाल सकते हैं। पर लोक-मानस में शुष्क धर्माचार और रूढ मान्यताओं के प्रति यह भाव-लोक का विद्रोह किसी दिन वास्तव-जगत् के विद्रोह का रूप ले सकता है! जानते हैं धर्मावतार, आदि मनु ने धर्म के लिए हृदय-पक्ष को ध्यान में रखने पर भी बल दिया था—'हृदयेनाभ्यनुज्ञातः' कहा था। पुराण-ऋषि जानते थे कि शुष्क आचार-मात्र धर्म नहीं है।'

अमात्य चिन्ता में पड गये। उन्हें लगा कि आचार्यपाद के कथन में सच्चाई है। पर इसकी संगति धर्म के साथ कैसे बैठ सकती है?

आचार्यपाद ने कहा, 'धर्म के साथ इसकी संगति बैठ सकती है। लोक-चित्त के समष्टि रूप के अन्तर्यामी जिस सत्य को ग्रहण करते हैं वह अपना भाव अवश्य विस्तार करता है। थोड़ा सोचकर देखिए अमात्यवर।'

अमात्य इस धर्मपरायण के मुँह से ऐसा सुनने की आशा नहीं रखते थे। परन्तु इस कथन के शब्द-शब्द से उनकी निराएँ स्पन्दित होती गयीं। यह जो प्रेमिक युगल के चित्त में अनुराग का विराट आकर्षण है, जो शास्त्र को नहीं मानना चाहता, लोक को नहीं सुनना चाहता, पुरजन-परिजन की उपेक्षा करता है, आजन्म-लालित समस्त सम्बन्धों को क्षण-भर में तोड़ देता है—यह भी क्या किसी अन्तर्यामी का इंगित है? यह क्या व्यक्तिगत स्तर से उठ-उठकर समष्टि चित्त को प्रभावित करता रहता है? धर्म के साथ इसका क्या सम्बन्ध है?

कैसा सम्बन्ध है ? क्या दोनों में कोई सामंजस्य या संगति खोजी जा सकती है ? आचार्य कहते हैं, ऐसा हो सकता है, किया भी जाता है।

थोड़ा सोचकर पुरन्दर बोले, 'ठीक ही कह रहे हैं आर्य !'

आचार्यपाद ने कहा, 'मैं बिलकुल अतिरंजना नहीं कर रहा हूँ। अब सोचिए कि लोक-चित्त में प्रच्छन्न भाव से सामाजिक विधि-व्यवस्थाओं की अवमानना की प्रवृत्ति बढ़ रही है या नहीं। निश्चय ही बढ़ रही है। पर यह केवल काल्पनिक रस भोग-मात्र है। अगर सचमुच किसी की पुत्री सामाजिक विधि-निषेध का उल्लंघन करके प्रेम निभाना चाहे तो लोग पसन्द नहीं करेंगे। परन्तु लोग चाहें या न चाहें, सुकुमार मति की कर्मठ बालिकाओं के वैचारिक सम्मान को कार्यरूप में परिणत करने की इच्छा कभी-न-कभी प्रबल रूप धारण कर सकती है। विचारों और कल्पना की दुनिया में जो बात आज मान्य होती है उसे व्यवहार की दुनिया में स्थान पाने में देर लगती है। पर वह पाती अवश्य है।'

पुरन्दर की आँखें फैल गयीं। बोले, 'तो ?'

'इसी तरह विधि-व्यवस्था सम्बन्धी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। जिसे आज अधर्म समझा जा रहा है वह किसी दिन लोक-मानस की कल्पना से उठकर व्यवहार की दुनिया में आ जायेगा। अगर निरन्तर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।'

पुरन्दर की प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए थोड़ा रुककर आचार्यपाद ने कहा, 'देखिए, धर्मावतार, इस व्यवहार को ही लीजिए। चन्द्रा ने मन-ही-मन आर्यक को अपना वर चुना और समस्त सामाजिक विधि-विधान को मसलकर उसे पाने का प्रयास किया। लोक-गाथाओं में किसी कवि ने ऐसी कहानी गढ़ी होती तो चन्द्रा उत्तम प्रेमवती नायिका मानी जाती। वास्तविक जीवन में तो यह व्यवहार (मुकद्दमा) है।'

पुरन्दर ने केवल 'हूँ' कहकर दीर्घ निःश्वास लिया।

आचार्यपाद ने कहा, 'नयी-नयी जातियाँ आयी हैं, नये-नये आदर्श आये हैं। कल्पना-जगत् में जो आ रहा है वह व्यवहार में आयेगा। भविष्य में लोग पूछेंगे कि चन्द्रा ने अपने अन्तर्यामी के निर्देश से जो प्रेम किया, क्या वह पाप था ? धर्मशास्त्र के पास इसका क्या उत्तर है ? फिर, अगर धर्म लोक-मानस का नियन्त्रण न कर सके तो उसकी सार्थकता ही क्या है ? इसीलिए कहता हूँ धर्मावतार, कि लोक-मानस में प्रच्छन्न भाव से जो बात सत्य रूप में प्रतिष्ठित हो रही है उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। यहाँ हो रही है। शक और कुषाण नरपति इनकी उपेक्षा नहीं करते। धर्म के अन्तर्निहित तत्त्व भी इनकी उपेक्षा नहीं करते। बार-बार देखने की आवश्यकता है।

ऐसा जान पडा, पुरन्दर के मन मे उथल-पुथल हो रहा है। फिर थोडी देर सोचने के बाद वे बोले, 'आचार्यपाद के दोनो प्रस्ताव मुझे उचित जँचते हैं। पहला काम तो यह है कि आप प्राश्निक नियुक्त करके चन्द्रा के विवाह के विषय मे सभी प्रश्नो का प्रामाणिक विवरण प्राप्त कर लें। दूसरे प्रस्ताव के लिए आप ही किसी व्यक्ति का नाम सुझा दें जो मथुरा या उज्जयिनी जाकर नयी परिस्थितियोवाली शास्त्र-व्यवस्था को ले आ सके।'

आचार्यपाद ने थोडी देर सोचने के बाद निर्णय देने के स्वर मे कहा, 'धर्मावतार, नयी व्यवस्थाओ के ले आने के लिए सुमेर काका को नियुक्त करता हूँ। वे सत्यवादी है, लोभ-मोह से विचलित होनेवाले नही है और बहुत अधिक पढे-लिखे न होने के कारण उनसे यह आशंका भी नही है कि वे अपनी ओर से उन व्यवस्थाओ मे कोई फेर-बदल कर देंगे। आज ही उनके नाम से राजाज्ञा निकल जानी चाहिए। मैं कल प्रातःकाल नये प्राश्निको की नियुक्ति कर दूंगा।'

पुरन्दर ने आश्वस्त होकर कहा, 'ठीक है आचार्य, आप जो करेंगे वह निश्चय ही शास्त्रसम्मत होगा।'

सुमेर काका को राजाज्ञा भिजवायी गयी। उनकी समझ मे नही आया कि क्यो उनको उज्जयिनी भेजा जा रहा है। प्रात.काल उन्होने राज्य के प्राड्-विवाक आचार्य पुरगोभिल से जो बातें की थी उनसे इसका कोई सम्बन्ध है य नही ? वे तो इस व्यवहार का विरोध करने के लिए ही कह आये थे, फिर यह राजाज्ञा क्यो मिली ? राजाज्ञा मे स्पष्ट लिखा हुआ था कि वे आचार्यपाद से मिलकर यथोचित आदेश और पत्र आदि ले लें। यह आचार्यपाद ही बता सकते हैं कि वहाँ जाने पर यह व्यवस्था उन्हे प्राप्त होगी। वे कुछ उदास-से आचार्यपाद के पास पहुँचे। उनकी फक्कडाना मस्ती मे उतार आ गया था। वे आवश्यकता होने पर इस राजाज्ञा का विरोध भी करना चाहते थे। आचार्यपाद के निवास-स्थान पर पहुँचते-पहुँचते उनका उत्साह ठण्डा पड गया था। आचार्यपाद ने उन्हे इस अवस्था मे देखा तो उनकी मानसिक अवस्था का अनुमान करके मुसकराने लगे। यथाविधि प्रणाम-निवेदन करके उन्होंने राजाज्ञा आचार्यपाद के हाथो मे रख दी। बोले, 'आर्य, यह राजाज्ञा मिली है। आपने ही इसे भिजवाया होगा। *मैं क्या यह जानने की धृष्टता कर सकता हूँ कि इतने लोगों के* रहते मुझे क्यो इस कार्य के लिए चुना गया ?' आचार्यपाद ने हँसते हुए कहा, 'इसलिए चुना गया कि हलद्वीप-भर मे केवल सुमेर काका ही ऐसे व्यक्ति हैं जो द्विधाहीन होकर मानते हैं कि सत्य सत्य है और बलात्कार बलात्कार।' सुमेर काका ने कहा, 'देखो आर्य, पहेली मत बुझाओ। सुमेर काका अटूट गँवार है। उसने कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा कर देना। परन्तु धर्मशास्त्रीय व्यवस्था ले आने का कठिन कार्य इस गँवार से नहीं होगा।' आचार्यपाद ने हँसते हुए

कहा, 'तात सुमेर, तुमने बड़ी विकट समस्या खड़ी कर दी है। जैसी परिस्थिति तुमने चन्द्रा के विवाह के समय की बतायी है, वह यदि सत्य है तो मेरे लिए एक विकट समस्या है। अब तक पुराण-ऋषियों द्वारा लिखे गये सूत्रों और स्मृतियों में इस प्रकार की परिस्थिति में क्या करना चाहिए, यह स्पष्ट रूप से नहीं बताया गया है। तुम्हारा आरोप सत्य है या नहीं, इसकी परीक्षा तो तुरन्त कर लूंगा। परन्तु यदि वह सत्य सिद्ध हुआ तो मुझे इस युग के निर्भ्रान्त मनीषियों की राय जाननी पड़ेगी और वह उज्जयिनी और मथुरा की विद्वत्-सभाओं के निर्णय से ही ज्ञात हो सकती है, क्योंकि वे ही क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ इस प्रकार की समस्याएँ उठती रहती हैं। हमारे इस क्षेत्र के आर्य-जन समाज में ऐसी समस्या का निदर्शन या समाधान पाना कठिन है। पुराण-ऋषियों के सामने भी कदाचित् ऐसी समस्या नहीं आयी। देखो तात, धर्म का तत्व सब समय उभरकर सामने नहीं आता। सामाजिक व्यवस्थाएँ ऐसी वज्रारेख नहीं हैं जो मिट ही नहीं सकतीं। इसीलिए गुहाहित, यज्ञश्रेष्ठ धर्म की रक्षा के लिए निरन्तर विचार करते रहने की आवश्यकता होती है। इस देश के पश्चिमी क्षेत्रों में निरन्तर नयी-नयी जातियों के साथ नयी-नयी प्रथाएँ आती रहती हैं। उनका प्रभाव वहाँ तत्काल पड़ता है। इसीलिए वहाँ के विचारशील लोग निरन्तर धर्म-व्यवस्था को वर्तमान स्थिति के उपयुक्त बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। मध्यदेश के धर्मज्ञ ब्राह्मण अधिक सरक्षणशील हैं, वे सामाजिक व्यवस्था को गतिशील नहीं मानते। परन्तु दीर्घकाल के अनुभवों से मैंने जाना है कि ये व्यवस्थाएँ भी स्थिर और अनुल्लंघ्य नहीं हैं। समाज में निरन्तर बाहरी प्रभाव प्रच्छन्न रूप से आते रहते हैं और भीतर से भी नयी-नयी समस्याएँ सिर उठाती रहती हैं। ऊपर-ऊपर से लगता है कि समाज पुराने कायदे-कानून के अनुसार ही चल रहा है, परन्तु यदि निरन्तर शास्त्रसम्मत व्यवस्थाओं का परीक्षण न किया जाये तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि सारा समाज गतिहीन होकर अपनी बनायी व्यवस्थाओं की बेड़ी में आप ही कस जायेगा। कान्तिपुरी के नाग सम्राटों ने भी इस तथ्य को समझा था और मथुरा में उन्होंने विशाल-विद्वत् सभा का आयोजन किया था। शक राजाओं ने भी उज्जयिनी में इस प्रकार की विद्वत्-सभाओं का आयोजन किया, क्योंकि वे दिखाना चाहते थे कि उनका शासन वेद-शास्त्र की विधियों में विरुद्ध नहीं है। इन विद्वत्-सभाओं के निर्णय यहाँ तो उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए वहाँ से ही मँगाकर इनका उपयोग किया जा सकता है। मैंने यह दो पत्र लिख रखे हैं। मैं ठीक नहीं जानता कि इस समय उज्जयिनी में राजा कौन है। उड़ती-उड़ती जो खबरें आ रही हैं उनसे लगता है कि वहाँ की स्थिति डाँवाडोल ही है। इसलिए एक पत्र मैंने राजा के नाम से और दूसरा राज-पुरोहित के नाम से लिखा है। दोनों ही पत्र राजमुद्रांकित हैं। जो भी राजा

हो और जो भी राज-पुरोहित हो उसे देकर अभीष्ट-सिद्धि हो सकती है। तुम इस धर्म-कार्य में विलम्ब मत करो। जिसे चाहे साथ ले लो, परन्तु जाओ अवश्य।' सुमेर काका ने न 'हाँ' किया और न 'ना' किया। वे आचार्यपाद की ओर इस प्रकार विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से देखते रहे, मानो वे कुछ ऐसा सुन रहे हैं जो उनकी कल्पना से परे है। आचार्यपाद ने उनके विस्मित चेहरे को देख जरा विनोद करते हुए कहा, 'एक बात और भी तो है तात!' सुमेर काका ने पूछा, 'वह क्या है आर्य?' आचार्यपाद ने विनोद-चटुल मुद्रा में कहा, 'उज्जयिनी में आजकल हालत बहुत डाँवाडोल है। वहाँ जाने के लिए सुमेर काका की तलवार से अधिक शक्तिशाली साधन हलद्वीप में क्या है?' सुमेर काका भी प्रसन्न हुए। बोले, 'आर्य, तुम भी इस गँवार से ठिठोली करने का लोभ नहीं रोक सकते। लो, सुमेर काका भी चला और साथ में उसकी तलवार भी जायेगी।' पत्र सावधानी से लेकर यथाविधि प्रणाम करके सुमेर काका लौट आये।

सत्रह

मृणाल उदास बैठी थी। लगता था समस्त अन्तःकरण के व्यापार अन्तर्निगूढ़ होकर उसे निश्चेष्ट बनाये दे रहे थे। ऐसे ही समय चन्द्रा चुपचाप आकर खड़ी हो गयी। मृणाल ने उसे देखा ही नहीं, वह अपने-आपमें खोयी बैठी रही। उसका वह रूप बहुत मोहक था। चन्द्रा देर तक उसे मुग्ध-भाव से देखती रही। फिर उसमें एकाएक आवेश-सा आया। वह मृणाल से चिपट गयी। उसने उसके कपोलों को चूमा, माथे को बार-बार सूँघा और फिर उन्मत्त भाव से उसे कसकर दोनों भुजाओं में बाँध लिया। मृणाल घबरा गयी, बोली, 'छोड़ो दीदी, क्या पागल हो गयी हो!' चन्द्रा ने और कसते हुए कहा, 'एकदम पागल, तेरी दीदी उन्मादिनी है, विकट उन्मादमयी! पर बता तू इतनी उदास क्यों हो जाती है? जब तू उदास होती है तो इस उन्मादिनी की छाती फटने लगती है। पापी आर्यक न तुझे सुख से रहने देगा, न स्वयं सुख से रहेगा। हाय, हाय, क्या दशा कर दी है मेरी फूल-सी बहन की। कायर, डरपोक, भगोड़ा।'

मृणाल जानती थी कि चन्द्रा जब ऐसा कुछ कहती है तो वास्तव में प्यार ही जताती है, पर थोड़ा विब्बोक-वक्रिम मुद्रा में मुँह बनाकर बोली, 'ना दीदी, तुम उन्हें ऐसा न कहा करो।' दोनों के अन्तर्यामी ही केवल जानते थे कि इस प्रकार बातचीत इसीलिए प्रतिदिन शुरू होती थी कि आर्यक के बारे में अधिक

चर्चा हो सके।

चन्द्रा ने मृणाल का चिबुक उठा लिया और बोली, 'बुरा मान गयी मैना! तू जानती नहीं कि उसने मुझे कितना सताया है! हिया फट गया है मैना, मेरा हिया फट गया है! सारी दुनिया कहती है कि चन्द्रा पापिनी है, कुलटा है, आर्यक को पथभ्रष्ट करनेवाली है। पर चन्द्रा जानती है कि वह पापिनी नहीं है। आर्यक मेरा जनम-जनम का साथी है। अगर ऐसा न होता तो क्यों पागल की तरह उसके पीछे-पीछे भागती फिरती। चुम्बक के पीछे भागनेवाला लोहा क्या पापी है रे? वह विवश है, लाचार है, उसमें इच्छा-शक्ति कहाँ होती है? पर वही लोहा कहीं और लगा दो तो वज्र बन जाता है। चन्द्रा की भी वही दशा है। आर्यक के पीछे भागने को विवश है, अन्यत्र वह वज्र-जैसी दुर्भेद्य है। मेरी प्यारी बहन, चन्द्रा ने किसी को कष्ट दिया है तो तुझे, अपने प्राणों की टुकड़ी को। जिस दिन से जाना है कि तू उसे क्षमा कर सकती है, उसको स्नेह दे सकती है, उस दिन से उसकी यह हल्की-सी पाप-भावना भी समाप्त हो गयी है। मैना, अब यह चन्द्रा बिलकुल शुद्ध है, उसकी कुण्ठा समाप्त हो गयी है। वह तेरे आर्यक को जहाँ कहीं से पकड़कर तुझे सौंप देने का संकल्प कर चुकी है। चन्द्रा के संकल्प को वह अन्यथा नहीं कर सकता। वह सिर्फ इतना चाहती है कि आर्यक को जी भरकर देखने की उसकी लालसा को तू बुरा न समझे। चन्द्रा को लोग काम-विप्लुता कहते हैं। मैं आर्यक के लिए सब कुछ सहने को तैयार हूँ। केवल तेरे मन में कोई अन्यथा भाव नहीं आना चाहिए। मैं उस पर अधिकार नहीं चाहती। वह तेरा है और तेरा ही बना रहेगा। पर मैं अपने जनम-जनम के संगी को चाहूँ भी तो कैसे छोड़ सकती हूँ। बोल बहन, इतनी-सी मेरी साध तो तू पूजने देगी न? तेरे मन में अगर रंचमात्र भी कष्ट होगा तो तेरे लिए, सिर्फ तेरे लिए, इस साध को भी मिटा दूँगी। आर्यक के लिए इतना बड़ा त्याग नहीं कर सकती, पर तेरे लिए हृदय फाड़कर रख सकती हूँ। आर्यक के पीछे भागती हूँ। वह मेरी विवशता है, पर तुझे मैं इच्छापूर्वक प्यार करती हूँ। आर्यक को सर्वात्मना चाहती हूँ, तुझे उससे भी अधिक सर्वात्मना प्यार कर सकती हूँ। बता बहन, मंजूर है?'

आज पहली बार मृणाल ने चन्द्रा की आँखों में आँसू देखे। वह उसे केवल आनन्दमयी ही मानती है। अनुकूल हो या प्रतिकूल, चन्द्रा सब जगह से आनन्द-रस खींच लेती है। पर आज उसे क्या हो गया है। आँसुओं की धारा बाँध तोड़कर फट पड़ी है। लगता है, जनम-भर का दबा हुआ विषाद आज बाँध तोड़कर बह जायेगा। इतने आँसू! हे भगवान्! मृणाल का कलेजा फटने को आया। 'नहीं बहन, तुमको जब तक नहीं जाना था तब तक जो भी समझा हो, अब जानती हूँ। हाय, मेरे परम प्रियतम को कोई इतना निश्छल प्यार भी दे

सकता है । नहीं बहन, मृणाल तुम्हारी दासी है । तुम सेवा की मूर्ति हो, प्रेम का विग्रह हो । आसक्ति ? आसक्ति तो बहन, स्त्री के भाग्य में विधाता ने लिख ही दी है । यह सब बातें आज क्यों कह रही हो ? क्या मेरे व्यवहार में तुम्हें कोई कलुष दिखायी दिया है ? ना दीदी, रोओ मत ।' वह स्वयं फफककर रो पड़ी । दोनों देर तक एक-दूसरी को सम्हालने का प्रयत्न करती हुई रोती रही ।

चन्द्रा ने मृणाल को इस प्रकार गोदी में उठा लिया, जिस प्रकार माता नन्हे शिशु को उठा लेती है । उसका मुँह बार-बार चूमकर यह बोली, 'देख मैना, जब तक तुझे नहीं देखा था तब तक मेरे मन में रत्तमात्र भी अपराध-भावना नहीं थी । तुझे देखकर ऐसा लगा कि मैंने बड़ा पाप किया है । जिस आचरण से तुझे कष्ट हो वह पाप नहीं तो और क्या है । सो मेरा मन भारी हो गया था । लेकिन आज हल्का हो गया है । तुझे नहीं मालूम कि ऐसा कैसे हुआ । बताती हूँ ।

'कल मैंने अपने कान से सुना है कि तूने मेरे बारे में अमात्य से क्या कहा । पहले मैं समझती थी कि तू केवल अत्यधिक शिष्टतावश मेरा आदर कर रही है, मन-ही-मन मुझे अपराधिनी समझ रही है । पर कल तूने जिस प्रकार दृढ़ता के साथ मेरे निरपराध होने की बात कही, उससे मेरा मन हल्का हो गया । अब मैं अपराध-भावना से मुक्त हो गयी हूँ । तू नीचे से ऊपर तक केवल भली ही भली है मैना । ऐसा तो मैंने कहीं नहीं देखा । शिष्ट तो आर्यक भी है, पर इतना साफ नहीं है । मैना, तू आर्यक से बहुत बड़ी है, बहुत, बहुत ।' कहकर चन्द्रा ने प्यार के आवेश में मैना का मुँह छाती से चिपका लिया । उसकी आँखें डबडबा आयीं ।

मृणालमंजरी ने परम परितृप्ति के साथ चन्द्रा का प्यार स्वीकार किया । बोली, 'दीदी, आज तुम बहुत भावुक हो गयी हो ।'

'भावुक नहीं हूँगी तो और क्या हूँगी बहना । जिसे सबने कुलटा समझा और घृणा के साथ देखा, उसे तूने केवल अपने मन से ही आदर नहीं दिया, राज-दरबार में भी इतना मान दिया, वह निगोड़ी भावुक भी नहीं बनेगी ? यहाँ जिन स्त्रियों को लोग भली मानते हैं उनमें से कुछ को मैं अच्छी तरह जानती हूँ । वे केवल निर्जीव रूढ़ियों का पालन करती हैं । उनका भीतर और बाहर सदा साफ नहीं होता । वे छिपाने की कला अवश्य जानती हैं । चन्द्रा को वह कला नहीं आती । इसीलिए वह कुलटा कहलाती है ।'

मृणाल ने प्यार से प्रतिवाद किया, दीदी, सबकी बुराई क्यों करती हो । रूढ़ियाँ इसीलिए तो बनी हैं कि वे लोग भी सही रास्ते पर चल सकें जिनको बहुत सोचने की शक्ति विधाता ने नहीं दी है ।'

चन्द्रा कुछ अचम्भे में आ गयी। मृणाल कभी प्रतिवाद नहीं करती। शायद प्रतिवाद न करने मे किसी प्रकार के दुराव की गन्ध आती है। मृणाल का प्रतिवाद बताता है कि पहले उसके मन मे शायद दुराव का भाव था, अब नहीं है। चन्द्रा मौन। वह कुछ कहना चाहती है, कह नहीं पा रही है। मृणाल एकटक उसे देखती रही। उसने क्या कुछ ऐसा कह दिया जो नहीं कहना चाहिए था। उसने छोटी बालिका की तरह मचलकर कहा, 'दीदी, तुम बुरा मान गयी? चन्द्रा खोयी-सी बैठी रही। फिर सम्हलकर बोली, 'तेरे साथ रहकर भी चन्द्रा का आचरण नहीं सुधरा। तू ठीक कहती है। मेरा मन जला-जला रहता है, सो अवसर-कुअवसर दूसरों की बुराई कर बैठती हूँ। करनी नहीं चाहिए। सचमुच मैं बड़ी बुरी बात कहने जा रही थी। नहीं, अब नहीं कहूँगी। अपना ही दोष देखना चाहिए। सारी दुनिया बुरी साबित भी हो जाये तो अपना क्या बन जाता है?'

मृणाल सोच नहीं पायी कि क्या कहे। लेकिन उसके मन को कचोट गया कि उसने चन्द्रा का दिल दुखा दिया। चन्द्रा ने मृणाल की मानसिक अवस्था का अनुमान कर लिया। हँसते हुए कहा, 'अच्छा मैना, चन्द्रा किसी की बुराई न करे तो फिर तुझसे बातें क्या करे? सब बुरी बातें हों तो उसके पास कहने को हैं। मैं तो सोच ही नहीं पाती कि तुझसे क्या कहूँ। लोग स्त्रियों के बारे मे कहा करते हैं कि वे आपस मे जब बात करती हैं तो किसी-न-किसी की निन्दा ही करती हैं। बिचारी पुरुषों की तरह मुक्त तो होती नहीं, अपनी छोटी दुनिया मे ऐसी बँधी रहती हैं कि उन्हें सब समय यही लगता रहता है कि कोई न-कोई उन्हें नष्ट करने पर तुला हुआ है।' मृणाल ने फिर प्रतिवाद किया, 'जो लोग ऐसा कहते हैं वे भोले हैं। वे स्त्रियों को समझ नहीं पाते। यहाँ जो बुढ़िया काकी आती हैं, वही झम्मन राम की बहू, वे कहती हैं कि स्त्री का जीवन दूध-भरा कटोरा है। इधर-उधर से थोड़ी भी छींट कहीं से पड जाये तो दूध फट जाता है। इसलिए उसे सावधानी से चलना चाहिए। इससे अपने को बचाने के प्रयत्न मे स्त्रियों मे अपने इर्द-गिर्द के सभी के प्रति एक प्रकार की प्रच्छन्न शंका का भाव होता है और वे उनके काल्पनिक दोषों का चिट्ठा खोले रहती हैं। इसी को लोग बुराई कहते हैं।'

चन्द्रा हँसने लगी, वाहवा, 'वाहवा! तू तो आजी-दादी की-सी बातें करने लगी। तेरे इसी भोलेपन पर तो प्राण वारती हूँ। वाह वा, क्या बात कही है! तुझे तो सभी स्त्रियों को मिलकर अपना वकील बना लेना चाहिए। अरी भोली, तू कुछ नहीं जानती, चन्द्रा जानती है। तेरा न जानना ही अच्छा है। चन्द्रा तो जानने के कारण मारी गयी।' मृणाल सकुचा गयी। उसे लगा कि उसने जो बात कही, वह सचमुच अपने को समझदार दिखाने के लिए

चचकानी है।

चन्द्रा ने हँसना जारी रखा, 'अच्छा मेरी भोली मैंना, अगर कोई ऐसी बात बताऊँ जो सोलह आने आपबीती हो और दूसरों के बारे में उतना ही कहूँ जितना अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है तो इसे तू निन्दा कहेगी या सच्चाई? बिलकुल आँखों देखी बात!' मृणाल ताकती रही। वह समझ नहीं सकी कि चन्द्रा क्या कहना चाहती है। चन्द्रा ही बोली, 'जाने दे, नहीं कहूँगी।' मृणाल हँसने लगी, 'मैं जानती हूँ दीदी, अब तुम उनके बारे मे कुछ गड़बड़ बोलना चाहती हो। बोलो ना, रोज ही तो कुछ-न-कुछ कहती रहती हो। अपनों के बारे मे कहने मे क्या बुराई है?' चन्द्रा हँसने लगी, 'आर्यक के बारे मे गड़बड़ भी बोलती हूँ तो तुझे अच्छा लगता है, यही न? बात आर्यक की होनी चाहिए, चाहे वह उस विचारे की निन्दा ही क्यों न हो। यही चाहती है न? मगर मैं आर्यक के बारे मे कुछ नहीं कहने जा रही थी, मैं तो अपने बारे मे कहने जा रही थी।'

'तो तुम कौन अपनी नहीं हो! कहो ना!'

'नहीं रे, पहले समझती थी कि अपने बारे मे जो भी कह लो, कोई दोष नहीं होता। अब समझती हूँ, अपने बारे मे भी सब कुछ नहीं कहना चाहिए। वही आत्मकथा ठीक होती है, जिससे औरों को बल मिले। हमारे-जैसों की आत्मकथा तो अपनी और दूसरे की कुत्सा ही होगी। उसे कहने से क्या लाभ? अगर मैं उस सम्राट कहे जानेवाले समुद्रगुप्त से अपनी सब बातें साफ-साफ न कह दी होती तो विचारे आर्यक को भाग-भागकर अपने को छिपाते फिरने की नौबत ही नहीं आती। अपने बारे मे सच्ची बातें कहकर मैंने आर्यक को भी दुःख दिया और तुझे भी कष्ट दे रही हूँ। हाँ, अब अपने बारे मे भी कुछ नहीं कहूँगी। जानती है मैंना, इस अभागी चन्द्रा को बात बनाना नहीं आता। आता तो क्या यही दशा होती।'

चन्द्रा ने दीर्घ निःश्वास लिया, जैसे प्राणों की जमी हुई व्यथा को ऊपर हवा मे उड़ा देने का प्रयास कर रही हो। दीर्घ निःश्वास! मृणाल को कष्ट हुआ। 'नहीं दीदी, मेरी बचकानी बातों का बुरा न मानना। तुम जैसी हो वैसी ही मुझे प्यारी लगती हो। तुम्हारा प्रेम सती का प्रेम है। तुम अपने बारे में आजकल बहुत बेकार बातें सोचने लगी हो।'

चन्द्रा को हँसी आयी। बचकानी बातों के कारण ही तो तुझे इतना प्यार करती हूँ रे। तू बहुत भोली है और तेरा 'वह' तो तुझसे भी अधिक भोला है—बम भोलानाथ! तू सती है, तो वह 'सता' है। अपने 'सतेपन' के भंग होने के भय से काँपता रहता है। और यह चन्द्रा है कि उसके 'सतेपन' को नित्य भंग करने का प्रयास करती रही है। पैर भी धो देती थी तो जैसे बिजली

मार जाती थी उसे। जानती है, मैं उसे 'कायर' क्यों कहती थी? अब तो नहीं कहूँगी। तुझे व्यथा होती है। और जब तुझे व्यथा होती है तो मुझे बिजली मार जाती है! अरी भोली, मैं उसके भोलेपन पर ही तो मरती हूँ। बच्चा है, बिलकुल नादान बच्चा। वह मन का ठण्डा है। मैं तन की गरम हूँ। पुरुष को मन का गरम होना चाहिए। जिसका मन गरम होता है वह बहुत-से गरम तनों को ठण्डा कर सकता है। जिसका मन गरम नहीं होता वह कितना भी तलवार भाँज ले, स्त्री के लिए कायर ही है। स्त्री का प्रसादन कोई हँसी-खेल है रे? विकट युद्ध है। तेरा 'वह' बराबर डरता है। लगातार भागता है। कहता है, लोग क्या कहेंगे, मृणाल क्या सोचेगी! कायर न कहूँ तो क्या कहूँ रे! लेकिन है भोलानाथ!'

चन्द्रा ने ऐसा कहकर मृणाल को कोंचा, 'क्यों रे, यह निन्दा कैसी लग रही है?' उसने कुछ ऐसी हेला के साथ आँखें नचायीं कि मृणाल का चेहरा लाल हो गया। वह मुसकराती हुई चन्द्रा की ओर ताकती रही। उसकी उत्सुकता बढ़ी जान पड़ी। कानों तक फैली आँखें कह रही थीं कि आगे कहो। आरक्त मुख-मण्डल बता रहा था—यह भी कोई कहने योग्य बात है? चन्द्रा उसके लज्जित मुख को प्रसन्नता से देखती रही। बोली, 'मैं अब तेरे साथ नहीं रहना चाहती। आर्यक को खोजने जाऊँगी। तेरा धन तुझे सौंपकर छुट्टी ले लूँगी। इसीलिए जो कुछ कहना है आज ही कह दूँगी। कौन जाने फिर मौका मिले या नहीं।' मृणाल ने कुछ उत्तेजित स्वर में कहा, 'मैं नहीं जाने दूँगी। तुम मुझे छोड़ सकती हो, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती। तुम उनके पीछे भागोगी, मैं तुम्हारे पीछे। जाने-वाने की बात मत कहो। बाकी जो कहना चाहती हो, अवश्य कहो।' फिर चन्द्रा के गले में हाथ डालकर मचलते हुए बोली, 'दीदी मुझे छोड़कर तो नहीं जाओगी न!'

'छोड़कर नहीं जाऊँगी तो ढूँढूँगी कैसे? वह चुम्बक है। खींचता है, पर मैं तो चुम्बक नहीं हूँ जो उसे खींच लाऊँ! मैं जानती हूँ कि मैं जिधर जाऊँगी उधर ही वह अवश्य मिलेगा। खींच रहा है बहन, बुरी तरह खींच रहा है, मेरे प्राण व्याकुल हैं, छाती फटी जा रही है। हाय कैसे होगा, क्या खाता होगा! भोलेराम को किसी से माँगने का भी तो शऊर नहीं है। पड़े होंगे तो पड़े होंगे। 'हाय मैना, हाय मैना' कर रहे होंगे! चन्द्रा का तो नाम भी नहीं लेता होगा, 'सत' नहीं बिगड़ जायेगा? गँवार!'

मृणाल फूट-फूटकर रो पड़ी, 'दीदी, मेरे हृदय पर आरी चल रही है, क्या करूँ! हाय राम, भूखे-प्यासे कहाँ पड़े होंगे!'

'तू मत रो मेरी प्यारी बहन, वह जहाँ होगा वहाँ चन्द्रा जरूर खिंच जायेगी और तू देखेगी कि तेरी दीदी उसकी नकेल पकड़कर ले आयेगी।

मिल गया। आज तक के सब पाप धुल गये। जानती है बहन, सती की आत्मा में ज्योति जलती रहती है। उसके निकट किसी पाप-भावना के टहरने की सम्भावना ही नहीं रहती। सूरज तपता हो तो अँधेरा टिक सकता है भला! तेरे भीतर वही प्रचण्ड ज्योति जल रही है। तेरे निकट जो भी आयेगा वह अगर छेड़ने की कोशिश करेगा तो भस्म हो जायेगा। थोड़ा दूर-दूर रहेगा तो आलोकित हो जायेगा। चन्द्रा आज आलोकित है। आर्यक की रक्षा तेरी यह आलोकित शिखा ही करती है। बहन, जहाँ भी वह रहेगा उसकी छाया भी कोई नहीं छू सकेगा।'

मृणालमंजरी ने वातावरण के भारीपन को हल्का करने के लिए चुहल की, 'दीदी, तुम तो ज्ञानी की भाँति बातें करने लगी। कहाँ सीखा इतना ज्ञान? आठ ही महीने तो मुझसे बड़ी हो, पर बात करती हो बुढ़िया दादी की तरह।' कहकर मृणाल हँसने लगी, पर वातावरण का भारीपन बना ही रहा। चन्द्रा अब भी अभिभूत ही बनी रही।

'मैना, तूने पोथियाँ पढ़ी हैं, मैंने मनुष्य पढ़े हैं। यही मेरा ज्ञान-स्रोत है। और कहाँ ज्ञान मिलेगा मुझे?' कहकर उसने फिर शून्य की ओर दृष्टि गड़ा दी। मृणाल को विचित्र लगा। क्या कहे, कुछ सोच नहीं पा रही थी। आँगन से शोभन की निदियारी आवाज सुनायी पड़ी—'बड़ी अम्मा!' चन्द्रा धड़फड़ाकर उठ पड़ी, 'जग गया क्या?' मृणाल को अच्छा अवसर मिला। 'जब देखो तब बड़ी अम्मा, मैं जैसे कुछ हूँ ही नहीं। बैठो दीदी, मैं जाती हूँ।' चन्द्रा ने उसे बैठाते हुए कहा, 'नहीं, तू यहीं रह, सब बाप की आदत पड़ी है, वह भी सोये-सोये चिल्ला उठता है। अभी आती हूँ।' कहकर वह चली गयी। थोड़ी देर में लौट आयी, बोली, 'शायद कुछ सपना देखकर चौंक उठा था, फिर सो गया। बाप भी सपना देखकर चिल्ला उठता है, 'मैना, मैना!' मगर बाप से अच्छा है, कम-से-कम मुझे तो बुलाता है।'

'तुम तो दीदी, कोई बात हो उसको अवश्य घसीट ले आती हो और मुझे लज्जित कर देती हो। तुम्हें मालूम है, यहाँ कितनी बार 'चन्द्रा, चन्द्रा' चिल्लाकर नींद में चौंके हैं?'

'सच मैना? अब तू बात बनाना सीखने लगी है!'

'सच कहती हूँ दीदी, तुम तो मेरी बात मानती ही नहीं। बुरा न मानो तो बता दूँ दीदी। तुम्हारा यह उत्फुल्ल मल्लिका-सा रूप और उसकी मोहक सुगन्धि, तुम्हारा निश्छल अनुराग जादू के समान प्रभाव डालनेवाला है। कोई मोहित न हो तो क्या करे? मगर तुम मानती क्यों नहीं कि मैं बात बनाकर नहीं कह रही हूँ।'

'मानती हूँ, मानती हूँ। तू जो कह रही है वह अगर सच है तो जानती है

तू क्या कर रही है, इस समय ?'

'तुमसे बात कर रही हूँ, और क्या कर रही हूँ ? तुम जब से आयी हो तब से मुझे और कुछ करने भी देती हो !'

'नहीं री भोली, तू मेरे करेजे पर आरी चला रही है, मेरी चेतना पर कशाघात कर रही है, मेरे अस्तित्व को चूर-चूर कर रही है। मैं फट जाऊँगी मैना, मैं एकदम टूट जाऊँगी। आज जाने कहाँ से विधाता ने वेधक दृष्टि डाली है—छेद दिया है रे, अन्तरतर को वेध डाला है !'

'क्षमा करो दीदी, मैंने अनजान में तुम्हें कष्ट पहुँचाया है।' मृणाल रुआँसी हो गयी।

'कष्ट पहुँचाया है ? इस वेदना का सुख तू नहीं समझेगी। हृदय चीरकर दिखा सकती तो तुझे विश्वास हो सकता। कितने जले घावों को अमृत लेप-लेपकर तूने हरा कर दिया है ! और भी कह, और भी वेध ! और भी छेद दे मेरी प्यारी मैना ! इस पीड़ा ने मुझे नया जन्म दिया है। कह मेरी प्यारी रानी, सपने में उस कापालिक ने क्या कहा था ?'

'बस दीदी, अब तुम शान्त हो जाओ। जितना कहा, उतने ही से तृप्त हो जाओ। अब अधिक ऐसा कुछ बोलोगी तो तुम्हारी मैना रोने लगेगी।'

'बहुत पा गयी हूँ रे, कई जन्मों के लिए पर्याप्त है। तू रोने की धमकी न दे। तुझे बहुत रुलाया है, अब नहीं रुलाऊँगी, एकदम नहीं।'

'दीदी, अब तुम थोड़ी देर चुप रहो। मैं ही बोलूँगी। अच्छी बात कहूँगी, भाला-बरछी चलानेवाली बात नहीं कहूँगी। सुनोगी दीदी !'

'तू जान-बूझकर थोड़े ही चलाती है ! पर तेरी बातों से इस तेरी भाग्य-हीना दीदी पर कब बरछी चल जाती है, तू जान ही नहीं पाती। पर चल जरूर जाती है। *मगर मैना, आज मैं कृतकृत्य हूँ।*'

'छोड़ो दीदी, तुम भी कई बार आरी चला देती हो, एक बार मैंने भी चला दी। हिमाब चुकता हुआ। उनके बारे में कुछ उपाय करो न ! मैं तो ऐसी मूर्ख हूँ कि कुछ सोच ही नहीं पाती कि क्या करूँ। एक बार सुमेर काका से कहा कि विन्ध्याचल के पास कोई सिद्ध हैं, उनके पास चलो। लेकिन जानती हो, फक्कड़ आदमी हैं, जो बात उनकी बुद्धि के घेरे में नहीं आती उसे ढोंग कहते हैं, अन्ध-विश्वास कहते हैं और कभी-कभी भेड़ियाधसान भी कहते हैं। उन्हें उत्साहित न देखकर फिर उनसे कुछ नहीं कहा। मगर अब तो तुम हो दीदी, चलो न एक दिन उस सिद्ध के पास चलकर उनके बारे में पूछें। शायद कोई उपाय बता दें। ले चलो मुझे मेरी अच्छी दीदी ! बहुत-सी बातें जो साधारण आँखों से नहीं दिखतीं, वे इन सिद्धों की तपोमय आँखों से स्पष्ट दिखायी दे जाती हैं।'

चन्द्रा के चेहरे पर आह्लाद की किरणें खेलने लगी। बोली, 'सुमेर काका तो देवता पुरुष हैं। पहले तो मुझे मारने दौड़े, फिर बात समझ में आ गयी तो मेरे विरुद्ध कोई कुछ कहता है तो उसे ही मारने दौड़ते हैं। कहते हैं, चन्द्रा, अब समझ गया हूँ। दोष तेरा नहीं, सामाजिक व्यवस्था का है। अब तो सुना है, मेरी ओर से आचार्य पुरगोभिल से भी उलझ आये हैं। सुना मैना, उन्होंने मुझसे कहा था कि मैना सिद्ध से मिलना चाहती है, मुझे यह बात जँच नहीं रही है। चल न चन्द्रा, तू ही उसकी ओर से पूछ ले। वह बहुत भोली है, उसे कोई भी धोखा दे सकता है।

'सुना मैना, मुझे काका की बात ठीक लगी है। मैं ही जा रही हूँ। तू कहाँ भटकती फिरेगी?' मृणाल ने आग्रह के साथ कहा, 'मैं भी चलूँगी दीदी।' चन्द्रा ने लीला-कटाक्ष निक्षेप करते हुए कहा, 'ना बाबा, कोई आके पूछेगा कि मेरी फूल-सी प्राण-वल्लभा को जंगल-पहाड़ में क्यों भटकाती फिरी, तो क्या उत्तर दूँगी।' मैना ने मन्द स्मिति के साथ हेला-जड़िम वाणी में कहा, 'जाओ!'

अठारह

सिद्धाश्रम से लौटकर चन्द्रा ने कहा, 'साधुओं में सब अच्छे ही नहीं होते। मैंने अनेक भण्ड साधु देखे हैं। उन्हें घायल करने के लिए कटाक्ष-बाण से बेधने की भी जरूरत नहीं होती। स्त्री-शरीर की गन्ध ही उन्हें बेहोश कर देती है। मैंने मन-ही-मन ऐसे साधु से मिल जाने पर जो कुछ किया जाना चाहिए वह सोच लिया था। सच तो यह है मैना, कि मैंने स्वच्छ मन लेकर आश्रम में प्रवेश नहीं किया था। आज मैं तुझे कुछ बदली-बदली लग रही हूँ न? उस दिन ऐसी नहीं थी।'

अवसर पाकर मृणाल ने गम्भीरता का अभिनय करते हुए कहा, 'साधुओं का क्या दोष है दीदी! गन्ध के साथ ऐसा वर्ण, ऐसी कान्ति, ऐसी प्रभा, ऐसी सम्मोहक चारुता, एक साथ मिल जायें तो ब्रह्मा का मन भी एक बार डोल जाये!'

चन्द्रा ने चिकोटी काटते हुए कहा, 'बस कर, अब ऐसी चाटूक्तियाँ मुझे न प्रसन्न कर सकती हैं न अप्रसन्न! मैं अब समझ गयी हूँ। बात तो सुन।

'लोगों से सिद्ध बाबा का आश्रम पूछ-पूछकर हम लोग विन्ध्याटवी के एक

गहन वन के निर्जन प्रदेश में पहुँचे। एक कड़ाह की तरह के पर्वत-शिखर में सिद्ध बाबा का आश्रम था। पहले ऊपर चढ़ना पड़ता था, फिर नीचे की ओर उतरने पर सिद्ध बाबा की कुटिया मिलती थी। थोड़ा और नीचे की ओर स्वच्छ जल का एक कुण्ड था। बड़ी मनोहर शोभा थी। रास्ता तो इतना विकट था कि तुझे न ले जाने का सन्तोष ही मन में था, पर आश्रम की शोभा देखकर मन में आया कि तुझे साथ ले आती तो अच्छा ही होता। चोटी से कुण्ड तक चारों ओर हरी वनराजि ऐसी सुन्दर लगती थी जैसे किसी ने लोहे के कड़ाह में नीलम की वृक्षावली उरेह दी हो। कुण्ड का पानी बहुत स्वच्छ था। ऐसा लगता था कि वन-लक्ष्मी का साध का सँवारा दर्पण है। नीचे से ऊपर तक वन-पनसों, बदरियों और कुटज-गुल्मों की पंक्तियाँ इस प्रकार कमनीय दिख रही थीं मानो वन-लक्ष्मी ने कंघी से केशों को झाड़कर सीमन्त रचना की तैयारी कर रखी हो। सर्वत्र निःशब्द शान्ति भरी हुई थी, पर उसमें चुप्पी का खालीपन नहीं था। विचित्र मुखर भाव का भरापन था। सर्वत्र लगता था, कुछ कहा जा रहा है, कोई बातचीत चल रही है, कोई रहस्यपूर्ण संकेत का व्यापार चल रहा है। कोई चेला वहाँ नहीं था। एक विचित्र प्रकार का भरा-भरा सूनापन सर्वत्र व्याप्त था। मैं तो मैं, सुमेर काका की अकारण चपला वाणी भी वहाँ निश्चेष्ट हो गयी। उन्होंने इशारे से कहा कि तू अकेली जा, मैं बाहर ही रहूँगा।

'डरती हुई मैं धीरे-धीरे कुटिया में गयी, कुटिया भी एक गुफा-सी थी जिसके एक ओर पहाड़ था, दो ओर घने सीतापत्तों की कतार थी और आगे के हिस्से को किसी प्रकार झाड़-झंखाड़ की अनगढ़ टाटी बनाकर फाटक-जैसा बना लिया गया था। इसी कुटिया में सिद्ध बाबा के दर्शन होंगे। मैंने कल्पना कर ली थी कि वे समाधि लगाये होंगे। पर ऐसा कुछ नहीं था। मुझे सिद्ध बाबा वहाँ नहीं दिखायी दिये। सोचा, थोड़ा और अन्दर जाने पर शायद अन्धकार के घने आवरण में किसी कोने-अँतरे में दिखायी दे जायें। पर कहाँ, कुटिया में तो कोई नहीं था!

'कुण्ड की दूसरी ओर से आवाज आयी—भुवन-मोहिनी, त्रिपुर-सुन्दरी, इधर आ, पुत्र यहाँ है।

'मैंने चकित होकर अपना नया नामकरण सुना। उधर घूमकर देखती हूँ तो आपादमस्तक सफेद केशों से आवृत एक अशीतिपर वृद्ध हँसते हुए मुझे देख रहे हैं। कह रहे हैं—कहाँ भटक गयी अकुलवल्लभे, बेटा इधर, माँ उधर! क्या बताऊँ मैना, मेरे पैर से सिर तक बिजली कौंध गयी इस सम्बोधन ने मुझे नीचे से ऊपर तक झकझोर दिया। और सिद्ध की हँसी तो जैसे वशीकरण का मन्त्र थी। आहा, इतनी निर्मल हँसी भी होती है! ऊपर खड़े सुमेर काका ने सुना तो उन्हें कुछ आशंका हुई, दौड़ते हुए लाठी ताने खट्-खट् नीचे उतर

आये। बाबा ने उन्हें देखते ही जोर से ठहाका लगाया, 'भोलानाथ, महिषमर्दिनी की रक्षा करने आये हो ? चले जाओ, कोई डर नहीं है। कुम्भोदर तो है ही। इसके रहते उनकी ओर कौन आँख उठा सकता है!' काका हतप्रभ हो रहे। फिर शिरसा प्रणाम करके बोले, 'जो आज्ञा!' मैंने काका को आश्वस्त करते हुए कहा, 'कोई चिन्ता की बात नहीं है, काका। पिता के पास हूँ।' काका चले गये। मैंने हाथ जोड़कर घुटनों के बल टिककर धरती से सिर लगाकर उनकी वन्दना की। वे हँसते रहे, फिर बोले, 'पुत्र को कैसे स्मरण किया अम्ब! सब कुशल-मंगल है न?' मुझे लगा, बाबा मेरे बारे में सब जानते हैं। इनसे कुछ छिपाया नहीं जा सकता। मैंने वचना का जो जाल मन-ही-मन बुना था, वह एकदम छिन्न-भिन्न हो गया। वे चुन-चुनकर ऐसे सम्बोधन करते थे कि मेरी शिराएँ झनझना उठती थीं। उपास्य का नाम किसी भी बहाने से उच्चरित करना तो भक्तों की चिराचरित प्रथा है। बाबा भी चुन-चुनकर जगदम्बा के नाम से मुझे पुकारते थे, पर हर सम्बोधन झकझोर जाता था। उस 'अकुल-वल्लभा' सम्बोधन को सुनकर तो मेरा अन्तरतर काँप उठा। क्या बाबा से कुछ भी छिपा नहीं है? क्या तपस्या अदृष्ट-दर्शन की शक्ति दे देती है? जानती हूँ, 'अकुल' महादेव का नाम है और 'अकुलवल्लभा' आद्या-शक्ति का ही नाम है। पर यह कैसा वेधक सम्बोधन है?

'बाबा हँसते रहे—माँ, क्या चिन्ता है तुझे? इस अभाजन पुत्र से तू चाहती क्या है? तेरे भीतर भुवनमोहिनी का निवास है। उनकी त्रैलोक्य-सौभगा लीला तेरे भीतर खेल रही है। तू भुवनमोहिनी के विभ्रम-विलास का अवतार है माँ! माँ, तुझे क्या कष्ट हो गया है कि पुत्र के पास दौड़ती चली आयी? जरा ललाट तो दिखा। बाबा ने मेरे मस्तक को दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से पकड़कर उठाया और बच्चे की तरह खिलखिलाकर हँस पड़े—माँ, तेरे तो बस एक ही बुड्ढा बच्चा है जिसे सामने देख रही है। और कोई बच्चा तो विधाता ने सिरजा ही नहीं। मैं ही अकेला तेरा पुत्र हूँ जगदम्बिके! सिर छोड़-कर बाबा ताली बजाकर किलक उठे—मेरे दुलार में कोई हिस्सा बँटाने वाला नहीं है। तू एकपुत्रा है माँ! मेरा चेहरा फक पड़ गया। बाबा ने फिर सिर उठा लिया। आश्चर्य से फिर विह्वल हो गये—क्या लीला है तुम्हारी महामाया! एक है तो कहीं छिपा हुआ! नहीं माँ, तेरा औरस भी नहीं है और तेरा पूरा अपना भी है। बाँटने वाला है माँ, बुड्ढे बच्चे का एक प्रतिद्वन्द्वी भी कहीं छिपा है। बड़ा प्रतापी दिखता है माँ, बुड्ढे का स्नेह बाँट लेगा। फिर रुआँसे-से होकर बोले—बड़ा प्यारा लगता है रे, बुड्ढे भाई को भी मोह लेगा। पर यह सब महामाया का षड्यन्त्र ही है। मौज में आती है तो विधाता को भी मूर्ख बना देती है। बोल माँ, अब तो प्रसन्न हुई न?

'मैं अवाक् होकर बाबा का मुँह ताकती रही। वे बच्चों की तरह प्रसन्न थे। हँसते हुए बोले—सौभाग्य तो तेरा अद्भुत है त्रिलोक-सुभगे, तुझे कष्ट क्या है, बताती क्यों नहीं ? अकारण इस वृद्ध पुत्र को व्याकुल बना रही है। तेरी-जैसी अनोखी माता तो कभी इस आश्रम में नहीं आयी। आहा, तेरे तो शरीर और मन अलग-अलग दिशा में दौड़ लगा रहे हैं। शरीर तेरा सौभाग्य की खोज में भाग रहा है, मन वात्सल्य की ओर। तेरा मन अपने प्रियजनों को वात्सल्य में डुबा देना चाहता है। तेरा प्रियजन भी तुझे बच्चों-सा मोहित करता है। माँ, तू भीतर से माँ है, बाहर से शृंगारमयी प्रिया। आहा, ऐसा मिलना तो विरल है ! विधाता तेरी कुक्षि में वात्सल्य का आश्रय आने नहीं देगा और महामाया तुझमें वात्सल्य-रस भरती जा रही हैं। यह तो विषम संकट है जगत्तारिणी !

'मेरी वाणी रुकी सो मानो मूक हो गयी। किसी तरह साहस बटोरकर बोली—बाबा, जो कहना चाहिए वह कह नहीं पा रही हूँ। हृदय पर जैसे किसी ने भारी पत्थर रख दिया है। लोक-दृष्टि में मैं उन्मार्ग-गामिनी कुलटा हूँ, अपनी दृष्टि में पतिव्रता। पर इस पतिव्रता ने मेरी प्राण-प्यारी सखी को विपत्ति में डाल दिया है और जिसे पति मानती हूँ उसे भी घोर कष्ट में डाल दिया है।

'बाबा किलकारी मारकर हँसे—हाथ तो दिखा दे त्रिनयने ! दुनिया के दो ही आँखें होती हैं। तेरी तीसरी आँख भी खुली लगती है। ठीक कहता हूँ न माँ ? मैंने अपना हाथ बाबा के सामने फैला दिया। बाबा चौंक पड़े। बड़ा भरमना ०डा है तुझे माँ ! मेरी मूर्ख माँ, तुझे अपनी बुद्धि पर भरोसा है। ना रे ना, सब उसकी रचना है। तू अपने को निमित्त क्यों नहीं मानती मेरी अबोध माता ! पर कैसे मानती ? उस मायाविनी ने तुझे भटकाये रखने का जाल रच दिया है। कोई चिन्ता नहीं, अपने इस बेटे पर भरोसा रख, सब ठीक हो जायेगा। जरा पैर तो दिखा माँ। हाँ, ठीक है। तो तू जिसे पति मानती है वह संकट में पड़ गया है। और तेरी सखी उसकी पत्नी होगी—तेरी स्वयंवृत्ता सौत। है न यही बात ?

'मैंने थके हुए स्वर में कहा—हाँ बाबा, मगर वह सौत नहीं, मेरी प्यारी बहन है। बाबा ठठाकर हँसे—सौत बहन नहीं तो और क्या होती है मेरी भोली माँ ? मैं क्या उत्तर देती। चुपचाप बाबा की ओर ताकती रही। बाबा ने मेरे मुख से आँखें हटायी नहीं। बच्चों की-सी प्रसन्नता उनके चेहरे पर खेलती रही। थोड़ी देर तक उसी तरह देखते हुए बोले—तेरे केश घन-कुंचित हैं। यह तो अखण्ड सौभाग्य की सूचना देते हैं, पर तू इतना भटकी कैसे ? भगवती ने जिसे इतने शुभ लक्षण दिये हैं, वह इतना चक्कर में कैसे पड़ गयी ? ऐसा लगता है सर्वेश्वरी, कि तेरी स्वयंवृत्ता सौत तुझसे भी अधिक शक्तिसम्पन्न लक्षणों की रानी है। दो माताओं के भाग्य आपस में लड़ें तो बूढ़ा बच्चा क्या कर सकता

है माँ ! तू अपने को उससे पराजित मानती है ? मुझे बाबा की बात अच्छी नही लगी। शायद वे सौतों की लड़ाई का अनुमान करने लगे हैं। मैंने थोड़ा कठोर होकर कहा—कहा न बाबा, कि वह हमारी प्यारी बहन है। प्यार मे जय-पराजय की बात कहाँ उठती है ? बाबा ठठाकर हँसे—तू हार मान गयी है माँ, हार मान गयी है। नही तो बूढ़े बच्चे की बात से कोई माँ गुस्सा करती है ? माँ कही-न-कही हार मानने पर ही बच्चे को मारती है। लेकिन जाने भी दे। मैं देख रहा था कि तू सौत के प्रति कैसा भाव रखती है। लगता है तू सच-मुच उसे प्यार करती है। जरूर वह ललिता-रूपा है। जगज्जननी का तेरे-जैसा भुवन-मोहन रूप तो उसी रूप से हार मानता है।

'मैंने सम्मति-सूचक सिर हिलाया। बाबा को कुतूहल हुआ—ललिता-रूपा जगत्-सूत्रधारिणी ! जानती है मातेश्वरी, ललिता की क्रीडा से यह लोक रचित होता है। यह जो कुछ दिखायी दे रहा है न, सब उसी ने खेल-खेल मे रच दिया है। इतना तो माया भी कर सकती थी। पर ललिता-शक्ति समस्त वीभत्सताओं और कुरूपताओं को ललित आवरण डालकर मोहन बना देती है। उसके सखा चिन्मय शिव हैं—चिन्मय शिव, चैतन्य के घनीभूत विग्रह ! अहा, क्रीडाते लोक रचना सखाते चिन्मयः शिवः। तू बड़ी सौभाग्यशालिनी है। तेरी सखी भी निखिल मातृग्राम की मुकुटमणि जान पड़ती है। वह समस्त कुरूपताओं को हिरण्मय आवरण से ढककर कमनीय बना देती होगी। मैं ठीक कहता हूँ न मात ! तूने कभी ऐसा अनुभव किया है ?

'किया है बाबा, मेरे सारे कलुष को उसी ने तो विशुद्ध प्रेम के रूप में चमका दिया है। अब बाबा सम्हलकर बैठ गये—हाँ रे, जगदम्बिका, तुझे अपने कलुष दीख गये हैं। कैसे दीख गये भववल्लभे ! तेरी तीसरी आँख तो बाहर की ओर दौड़ती रही। मैं समझ गया था। मैं तो तेरे सामने ही बैठा था। और तू है कि कुटिया मे ढूँढती रही। जरूर तेरी आँखो पर पर्दा था। साथ में उस भोलानाथ को ले आयी है, वह भी तो नही देख सका था। हाय मुण्डमालिनी, कितने मरे मुण्डो की माला पहने तू घूम रही है ? क्यों नही फेंक देती उतार-कर। बँदरिया माता मरे बच्चे को भी छाती से चिपकाये घूमती रहती है। बूढ़े की माँ, तुझे उससे कुछ तो अधिक समझदार होना चाहिए। छिः, छिः, मरे बच्चो का बोझ हटा दे। मोह छोड दे मोहमयी, जो मरा सो मरा, काहे को इतना आयास कर रही है। पाने की लालसा मनुष्य को मुर्दे ढोते रहने का प्रलोभन देती है। फेंक दे माँ, मरो को मत ढो।

'मैं तो एकदम घबरा गयी मैना। बाबा कहना क्या चाहते है ? मगर मुझे लगा कि जनम-भर की स्मृतियाँ मेरे भीतर सड़ी पड़ी है। मेरा अपना ही सिर दुर्गन्ध से फटने लगा। चारो ओर कुत्सित शवो की गन्ध से नसें फटने लगी।

मारे डर के मैं चिल्ला पड़ी—त्राहि बाबा, त्राहि ! बाबा शरारती बच्चे की तरह मुसकराते रहे ।

'बाबा ने विनोद के साथ कहा—डर गयी मातेश्वरी ! डरने की बात नहीं है रे । क्यों सड़ गये हैं ये सब, पता है तुझे ? क्योंकि तूने इन्हें अपने सुख के लिए पाना चाहा था । अपने लिए बटोरने से ही मनुष्य का जीवन श्मशान बन जाता है । लुटाने की बुद्धि से जो किया जाता है वह फूल बन जाता है । आ तो जगद्धात्री, जरा तेरी नाड़ी देखूँ ! मैंने हाथ दे दिया । बाबा ने नाड़ी टटोली—जल रही है रे, तुझे तो ज्वर हो गया है, गन्दगी जलेगी तो तापमान तो बढ़ेगा ही, जल जाने दे, सब जल जाने दे । मेरी ओर देख पद्मासने, पीड़ा हो रही है न ? तेरा बुड्ढा बच्चा बड़ा पाजी है, माँ को कष्ट दे रहा है ! अरे, तू तो बेहोश होती जा रही है । ना माँ, घबरा मत । दुष्ट बच्चे के पास आ गयी है । यह जलाने का खेल खेलता है ।'

'मैं सचमुच संज्ञाशून्य होकर बाबा के चरणों पर लुढ़क गयी । थोड़ी देर तक मेरी चेतना मुझसे एकदम अलग हो गयी, पर मैं मरी नहीं मैना, साफ देखती रही । सारे पाप साकार होकर सामने आने लगे । ऐसा जान पड़ा कि सब जल रहे हैं, उछल रहे हैं, तड़प रहे हैं, महरा रहे हैं । मैं उन्हें देख रही हूँ । उद्दाम यौवन के निकृष्ट पाप—काले, भयावने, जहरीले साँपों के भयंकर झुण्ड विवश भाव से जल उठते हैं, महाभयानक नागमेघ यज्ञ चल रहा है । जिन बातों को मैंने कभी पाप नहीं समझा वे भी सुनहरे साँपों के रूप में आ-आकर गिर रहे हैं । ताप और बढ़ता गया, दुर्गन्धि और भभकती गयी, बेचैनी और बढ़ती गयी । उस भयंकर ज्वाला से मेरा शरीर तप्त तवे की भाँति लहक उठा था । बाबा की आवाज सुनायी पड़ी—उठ रे ज्वालामुखी, सब जला देगी ? कैसी माँ है तू रे ज्वालमालिनी ! ऐसी उसाँसें भर रही है कि बूढ़े बच्चे को भी जला देगी ! उठ जा !

'क्षण-भर में मुझे लगा कि शरीर का ताप कम हो गया है, पर मेरी चेतना लौट आयी है, पर मैं अवश भाव से बाबा के चरणों में पड़ी रही । कुछ आश्वस्त होकर सुमेर काका लौट आये थे । बाबा उनसे ही कुछ कह रहे थे—आओ भोलानाथ, माँ की सेवा करने आये हो न ? देखो कैसी हो गयी है ? उठा दूँ ? सुमेर काका अभिभूत-से कह रहे थे—बाबा, बचा लो इसको, मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो मुझे दण्ड दो, यह बिचारी दुखियारी बालिका है । इस पर दया करो ! बाबा ने कहा—तुम्हारी बिटिया है मेरी माँ ? सुमेर काका ने कहा—ऐसा ही समझो बाबा, औरस पुत्री तो नहीं है पर उससे भी बढ़कर है । बाबा ने हँसते हुए कहा—नानाजी, अभी जाओ, माँ-बेटे को रहने दो यहीं । तुम्हारी बिटिया स्वस्थ हो रही है । जाओ, मैं माँ के दुलार में तुम्हें

हिस्सा नहीं लेने दूंगा। जाओ। सुमेर काका शिथिल गति से लौटते जान पड़े।

मैं उसी तरह अवसन्न।

'अवसन्न चेतना को मैंने प्रत्यक्ष देखा। मुझसे बाहर खड़ी हुई थी! उसकी देह धुएँ से काली पड़ गयी थी। फिर देखा विचित्र दृश्य। मैना, यहाँ तो विश्वास करेगी? शायद कर लेगी। तेरी दीदी अब विश्वास-योग्य हो गयी जान पड़ती है। सुन मैना, बड़ा ही अद्भुत दृश्य, बड़ा ही विचित्र।' फिर मृणालमंजरी की ओर देखकर बोली, 'हाय रे, तू तो अभी से घबरा गयी है। घबरायेगी तो नहीं कहूँगी।' मृणालमंजरी का चेहरा फक् पड़ गया था। बाष्प-रुद्ध कण्ठ से बोली, 'सुनाओ दीदी, मैं उत्सुक हूँ।'

चन्द्रा ने प्यार के आवेश में मृणाल का सिर सूँघ लिया। फिर साश्चर्य उल्लसित वाणी में बोली, 'हाय रे, यही सुरभि तो थी।' मृणाल ने चकित होकर देखा, चन्द्रा की आँखें डबडबा आयी हैं। उसने दुलराने स्वर में कहा, 'कोई दुखद प्रसंग हो तो आज रहने दो दीदी।'

'नहीं मेरी प्यारी मैना, तुझे सुनना चाहिए।'

'देखा, एक सरोवर है। देख रही हूँ, लेकिन बाहर नहीं है, मेरे भीतर ही है। उसमें तीन कमल खिले हैं—दो बड़े और एक अविकसित, छोटा-सा। उनकी सुगन्धि से मन और प्राण तृप्त हो उठे। चारों ओर प्रसन्न आकाश, शीतल वायु और भीनी-भीनी गन्ध।

'बाबा ने फिर कहा—उठ महामाया, अभी तृप्ति नहीं हुई क्या?

'अन्तरतर से आवाज आयी, नहीं, तृप्ति नहीं हुई। पर मुँह से कुछ बोल न सकी। बाबा ने प्यार से सिर पर एक हल्की चपत लगा दी। हाय मैना, कैसे कहूँ, क्या देखा। कह नहीं पा रही हूँ, पर कहूँगी अवश्य। देखा, आर्यक गहन अरण्य में शिलापट्ट पर लेटा है। केश लटिया गये हैं, वस्त्र अस्तव्यस्त हैं। आँखें लाल हैं। जान पड़ता था उसे कई दिनों से नींद नहीं आयी थी। हाय, क्या देख रही हूँ! वह मृणालमंजरी को देखना चाहता है और चन्द्रा ने दोनों के बीच अवरोध खड़ा कर रखा है। मृणाल को चन्द्रा ने एक गुफा में ढकेल दिया है। वह पाशबद्ध मृगी की भाँति करुणा-कातर नयनों से आर्यक को खोज रही है। आर्यक चन्द्रा के पैरों पर गिरकर विनय कर रहा है—उसे आने दो चन्द्रा, बहुत-बहुत कष्ट में है! और निर्लज्ज क्रूर चन्द्रा हँस रही है। कैसी कातर मुद्रा थी आर्यक की! ओह!

'फिर क्या देखती हूँ, तीन आदमी बैठे हैं। एक आर्यक है, दो उसके साथी। उसका एक साथी बड़ा ही कोमल, बड़ा ही सुघड़ दिखायी दे रहा है और दूसरा उतना ही कुरूप, उतना ही अनघड़। आर्यक अपने तरुण मित्र से घुल-घुलकर बातें कर रहा है, दोनों ही उदास हैं।

'अचानक देखती हूँ भयंकर मार-काट, हो-हल्ला। नगर आग की लपटों में जल रहा है और आर्यक अकेला शत्रु-व्यूह मे कूद पडा है। उसकी भुजाएँ विद्युत्-गति से सक्रिय हैं। वह जिधर जाता है उधर ही भगदड मच जाती है। शत्रु-सेना मे घिरा आर्यक ऐसा लग रहा है जैसे मदमत्त गजराजों के यूथ में सिंह-किशोर पहुँच गया हो। देर तक मार-काट चलती रहती है। मेरी छाती लोहार की भाथी के समान धौंक रही है। एक बार ऐसा लगा कि दुर्दान्त शत्रुओं ने उसे दबोच लिया है। मैं एकदम नींद मे उठकर शत्रु-व्यूह मे कूद पडी। चिल्लाकर बोली—कोई चिन्ता नहीं प्यारे, चन्द्रा आ गयी है। मेरे मुँह से सचमुच उत्तेजित स्वर मे आवाज निकली—चन्द्रा आ गयी आर्यक, घबराओ नहीं। बाबा ने फिर सिर दबा दिया। क्या देखती हूँ कि फिर वही सरोवर बिल्कुल हृदय मे लहरा उठा है। आर्यक उसमे प्रवेश कर रहा है, वहाँ आते ही वह कमल का फूल बनकर लहराने लगा है। दूसरी ओर तू आती है, साथ मे नन्हा शोभन है। दोनो कमल के फूल बन जाते हैं। चन्द्रा के हृदय-सरोवर मे तीन कमल लहरा रहे हैं। मैं तृप्ति के साथ देखती रही। एक-एक लहर पर कमल लहरा उठते हैं।

'बाबा ने फिर कहा—उठ पद्मासने, उठ जा।

'मैं उठकर बैठ गयी, बिल्कुल सहज भाव से; कहीं भी अवसाद या थकान का नाम नहीं। बाबा ने छेड़ा—यह आर्यक-आर्यक क्या कह रही थी माँ! तू गोपाल आर्यक को स्मरण कर रही थी क्या? तू उसकी कौन है? क्यों छिपाया था माँ!

'मैं लजा गयी। बोली—कह नहीं सकी थी आर्य! कैसे कहूँ?

'बाबा ने प्रसन्नता से कहा—तू अपने बच्चे की परीक्षा ले रही थी, छलना-मयी! तेरा प्यारा विजयी होकर आ रहा है। जा माँ, तू पतिव्रताओं की मुकुट-मणि है। अपने लिए कुछ बटोरना नहीं, सब-कुछ निःशेष भाव से निचोड़-कर देती रहना। और वह जो तेरी ललिता सखी है न, उससे कह देना कि वह सतियों का आदर्श बनेगी। जब सुख के दिन आवें तो तुझे भूले नहीं। इस बेटे को भी याद रखना माँ। देख माँ, तेरी सखी पार्वती के समान पूजनीय है, उसमे शील, धर्म और शोभा की त्रिवेणी लहरा रही है। उसके समान पार्वती-कल्पा सती का पति कहीं संकट मे पड सकता है? देख सुदर्शने, तेरी भी दो माताएँ, तेरी सखी की भी दो माताएँ हैं, तो फिर यह पुत्र क्यों वंचित रहे। तू भी मेरी माँ, वह भी मेरी माँ! ललिता माँ से कह देना कि जब वह या तू याद करेगी तो तुम दोनों का यह बूढा बच्चा स्वयं आ जायेगा।

मृणालमंजरी की आँखों से दर-विगलित अश्रुधार बह चली। वह चन्द्रा से लिपट गयी।

उन्नीस

आर्यक, माढव्य और चन्द्रमौलि को छोडकर चुपचाप खिसक आया। उसे अपने पहचान लिये जाने से कष्ट हुआ। उज्जयिनी मे उसकी कीर्ति और अपकीर्ति दोनो पहले ही पहुँच चुकी थी। दो-तीन दिनों तक वह निरुद्देश्य भटकता रहा। उसके आजानुबाहु मोहन रूप को देखकर लोग ठगे-से खडे रह जाते थे। उत्सुकतावश वे उसके पास आकर पूछते भी थे कि वह कौन है। उसका उत्तर स्पष्ट नही होता था। लोगो मे कानाफूसी चलने लगती थी। उस समय वहाँ किम्वदन्तियों की बाढ आयी हुई थी। लोग उसके भव्य रूप को देखकर कहने लगे कि हो-न-हो यह गोपाल आर्यक ही है। आर्यक समझने लगा कि लोग क्या समझ रहे है। वह पछता रहा था कि यहाँ आया ही क्यो। उसे अब उज्जयिनी से हट जाना चाहिए। वह नगर के सबसे अन्त मे स्थित उजाड बगीचो मे छिपने का प्रयत्न करता। एक दिन तो वह निराहार ही रह गया। दूसरे दिन एक अन्नसत्र मे प्रसाद पाया। पर उससे उसके बारे मे चर्चा बढती ही गयी। उसे लगा कि देर तक वह छिपकर रह नही सकेगा। वह इधर आया था मित्रो की रक्षा करने, पर स्वय अरक्षित हो गया। मन-ही-मन उसने निश्चय कर लिया कि महाकाल के दर्शन करने के बाद वह खिसक जायेगा। उज्जयिनी आये हो तो महाकाल के दर्शन तो कर ही लेने चाहिए।

वह सिप्रा से स्नान करके महाकाल के मन्दिर मे गया। प्रणिपात करके प्रदक्षिणा की और बाहर आकर वहाँ थोड़ी देर रुक गया। उसका मन फिर ज्योतिर्लिंग की ओर गया। पुनः दर्शन और प्रणिपात तथा प्रदक्षिणा करके बाहर आया। मगर आगे नही बढ सका। ऐसा लगा कि रस्सी से बाँधकर उसके मन को मन्दिर के भीतर कोई खीच रहा है। विवश-सा वह भीतर गया, फिर बाहर आया, फिर गया, फिर बाहर आया। इस प्रकार वह लगातार सात बार भीतर गया और बाहर आया। कुछ खीच रहा है, कोई अदृश्य आकर्षण-रज्जु। हर बार वह यह सोचकर निकलता था कि अबकी बार वह बाहर चला जायेगा, उज्जयिनी छोड देगा, पर हर बार बाहर आने पर वह खिचाव का अनुभव करता था। वह कुछ समझ नही पा रहा था कि उसे हो क्या गया है। यह क्या कोई अभिचार है जो उसे बार-बार अपने मन का नही करने दे रहा है? वह थोडी देर के लिए स्थिर खडा हो गया। उसने दृढ संकल्प किया कि वह अब नही रुकेगा। सारे अभिचार को अस्वीकार करने का दृढ सकल्प लेकर वह मन्दिर के द्वार से घाट की ओर रवाना हुआ। उसे लगा कि कोई पीछे-पीछे आ रहा है। पीछे मुडकर देखा, कही कोई नहीं है।

यह क्या रहस्य है? वह क्षण-भर के लिए चकराया। फिर तलवार की मूठ कसकर पकड़ी और सावधान होकर आगे बढ़ा। संकल्प की दृढ़ता का अच्छा फल मिला। जान पड़ा कि उसके मन पर से एक भारी बोझ हट गया है। उसने बिना पीछे मुड़े महाकाल को प्रणाम किया—खीच रहे हो देवाधिदेव, पर मैं रुक नहीं सकता। मैं उज्जयिनी छोड़ देने का संकल्प कर चुका हूँ। मेरा चित्त उत्क्षिप्त है। तुम्हारी सेवा में मन और प्राण नहीं ढाल सकूँगा। तुम्हीं ने यह दुर्बलता दी है, जैसी भी है, जो भी है, तुम्हारी दी हुई है, आर्यक विवश है! मेरा मन एक ओर भाग रहा है, प्राण दूसरी ओर खींच रहा है, मैं अपने-आप द्विधा-विभक्त हो गया हूँ। मुझे कहीं शान्ति नहीं मिल रही है। तुम्हारे चरणों में अपने-आपको निचोडकर निःशेष रूप से ढरका सकूँ, ऐसा साहस नहीं बटोर पा रहा हूँ। क्षमा करो अन्तर्यामिन्, इस तामस काया से कुछ भी सधने वाला नहीं है! जी रहा हूँ, क्योंकि तुम मृत्यु को भेज नहीं रहे हो; चल रहा हूँ, क्योंकि तुमने वासनाओं के भँवर को गतिशील बना दिया है। क्षमा करना देवाधिदेव, आर्यक वशी नहीं बन पाया है, वह विवश है, परवश है अवश है!

परन्तु उसे फिर लौटना पड़ा। तलवार की मूठ पर कसी हुई मुट्ठी और भी कस गयी, पर शरीर विवश भाव से फिर से मन्दिर की ओर खिंच गया, जैसे किसी ने मुँहजोर घोड़े की लगाम खींचकर लौटा लिया हो। वह मन्दिर-द्वार पर फिर आकर खड़ा हो गया। संकल्प-शक्ति की दृढ़ता का अभिमान टूक-टूक हो गया। देवाधिदेव के प्रति किया गया मानसिक विनिवेदन भोंडा उपहास बनकर रह गया। कैसी माया है प्रभो! क्या कराना चाहते हो इस अभाजन से? यह कैसा मोहमय आकर्षण है? भागना भी अपने हाथ में नहीं है? नहीं, वह अब मन्दिर में नहीं जायेगा। वह देर तक द्वार पर खड़ा रहा। उसकी दृष्टि दूर चौंतरे पर बैठी एक दिव्य द्युति वाली संन्यासिनी की ओर गयी। वह एकटक उसी ओर देख रही थी, मानो देर से इस प्रतीक्षा में हो कि वह उसकी ओर देखे। प्रथम दृष्टि में आर्यक ने केवल उसकी एक ऊपरी छाया ही देखी। फिर उसका रूप निखरने लगा। आर्यक ने देखा, वह ज्योतिष्मती है। जैसे किसी निपुण कलाकार ने सुवर्ण-प्रभा से ही उसे बनाया हो। आर्यक उसकी ओर बढ़ा, अनिच्छापूर्वक। निकट पहुँचकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उसकी ज्योति निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी। सारे मुखमण्डल को घेरकर एक अपूर्व प्रभामण्डल स्पष्ट झलक रहा था, ललाट इतना उज्ज्वल था कि सोने के दर्पण का भ्रम होता था। उसके परिधान में एक हल्के लाल रंग का कौशेय वस्त्र था—शरत्कालीन प्रभात की प्रथम किरणों के समान चमकीला। उसके मुँह से अचानक अपने मित्र चन्द्रमौलि की कविता की एक पंक्ति बरबस निकल गयी—वासं वसाना तरुणार्करागम्! तरुण सूर्य की

लालिमवाला वस्त्र ! पर वह हिल-डुल नहीं रही थी, एकटक उसी की ओर निर्निमेष नयनों से देखे जा रही थी। मूर्ति है क्या ? ध्यान से देखने पर आर्य को लगा कि देह तो पतली कनक-छरी-सी थी, पर कान्ति से भरी-भरी लग रही थी। कान्ति का भराव ऐसा था कि अष्टमी के चन्द्रमा के समान प्रशस्त ललाट पर पड़े हुए चेचक के दाग दूर से एकदम नहीं दिखायी दे रहे थे।

आर्यक ने निकट आकर उस दिव्य नारी-मूर्ति को देखा। प्रौढ़ वय में भी उस रूप में एक विचित्र प्रकार की कसावट थी। आँखों में करुण मातृत्व लहरा रहा था। केश भ्रमरावली के समान घुँघराले थे, मगर बीच-बीच में एकाध रजत-शलाका की भाँति श्वेत भी हो गये थे। अधरपुट मुर्झाये पाटल के समान सूख कर भी चमक रहे थे। युवावस्था में निश्चय ही वह सुन्दरियों की मुकुटमणि रही होगी। आर्यक ने निकट आकर श्रद्धा-सहित प्रणाम किया। देवी का दाहिना करतल ऊपर की ओर उठा, प्रफुल्ल कमल की एक वलयित लहरदार रेखा-सी खिंच गयी। आर्यक ने इस आशीर्वाद में कृतकृत्य-भाव का अनुभव किया। सन्यासिनी के अधरों पर मन्द मुसकान खेल गयी, 'रोक रहे हैं तो क्यों नहीं रुक जाते बेटा ! इनकी माया काटकर कहाँ भागोगे ? देर से देख रही हूँ, भागना चाहते हो, भाग नहीं पा रहे हो। देखो ना, पाँच बरस से भागकर जाना चाहती हूँ। जाने दें तब तो। जो ये चाहते हैं वही होना चाहिए। दूसरा क्या चाहता है, इससे इन्हें कोई मतलब नहीं। अपनी होनी चाहिए। कहती हूँ, जाने दो, लौट आऊँगी, सुनता कौन है !'

आर्यक अवाक्।

'रुक जाओ बेटा, इन पर किसी का वस नहीं है। माँ वश में कर सकती थी, पर वह नाराज हैं, गुस्से में गयी, सो गयी। अब उनका गुस्सा औरों पर उतारते हैं—नहीं जाने देंगे ! जिसे रोकना था उसे तो रोक नहीं सके। मुझे रोकते हैं, तुम्हें रोकते हैं। धन्य हैं !'

आर्यक कुछ समझ नहीं सका। क्या कह रही हैं यह माताजी ? वह कौन है ? कौन रोकता है ? किसे ? उसे इतना तो समझ में आ पाया कि रोकने-वाले महाकालनाथ हैं। माताजी क्या देवी की कह रही हैं। वे नाराज क्यों हो गयी ? कहाँ चली गयी ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आर्यक की वाणी रुद्ध हो गयी। वह आश्चर्य से केवल ताकता रहा।

सन्यासिनी की दृष्टि बराबर उसी पर टिकी रही। मृदुल वाणी में फिर बोलीं, 'बेटा, तुम चुप क्यों हो ? कहाँ से आये हो ? महाकाल के दरबार में कैसे पहुँचे ?'

आर्यक अब भी कैसा-कैसा अनुभव करता रहा। बोलने की इच्छा नहीं

हो रही है। देवबाला के समान अनुपम शोभामयी मातृकल्पा देवी के प्रश्नों का उत्तर न देना अशिष्टता है, आर्यक से अधिक इस बात को कौन जानता है! पर उसके मुँह से बोल ही नहीं निकल रहे हैं। कैसी विचित्र बात है!

उसने बोलने का प्रयत्न किया, पर उत्तर नहीं सूझा। आयासपूर्वक गला साफ करके बोला, 'अविनय क्षमा हो माताजी, क्या कहूँ समझ में नहीं आ रहा है। मैं भटका हुआ परदेशी हूँ। यदि ढिठाई क्षमा करें तो मैं यह जानने का प्रसाद पाना चाहता हूँ कि आप कौन हैं और जो बातें आप कह रही हैं, उनका अर्थ क्या है?'

'सचमुच भटक गये हो वत्स। तुम्हें तो लहुरावीर के धाम में पहुँचना चाहिए था। तुम्हारी मध्यमा वृत्ति ही क्रियाशील जान पड़ती है। मध्यमा वृत्ति में ही दण्डहस्ता भगवती वक्रता सहन नहीं कर पाती। तुम भटककर इधर आ गये हो। महाकाल पश्यन्ती वृत्ति में विहार करनेवाली अंकुशधारिणी वामा के अभिलाषी हैं। बड़ी मनावन चाहती हैं मानिनी वामा देवी। पद-पद पर मान, पद-पद पर ठसक! बाप रे बाप, इतनी मानवती हैं कि बस नाक का फोड़ा समझो।'

आर्यक उलझन में पड़ गया। लहुरावीर का वह सचमुच ही किसी समय उपासक था। पर जीवन की विषम परिस्थितियों ने सब साफ कर दिया। लहुरावीर छूट गये। लहुरावीर के सेवक पर प्राण वारनेवाली प्रिया मृणालमंजरी छूट गयी। जीवन में चन्द्रा धूमकेतु-सी आयी और सब छिन्न कर गयी। चन्द्रा सुन्दर है, मोहिनी है, सम्भावित-हृदया है, भुलाये नहीं भूलती, पर आर्यक लहुरावीर को भूलकर महाकाल के दरबार में आ गया। भटार्क ने मथुरा को जीत लिया है, नाम आर्यक का ही चल रहा है। यदि सचमुच वहाँ आर्यक पहुँचा होता तो लहुरावीर मिल गये होते, पर वह भटक गया। यह अद्भुत संन्यासिनी कहती है कि उसे लहुरावीर के धाम में जाना चाहिए था। यहाँ आकर उसने क्या कोई दोष किया है? सन्यासिनी ने आर्यक के मन की बात मानो ताड़ ली। बोली, 'दोष नहीं है बेटा, दोष क्या है? वासुदेव और महादेव कोई भिन्न देवता थोड़े ही हैं? एक ही हैं। नाम-रूप तो उपासक के भाव हैं। उपासक के भाव ही तो उपास्य को नाम और रूप देते हैं। मैं कह रही थी कि तुम अपना 'स्व-भाव' नहीं जानते। स्व-भाव को न जानने का नाम ही भटकना है। तुम्हें मैं पहचान गयी हूँ। और कई लोग भी पहचान गये हैं। यह दिव्य तेज, यह आजानुलम्बित बाहु, यह कपाट-सा वक्ष, यह वृषभतुल्य स्कन्ध और यह मत्त गजराज की गति तुम्हें लाखों में एक बना देती है। विधाता ने महाभूत समाधि धारण करके यह मोहक रूप बनाया था। कैसे छिप सकोगे मेरे लाल! कहो तो नाम बता दूँ। पर बताऊँगी नहीं। सुनो बेटा, मैं भी बहुत

भटकी हूँ। अब भी क्या कम भटक रही हूँ ? मथुरा गयी, श्रीकृष्ण के दरबार मे। बाप रे बाप, केवल लेना जानता है। राग-विराग, मान-अभिमान, शरीर-मन, सबको खीच लेता है। पूर्ण समर्पण माँगता है, जरा भी रियायत नही। कृष्ण है न !—खीचनेवाला। प्रिया बनो, सखी बनो, मनावन करती रहो। बीस बरस रही बेटा। सब दे दिया, पर उसका अभी सन्देह नही गया। कहता है, अभी बहुत छिपाके रखा है, उलीच दो। झगडा कर बाप के घर चली आयी हूँ। अवढरदानी बाप—महादेव। केवल देता है, देता है, दिये ही जाता है! माँ नाराज होती हैं तो यह बेटी ही तो मनाती है। मगर कैसा दातृत्व है! उधर वह लुटेरा चैन से नहीं रहने देता। चली आओ, जल्दी आओ। मेरा मन भी व्याकुल हो जाता है। इधर पिता हैं कि कहते हैं, थोडा रुक जा बिटिया, अभी और कुछ दूंगा। बताओ बेटा, कहाँ अपना स्व-भाव जान पायी हूँ। दाता हूँ कि गृहीता ? प्रिया हूँ कि पुत्री ? नही बेटा, यहाँ आने में कोई दोष थोड़े ही है। क्यो आये हो, पता है ? मेरे लिए। अवढरदानी भोलानाथ मन की वासना जानते भी हैं, निर्बाध भाव से दे भी देते हैं। मेरी आँखें जुडा गयी।'

आर्यक हैरान। क्या सुन रहा है ? उसे कुछ ठीक समझ मे नही आ रहा है, पर लग अच्छा रहा है। वह एकटक माता सन्यासिनी को देख रहा है—निर्निमेष, अवाक्!

अपने को सम्हालने का प्रयत्न करते हुए उसने कहा, 'धृष्टता क्षमा हो मातः! दो नही, तीन भाव आप मे स्पष्ट देख रहा हूँ। दो को तो आपने स्वयं बता दिया है। तीसरा मातृ-भाव है। मुझे आपकी वाणी में इस अभाजन के प्रति वात्सल्य-गद्‌गद भाव दिखायी देता है। पर माता, ये तीनो भाव तो हर नारी मे स्वभावतः विद्यमान होते हैं। इनमें परस्पर कोई विरोध तो होता नही। क्यों माता, पुत्री-भाव, प्रिया-भाव और मातृ-भाव क्या हर नारी मे सदा विद्यमान नही रहते—एक ही साथ ? सब मिलकर क्या 'स्वभाव' नही कहला सकते ?'

'नही मेरे लाल, ये तीनों भाव नारी की विवशता हैं। जो विग्रह (शरीर) विधाता की ओर से उसे मिला है उसकी विवशता है कि वह तीनो मे रमे। उसका यह चुनाव—*स्वेच्छा से चुना हुआ भाव नही है! 'स्वभाव' अपने-आपको* प्रयत्नपूर्वक पहचानने से समझ मे आता है। अपने वास्तविक भाव को जानना कठिन साधना का विषय है। युवावस्था मे मैंने अपने में स्वामिनी भाव पाया था—*सब कुछ पा लेने का, सब कुछ पर अधिकार कर लेने का भाव।* एक ही धक्के मे वह बालू की भीत भहरा गयी।'

वे कुछ म्लान हो गयी। आर्यक उनके चेहरे को ध्यान से देखता रहा। उसे आश्चर्य हुआ कि उनकी पलकें स्थिर है। जो टकटकी पहले थी वह अब भी

ज्यों की त्यों बनी हुई थी। थोड़ा सम्हलकर बोली, 'तुमने समझा नहीं बेटा! जो भाव उन्हें दिया नहीं जा सकता वह व्यर्थ है, निष्फल है, वन्ध्य है। वह अपना भाव भी नहीं हो सकता। उसे आगन्तुक विकार ही समझो। तुम्हें देखकर जो स्नेह उमड़ रहा है वैसा उन्हें देखकर नहीं होता। मैंने यह भाव चोरी से अपने विशेष आश्रय के लिए छिपा रखा है। इसी से तो वे चिढ़ जाते हैं—तुमने छिपा रखा है, सब दे दो! कैसे दे दूँ बेटा? वह तो लुटेरा है, सारा अस्तित्व लूट लेना चाहता है। भारी चित्त-चोर है, पूरे मन को हथिया लेना चाहता है। इसी से भागती हूँ, पर भागकर कहाँ जाऊँगी। खींचता है, बुरी तरह खींचता है, कृष्ण है भयंकर कर्षक! यह भाव मैंने छिपा रखा है। उसे दे नहीं पायी। कहता है, भटक जाओगी, यह भी प्रिया-भाव के घेरे में घसीट लो। घसीटा जा सकता है, नहीं घसीट पाती। कोशिश करूँगी। शायद सारे-के-सारे भाव एक ही में आ जाते तो सब मिलकर 'महाभाव' बन जाते। हाय बेटा, गुरु ने बताया ही नहीं कि महाभाव क्या होता है। चस्का लगा दिया और किनारे हो गये। खुद भटक गये हैं। हाय गुरो!'

संन्यासिनी माता के चेहरे पर एक म्लान छाया दिखायी दी। अपने से ही बात करती हुई बोली, 'आए तो हैं, पर कैसे बात करूँ? यह भी चोरी ही होगी। भटके-से लगते हैं।' आर्यक ने जानना चाहा कि किसके आने की बात कह रही है। पर माता संन्यासिनी ने प्रसंग ही बदल दिया। बोलीं, 'स्वभाव की बात पूछ रहे थे न बेटा! सुनो, उदाहरण देकर बताती हूँ कि कैसे स्वभाव के ज्ञान से विकट समस्याएँ सुलझ जाती हैं। यहाँ की नगरश्री वसन्तसेना है। सब लोग उसका सम्मान करते हैं, पर गणिका का सम्मान केवल छलना होता है। हृदय से उसे कोई मान नहीं देता, सब उससे पाने की आशा रखते हैं—'दैवात् किमपि न लब्धं, दृष्टिसुखं को निवारयति' वाला भाव होता है,—भाग्य के फेर से और कुछ नहीं मिला तो दृष्टि-सुख को कौन रोक सकता है! गणराज्य जब थे तब थे, उन दिनों गणिका सारे गण की चुनी हुई रानी होती थी, परन्तु तब भी वह गण की साझे की सम्पत्ति मानी जाती थी, अब तो वह अर्थ-योग्य दासी बन गयी है। नाम वही चला आ रहा है, भावना बदल गयी है। और यह वसन्तसेना है जो रूप, शील और गुण की सचमुच स्वामिनी है। चलती है तो अनुभाव-राशि चंचल हो उठती है, सही अर्थों में 'महानुभावा' है। उसने अपने को स्वामिनी भाव की अधिष्ठात्री मान लिया। किसी नृत्य-समारोह में यहाँ नागरक-शिरोमणि चारुदत्त उस पर रीझ गया। बिचारा इन दिनों विपन्न है, पर पुराना रईस है। कला के धनी में एक कमजोरी युग-युग से चली आयी है। जो उसकी कला का सहृदय मर्मज्ञ होता है उस पर वह अपने को निछावर कर देता है। और यदि संयोग से गुणी और गुणज्ञ में एक पक्ष

पुरुष और दूसरा नारी हो तो यह बात सीमा तोड देती है। यदि दोनों युवा हों तो यह रीझ उत्कट प्रेम का रूप ग्रहण करती है। यही हुआ। चारुदत्त और वसन्तसेना एक-दूसरे की ओर बुरी तरह आकृष्ट हुए। वसन्तसेना का काल्पनिक स्वामिनी भाव अब यथार्थ हो उठा। उसे मन के अनुकूल ऐसा साथी मिला, जिस पर वह पूरा अधिकार पा सकती थी। वह अधिकार पाने के लिए उन्मादिनी हो उठी। कठिनाई यह थी कि चारुदत्त के समान शीलवान् सत्पुरुष के लिए यह उन्मादक प्रेम धर्मसंकट बन गया। उसकी सती-साध्वी पत्नी है धूता। आहा! कैसा दिव्य रूप है, कैसा शील और व्रत! जो देखेगा वही उसके चरणों पर सिर रख देने की ललक उठेगा। ऐसी साध्वी पत्नी को वह कैसे दुखी कर सकता था? पर मनोभव देवता है कि समय-असमय का विचार किये बिना दमादम फूलों के बाण से वेधते रहते हैं। चारुदत्त और वसन्तसेना दोनों बिंध-बिंधकर जर्जर हो गये।

'चारुदत्त से नहीं मिले बेटा? मिलने योग्य है। यही तुम्हारी ही तरह का है, अवस्था में शायद तुमसे महीना-दो महीना बडा हो। अद्भुत सहृदय है! क्या शील है, कैसी शालीनता है, और रूप की तो पूछो मत! तुम्हें देखती हूँ तो उसकी याद आती है। अन्तर केवल इतना ही है कि तुम स्वभावतः उदात्त हो, वह ललित है—पुराने लोग ऐसों को, जो 'धी' या अन्तःकरण से ही उदात्त, 'धीरोदात्त' कहते थे और जो अन्तःकरण से ही ललित हो उन्हें 'धीरललित' कहते थे। इतना अन्तर छोड दो तो तुमको देखा या चारुदत्त को देखा, एक ही बात है! चारुदत्त भी तुम्हारी ही तरह मुझे माताजी कहता है। तुम उससे मिले बिना उज्जयिनी न छोडना, यह माता का आदेश समझना। मिले तो कह देना कि माताजी ने भेजा है।

' वसन्तसेना एक बार मुझे मिल गयी थी, विचित्र संयोग से। यहाँ ऐसा विश्वास है कि महादेव की एक पुत्री थी—मंजुलोमा। कुछ लोग बताते हैं कि उसका रोम-रोम सुन्दर होने के कारण उसे यह नाम दिया गया था। दूसरे लोग कहते हैं कि महादेव पार्वती को चिढाने के लिए उसे उनसे भी सुन्दर कहा करते थे, इसलिए उसे 'मंजुला उमा' कहते थे। जो भी हो, पार्वती और महादेव ने उसे बडे प्यार से पाला था। पर मानव-कन्या थी। विवाह के उपरान्त उसकी विदाई के समय महादेव को बडी दारुण मनोव्यथा हुई। कन्या एक तरफ अपने स्वयंवृत्त पति के घर जाने को व्याकुल थी तो दूसरी ओर *पिता की ममता भी नहीं छोड पाती थी। कहते हैं, मानवी कन्या की मृत्यु हो* गयी। होनी ही थी। महादेव मर्माहत हुए। रह-रहकर उसके वियोग से वे सन्तप्त हो उठते हैं। उन्होंने एक दिन मन्दिर के अर्चक को स्वप्न दिया कि पुत्री की विदाई का नृत्य देखना चाहते हैं। वसन्तसेना बुलायी गयी। उस

विचारी ने सदा अपने को स्वामिनी समझकर नृत्य किया था। न पुत्री-भाव का ज्ञान था, न पिता-भाव की पहचान। महादेव ने मुझे इंगित किया कि मिला दो। मैं पहुँची। तुमको शायद पता न हो बेटा, वे जो मथुरावाले हैं, मुझे सदा घर में रखना चाहते हैं 'असूर्यम्पश्या' बनाकर। नहीं चाहते कि मुझे कोई देख ले। सदा भीतर रहो, कोई देखने न पाये। बाप रे बाप, क्या विषम ईर्ष्यालु मन है उनका! फिर भी पिता के यहाँ आती हूँ तो चुप हो जाते हैं। मगर पिताजी जिस पर प्रसन्न होते हैं वही मुझे देख सकता है। तुम देख सकते हो वसन्तसेना ने देख लिया था। उस दिन बम-भोलानाथ कुछ मौज में थे। बोले, आज सब देखेंगे। मुझे क्या अभिनय करना था? रोज जो करती हूँ वही तो करना था। एक ओर अवढरदानी पिता का मोह, दूसरी ओर सारे अस्तित्व को खींच लेनेवाले निर्मोही प्रेमी का खिंचाव। नाच अच्छा बन गया। नाच समाप्त होते ही मैं एक ओर छिप गयी। वसन्तसेना ने उसे दुहराया। हाय-हाय, उसने तो उस नाच को चौगुना चमका दिया। क्या पद-संचार, क्या चारिका, क्या अंगहार, क्या अनुभाव-प्रदर्शन—सबमें उसने पंख लगा दिये, विपुल व्योम में उड़ने में समर्थ बनानेवाले पंख। लोग धरती के जड़ आकर्षण से स्वतन्त्र होकर भाव-लोक के विस्तीर्ण आकाश में उड़ गये। सात्विक भावों के अभिनय में तो उसने कमाल कर दिया। उसी दिन पहली बार उसे लगा कि उसके समस्त बाह्य आवरणों के नीचे पुत्री-भाव का अविराम स्रोत बह रहा है। वहीं उसकी सार्थकता है। मुझे उसने देखा। अपनी रामकहानी सुनायी। मैं समझ नहीं पायी कि उसकी क्या सहायता करूँ, कैसे करूँ। फिर चारुदत्त से मिली, धूता से भी मिली। सोचती रही कि क्या इस समस्या का कोई समाधान है? क्या समाधान हो सकता था इसका? स्त्री को भगवान ने जो काया दी है वह मोह और आसक्तियों का अड्डा है, ईर्ष्या और अभिमान का घर है। साधारणतः लोग यही समझते हैं कि एक म्यान में दो तलवारें भले ही रह लें, एक प्रेमिक की दो प्रेमिकाएँ नहीं रह सकतीं। ऐसी विषम अवस्था में क्या किया जाता! मैंने धूता को निकट से देखा। नख से शिख तक वह माँ है। पति को भी उसी जतन और स्नेह से प्रसन्न रखती है। एक दिन डरते-डरते मैंने बताया कि चारुदत्त वसन्तसेना को चाहता है। विश्वास करोगे बेटा, उस ममतामयी महीयसी बाला ने पति को प्रसन्न रखने के लिए क्या किया? स्वयं वसन्तसेना को बुलवाया और लाड़-प्यार से उसे वश में कर लिया। उधर वसन्तसेना को पुत्री-भाव का रस मिल चुका था। और चाहिए क्या? पुत्री-भाव से व्याकुला को मातृ-भावमयी मिल गयी। दोउ आनक बने!

'तुम आर्य चारुदत्त के घर जाओगे तो देखोगे, दोनों कैसी घुल-मिल गयी हैं। चारुदत्त अब परम सुखी है। जाओ बेटा, वे भी तुम्हारी राह देख रहे

होगे । जाम्रो । उनकी समस्या सुलझ गयी है । तुम्हारी माँ सुलझ जायेगी । सुलझ गयी है मेरे लाल ! जाम्रो, इस माँ को भूलना मत । मैं देर तक नही रह सकती यहाँ । मेरे प्यारे लाल, जाम्रो । ' कहकर माताजी एक झटके मे उठ गयी । आर्यक ने चिल्लाकर कहा, 'माँ रुको, रुको ! एक बात बताती जाम्रो !'

पर माताजी गयी सो गयी । आर्यक चारो ओर खोजता फिरा । पर वे तो चली ही गयी ।

बीस

माता सन्यासिनी ! गोपाल आर्यक विस्मित है, हतबुद्धि है । वह किसी तपोनिष्ठा मानवी की बातें सुन रहा था या अपार्थिव दिव्यात्मा की ! कैसी वेधक दृष्टि थी, कैसी अद्भुत दीप्ति ! शिव की पुत्री, श्रीकृष्ण की प्रिया, स्वय स्व-भाव ज्ञान मे सशयशील पर स्व-भाव ज्ञान को सब समस्याम्रो के समाधान की कुजी माननेवाली । शिव की पुत्री मानवी मजुलोमा के अभिनयपरक नृत्य की एकमात्र जानकार ! कही तो ऐसी कथा नही सुनी ! अचानक मृणालमजरी की माता, हलद्वीप की नगरश्री अपनी सास मंजुला देवी का उसे ध्यान आया । बहुत छुटपन में उन्हे देखा था, भरोसे-योग्य कुछ याद नही आया, पर दीप्ति, कान्ति, पूर्ण अनुभाव लहरी याद है । वही तो नही है ? आर्यक के सोचने-विचारने की शक्ति शिथिल होती जा रही है । सारा शरीर रोमाच-कटकित है । किसने उसे इतने प्यार से माता का आदेश दिया ? आदेश तो आदेश है । वह चारुदत्त के निवास-स्थान की ओर चल पडा । तुम साक्षी हो महाकाल, तुम्हारी पुत्री के आदेश का पालन कर रहा हूँ ।

चारुदत्त द्वार पर ही मिल गये । उनके पीछे उनकी पत्नी धूता खडी थी । यद्यपि उनका मुखमण्डल अवगुण्ठन से अधिकाश ढका हुआ था तो भी उन महीन वस्त्रो के अवगुण्ठन को भेदकर शामक प्रकाश की किरणें-सी निकल रही थी—मानो शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा से मेघों के भीने पटल को विदीर्ण करके कोमल मरीचिमाला निकल रही हो । बिना किसी के परिचय कराये ही आर्यक ने दोनो को पहचान लिया । उसने अपना नाम बताकर दोनो को आदरपूर्वक प्रणाम निवेदन किया । चारुदत्त सचमुच सुपुरुष थे । उनमें विशेष प्रकार की स्निग्ध आभा दिखायी देती थी । वाणी मे अनायास-सिद्ध सहज वचन-रचना की सुगन्धि थी । सारा शरीर सुनिपुण कलाकार द्वारा गठित मनोहर प्रतिमा-

सा कमनीय लग रहा था। जिस तत्परता से उन्होंने गोपाल आर्यक का स्वागत किया वह विस्मयकारक था। ऐसा जान पड़ा जैसे वे उसे दीर्घ काल से अपने परम-प्रिय सम्बन्धी के रूप मे जानते हैं। अत्यन्त मृदु-विनीत वाणी में बोले, 'प्रिय बन्धु, हम लोग देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये मेरी सहधर्मिणी धूता देवी हैं। आपको देखने के लिए पत्र से व्याकुल हैं।' आर्यक का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। जी मे आया, उनके चरणो की धूल सिर पर धारण कर ले। चित्त के अत्यन्त गम्भीर तल मे कोई कह रहा था---'गिर जा आर्यक, इन पवित्र चरणों में। मृणाल के प्रति किये गये तेरे अन्ययाचार का प्रायश्चित्त यही है। यही तेरे मन और प्राण पवित्र होंगे।' पर वह चरण स्पर्श नही कर सका। अपने ही भीतर विद्यमान कलुष उसके इस प्रायश्चित्त में भी बाधक हो गया। वह जडवत् स्थिर रह गया। दोनों हाथ जोडकर केवल मौन प्रणाम-निवेदन कर सका। धूता देवी ने भी मौन आशीर्वाद दिया। उनकी स्निग्ध आँखो की शामक मरीचियाँ अवगुण्ठन भेद करके उसके माथे पर बरस पड़ी। आर्यक मानो कृतकृत्य हो गया। पर उसके अन्तर्यामी ने यह बात उससे छिपा नही रखी कि दोनों ओर अवगुण्ठन है---उसकी ओर से आन्तरिक, देवी की ओर से बाह्य। थोड़ी देर तीनों चुपचाप खड़े रहे, जैसे अन्तरतर की अज्ञात ऊर्मियों से जूझती हुई बाह्य चेष्टाएँ निष्क्रिय हो गयी हों।

आर्य चारुदत्त ने ही स्निग्ध-मधुर वाणी में कहा, 'बन्धु, बड़े सकट-काल मे उपस्थित हुए हो। माताजी ने कहा था कि तुम ठीक समय पर आ जाओगे। उन्ही की आज्ञा से हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्ही की आज्ञा से यह बहली भी बिल्कुल तैयार है। हम लोगों को एक अज्ञात स्थान मे जाना है। मैं, धूता देवी और तुम, साथ मे तुम्हारा बालक रोहसेन। कुल चार आदमियों को वहाँ जाना है। देर हो रही है। आओ बैठें।'

चारुदत्त और धूता चल पड़े। यन्त्र-चालित की भाँति आर्यक भी पीछे-पीछे चला। कुछ पूछना आवश्यक नहीं था। गाड़ी में पहले से ही रोहसेन बैठा था। तीनों बैठ गये। पर्दा गिरा दिया गया। गाड़ी चल पड़ी। बालक रोहसेन अँधेरे मे पहले पिता की गोद में गया, फिर माता की। वह भी जोर से नही बोल रहा था। माता से धीरे-धीरे पूछा, 'ये कौन है माँ।' इशारा आर्यक की ओर था। माँ ने फुसफुसाकर कहा, 'तेरे काकाजी!' बच्चा उठकर आर्यक की गोद में बैठ गया। आर्यक ने प्यार किया और उसके मन में एकाएक गोमन आ गया। हाय, वह भी इतना ही बड़ा हुआ होगा। आर्य चारुदत्त शान्त स्थिर बैठे रहे। जैसे किसी समस्या को मन-ही-मन सुलझा रहे हों। गाड़ी चुपचाप चलती जा रही थी। आर्यक के मन में विचारों के तूफान चल रहे थे। धूता ने बहुत धीरे-से फुसफुसाकर आर्यक से कहा, 'देवर, तुम्हारे लिए कुछ कर नही

सकी। बड़ा संकट आ गया है। इनसे कहो कि गाड़ी घुमाकर बहन वसन्तसेन को भी ले लें। न जाने क्या विपत्ति आवे। बिचारी असहाय है। मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है।'

चारुदत्त ने सुन लिया। धीरे-से कहा, 'नहीं, कुछ और व्यवस्था की गयी है।' पर धूता का मुख एकदम मलिन हो गया। आर्यक को उस म्लान मुख में एक असहाय करुण भाव दिखायी दिया। उसने आग्रह किया कि भाभीजी की बात मान ली जाये। चारुदत्त कुछ असमंजस में पड़ गये। आर्यक ने अपनी तलवार की ओर इशारा करते हुए कहा, 'चिन्ता क्या है आर्य, साथ में तुम्हारा मित्र है। एक बार काल से भी जूझ सकता है।' चारुदत्त ने फुसफुसाकर कहा, 'उधर संकट की आशंका है मित्र, मैं तुम्हें संकट में नहीं डालूँगा। अभी तो तुमसे कोई बात भी नहीं हुई। हम लोग इस समय राजभवन के सामने से जा रहे हैं। मुझे और तुम्हें तुरन्त मार डालने का आदेश दिया गया है। माताजी ने कहा था कि तुम लोग जीर्णोद्यान के पास पहले मन्दिर में पहुँच जाना। फिर वसन्तसेना के लिए गाडी भेज देना। माताजी बहुत सोच-समझकर कहती हैं।' आर्यक भूल गया था कि वह छिपकर कहीं जा रहा है। जरा उत्तेजित स्वर में बोला, 'पालक का राजभवन यही है? उसे मैं यमलोक भेजूँगा। वह क्या मुझे मरवा डालेगा?' बाहर किसी दण्डधर को सन्देह हो गया। उसने गाडी रोकने का आदेश दिया। चारुदत्त और धूता के मुख पर विषाद और भय की काली छाया घनी हो गयी। बाहर दो सैनिक गाडी के सामने खड़े हो गये। वे पर्दा उठाने का प्रयत्न करने लगे। गाड़ीवान ने भय-विजड़ित वाणी में कहा, 'आर्य 'चारुदत्त की पत्नी धूता देवी जा रही हैं मालिक, पर्दा न हटाइए।' एक सैनिक ने उसे अपशब्द कहकर डाँटा, दूसरे ने आगे बढ़कर चारुदत्त को ही गालियाँ दे डाली। आर्यक के लिए यह सब असह्य हो रहा था, किन्तु चारु-दत्त के इंगित पर वह चुप हो बैठा रहा। फिर भी, हाथ तलवार की मूठ पर अपने-आप जम गये थे। गाड़ीवान ने फिर पर्दा छूने का निषेध किया। पर एक सैनिक पर्दा उठाने पर अड़ गया। सैनिकों में भी मतभेद देखा गया। कुछ और सैनिक आ गये। एक ने कहा, 'देख रे, आर्य चारुदत्त के परिवार की प्रतिष्ठा और मर्यादा पर आँच नहीं आनी चाहिए। पर्दा उठायेगा तो तेरा सिर धड़ पर नहीं रहेगा।' पर्दा उठाने पर तुला हुआ सैनिक ताव खा गया। उसने पर्दा उठाने का प्रयत्न करते हुए कहा, 'सिर गिरेगा तेरे बाप का!' दूसरा सैनिक और भी उत्तेजित हो गया। उसने उसकी शिखा पकड़कर झटके से खींचा, वह राजमार्ग पर लुढ़क गया। आर्यक फिर कसमसाया। चारुदत्त ने फिर रोक दिया। अब सड़क पर सैनिकों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। तरह-तरह की बातें सुनायी देने लगीं।

भीतर चारुदत्त हाथ जोड़कर किसी अदृश्य देवता से सहायता की प्रार्थना करते रहे और आर्यक क्रोध और अमर्ष की अपनी आग से आप ही जलता रहा।

इसी समय कुछ और हलचल हुई। जान पड़ा जैसे एकसाथ कई शंख और पटह बजने लगे हों। चारुदत्त और भी शंकित हो गये। धीरे-से बोले, 'जान पड़ता है राजा की सवारी आ रही है। हे भगवान्, अब क्या होगा !' आर्यक ने फिर उन्हें अपनी तलवार की ओर देखने का इंगित किया। पर चारुदत्त व्याकुल ही बने रहे। गोपाल आर्यक ने धूता की ओर देखा ही नहीं था। रोहसेन भय के मारे माँ की गोदी में चिपका हुआ था और धूता का मुँह रक्तहीन सफेद हो गया था। उससे अब सहन करना असम्भव हो गया, पर चारुदत्त का हाथ उसी प्रकार उसे मना करने की मुद्रा में जहाँ-का-तहाँ स्थिर हो रहा था। मन्त्रबल से रुद्धवीर्य कालसर्प की तरह वह केवल निष्फल फुफकार मारता रहा। उद्धत फुफकार!

बाहर राजाधिराज पालक की जय-जयकार हुई। सैनिक संयत होकर खड़े हो गये। आठ घोड़ों से सजे हुए रथ की घण्टियाँ टन-टन करती हुई बहली के पास आकर एकाएक रुक गयीं। रथ के भीतर से खरखराहट-भरे गम्भीर स्वर में पूछा गया, 'क्या बात है ?' एक सैनिक ने आगे बढ़कर जुहार किया और बोला, 'धर्मावतार, सैनिकों को सन्देह है कि इस बहली में पुरुष बैठे हैं। गाड़ीवान कह रहा है कि इसमें चारुदत्त की सहधर्मिणी धूता देवी हैं। वे पर्दा उठाकर तलाशी लेना चाहते हैं।' गुरु-गम्भीर स्वर में आदेश हुआ, 'तलाशी ले लो। शत्रु की गाड़ी है। अगर धूता भी बैठी हो तो कारागार में डाल दो।' एक क्षण का समय मिला। धूता का चेहरा और भी सफेद हो गया। सैनिकों ने पर्दा उठा दिया। बिना किसी झिझक के आर्यक नंगी तलवार लेकर बाहर कूद पड़ा। एक क्षण में जैसे बिजली चमककर समूचे अन्धकार को चीर डालती है उसी प्रकार उस नंगी तलवार की लपलपाती दीप्ति से सैनिकों की भीड़ चिर गयी। 'सावधान ! धूता देवी की छाया छूनेवाले यमलोक जायेंगे।' बाहर आते ही उसने पहला वार पर्दा उठानेवाले सैनिक पर किया। वह धरती पर लोट गया। पास खड़े सैनिक भरभराकर पीछे हट गये। आर्यक ने देखा, सामने आठ घोड़ोंवाला सोने का रथ है। उसमें राजा बैठा है। उसके इर्द-गिर्द सैनिकों के झुण्ड हैं। जब तक आवाज आयी—'पकड़ लो इसे', तब तक वह रथ में कूद गया। एक ही वार में राजा पालक का सिर धड़ से अलग हो गया। कुछ सैनिक उस पर टूट पड़े। परन्तु उसने मूली की तरह उन्हें काट दिया और नंगी तलवार हाथ में लिये रथ के ऊपर चढ़ गया। चिल्लाकर बोला, 'मैं गोपाल आर्यक हूँ। मेरी सेना मथुरा विजय करके उज्जयिनी की ओर सत्वर आ रही है। पहुँची ही समझो। किसी ने इधर आने की धृष्टता की तो अपने

राजा के रास्ते जायेगा। जो मेरे साथ रहेगा उसकी पद-वृद्धि होगी, उसे पुरस्कार मिलेगा।' इस घोषणा का विचित्र प्रभाव पड़ा। पालक की अधिकांश सेना भृतिक थी—भाड़े पर संग्रह की हुई। सैनिकों के सामने पुराना राजा मरा पड़ा था, नया पद-वृद्धि और पुरस्कार की घोषणा कर रहा था। उधर विशाल वाहिनी, जिसके सामने कोई टिक नहीं पाया था, बढ़ी आ रही थी। भृतिक सेना पुरस्कार चाहती है, राजा कोई हो, अधिकांश सैनिक जय-जयकार करते हुए आर्यक के पीछे खड़े हो गये।

चारुदत्त अब तक गुमसुम बैठे थे। अब वह भी गाड़ी से निकल आये। आवेशजड़ित कण्ठ से उन्होंने कहा, 'बोलो महावीर गोपाल आर्यक की जय!' सैनिकों में बहुत ऐसे थे जो चारुदत्त को पहचानते थे। कई सैनिकों ने आर्य चारुदत्त का साथ दिया—'महावीर गोपाल आर्यक की जय!' फिर सैनिकों के दो दल हो गये। वे आपस में गुँथ गये। गोपाल आर्यक रथ से उतरकर अपने पक्ष के सैनिकों के आगे आ गया। देखते-देखते सैनिकों में यह समाचार फैल गया। बिना बुलाये ही आर्यक की जय-जयकार करते हुए सहस्रों नागरिक भी एकत्र हो गये। सूर्य अस्त हो रहा था। गोपाल आर्यक ने अपने पक्ष के सैनिकों को आदेश दिया कि राजभवन पर अधिकार कर लो और स्वयं नंगी तलवार लेकर धूता देवी के पास खड़ा हो गया—'भाभी, भाभी, अपने देवर पर विश्वास करो। अत्याचारी राजा यमलोक भेज दिया गया।' धूता और रोहसेन अर्द्ध-मूर्छित-से गाड़ी में पड़े थे। नागरिकों की विशाल भीड़ बार-बार धूता देवी की जय-जयकार करने लगी। थोड़ी ही देर में कुछ राज-विरोधी सैनिकों ने भवन पर अधिकार कर लिया। नागरिकों का एक दल भी उनके साथ राजभवन में घुस गया। चारों ओर से निश्चिन्त होकर पहर रात गये वे आर्यक, चारुदत्त और भय-व्याकुल रोहसेन के साथ धूता देवी को राजभवन में ले गये। बिना विलम्ब उन्होंने राजसिंहासन पर आर्यक को बैठा दिया। आर्य चारुदत्त ने उसे राजटीका दी। अभी तक सब-कुछ अव्यवस्थित रूप में हुआ था। अब गोपाल आर्यक ने आदेश दिया कि नगर में घोषणा करा दो कि पालक मारा गया है और गोपाल आर्यक ने तब तक व्यवस्था सम्हालने के लिए राजपद ग्रहण किया है जब तक पाटलिपुत्र के महान सम्राट् का कोई आदेश नहीं आ जाता। गोपाल आर्यक उस सम्राट् का सैनिक अधिकारी मात्र है। उसने और भी आदेश दिया कि राजभवन की किसी महिला का कोई असम्मान न होने पाये और नगर में जो भी दुखी और सताया हुआ हो वह अब से अपने को आर्यक के शस्त्र द्वारा रक्षित समझे। कहीं कोई कष्ट न पावे, भूखा न रहे, अत्याचरित न हो।

आदेश तो निकल गया, पर उसे नगर में घोषित करना सम्भव नहीं हुआ। कानों-कान यह बात तो फैल गयी कि पालक मारा गया है और आर्यक ने राज-

गद्दी पर अधिकार कर लिया है, पर सौ मुँह सौ बातें फैलने लगीं। किसी ने कहा—चारुदत्त और वसन्तसेना को मार डाला गया है! किसी ने कहा—धूता देवी को केश खींचकर अपमानित किया गया है। पक्की प्रामाणिक बात अस्पष्ट ही बनी रही।

गोपाल आर्यक ने अब एक-एक सैनिक से पूछताछ की। सब विश्वस्त सैनिकों की पदमर्यादा-वृद्धि का आदेश दिया। सबको यथायोग्य पुरस्कार देने का वचन दिया। आर्य चारुदत्त उनके परम सहायक सिद्ध हुए। नायक कोटि के प्रायः सभी सैनिक उनके परिचित थे। उन्हें राजभवन की सुरक्षा के लिए यथा-स्थान नियुक्त किया गया। नागरिकों की भी छानबीन हुई। कई चारुदत्त के अनुगत और भक्त निकले, सैनिकों के साथ नागरिकों को भी स्थान-स्थान पर नियुक्त किया गया। आर्यक की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गयी, पर आर्यक ने अपनी तलवार खुली रखी। आर्य चारुदत्त इतने निश्चिन्त नहीं थे। उन्होंने आर्यक से कहा, 'बन्धु, उज्जयिनी अन्य स्थानों से कुछ भिन्न है। यहाँ के शक राजाओं ने मौल सेना बनायी ही नहीं। भूमि देकर सामन्तों की जो मौल सेना यहाँ सदा से चली आयी है उसे नष्ट कर दिया। सेठों की श्रेणी-सेना पर उन्हें विश्वास नहीं। उसे भी नष्ट कर दिया। केवल भाड़े की भृतक सेना ही रखते हैं। उन पर मेरी आस्था नहीं है'—कहकर वे उठ गये। वे घूम-घूमकर सुरक्षा की व्यवस्था देखने लगे। आर्यक अपनी मामी और रोहसेन के साथ नगी तल-वार लिये जागता रहा। मामी बगलवाले कमरे में थीं। आर्यक को लग रहा था कि वे सो गयी हैं।

आधी रात बीत गयी। बाहर से सैनिकों ने चारुदत्त को सूचना दी कि नगर में आग लगा दी गयी है और श्रेष्ठिचत्वर के पास विकराल लपटें उठती दिखायी दे रही हैं। उन्होंने शान्त रहकर राजभवन की रक्षा करने की सलाह दी। यह भी कहा कि महाराज गोपाल आर्यक को इसकी सूचना न दी जाये, उन्हें विश्राम करने दिया जाये और राजभवन की रक्षा तत्परता से की जाये। वे स्वयं बाहर-भीतर घूमते रहे। नगर में फैली हुई आग राजभवन तक लाल प्रकाश बिखेर रही थी। चारुदत्त को एक ही चिन्ता थी—राजभवन बच जाये। धूता बच्चे को गोद में लिये चुपचाप बैठी थी। वे देवताओं और पितरों का नाम लेकर सबसे मन-ही-मन कल्याण-प्रार्थना कर रही थीं—क्या हो रहा है प्रभो, रक्षा करो, रक्षा करो! उन्हें इस बात का बड़ा कष्ट था कि घर आये अतिथि का सत्कार करना तो अलग, उसे एकदम संकट में डाल दिया। उन्हें आर्यक के साहस और दुर्धर्ष वीर-भाव से आश्चर्य हो रहा था। ऐसा देवोपम रूप और ऐसा अपार साहस उन्होंने देखा नहीं था। आहा, कैसा मीठा बोलता है! उनका हृदय वात्सल्य-भाव से आप्लावित हो गया। विचारा दिन-भर का

सुनहरी आभा से ही चाँदी की दर्वी सोने का रंग पा सकी थी। आर्यक मुग्ध भाव से देख रहा था। अरे वातुल कवियो, तुमने प्रिया के वक्षःस्थल पर सुशोभित मुक्तामाल को सुवर्णमाल समझने के काल्पनिक आनन्द को ही देखा, यहाँ देखो, मातृत्व की आभा से दीप्त सच्ची सुवर्ण दर्वी। बहुत दिन पहले आर्य देवरात ने भोजन से पहले अन्नपूर्णा के ध्यान का मन्त्र सिखाया था। याद मे आर्यक भूल गया था। आज एकाएक उसे याद आ गया। हाय-हाय, वह साक्षात् अन्नपूर्णा को देख रहा है। यही तो वास्तविक अन्नपूर्णा हैं। उसने मन-ही-मन गद्गद होकर उस ध्यान-मन्त्र का स्मरण किया। अन्नपूर्णा ही तो हैं—दाहिने हाथ मे सुवर्ण-दर्वी, बायें मे दुग्धान्नपूर्ण रत्न-पात्र, नवहेमवर्णा, कुन्दन की चमकवाली, सकल भूषण-भूषितांगी माँ अन्नपूर्णा! —

आदाय दक्षिणकरेण सुवर्णदर्वी
दुग्धान्नपूर्णमितरेण च रत्नपात्रम्।
मिष्टान्नदाननिरता नवहेमवर्णाम्
अम्बा भजे सकल भूषणभूषितांगीम्।

आर्यक अभिभूत-सा बैठा भाभी का परसना देखता रहा। उनके प्रत्येक चेष्टित मे अद्भुत गरिमा थी। परसना समाप्त करके भाभी ने ऊपर सिर उठाया। जरा मन्दस्मित के साथ कहा, 'शुरु करो देवर, तुम तो भाभी को देखकर ही पेट भर लेना चाहते हो।' 'भर गया है भाभी, इस अभाजन को परिपूर्ण कृतार्थता मिली है।' आर्यक ने भी हँसने का प्रयत्न किया, 'हाँ भाभी, भाभी हो तो ऐसी हो जिसे देखकर ही भूख-प्यास मिट जाये।' अब समझ रहा हूँ, आर्य चारुदत्त दिन-रात बिना खाये-पिये कैसे टनमन घूमा करते है!'

भाभी के अधरो पर रससिक्त मन्दस्मित थिरक उठा। रस-भार से बोझिल होने के कारण ही शायद वह ऊपर नही उठ सका। बोली, 'अभी तो और देखने का अवसर पाओगे, कुछ खाओ भी तो।' आर्यक ने आज्ञा-पालन किया। भाभी की हँसी अधरो पर अधिक चचल हो उठी। जरा रुक-रुककर बोली, 'बाप रे बाप, वह बिचारी तो खिला भी नही पाती होगी। भाभी को देखकर ही यह दशा है तो उस बिचारी को तो आँखो-ही-आँखो पी जाते होगे!' आर्यक हँसा, पर उसके हृदय मे ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी ने जलती शलाका छुआ दी हो। चेहरे पर भाभी को यह भाव पढ़ने मे देर नही लगी। थाली मे अनावश्यक रूप से कुछ डालने का भान करते हुए उन्होने कहा, 'बुरा न मानो देवर तो कहूँ कि तुम बड़े कठकरेजी हो। फूल-सी बहू को छोड़कर बेकार इधर-उधर घूम रहे हो। मैं तो उसे बुलाऊँगी। देखूँगी, तुम कैसे भागते हो।'

हाय-हाय, भाभी को क्या पता है कि आर्यक पर क्या बीत रही है! कैसे

जानती हूँ मामी, कि उनकी बहू फूल-सी है और मैं बेकार इधर-उधर भागने-वाला कठकरेजी हूँ। मामी को कुछ भी पता नहीं कि आर्यक क्यों भागा-भागा फिर रहा है। बोला, 'कठकरेजी हूँ नहीं मामी, बनना पड़ा है!' उसकी आँखें डबडबा आयीं। मामी घबड़ा गयीं। 'बुरा मान गये देवर, तुम्हारी मामी मूर्ख है। चाहा था तुम्हारा मनोविनोद करना, कर गयी मर्म पर आघात। नहीं लल्ला, मैं परिहास कर रही थी। मैं क्या जानती नहीं कि तुम्हारा मन मक्खन-सा मुलायम है!'

'जानती हो मामी, कैसे जानती हो? मुझे तुमने जैसा अभी तक देखा है उससे तो मेरे-जैसे क्रूरकर्मा, कठोर मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नहीं मामी, तुमने पहले जो कहा था वही ठीक लगता है। मैं बहुत दिग्भ्रान्त हूँ मामी, अपने को आप ही निरस्त करने वाला पामर—मैं स्वयं निज प्रतिवाद!'

मामी कुछ हतप्रभ हुईं। क्यों लगनेवाली बात कह दी! उन्हें कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि कैसे देवर के मन के परिताप को शान्त करें। वे डर गयीं। क्या कर दिया तूने मूर्ख नारी!

आर्यक समझ रहा था कि उसने सरल-हृदया मामी को धोखा दिया है। कितना सहज है इस महीयसी देवी का मन और कैसा कुटिल है आर्यक का चरित्र। वह भावावेग में खड़ा हो गया; मामी के चरणों में सिर रखकर रो पड़ा, 'तुम नहीं जानती, मामी, इस षण्ड देवर को! नहीं जानतीं, नहीं जानती! जान भी नहीं सकती! तुम्हारे पवित्र हृदय में ऐसे षण्डों की कल्पना भी नहीं प्रवेश कर सकती! नहीं मामी, तुम नहीं जानतीं!'

मामी हतबुद्धि! आर्यक चरणों पर गिरा पड़ा रहा। मामी के मुँह में शब्द नहीं। क्या हो गया!

थोड़ी देर में सम्हलकर उन्होंने आर्यक के सिर पर हाथ फेरा। प्यार से पुचकारकर कहा, 'उठो लल्ला, ऐसी क्या बात हुई यह? मैं सब जानती हूँ। तुम उठो तो, खाना खा लो। मैं सब ''सब जानती हूँ, मगर खाना नहीं खाओगे तो तुमसे बोलूँगी भी नहीं। अबोध मामी की बात पर इतना व्याकुल हुआ जाता है?'

आर्यक फिर उठकर आसन पर बैठ गया। थका हुआ-सा, हारा हुआ-सा!

मामी ने दुलार करते हुए कहा, 'सब जानती हूँ लल्ला! मैं जन्म-जन्मान्तर की तुम्हारी मामी हूँ, तुम जन्म-जन्मान्तर के मेरे देवर हो। एक दिन का रिश्ता है? नहीं जानती तो उनके साथ द्वार पर किसी का स्वागत करने के लिए खड़ी हो सकती थी? आज तक किसी ने घूता का लिलार भी देखा है? सब जानती हूँ।'

आर्यक अवाक् । आश्चर्य से फैली हुई आँखो से भाभी की ओर ताकता हुआ बोला, 'सब जानती हो भाभी, मेरे सारे दुष्कर्म, मेरे सारे अनुचित आचरण —सब जानती हो ? कैसे जान गयी भाभी ?' भाभी ने हँसते हुए कहा, 'सब जानती हूँ लल्ला, सब जानती हूँ। यह भी जानती हूँ कि तुमने कोई दोष नही किया। धूता का जन्म-जन्मान्तर का देवर कोई अनुचित काम कर सकता है ? खाना खा लो। सब बता दूँगी। खाते हो कि भाभी के हाथ से खाने की लालसा है ?' 'खाता हूँ भाभी। लेकिन मुझे क्या बताओगी ?' 'यही कि भाभी सब जानती है। देवरजी की नस-नस पहचानती है।'

भाभी हँसने लगी। आर्यक हतबुद्धि। 'अच्छा देवर, भाभी के लिए कहे हुए एक अपशब्द के लिए तुमने अपना प्राण संकट मे क्यो डाल दिया, कितनी देर का परिचय था ? कोई बात भी तो नही कर सकी थी ! कैसे तुमने घडी-भर की जान-पहचान मे इतना बडा दु:साहसिक कार्य कर डाला ?' आर्यक कुछ उत्तर नही सोच सका। भाभी ने ही अपने ढंग से समाधान कर दिया। 'यह क्षण-भर के काल्पनिक सम्बन्ध से नही हुआ भोलेराम। जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। एक क्षण मे फफकना है तो असाध्य-साधन करा देता है। कोई भी सम्बन्ध क्षण-भर का नही होता। अब खा लो। हे भगवान् कैसा भोला देवर दिया है।'

आर्यक खाने लगा और रह-रहकर चन्द्रा और मृणाल उसके मानस-पटल पर बारी-बारी आती गयी। सब जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध है। भाभी कितने सहज भाव से विश्वास करती हैं।

भोजन समाप्त करके भाभी की ओर देखा। 'जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध होते है भाभी ? क्या सारे के सारे ?'

'सब लल्ला, सब। आज आराम से सो जाओ। कल फिर अपनी इस जन्म-जन्मान्तर की भाभी से बात करना। आज अच्छे भले बच्चे की तरह चुपचाप सो जाओ।'

इक्कीस

श्यामरूप अब उज्जयिनी की ओर लौट पडा। उसे ऐसा लगता था कि कही से हजारो हाथियो का बल उसके भीतर आ गया है। उसे पहली बार अनुभव हुआ कि उसके जीवित रहने का कुछ उद्देश्य भी है। अब तक जीता चला आ

रहा था, परन्तु जीने का कुछ लक्ष्य नहीं था। अब उसके सामने उद्देश्य है। वह मांदी का उद्धार करेगा और उसे पत्नी-रूप में वरण करेगा। वह लौटकर फिर स्नेहमयी माता के चरणों में सपत्नीक आकर प्रणाम करेगा। जिस वृद्ध पिता ने भुलावे में आकर उसे पुत्र-रूप में स्वीकार किया है उसकी सेवा करेगा। उसके मस्तिष्क का सन्तुलन लौटा लायेगा और यदि सम्भव हुआ तो इन्हें लेकर फिर हलद्वीप लौट जायेगा। वह रात-भर चलता रहा। क्लान्ति का रंचमात्र भी उसे अनुभव नहीं हुआ। जीवन में जब कोई उद्देश्य निश्चित हो जाता है तो शायद क्लान्ति भी पास नहीं फटकती। श्यामरूप को अपनी तलवार पर गर्व है, परन्तु रह-रहकर उसके मन में पाँच सौ सुवर्ण-मुद्राएँ कार्य की भयकर बाधा के रूप में आ जाती हैं। लेकिन वह चिन्तित नहीं होता। कहीं से उसके चित्त में विश्वास का ऐसा कल्पतरु निकल आया है जो आश्वस्त करता है कि चिन्ता मत करो। तुम्हें सब कुछ सुलभ है।

वह छोटी-छोटी पहाड़ियों और खेतों के बीच बनी हुई पगडण्डियों से चलता जा रहा था। सूर्योदय के कुछ पहले ही वह दस कोस मार्ग तय करके उज्जयिनी के निकटवर्ती ग्राम तक पहुँच गया। वहाँ आकर उसने जो दृश्य देखा वह बिलकुल अप्रत्याशित था। लोग चारों ओर भाग रहे थे। बैलगाड़ी, घोड़ा, ऊँट और खच्चर जिसे जो मिला था उसी पर सामान लादकर स्त्रियों और बच्चों के साथ भाग रहा था। कोई किसी से बोलता नहीं था। यह दृश्य देखकर श्यामरूप थोड़ा चिन्तित हुआ। क्या बात है, यह जानने के लिए लोगों के निकट पहुँचा, परन्तु कोई कुछ बोलने की अवस्था में नहीं था। लोग केवल इतना ही कहते थे कि नगर में हंगामा हो गया है, लूट-पाट चल रही है, इसी-लिए लोग भाग रहे हैं। कुछ और अधिक संवाद जानने के लिए वह तेजी से उज्जयिनी के राजमार्ग की ओर निकल पड़ा। एक ग्राम-वृद्ध चल नहीं पा रहे थे, मगर भागने का प्रयत्न वे भी कर रहे थे। श्यामरूप ने उनको रोककर पूछा, 'बाबा, कहाँ जा रहे हो, क्या बात है? लोग इतने व्याकुल क्यों हैं?' वृद्ध थक गये थे। सुस्ताने के लिए बैठ गये। फिर बोले, 'कुछ ठीक पता नहीं है बेटा, तरह-तरह की खबरें आ रही हैं। सुना है कि मथुरा पर किसी गोपाल आर्यक की सेना का अधिकार हो गया है। उज्जयिनी और मथुरा दोनों के शासकों के चाचा चण्डसेन उज्जयिनी की ओर आ रहे थे, परन्तु राजा के साले भानुदत्त ने उन्हें बीच में कैद कर लिया है। कुछ लोग तो कहते हैं कि उनकी हत्या कर दी गयी है। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि उन्हें बन्दी बनाकर कहीं भेज दिया गया है। सुना है उनका विश्वास-भाजन मल्ल कोई शार्विलक है, उसने भानुदत्त के दण्डधरों का कड़ी अपमान किया था। भानुदत्त ने उस पर चारुदत्त के घर चोरी करने का आरोप लगाया है। इससे प्रजा में बड़ी खल-

बनी मच गयी है। सुना गया है कि आर्य चारुदत्त का घर लूट लिया गया है और यह भी कहा गया है कि लूटनेवाला और और कोई नहीं, चण्डसेन का प्रिय मल्ल शार्विलक ही है। कल दिन से ही नगर में बड़ी उत्तेजना है। उधर से आनेवाले लोगों ने बताया है कि चारुदत्त के पूरे परिवार को बन्दी बना लिया गया है। ठीक-ठीक तो मैं भी नहीं जानता, सुनी-सुनायी बातें बता रहा हूँ। कल सायंकाल मानुदत्त के सिपाहियों ने एक नर्तकी वसन्तसेना के घर पर भी धावा बोल दिया। तरह-तरह की बातें उड़ रही हैं। लोग तो यह भी कहते हैं कि वसन्तसेना की हत्या कर दी गयी है। भानुदत्त ने इस हत्या का अभियोग आर्य चारुदत्त पर लगाया है। मगर ठीक-ठीक क्या बात है, यह मैं कैसे बता सकता हूँ। सब लोग भाग रहे हैं, मैं भी प्राण लेकर भाग रहा हूँ। बेटा, इससे अधिक मैं कुछ भी नहीं कह सकता।'

वृद्ध की बातें सुनकर श्यामरूप सनाका खा गया। यह नीच मानुदत्त एक ही साथ कितने लोगों पर मिथ्या आरोप लगा रहा है! उस पर भी चोरी का और लूटपाट का अभियोग है और सबसे मर्मन्तुद बात यह है कि उसने चण्डसेन को भी बन्दी बना लिया है। श्यामरूप की भौंहें तन गयी, भुजाएँ फड़क उठीं। वह अनायास बोल गया, 'मानुदत्त को इसका फल भोगना पड़ेगा!' और किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना नगर की ओर बढ़ चला। सबसे पहले उसे मद-निका को बचा लेने की चिन्ता रही। अगर वसन्तसेना की हत्या करके चारुदत्त पर झूठा आरोप लगाया गया है, तो कौन जाने मदनिका भी बची है कि नहीं। चण्डसेन बन्दी हैं, वसन्तसेना की हत्या हो गयी, मथुरा से जो थाती लेकर वह आया था वह चण्डसेन का परिवार सुरक्षित है या नहीं, कुछ पता नहीं। उसका मन कभी जीर्णोद्यान की ओर खिंचता था, कभी वसन्तसेना के आवास की ओर। जाना दोनों ही जगह आवश्यक था, परन्तु दोनों ही जगह पहुँचना कठिन था। मानुदत्त के दुर्वृत्त अनुचरों ने जहाँ-तहाँ आग लगा दी थी और लूटपाट करने लगे थे। श्यामरूप ने क्रोध से दाँत पीस लिये। यह भाग्यहीन पालक कैसा नपुंसक राजा है! चारों ओर मार-काट मची हुई थी। कौन किस ओर से लड़ रहा था, कुछ पता नहीं। एक अजीब प्रकार की अस्तव्यस्तता दिखायी दे रही थी। श्यामरूप यथासम्भव अपने को बचाता हुआ वसन्तसेना के आवास तक पहुँच गया। वहाँ भयकर मारकाट मची हुई थी। दण्डधरों और नागरिकों के बीच मची हुई इस घमासान में श्यामरूप को दोनों पक्षों को अलग-अलग पहचान लेने में कठिनाई नहीं हुई। ऐसा जान पड़ता था कि वसन्तसेना के आवास को चारों ओर से घेर लिया गया था और नागरिक लोग घेरा तोड़कर घर के भीतर जाना चाहते थे। जिसके हाथ में जो कुछ आ गया था, वह उसी से लड़ रहा था। गलियाँ लाशों से पटी हुई थीं। श्यामरूप ने दण्डधरों को सम्बोधित

करते हुए चिल्लाकर कहा, 'सावधान, शार्विलक आ गया है। एक-एक दुर्वृत्त को वह यमलोक पहुँचायेगा!' और तलवार खींचकर वह बीच में कूद पड़ा। नागरिकों ने जो शार्विलक का नाम सुना तो उनमें उत्साह का ज्वार आ गया। महामल्ल शार्विलक के जय-निनाद के साथ नागरिक-दल दण्डधरों पर टूट पड़ा। शार्विलक ने बिजली की तरह तलवार भाँजना शुरू किया। उसका नाम सुनते ही दण्डधर पीछे हटने लगे। ऐसा जान पड़ा कि पीछे से नागरिकों का एक और दल जय-जयकार करता आ रहा है। दण्डधरों ने ऐसे सामूहिक विरोध की कल्पना नहीं की थी। इधर शार्विलक के नाम-मात्र से वे काँप उठे। नागरिकों को अनायास एक नेता मिल गया। उनकी जय-जयकार ध्वनि उज्जयिनी के गवाक्षों को भेद-कर घर-घर पहुँच गयी। ऐसा जान पड़ा कि सारा नगर उमड़कर शार्विलक के पीछे आ खड़ा हुआ है। दण्डधरों में से अनेक मारे गये, अनेकों ने मैदान छोड़ दिया। शार्विलक के साथ नागरिक वसन्तसेना के घर के बाहरी आँगन में उप-स्थित हो गये। शार्विलक ने सबको शान्त रहने का आदेश दिया और कहा, 'आप लोग यहीं स्थिर रहें। मैं घर के भीतर जाकर आर्या वसन्तसेना को देख-कर लौटता हूँ।' नागरिकों ने चिल्लाकर कहा, 'अगर आर्या वसन्तसेना जीवित हों तो हम उन्हें देखना चाहते हैं। आप उनको साथ लेकर आइए।' शार्विलक ने कहा, 'ऐसा ही होगा। आप लोग शान्त रहें।' शार्विलक घर के भीतर घुस गया। उसने एक-एक खण्ड ढूँढ डाला। उसमें न तो वसन्तसेना मिली, न मदनिका। वह निराश होकर बाहर आ ही रहा था कि एक बन्द कमरे में उसे कराहने की हलकी आवाज सुनायी पड़ी। बाहरी छज्जे पर आकर उसने नाग-रिकों को पुकारा, 'आर्यो, अभी तक मैं वसन्तसेना को ढूँढ नहीं पाया हूँ, मगर मुझे आशंका है कि उन्हें पास के ही एक छोटे कक्ष में बन्द कर दिया गया है। आप लोगों में से तीन-चार आदमी आ जायें। सबको आने की जरूरत नहीं। हमें दरवाजा तोड़ना पड़ेगा।' सुनते ही कई जवान घर के भीतर घुसने के लिए दौड़ पड़े। शार्विलक वहीं खड़े-खड़े चिल्लाकर बोला, 'अधिक लोग आयेंगे तो अनर्थ हो जायेगा। आप लोग वहीं खड़े रहें।' सबसे पीछे आनेवाले आदमी से शार्विलक बोला, 'भद्र, दरवाजा बन्द कर दो!' कोई दस जवान वहाँ आ गये, जहाँ शार्विलक ने आने की याचना की थी। शार्विलक के इशारे से कक्ष का द्वार तोड़ा जाने लगा। कपाट बहुत मजबूत थे, उनको तोड़ने में नागरिकों को कठिन परिश्रम करना पड़ा, परन्तु वह टूट ही गये। भीतर खोलकर देखा गया। दो स्त्रियाँ कसकर खम्भे में बाँध दी गयी हैं। दोनों ही प्रायः बेहोश हैं। केवल रह-रहकर उनके सुबकने की हलकी आवाज कभी-कभी आ रही थी। देखकर सभी लोग क्रोध से विक्षिप्त से हो उठे। शार्विलक ने आदेश के स्वर में कहा, 'बन्धन मैं काटता हूँ, आप लोग बाहर चले जायें।'

सब लोग बाहर चले गये। शार्विलक की तलवार को बन्धन काटने में देर नहीं हुई। कमरे में खूब अँधेरा था। सावधानी से दोनों स्त्रियों के बन्धन काटकर जब शार्विलक ने उन्हें बाहर रखा तो देखा गया कि उनमें एक वसन्तसेना है और दूसरी मदनिका। लगता था मदनिका ने सारी शक्ति लगाकर प्रतिरोध किया था। दुष्टों ने उसे मारा भी बहुत था। परन्तु इन निर्घृण दुष्टों में भी इतनी कोमलता अवश्य थी कि किसी शस्त्र से नहीं मारा था। वसन्तसेना के शरीर पर कोई चोट नहीं थी। शार्विलक की आँखों में अश्रुधारा बह चली। 'हाय देवी, तुम्हारे दर्शन भी हुए तो इस अवस्था में!' शार्विलक ने आदेश दिया कि दोनों महिलाओं के मुँह पर पानी के छींटे दिये जायें और हवा की जाये। सभी नागरिक क्रोध और करुणा के भाव से उग्र थे। शार्विलक ने छज्जे पर जाकर पुनः घोषणा की, 'मित्रो, वसन्तसेना जीवित हैं, लेकिन दुष्टों ने उन्हें खम्भे में बाँध दिया था, वे बेहोश पड़ी हैं। उनकी सखी मदनिका भी जीवित है, लेकिन वह भी बेहोश पड़ी है। आप लोगों में से यदि कोई चिकित्सक हो तो भीतर आ जाये। मैं दरवाजा खुलवा रहा हूँ। यदि कोई चिकित्सक न हो तो किसी जानकार को बुला लें।' भीड़ में से एक ठिगने ब्राह्मण देवता आगे बढ़ते हुए दिखायी दिये। शार्विलक ने देखा, यह तो आचार्य श्रुतिधर हैं! आचार्य श्रुतिधर थोड़ी बहुत चिकित्सा जानते थे। शार्विलक ने भीड़ को आदेश दिया, 'इन्हें भीतर आ जाने दीजिए।' द्वार खोल दिया गया। शार्विलक और श्रुतिधर अन्य नागरिकों की सहायता से वसन्तसेना और मदनिका का उपचार करने लगे। थोड़ी देर में वसन्तसेना और मदनिका की संज्ञा लौट आयी। उनकी आँखें खुल गयीं। कुछ देर न तो वसन्तसेना के मुख से कोई आवाज निकली और न मदनिका के। दोनों फटी-फटी विवश आँखों से ताकती रहीं। उनका सारा शरीर अवसन्न हो आया था। ऐसा लग रहा था कि कहीं भी प्राण-शक्ति का स्पन्दन नहीं है।

शार्विलक ने और नागरिकों से अनुरोध किया कि वे विशाल भवन के प्रत्येक कमरे को देख आयें। हो सकता है कहीं और भी किसी को बाँध दिया गया हो या मार डाला गया हो। यह भी आदेश दिया कि आर्या वसन्तसेना इस समय अचेतावस्था में हैं, इसलिए इन्हें किसी एकान्त कक्ष में रखा जाये जहाँ वायु और प्रकाश मिल सकते हों, और उनकी सखी मदनिका को होश में ले आने का प्रयत्न किया जाये, जिससे वह उनकी सेवा कर सके। नागरिकों ने एक सुन्दर छँयावाला कक्ष ढूँढ निकाला, जो सिप्रा के चटुल वात को गवाक्ष-जाल के रन्ध्रों द्वारा भीतर खींच रहा था। श्रुतिधर और शार्विलक दोनों ने वसन्तसेना को धीरे से उठाकर उस हवादार कक्ष में लिटा दिया। श्रुतिधर उनकी नाड़ी देखते रहे और बीच-बीच में अन्य उपचार करते रहे। एक-दो नागरिकों

को उनकी सेवा में छोड़कर और बाकी सबको भवन के हर कक्ष की तलाशी लेने के लिए भेजकर शार्विलक ने एकान्त कर लिया। मदनिका के सिर को अपनी गोद में लेकर उसने धीरे से कहा, 'मांदी, देखो, मैं शार्विलक आ गया।'

मांदी ने अवश भाव से उसकी ओर ताका। शार्विलक ने फिर कहा, 'मांदी, तुम्हारा छबीला पण्डित आ गया।' मांदी के कानों में इस शब्द ने जादू का असर किया। वह एकदम उठ बैठी, 'पण्डित, तुम आ गये! आर्या वसन्तसेना कहाँ है?' शार्विलक ने कहा, 'बिल्कुल ठीक हैं, चिन्ता न करो!' मांदी फिर से लुढ़क गयी और अवश-विह्वल भाव में शार्विलक की गोद में लेट गयी। शार्विलक ने उसके सिर पर हाथ फेरा, केशों में उँगलियाँ उलझायीं और कपोल पर लुढ़कते हुए आँसुओं को सुकुमार स्पर्श से पोंछ दिया। ऐसा लगा कि मांदी के शरीर में चेतना लौट आयी है। वह धीरे-धीरे उठकर बैठ गयी। बोली, 'तुम कब आये पण्डित, दुष्टों ने बड़ा कष्ट दिया। आर्या वसन्तसेना जीवित हैं या नहीं, सच बताओ।' शार्विलक ने कहा, 'तुम चल सकती हो मांदी? कहो तो तुम्हें आर्या के पास पहुँचा दूं!' मांदी प्रफुल्ल हो गयी, 'तो आर्या जीवित हैं?' 'अवश्य जीवित हैं। हाँ, आर्या जीवित हैं।' मदनिका उठकर खड़ी हो गयी और शार्विलक का सहारा लेकर धीरे-धीरे आर्या वसन्तसेना के कक्ष में पहुँची।

इसी समय शार्विलक ने सुना कि बाहर खड़ी भीड़ में फिर कुछ कोलाहल हो रहा है। कारण जानने के लिए वह फिर छज्जे पर आ गया। उसे देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि भीड़ दूसरी ओर भाग रही है। पहले तो उसे सन्देह हुआ कि कदाचित् भानुदत्त के सिपाही फिर लौट आये। उसने श्रुतिधर से आकर कहा, 'आर्य, आपसे कुछ बात करने का अवसर भी नहीं मिला। जान पड़ता है कि दुर्वृत्तों ने फिर नागरिकों पर हमला कर दिया है। मैं फिर युद्ध-भूमि में जा रहा हूँ, लेकिन एक बात पूछ लेना चाहता हूँ। चण्डसेन के परिवार का क्या हाल है, वे लोग सुरक्षित तो हैं?' श्रुतिधर ने कहा, 'बातें तो तुमसे बहुत कहनी हैं, परन्तु अभी इतना जान लो कि चण्डसेन का परिवार तो सुरक्षित है, परन्तु स्वयं चण्डसेन का कुछ पता नहीं चल रहा है। मैं तो वसन्तसेना के पास एक सन्देशा लेकर आया था, बीच में इस हंगामे में फँस गया। तुम्हें देखकर मेरा साहस बढ़ा और भीड़ के साथ इस मकान में आ गया। मुझे लगता है कि अभी जो कोलाहल सुन रहे हो उसका कारण है राज्य-क्रान्ति। वहाँ तुम्हारी आवश्यकता अवश्य होगी। तुम जाओ। मैं आर्या वसन्तसेना को सम्भाल लूँगा। मुझे लगता है कि तुम्हारा भाई गोपाल आर्यक, पालक को मारने में सफल हो गया है। यह भीड़ इसी समाचार से उल्लसित होकर उधर-भाग रही है, परन्तु खतरा अब बढ़ गया है। पहले केवल भानुदत्त के

गुण्डे ही उत्पात कर रहे थे, अब राजकीय सेना भी कुछ उपद्रव करेगी।' शर्वि-लक एकदम चौंक उठा, 'क्या कहा ? गोपाल आर्यक, मेरा प्यारा भाई गोपाल आर्यक आ गया ? तब तो, मित्र, मुझे अवश्य जाना है और तुम्हारे ऊपर आर्या वसन्तसेना को और मदनिका को छोड़े जा रहा हूँ, दोनों की रक्षा करना तुम्हारा काम है।'

श्रुतिधर ने मदनिका की ओर देखा, बोले, 'यह तो स्वस्थ लग रही है। यह आर्या वसन्तसेना की सखी है ?' शर्विलक ने थोड़ा संकुचित होते हुए कहा, 'मित्र, यह आर्या वसन्तसेना की सखी भी है और तुम्हारी भावी अनुज-वधू भी !' अब श्रुतिधर के चौंकने की बारी आयी। 'क्या कहते हो, समझाकर कहो ?' शर्विलक ने संकोच से कहा, 'यही मोदी है।' श्रुतिधर चकित हो गये, 'यही मोदी है ! मित्र, आज मुझे अपना भाग्य प्रसन्न जान पड़ता है। विचित्र संयोग है ! अब तुम रुको मत। आर्यक के पास जाओ। अपने बहादुर साथियों को लेते जाओ। यहाँ की देखभाल मैं कर लूँगा।'

मोदी अर्थात मदनिका वैसे ही शिथिल थी। अब लज्जा के मारे और भी निढाल हो गयी। शर्विलक ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा, 'प्रणाम करो मोदी, मेरे बड़े भैया हैं।' अत्यन्त आयास के साथ आँखें नीची करते हुए मोदी ने श्रुतिधर का चरण-स्पर्श किया और शर्विलक की तरफ देखकर स्फुट शब्दों में कहा, 'फिर जा रहे हो, यहाँ आर्या वसन्तसेना को कौन बचायेगा ?' शर्विलक शिथिल हो गया, बोला, 'जल्दी ही लौट आता हूँ। मेरे अग्रज आचार्य श्रुतिधर दोनों की रक्षा करने में समर्थ हैं। ये शस्त्र चलाना नहीं जानते, लेकिन बहुत प्रत्युत्पन्न-मति हैं। इन पर पूर्ण रूप से विश्वास करो।' आचार्य श्रुतिधर ने और जोड़ा, 'आयुष्मती मदनिका, मुझे दुर्बल समझकर अविश्वास मत करो। यहाँ आर्या वसन्तसेना को कष्ट देने के लिए कोई नहीं आयेगा। यदि आयेगा तो श्रुतिधर उसका उपाय जानता है। चिन्ता न करो। बेटी, शर्विलक को अभी जाने दो। वहाँ इसकी जरूरत है।' मदनिका ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी खुली आँखों से अश्रुधारा बह चली। श्रुतिधर ने फिर आश्वासन दिया, 'देखो बेटी, महावीर गोपाल आर्यक आ गये हैं, उन्होंने निस्सन्देह अब तक पालक को परलोक पहुँचा दिया होगा। आर्य चारुदत्त उनके साथ हैं और सुरक्षित हैं। मैं यही सन्देशा आर्या वसन्तसेना के पास लेकर आया हूँ। ज्यों ही चेतना लौट आयेगी, मैं उनको यह सन्देशा सुना दूंगा।' इस वाक्य के बाद ही वसन्तसेना की आँखें खुल गयीं। वे अस्फुट स्वर में बोलीं, 'आर्य चारुदत्त जीवित हैं ?' श्रुतिधर ने उल्लास के साथ कहा, 'जीवित हैं देवी ! देखो, गोपाल आर्यक के बड़े भाई महामल्ल शर्विलक भी आ गये हैं। उन्होंने ही तुम दोनों को बचाया है। अब वे गोपाल आर्यक की सहायता करने के लिए जाना चाहते हैं।' वसन्त-

सेना की आँखें पूरी खुल गयीं। उन्होंने अपरिचित पुरुषों को देखकर थोड़ी लज्जा अनुभव की, फिर बोलीं, 'आर्य, महामल्ल शार्विलक को देखकर आज मेरी आँखें जुड़ा गयीं।' शार्विलक ने अधिक देर करना उचित नहीं समझा। बोला, 'कल्याण हो आर्ये, मैं अभी लौट रहा हूँ।' और वह कुटी से निकल पड़ा। भवन के भीतर जवानों को सम्बोधित करके उसने कहा, 'मित्रो, मैं गोपाल आर्यक की रक्षा के लिए थोड़ी देर को जा रहा हूँ। आप लोग आचार्य श्रुतिवर और इन दोनों महिलाओं की रक्षा का भार ग्रहण करें। मैं अभी लौटकर आता हूँ।' और किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही शार्विलक तेजी से बाहर निकल गया।

बाहर अब भी भीड़ खड़ी थी। शार्विलक को देखकर भीड़ ने उल्लसित होकर जय-निनाद किया। शार्विलक ने उनसे पूछा, 'कोई नया समाचार है क्या?' एक प्रौढ़ सज्जन ने सामने आकर कहा, 'आर्य शार्विलक, अभी समाचार आया है कि गोपाल आर्यक ने नपुंसक राजा को यमलोक भेज दिया है और भानुदत्त को बन्दी बना लिया है। सुना गया है कि पालक की सेना कुछ उत्पात करने के लिए व्यूहबद्ध हो रही है। यहाँ जो लोग खड़े थे, उनमें से अधिकांश सेना का प्रतिरोध करने के लिए चले गये हैं। जो लोग वृद्ध या निःशस्त्र थे वे ही यहाँ खड़े हैं।' शार्विलक की आँखों में आनन्द के अश्रु झरने लगे। उसने कहा, 'आर्य, मुझे रास्ता दिखा दो, तो मैं भी नागरिकों की सहायता करने के लिए वहाँ पहुँचना चाहता हूँ।' उपस्थित जनता सहस्र कण्ठ से शार्विलक की जय-जयकार करने लगी और प्रौढ़ सज्जन उसे लेकर राजभवन की ओर चल पड़े। बाकी लोगों को शार्विलक ने अनुरोधपूर्वक इस भवन को घेरकर रखने का आदेश दिया और यह भी कहा कि यदि यहाँ कोई संकट आये तो यथाशीघ्र उसे सूचना दे दें।

राजभवन के बाहर ही शार्विलक ने देखा कि पालक के सैनिक व्यूहबद्ध होकर आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं, और नागरिक उसका प्रतिरोध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। ज्यों ही शार्विलक नागरिकों के मध्य पहुँचा त्यों ही उसकी जय-जयकार के नाद से आकाश फटने लगा। नागरिकों में अभूतपूर्व उत्साह आ गया। इस नये युद्ध-क्षेत्र में फिर से उन्हें शार्विलक का नेतृत्व प्राप्त हो गया। परन्तु परिणाम यहाँ भी वही हुआ। नागरिकों का उत्साह जितना ही बढ़ गया था, उतना ही सैनिकों का साहस छिन्न हो गया था। इसी समय कोई डुग्गी पीटता हुआ घोषणा करने लगा, 'पालक मार दिया गया, गोपाल आर्यक राज-सिंहासन पर अभिषिक्त हो रहे हैं।' घोषणा सुनते ही शार्विलक अपनी तलवार उछालते हुए बोला, 'बोलो गोपाल आर्यक की जय!' सहस्र-सहस्र कण्ठों ने दोहराया, 'गोपाल आर्यक की जय! गोपाल आर्यक की जय।' आश्चर्य के साथ देखा गया कि

अनेक सैनिक भी गोपाल आर्यक का जय-निनाद करने लगे। अधिकांश नागरिकों की ओर आ गये और जो बचे थे वे भाग खड़े हुए। लेकिन नागरिकों का रोष उमर पड़ा था। भागनेवाले सैनिकों को पकड़-पकड़कर वे क्रूरतापूर्वक मारने लगे। चारों ओर कुहराम मच गया, केवल बीच-बीच में शार्विलक और गोपाल आर्यक के जयनिनाद की आवाज आती रही। कौन किससे लड़ रहा है यह समझना कठिन हो गया। शार्विलक ने कूदकर एक ऊँचे स्थान पर आकर गरजकर आदेश दिया, 'शान्त हो जाइए।' आसपास के लोगों ने उसी आदेश को दुहराया, 'शान्त हो जाइए।' क्षण-भर में नागरिक अपने-अपने स्थान पर स्थिर खड़े हो गये। शार्विलक ने उत्तेजनापूर्ण स्वर में चिल्लाकर कहा, 'गोपाल आर्यक की जय!' सहस्र-सहस्र कण्ठों ने उसी प्रकार दुहराया, 'गोपाल आर्यक की जय!' थोड़ी देर में कोलाहल कुछ शान्त हुआ। जो सैनिक नागरिकों की ओर आ गये थे उन्हें सम्बोधित करते हुए शार्विलक ने कहा, 'सैनिको, आप क्या गोपाल आर्यक का नेतृत्व स्वीकार करते हैं?' सैनिकों ने प्रत्युत्तर में एक स्वर में गोपाल आर्यक की जय का निनाद किया। शार्विलक ने आदेश दिया, 'देखिए, नगर में बड़ी अरक्षित अवस्था है। मुझे अभी अपने नये राजा गोपाल आर्यक से मिलने का अवसर नहीं मिला है, परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं उनकी ओर से आपको जो आदेश दे रहा हूँ वह उन्हें मान्य होगा। आप लोग नगर की रक्षा के लिए हर चौराहे पर खड़े हो जायें। जो कोई भी लूट-पाट, मार-काट या धर-पकड़ करता है उसे तुरन्त दण्ड दीजिए। सूर्यास्त होने में केवल दो दण्ड का समय है। आप लोगों को दो दण्ड का समय दिया जाता है, आप नगर में शान्ति-स्थापन करें। यही इस बात का प्रमाण होगा कि आप लोगों ने सचमुच गोपाल आर्यक का नेतृत्व स्वीकार किया है। इस बीच यदि कोई उपद्रव हुआ तो उसका उत्तरदायित्व आप लोगों पर होगा।' फिर नागरिकों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'आर्यो, मैं इस नगर से परिचित नहीं हूँ। आप लोगों में से यदि कोई जानकार हो तो यहाँ आ जाये और सैनिकों को भिन्न-भिन्न स्थानों पर नियुक्त करने में सहायता करे।' तत्काल दो-तीन प्रौढ़ व्यक्ति शार्विलक के पास आ गये। उन्होंने कहा, 'इसकी व्यवस्था हम कर लेते हैं। आप भवन के भीतर कुछ सैनिकों के साथ जायें और वहाँ जाकर देखें कि कोई गड़बड़ तो नहीं हो रही है।' शार्विलक को यह परामर्श अच्छा जँचा। उसने सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'राजभवन की रक्षा के लिए कौन-कौन मेरे साथ चलेगा?' 'सभी सैनिक चलने को तैयार हैं!' एक साथ उत्तर मिला। 'आप जिसे भी आज्ञा देंगे वही साथ चलने को तैयार होगा।' शार्विलक ने आठ सैनिकों को चुन लिया और जो प्रौढ़ नागरिक उनकी सहायता करने के लिए आये हुए थे उनसे कहा, 'आप लोग इन्हें यथास्थान नियुक्त कर दें। कुछ

सैनिकों को आर्या वसन्तसेना के निवास-स्थान पर भी नियुक्त करें।' फिर वह अपने चुने हुए सैनिकों को लेकर राजभवन में प्रविष्ट हुआ।

बाईस

देवरात चन्द्रमौलि और माढव्य शर्मा से उसी स्थान पर फिर मिले। चलते समय श्रुतिधर ने उन्हें सावधान कर दिया कि नगर की स्थिति विस्फोटक है। जब से चण्डसेन को बन्दी बना लेने का समाचार आया है, तब से जनता बहुत विक्षुब्ध है। पालक अपने साले भानुदत्त की मुट्ठी में है। भानुदत्त के आततायी सैनिक गुण्डे हैं। मारपीट, लूटपाट, घर्षणा और आगजनी नित्य की घटनाएँ हैं। जनमत कभी भी भयकर रूप धारण कर सकता है। आततायी किसी की मान-प्रतिष्ठा कहीं भी भंग कर सकते हैं। सावधान रहना चाहिए।

देवरात हलद्वीप में भी राजकीय सैनिकों का अत्याचार देख चुके थे, पर यहाँ के अत्याचार के सामने तो वह कुछ भी नहीं था। श्रुतिधर ने बताया था कि भानुदत्त आर्य चारुदत्त को अपमानित करने पर तुला हुआ है। उड़ती खबरें तो ये हैं कि उनको और वसन्तसेना को बन्दी बना लिया गया है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते सुने गये हैं कि उन्हें मरवा दिया गया है और चारुदत्त के घर को जला देने की धमकी दी गयी है। हलद्वीप में इतना कुछ नहीं हुआ था। गोपाल आर्यक के लहुरावीर दल के आतंक से राजा भी डर गया था। जान पड़ता है यहाँ कोई वैसा लोक-रक्षक नेता नहीं है। देवरात को गोपाल आर्यक की याद कल से कई बार आयी। सच्चा शूर है। पर यह लोकापवाद कैसे चल पड़ा? सम्राट् तक ने उसे परस्त्री-लम्पट कह दिया है! कुछ-न-कुछ बात तो होगी ही! जनश्रुति अमूलक नहीं होती। आर्यक से ऐसे आचरण की सम्भावना तो नहीं थी, पर कौन जाने, यौवनमद क्या नहीं करा सकता! यह मदमत्त गजराज की भाँति कमलिनी वन को रौंद देता है। तामस प्रकृति के लोग जब इस मद से मत्त होते हैं तो मृत-मांस-लोलुप मुक्खड़ गिद्धों की तरह स्त्रियों की मान-प्रतिष्ठा लूटने लगते हैं। आर्यक तमोगुणी तो नहीं था। क्या हो गया उसे!

बिचारी मृणालमंजरी पर क्या बीतती होगी? देवरात को क्रोध आया।

बहुत दिनों से सोया हुआ यौधेय रक्त एक बार उफन पड़ा। क्या यह अपदार्थ आर्यक, यौधेय कुल की पालिता कन्या का अपमान करने की स्पर्द्धा कर सकता है ? एक बार उनका मन आर्यक के प्रति घृणा से भर आया। फिर विचारों का दूसरा दौर आया। बिना सत्य बात जाने कुछ पाप-भावना मन मे नही लानी चाहिए। लोग परमार्थ कम देखते है, ऊपरी धरातल को अधिक खरोचते हैं। पूरा जानना चाहिए। आज देवरात का यौधेय रक्त रह-रहकर धक्का मार रहा है। वे उन्मथित की भाँति चल रहे थे। मिलते ही उन्होंने चन्द्रमौलि से प्रस्ताव किया कि नगर की अशान्त स्थिति मे हमे बाहर चला जाना उचित होगा। यहाँ परदेसियो के लिए कठिनाई है। पर चन्द्रमौलि ने दृढ़ता के साथ अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि जब तक उसके मित्र यहाँ हैं तब तक वह यही रहेगा। चन्द्रमौलि के सरल-स्वच्छ मुख पर आत्मविश्वास के दृढ़ भाव देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। बोले, 'वत्स चन्द्रमौलि, तुम्हारा अनुमान ठीक हो तो मुझे भी यही रहना चाहिए। तुम गोपाल के मित्र हो, निश्चय ही तुम मित्र-मिलन के लिए व्याकुल होने के अधिकारी हो, पर मैं भी उससे मिलने के लिए कुछ कम व्याकुल नही हूँ। तुम्हे अभी तक मैंने बताया नही आयुष्मान्, मैं गोपाल आर्यक का गुरु हूँ और कदाचित् गुरु से भी कुछ अधिक हूँ। इसलिए तुम मेरी उत्सुकता भी समझ सकते हो।' चन्द्रमौलि एकदम आश्चर्यचकित हो चौंक उठा, 'क्या कहा आर्य, आप मेरे मित्र गोपाल आर्यक के गुरु है ? आहा, यह भव्य रूप देखकर मैंने प्रथम बार ही अनुभव किया था कि किसी महान् तेजस्वी पुरुष का सान्निध्य पा रहा हूँ। आर्य, मैं धन्य हूँ जो ऐसे महान् गुरु का स्नेह पा सका हूँ। किन्तु एक बात मैं नही समझ सका। आप कहते है कि गुरु से भी कुछ अधिक है। भला गुरु से अधिक और क्या हो सकता है आर्य ?'

देवरात ने कहा, 'बता दूँगा आयुष्मान्। अभी तो मैं अपने मन की शंका तुम्हे बताना चाहता हूँ। ऐसा लगता है वत्स, कि गोपाल आर्यक उज्जयिनी आया भी हो तो अब कही अन्यत्र चला गया है। तुम्हारी बातों से और अन्य लोगो की बातो से मैंने ऐसा समझा है कि गोपाल आर्यक किसी विषम लोका-पवाद से दुखी है। लोकापवाद क्या है, यह मैं ठीक से जान नही पाया हूँ, पर लोगो की बातो से स्पष्ट है कि वह कुछ अनैतिक आचरण का अपवाद अवश्य है। कदाचित् परस्त्री-सम्पर्क जैसा कुछ है। मेरा मन बहुत व्यथित है। तुम मेरी प्राण-विदारिणी व्यथा समझ सकते हो कि नही, कैसे बताऊँ। हाय, वत्स, यही तुम जानते कि गोपाल की पत्नी मृणालमंजरी मेरी पुत्री है। मेरा चित्त बहुत व्यथित है वत्स, मैं स्वप्न मे भी नहीं सोच सकता कि गोपाल आर्यक ऐसा काम कर सकता है जिससे मृणाल को रंचमात्र भी मानसिक कष्ट हो। पर साथ ही यह भी नही अस्वीकार कर पाता कि जनश्रुति के मूल मे कुछ-न-कुछ

सत्य भी होता ही है !'

चन्द्रमौलि का हृदय सनाका खा गया। उन्हें याद आया कि गोपाल आर्यक ने उससे कहा था कि वे सदा यही सोचते रहते हैं कि लोग क्या कहेंगे, एक बार भी यह नहीं सोचा कि मृणालमंजरी क्या सोचेगी। आर्य देवरात को कुछ और भी मालूम हुआ होगा। सब मिलाकर यह लोकापवाद ही लगता है। पर गोपाल आर्यक जैसे शील-सम्पन्न पुरुष पर परस्त्री-लम्पट होने का अपवाद कुछ समझ में आने लायक बात नहीं लगती। उसका चेहरा म्लान हो आया। नम्रतापूर्वक कहा, 'आर्य, आप हमारे सब प्रकार से पूज्य हैं। आपका नया परिचय पाकर तो अपने-आपको कृतकृत्य ही मान गया हूँ। पर आपके मन में विषाद का जो यह शल्य चुभा है उसने मुझे भी बुरी तरह आहत और व्यथित कर दिया है। फिर भी मेरा मन कहता है कि आपको जो बताया गया है उसमें कहीं कुछ भ्रम या स्खलन है। गोपाल शील के साक्षात् विग्रह हैं। उन पर परस्त्री-लम्पट होने का अपवाद निश्चित रूप से अमूलक होना चाहिए। गोपाल और परस्त्री-लम्पटता एक साथ नहीं रह सकते। यह कुछ ऐसा ही है जैसे कहा जाये कि सूर्य की तमिस्रा पर आसक्ति है। पूरी बात जाने बिना ऐसी बातों को ग्रहण नहीं करना चाहिए।'

चन्द्रमौलि को लगा कि देवरात-जैसे वृद्ध सुपुरुष के सामने एक सांस में इतनी बातें कहकर उसने स्वयं मर्यादा का उल्लंघन किया है। कुछ सहारा पाने की आशा से वह माढव्य की ओर मुड़ा, पर उधर देखकर वह एकदम सन्न हो गया। माढव्य अपने में खो गये थे। उनके सदा प्रफुल्ल चेहरे पर कालिमा-सी पुती हुई थी। इन्द्रियों के सारे व्यापार बाहर की ओर से रुद्ध होकर भीतर प्रविष्ट हो गये थे। न तो देवरात ने ही उनकी ओर ध्यान दिया था, न चन्द्रमौलि ने। वह एक विचित्र समाधि थी। ऊपर से शान्त और निःस्तब्ध, पर भीतर कोई भयंकर झंझा उन्हें झकझोर रही थी। कभी-कभी उनका स्थिर शरीर-दण्ड इस प्रकार हिल उठता था जैसे निवात-निष्कम्प दीपशिखा को हल्की वायु-लहरियाँ हिला गयी हों। वे बेहोश नहीं थे, पर होश में भी नहीं जान पड़ते थे। चन्द्रमौलि ने उन्हें झकझोरा, 'दादा, दादा, क्या हो गया तुम्हें !' माढव्य शर्मा ने आँखें खोलीं—शून्य दृष्टिवाली आँखें। बोले कुछ नहीं। आनन्द की सतत-निष्पन्दिनी निर्झरिणी एकाएक सूख गयी-सी जान पड़ी। वे फिर उसी अवस्था में पहुँच गये। लगता था वे बहुत डरे हुए हैं। देवरात ने प्यार से उनके सिर पर हाथ फेरा, 'भय लगता है देवता, डरने की क्या बात है !' माढव्य की भयभीत अवस्था से वे कुछ चिन्तित हुए। फिर उनके पुराने संस्कार एकाएक जाग्रत हो उठे। भीत-विपन्न को अभय देना उनकी कुल-रीति है। दीर्घकाल से सुप्त यौधेय रक्त आज उबल उठा। बोले, 'वृद्ध हो गया हूँ

पर अभी भी इन नाड़ियों में यौधेय-रक्त बह रहा है। भय की क्या बात है देवता! उठो दादा, अवसर आने पर देवरात काल से भी जूझ सकता है।' देवरात आवेश मे कह तो गये, पर उन्हें स्वयं इस प्रकार अपना परिचय देने से थोड़ी ग्लानि भी हुई। यहाँ स्थान-काल-पात्र का विचार किये बिना अपने पूर्व-जीवन का परिचय देना क्या अच्छा हुआ? पर अब तो तीर छूट चुका था। यथासम्भव अपनी बात को दूसरा मोड़ देने के लिए उन्होंने फिर कहा, 'दादा, तुमने बताया था न कि गोपाल ने तुम्हारी रक्षा करने का वचन दिया था? वह नहीं है तो मैं तो हूँ। आश्वस्त हो जाओ दादा, कोई भी तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकेगा।'

माढव्य मे कुछ चेतना आयी। लगा, वे सचमुच आश्वस्त हुए हैं। बोले, 'आर्य, अपने लिए चिन्तित नहीं हूँ! ब्राह्मणी की बात सोचकर परेशान हूँ। मैं मर जाऊँगा तो उस बिचारी का क्या होगा! आर्य, मेरे भीतर जो प्रसन्न होने और दूसरों को प्रसन्न करने की क्षमता है वह उसी के प्रेम और सेवा का फल है। नहीं तो इस अटट मूर्ख की जाने क्या गति हुई होती। उस बिचारी को सम्हालनेवाला कोई तो नहीं है। यदि माढव्य मर जाता है तो बिचारी को कौन देखेगा? अच्छा आर्य, मेरी मृत्यु के बाद तुम लोग उसे कुछ आश्वासन दे सकोगे? लेकिन कौन किसे देखता है! हाय रे, मेरी सब कुछ तो वही है!'

देवरात माढव्य शर्मा के विकल भाव से मर्माहत हुए। बोले, 'कौन कहता है दादा, कि तुम मर जाओगे! तुम भी रहोगे और तुम्हारी ब्राह्मणी भी अखण्ड सौभाग्य लेकर रहेगी। अकारण चिन्ता छोड़ो।'

माढव्य शर्मा कुछ आश्वस्त हुए। देवरात ने चन्द्रमौलि की ओर देखा। उसका सारा शरीर उद्भिन्न-केसर कदम्ब पुष्प की भाँति रोमांचित हो गया था। आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। देवरात उसमें ऐसा परिवर्तन देखकर आश्चर्य से चौंक उठे। चन्द्रमौलि ने हाथ जोड़कर प्रश्न किया, 'आर्य, मैं क्या यौधेय वंश के मुकुटमणि कुलूत राजकुमार महावीर देवरात को इस रूप में देख रहा हूँ?'

'हाँ वत्स, मैं ही अभागा कुलूत राजकुमार देवरात हूँ। पर तुम्हें इस भाग्य-हीन को जानने का अवसर कैसे मिला?'

एक क्षण का विलम्ब किये बिना चन्द्रमौलि उठा और देवरात के चरणों में इस प्रकार गिर पड़ा जैसे किसी ने खड़े डण्डे को एकाएक लुढ़का दिया हो। देवरात हाँ-हाँ करते रहे। चन्द्रमौलि चरणों से लिपट गया। देवरात आश्चर्य से स्तब्ध रह गये, 'क्या कर रहे हो आयुष्मान्, इस अभाजन को इतना मान दे रहे हो! उठो वत्स, मुझे नरक में जाने से बचाओ। यह शरीर क्षत्रिय का है। तुम ब्राह्मण-कुमार होकर अन्यथाचरण कर रहे हो। तुम्हारे सम्मान के

भार से मैं यों ही भाराक्रान्त हूँ। चरणों पर गिरोगे तो मुझे किसी नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा। उठो मेरे प्यारे चन्द्रमौलि, अकारण अभिभूत दिख रहे हो। उठो भी प्यारे!'

बड़े कठोर बन्धन में बँध गये थे उनके चरण। छुड़ाये नहीं छूटते। देवरात के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आयीं। चन्द्रमौलि को उन्होंने नन्हे शिशु की भाँति उठाकर गोद में बैठा लिया। दोनों की आँखें सजल थीं। दोनों की वाणी रुद्ध थी। अधखोये-से माढव्य फटी-फटी आँखों से देखते रहे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। देवरात हैरान थे, चन्द्रमौलि जैसे किसी अननुभूत आनन्दधारा में बह चला था। देर तक सारा वातावरण स्तब्ध बना रहा।

अपने को सम्हालते हुए चन्द्रमौलि उठा। देवरात की ओर देखकर कुछ कहना चाहा, पर वाणी फिर बाष्प-विजड़ित हो गयी। अश्रुधारा से उसके कपोल भीगते रहे। देवरात ने ही मौन भंग किया। 'वत्स चन्द्रमौलि, समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम एकाएक इतने अभिभूत क्यों हो गये? क्या कुलूत के यौधेयों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध है? बोलो वत्स, मैं व्याकुल हूँ!'

चन्द्रमौलि ने बाष्प-गद्गद कण्ठ से कहा, 'तात, मैं रघुवंश में पैदा हुआ हूँ। विष्वक्सेन और सुनीता का पुत्र हूँ! मातृ-पितृ-हीन इस अभाजन सन्तान को किस रूप में दर्शन दिया, प्रभो!'

देवरात आवेग से उछल पड़े, 'क्या कहा बेटा, तू सुनीता का पुत्र है?' और एक बार फिर चन्द्रमौलि को खींचकर गोद में ले लिया। बार-बार माथा सूँघते और प्यार के साथ चूमते हुए वे अभिभूत हो उठे—'हे भगवान्, कैसी विचित्र है तुम्हारी माया!'

माढव्य अवाक्! वे एक बार देवरात की ओर देखते, एक बार चन्द्रमौलि की ओर। दोनों की दशा विचित्र थी। माढव्य ने निस्तब्धता भंग की, 'बन्धु चन्द्रमौलि, क्या रहस्य है भाई, जरा इस अबोध दादा की ओर देखो! आर्य देवरात, आप ही कुछ बतायें ना! इस अद्भुत मिलन का आनन्द अपने तक ही सीमित न रखो आर्य, इस अभाजन को भी कुछ अंश दो!'

देर तक चन्द्रमौलि शिशु की भाँति वृद्ध देवरात का स्नेह-रस पा-पाकर परितृप्त होता रहा। आँसू रुकने का नाम नहीं लेते, वाणी क्रियाशील होने को एकदम तैयार नहीं। क्या रहस्य है!

देवरात एकदम खो गये। सुनीता! शर्मिष्ठा की गुड़िया-सी बहन। उसका विवाह वे नहीं देख सके थे। उसे वे भूल ही गये थे। शर्मिष्ठा के दारुण वियोग में वे ऐसे मर्माहत हुए थे कि किसी अन्य सम्बन्धी की बात उनके मन में आ ही नहीं पायी। वे सब कुछ को भूलने का व्रत लेकर निकल पड़े। भूल नहीं

सके तो प्राणवल्लभा शर्मिष्ठा को। सुनीता कुछ दिनों के लिए अपनी दीदी के पास रही थी। फिर चली गयी। उसका विवाह मध्यभूमि के रघुवंशियों में होने की बात चलने लगी थी, पर देवरात को यह सब जानने की सुधि ही नहीं रही। वे निकले सो निकले। आज सुनीता का पुत्र मिल गया, कहता है मातृ-पितृ-हीन है। हे भगवान्! ये कुछ पराभूत-से लगे। जिसने सब-कुछ छोड़ने का संकल्प किया था, उसे इस प्रकार बार-बार बाँधने का क्या अर्थ है दया-निधान? तुम्हारी माया क्या सचमुच ऐसी दुरत्यया है कि उससे पिण्ड छुड़ाया ही नहीं जा सकता? यह सुनीता का पुत्र है। सुनीता, कोमल नवनीत की पुतली! देवरात नहीं जानते कि किशोरी सुनीता कैसी थी। निश्चय ही बहुत सुन्दर रही होगी। शर्मिष्ठा के समान ही। वैसे भी वह शर्मिष्ठा जैसी ही दिखती थी। उन्होंने फिर से किशोर कवि को देखा। अहा, शर्मिष्ठा के मुख की थोड़ी छाया इसमें है अवश्य। शर्मिष्ठा का पुत्र होता तो ऐसा ही हुआ होता। बहुत कुछ ऐसा ही। धन्य हो लीलाधर!'

चन्द्रमौलि ने देवरात के मन को थाहने का प्रयास किया। उसे लगा कि इस विलक्षण सत्पुरुष को एक साथ कई मोह अपने पाश में बाँधने की तैयारी कर रहे हैं। स्वयं भी उसने उनके चित्त में विक्षोभ पैदा कर दिया है। सम्हल-कर कहा, 'क्षमा करें तात, आपके चित्त में विक्षोभ पैदा करने का अपराधी हूँ, पर जाने क्यों मेरा मन आज कुछ अघटित घटना की आशंका कर रहा है। तात के समुद्र के समान गम्भीर हृदय में एक साथ ही कई विक्षोभ पैदा हुए हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि यह समुद्र विक्षुब्ध नहीं होगा। तात, मैं धन्य हूँ कि इतने दिनों बाद अपने किसी स्वजन को देख सका हूँ। स्वजन भी कैसा! समुद्र के समान गम्भीर, आकाश के समान विमल-विराट! मैं आज छिन्नमूल तूलखण्ड के समान निराधार भटकनेवाला नहीं हूँ, परन्तु आपके चित्त में मोह का अंकुर उत्पन्न नहीं करूँगा। मैं चरितार्थ हूँ। मुझे स्नेह मिल गया, इतना बहुत है तात।'

चन्द्रमौलि ने माढव्य की ओर देखकर कहा, 'दादा, तुम्हारा भयकातर होना मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ। आज मैंने अपने परम स्नेही महावीर मौसाजी को पा लिया है। मेरी माता सुनीता और आर्य देवरात की पत्नी शर्मिष्ठा देवी सगी बहनें थीं। दोनों अब इस संसार में नहीं हैं। मेरे पिता भी नहीं हैं। ऐसे भाग्यहीन बालक को परम स्नेही पूज्य तात मिल गये। यह असाधारण भाग्य ही है दादा। तुम्हारे सत्संग ने मुझे वृन्तच्छिन्न तूलखण्ड से उठाकर धरती में बद्धमूल किशोर तरु के समान सौभाग्यशाली बना दिया है। तुम्हारे समान दादा मिला, आर्यक के समान सखा मिला और आर्य देवरात के समान पूज्य तात मिल गये। मेरा मन कहता है कि मेरी बहन मृणालमंजरी भी मिल जायेगी।

आर्य, आज मैं कृतकृत्य हूँ। तुम्हारा सत्संग मेरे लिए कल्पतरु सिद्ध हुआ है। मेरा कृतज्ञ प्रणाम स्वीकार करो दादा!' कहकर चन्द्रमौलि ने माढव्य के चरणों पर सिर रख दिया। माढव्य उत्फुल्ल हुए। उनमें कुछ सहज भाव आया। हँसते हुए बोले, 'स्वार्थी बन्धु, एक बार यह भी तो कह देता कि मेरी ब्राह्मणी भी कहीं मिल जायेगी!' आर्य देवरात भी सहज हो आये। बोले, 'तुम्हारी चिन्ता अभी गयी नहीं दादा? तुम अपनी ब्राह्मणी को मिल जाओगे, ऐसा आश्वासन तो पहले ही दे चुका हूँ। उतने से सन्तोष न हो तो यह भी आश्वासन देता हूँ कि तुम्हारी सती-साध्वी ब्राह्मणी भी तुम्हें मिल जायेगी।' सबके चेहरों पर सहज स्मित आ गया। जान पड़ा, वातावरण भी सहज हो गया है। मनुष्य के सहज चित्त का ही परिणाम सहज वातावरण होता है। परन्तु विधाता इतनी आसानी से वातावरण को सहज नहीं बनाना चाहते थे। उनकी कुछ और ही योजना थी। सहज स्मित के साथ देवरात पूछनेवाले थे कि वत्स चन्द्रमौलि, अपनी कथा जरा विस्तार से समझाओ कि एकाएक न जाने कहाँ से दस-बारह दैत्याकार सशस्त्र सैनिकों ने तीनों को धर दबोचा—'पकड़ लो आर्यक के इन सहायकों को! ये किसी भयंकर षड्यन्त्र में लगे जान पड़ते हैं।'

किसी प्रकार के प्रतिरोध या प्रतिवाद का अवसर ही नहीं मिला। दुर्दान्त यौधेय रक्त खौलता ही रह गया, आश्वासन की वाणियाँ विकट परिहास के रूप में वायुमण्डल में गूँज उठीं, रघुवंशी मर्यादा अनायास जमकर बर्फ हो गयी और ब्राह्मणी के मिलन के काल्पनिक आनन्द का विस्फार क्षण में सिकुड़ गया। दुष्टों ने किसी को कुछ बोलने का भी अवसर नहीं दिया। मुँह कपड़े से कसकर बाँध दिये गये। भुजाएँ पीठ की ओर कस दी गयीं। तीनों को बोरे की तरह उठा-कर बैलगाड़ी में पटक दिया गया और कठोर पहरे में ले जाया जाने लगा। कहाँ? कुछ पता नहीं।

सन्ध्याकालीन आकाश लाल हो आया था। कोई अज्ञात आशंका दिग्-मण्डल में व्याप्त हो गयी। क्या होनेवाला है!

बँधे हुए, अर्द्धमूच्छित तीन मानव एक घर में ठूँस दिये गये। बाहर से द्वार बन्द कर दिया गया। फिर सब शान्त। माढव्य तो मूच्छित ही हो गये। किशोर कवि में भी कहीं कोई स्पन्दन का चिह्न नहीं, पर देवरात की संज्ञा बनी हुई थी। उन्हें अपनी दर्पोक्तियाँ बचकानी मालूम हुईं। जो अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता, उसे ऐसे दर्पोद्धत आश्वासन देना क्या शोभता है? मन्त्र और औषधि से रुद्ध-वीर्य सर्प की भाँति वे अपनी आग से आप ही जलते रहे। विधाता ने उनका कैसा मान-भंग किया है! वे कसमसाते रहे। हाथ इतने कसकर बँधे थे कि बहुत जोर मारने पर भी वे उन्हें हिला नहीं सके। धरती पर सिर रगड़कर आँखों के ऊपर बँधे कपड़े को हटाने में सफल तो हो गये,

पर उस सूची-भेद्य अन्धकार में आँखों के खुलने पर भी कुछ देख नहीं सके। वे इधर-उधर लुढ़कते रहे। एकाध बार किसी अन्य बँधे व्यक्ति से भी टकराये, पर सब बेकार। फिर भी प्रयत्न उन्होंने नहीं छोड़ा। लुढ़कते हुए वे दरवाजे तक पहुँचे। सिर से ही टो-टोकर अन्दाजा लगाया, कपाट काफी मजबूत जान पड़े। सिर से ही यथासम्भव नीचे से ऊपर तक टटोलते रहे। उन्हें ऐसा लगा कि किवाड़ों में कुछ पीतल के नागदन्त बने थे। बँधे हाथों को साधकर उनसे टिकाया। खूँटियाँ नुकीली थीं। बन्धन में आसानी से घुस गयी। फिर बार-बार फँसाकर नीचे-ऊपर करने लगे। कठिन परिश्रम के बाद हाथ खुल गये। फिर तो मुँह के बन्धन बहुत आसानी से खोले जा सके। धीरे-धीरे उनकी पूरी देह खुल गयी। वे हाँफने लगे थे। सारा शरीर पसीने से तर हो गया था। धीरे-धीरे वे टो-टोकर अपने दोनों साथियों तक पहुँचे। हाथ और दाँत की सहायता से उनके बन्धन खोले। नाक पर हाथ रखकर अनुमान किया कि दोनों की साँस चल रही है, पर दोनों बेहोश हैं। वे बारी-बारी दोनों को सहलाते रहे, संज्ञा किसी की नहीं लौटी। रुद्ध कक्ष में हवा आने का कोई मार्ग नहीं था। लगता था वे भी मूर्च्छित हो जायेंगे, पर मन में अदम्य संकल्प-शक्ति थी। किसी प्रकार कपाट खुलना चाहिए। वे फिर टटोलने लगे। कहीं कुछ नहीं मिला। वे निराश हो गये और देर तक चुपचाप बैठे सोचते रहे। मनुष्य कितना असहाय है! उसके सारे अभिमान फेन बुद्बुद् के समान क्षणभंगुर हैं। कितना आस्फालन और कितनी असहाय अवस्था! दीनबन्धु, तुमने अभिमान भंग करने का ऐसा आयोजन किया! थोड़ा रुककर करते तो क्या हानि थी! पर टूट गया, अच्छा ही हुआ। कोई नहीं जानता कि तुम्हारी कठोर कृपा का अर्थ क्या है!

देवरात कातर हो उठे। आज रह-रहकर उन्हें यौधेय अभिमान अभिभूत कर रहा था। दीर्घकाल से विस्मृत बाहुबल का अभिमान बाँध तोड़कर आना चाहता था। क्या इस प्रकार टूट जाने के लिए? लेकिन आज ही अपना निकट सम्बन्धी यह किशोर बालक भी मिला। रक्त में हिलोर आया। क्या इसी प्रकार बिखर जाने के लिए? सब टूट जाये, सब बिखर जाये, पर देवरात को, कम-से-कम आज, न टूटना है न बिखरना है। इन दो प्राणों की रक्षा तो करनी ही पड़ेगी। कैसे करेंगे? विधाता वाम हैं!

उनके मन में आया कि जिन कपड़ों से उन तीनों को बाँधा गया था वे अब भी पड़े हुए हैं, उन्हीं से थोड़ी हवा करके अपने साथियों को कुछ आराम दिया जा सकता है। वे खड़े हो गये। एक बड़ा-सा वस्त्र-खण्ड उठाकर हवा करने लगे। उनके मन में विचार भी तेजी से चल रहे थे और हाथ भी उतनी ही तेजी से हिल रहे थे। अचानक कपड़ा किवाड़ों की खूँटियों में उलझ गया।

वे अन्दाजे से उधर बढ़े और उसे निकालने का प्रयत्न करने लगे। पर वह उलझता ही गया। उन्होंने झटके से खींचा। उन्हें जान पड़ा कि किवाड़ भी खिंचे आ रहे हैं। उन्होंने और भी बल लगाया। कपड़ा उलझा ही रहा, मगर किवाड़ खुल गये। स्वच्छ वायु का एक झोंका आया और उनके मन और प्राण को जगा गया। दोनों किवाड़ें खोलने पर हल्का-सा प्रकाश भी दिखायी दिया। सामने आँगन था। वे बाहर आ गये। हे प्रकाशपुंज, तमसो मा ज्योतिर्गमय! यह कैसी लीला है!

देवरात को अपार बल मिल गया। वे अनायास अपने दोनों साथियों को आँगन में ले आये। बाहर का द्वार बन्द था। चारों ओर टटोल-टटोलकर वे परखने लगे कि कोई और सहायता-योग्य वस्तु मिलती है या नहीं। अँधेरे में अपरिचित घर में कुछ खोजना कठिन ही था। अब उन्हें ऐसा लगने लगा कि वे कुछ कर नहीं रहे हैं, कोई उनसे करवा रहा है। यह विचार आते ही उनका भाराक्रान्त चित्त हल्का हो गया, बहुत हल्का।

ऐसा लगता था इस घर में कोई रहता नहीं। यह दीर्घकाल से बन्द ही पड़ा था और आज ही इसका उपयोग किया गया है। किसका घर है, कहाँ स्थित है? कुछ कर सकने का अभिमान मन में नहीं था। दोनों साथी खुली हवा में कुछ स्वस्थ होने लगे थे, ऐसा उन्होंने उनकी नाड़ी की परीक्षा करके समझ लिया। वे शान्त भाव से भगवान का ध्यान करने लगे। कर्तव्य का अभिमान हट जाने से उन्हें शान्ति ही मिली। यही क्या शान्ति पाने का मार्ग है? मगर नहीं। यह उनका अस्थायी भाव था। प्रयत्न करना चाहिए। कर्तव्य का अभिमान छोड़कर भी प्रयत्न करना चाहिए। हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जाना ठीक नहीं है। कुछ करने की प्रेरणा भी कहीं अन्यत्र गहराई से निकल रही है। 'कर्म-गुरो, क्या करूँ, तुम्हीं बता दो!' उन्होंने दोनों साथियों को टटोला। चन्द्रमौलि की चेतना लौट आयी थी। बोला, 'कौन है?' देवरात को हर्ष की उठी विशाल तरंग अभिभूत कर गयी। फुसफुसाकर बोले, 'कैसा लग रहा है बेटा, मैं हूँ देवरात!' चन्द्रमौलि को साहस आया। उठकर बैठ गया। फिर देवरात ने माढव्य शर्मा को सहलाया। वे उसी तरह अचेत पड़े रहे। देवरात ने चन्द्रमौलि के कान के पास मुँह लगाकर कहा, 'हम लोग घर में बन्द कर दिये गये हैं बेटा, धीरे-धीरे बोलना। पता नहीं, कौन कहाँ बैठा सुन रहा हो।' चन्द्रमौलि सावधान हुआ। अचानक आँगन में लाल-लाल प्रकाश छा गया। पास ही कहीं आग लगी जान पड़ी। फिर भयंकर चटचटाहट और चीत्कार ध्वनि। जान पड़ा किसी बड़े प्रासाद में आग लग गयी थी और उसके भीतर स्त्रियों, पुरुषों और बालकों की करुणा-भरी चीख सुनायी दे रही थी। चन्द्रमौलि ने आश्चर्य से देखा, यह सब क्या हो रहा है! देवरात ने फुसफुसाकर

नगर में शान्ति होने पर मैं यहीं महाकाल के मन्दिर में तुमसे मिलूँगा। कब मिलूँगा, कहना कठिन है। पर मिलूँगा अवश्य। तुम प्रातःकाल एक बार देख लिया करना। मैं तुम्हें भी साथ ले चलता। विपत्ति के समय विपद्ग्रस्त लोगों की सेवा करना मनुष्य का परम धर्म है। परन्तु अभी मैं माढव्य शर्मा की रक्षा का उत्तरदायित्व तुम्हें सौंपता हूँ। मैं चल रहा हूँ।' माढव्य ने उच्च स्वर में प्रतिवाद किया, 'थोड़ा ठहरो आर्य, माढव्य को मिट्टी का लोंदा न बनने दो। तुमने ही प्राण दिये हैं। ये प्राण तुम्हारे हैं। आजीवन भँड़ैती से पेट पालनेवाला माढव्य अब जीवन का रहस्य समझने लगा है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। यह कवि भी चलेगा। तुम अधिक थके हो आर्य! माढव्य को थोड़ा पानी पी लेने दो। बस, वह प्राणों को हथेली पर लेकर तुम्हारे पीछे चलेगा।' देवरात प्रसन्न हुए। वे स्वयं भूल ही गये थे कि प्यास उन्हें भी लगी है। तीनों ने सिप्रा का स्वच्छ जल पिया और नगर में जिधर आग लगी थी उधर चल पड़े।

पौ फटने जा रही थी। पूर्वी आकाश और नगर दोनों जल रहे थे। नागरिक जहाँ-तहाँ खड़े चिन्ताकातर हो त्राहि-त्राहि कर रहे थे। देवरात ने ललकारा, 'खड़े-खड़े देखते क्या हो! पानी ले आओ और आग बुझाओ।' नागरिकों में थोड़ा साहस आया। जिसके पास जो पात्र था वही लेकर पानी लाने दौड़ा। देवरात ने रोककर कहा, 'ऐसे नहीं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर पंक्ति बाँधकर खड़े हो जाओ। खाली बर्तन देते जाओ और भरे बर्तन लेते जाओ। सबको दौड़ने की आवश्यकता नहीं।' नागरिकों को उत्साह आया। सिप्रा-तट से अग्नि-स्थान तक नागरिकों की कई पंक्तियाँ खड़ी हो गयीं। पानी व्यवस्थित रूप से जलते घरों तक पहुँचने लगा। देखते देखते पंक्तिबद्ध नागरिकों की सैकड़ों टोलियाँ खड़ी हो गयीं। माढव्य भावावेग से उन्मत्त होकर चिल्ला पड़े, 'आर्य देवरात की जय!' सहस्रों कण्ठों से प्रतिध्वनि निकली, 'आर्य देवरात की जय!' नागरिकों में उत्साह का ज्वार आ गया। सूर्योदय होते-होते आग पर काबू पा लिया गया। यद्यपि अब भी कहीं-कहीं आग जलती दिखायी दे जाती थी, पर उसका दारुण प्रकोप शान्त हो गया था। ऐसे ही समय देखा गया कि कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें आग बुझाने का यह ढंग पसन्द नहीं आया था। उनमें कुछ सैनिक वेश के लोग भी थे। वे तरह-तरह की बाधा पहुँचा रहे थे। धीरे-धीरे नागरिकों के एक दल में इनके विरुद्ध क्रोधाग्नि धधक उठी। लोगों को इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया कि वही लोग आग लगानेवाले थे। नागरिकों में कानाफूसी हुई और फिर युवकों का एक दल सैनिकों से उलझ गया। देखते-ही-देखते विद्रोह उग्र हो उठा। देवरात ने चन्द्रमौलि और माढव्य से कहा कि अब हमें कहीं छिप जाना चाहिए। कल जिन लोगों ने हमें बन्दी बनाया था वे फिर से बन्दी बना सकते हैं। तीनों खिसक गये। दूर निकलकर

चुपचाप एक स्थान पर छिप गये और नगर की गतिविधि पर दृष्टि रखने लगे।

यह स्थान एक ऊँचा-सा टीला था, जिस पर कदम्ब, कुटज और कोविदार के झाड़ों ने अपना स्थान बना लिया था। यहाँ से नगर का अधिकांश भाग दिखायी दे जाता था। तीनों ही थके हुए थे, पर माढव्य सबसे अधिक हाँफ रहे थे। उनकी तोंद लुहार की भाथी की तरह धौंक रही थी। देवरात ने सहानुभूति-पूर्वक उनकी ओर देखा। 'कल की रात बड़ी भयानक थी देवता! पर ऐसा जान पड़ता है कि भगवान इस दुःख-ताप के भीतर से कुछ अच्छा करने की योजना ही बना रहे हैं। आपको तो बड़ा कष्ट हुआ।' माढव्य शर्मा उत्फुल्ल थे। क्लान्ति भी आनन्ददायिनी होती है, यह बात उन्हें आज ही समझ में आयी थी। विनीत भाव से बोले, 'मुझे तो उनकी मंगलमयी योजना का आभास मिल गया, आर्य! आज मैंने देखा है कि सेवा में अपने-आपको खपा देने में क्या आनन्द मिलता है। शरीर थककर चूर हो गया है, पर मन उल्लास से लहक उठा है। ऐसा तो मैंने कभी अनुभव नहीं किया। आपकी आज्ञा से लौट आया हूँ, पर मन अब भी उधर ही लगा हुआ है। आज मैंने जीने का अर्थ समझा है। किसी प्रकार पेट पालना तो मनुष्य-जीवन है ही नहीं, आर्य! आज मेरा नया जन्म हुआ है। मैंने अपने को पाया है। यह सेवा करते-करते प्राण भी चले जाते तो मुझे कोई दुःख नहीं होता। और भी सिखाओ आर्य, और भी सिखाओ। कि कैसे अपने-आपको उलीचकर निःशेष भाव से दिया जा सकता है!'

चन्द्रमौलि चुप था। वह दादा के परिवर्तन को बड़े कुतूहल के साथ देख रहा था। आर्य देवरात की ओर देखकर संयत भाव से बोला, 'अभी समाप्त नहीं हुआ है, तात! लगता है नगर में केवल यही उत्पात नहीं हुआ है, और भी हुए हैं और हो रहे हैं। पुराण-ऋषियों ने असुरों के उत्पात का जो दारुण चित्र खींचा है वह यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है। इस दारुण विभीषिका को निरस्त करने के लिए ही महादेव का ताण्डव हुआ करता है। अभी असुर-उत्पात का पर्व चल रहा है। इसके बाद ही महाकाल का विकराल ताण्डव होगा। और फिर? उस उद्दत-उत्ताल ताण्डव का अवसान होगा देवी के मंगल लास्य में। असुरों के उत्पात के अपवित्र कर्दम में ही मंगलमयी का प्रफुल्ल शतदल खिलेगा। ताण्डव शुरू हो गया है, लास्य बाद में विलसित होगा!' लास्य! रसभाव-समन्वित ललित नृत्य! माढव्य को स्मरण आया कि उन्होंने उज्जयिनी में किसी अवसर पर वसन्तसेना का ललित नृत्य देखा था। उल्लसित होकर बोले, 'मेरे तरुण मित्र, वह जो सामने की विशाल अट्टालिका देख रहे हो न, वही नगर-श्री वसन्तसेना का आवास है। मैंने उसका ललित नृत्य देखा है, सखे! अद्भुत है! समझ नहीं पाया था, पर आनन्द से विह्वल हो गया था। सुना है मित्र, भानुदत्त

के गुण्डों ने उसे भी मार डाला है। अब क्या लास्य नृत्य होगा ?' माढव्य ने लम्बी साँस खीची।

देवरात को धक्का लगा, 'क्या कहा दादा, आर्या वसन्तसेना को मार डाला ! हाय रे, मैं तो उसका मोहन नृत्य देखने की साध मन में ही सँजोये रह गया ! हे भगवान् !'

माढव्य ने उचककर देखने का प्रयत्न किया, 'लगता है इस भवन के चारों ओर प्रहरी बैठाये गये हैं। पता नहीं क्या ठीक है आर्य, पर कल कोई बता रहा था कि वसन्तसेना को मार डाला है।' देवरात ने बेचैनी के साथ कहा, 'पता लगाना चाहिए, परन्तु अभी नहीं ! दिन में निकलने पर कुछ करने का अवसर भी खो देंगे !'

चन्द्रमौलि का मुखमण्डल मुर्झाया-सा लगा। बोला कोई नहीं।

देवरात बहुत क्लान्त थे। रात किस प्रकार उन्होंने अपना बन्धन काटा, यही सुनाते-सुनाते वे सो गये। माढव्य सुनते-सुनते सो गये। चन्द्रमौलि ही जागता रहा। कल की सारी घटना पर वह विचार करता रहा। क्यों ऐसा हो रहा है ? मनुष्य एक-दूसरे को मारने के लिए इतना व्याकुल क्यों है ? यह लूट-पाट, मारा-मारी, अग्निकाण्ड क्या उसकी स्वाभाविक वृत्ति है या किसी प्रकार के आगन्तुक विकार-मात्र हैं ? ऐसा किये बिना क्या मनुष्य रह नहीं सकता ? क्यों ? दिन चढ़ने लगा था। चन्द्रमौलि चुपचाप शून्य की ओर दृष्टि टिकाये खोया-खोया-सा बैठा रहा। एकाएक भयंकर कोलाहल से फिर दिग्मण्डल विद्ध हो उठा। वसन्तसेना के आवास के निकट भारी जन-सम्मर्द दिखायी पड़ा। देवरात और माढव्य दोनों झटके से उठकर बैठ गये। माढव्य ने कान लगाकर सुना। बोले, 'लड़ाई हो रही है आर्य !' तुमुल हर्ष-निनाद का झोंका आया और टीले को कँपा गया—'महामल्ल शार्विलक की जय।' देवरात खड़े हो गये, 'शार्विलक ! यह तो श्यामरूप का नया नाम है। श्रुतिधर ने बताया था। उठो दादा, शार्विलक आ गया है !'

तेईस

सम्राट् को मथुरा-विजय का समाचार तो मिल गया था, पर उज्जयिनी की ओर भटार्क के नेतृत्व में जो सेना बढ़ी थी उसका कोई समाचार नहीं मिल रहा था। मथुरा से नदी के रास्ते आसानी से समाचार मिल जाता था, क्योंकि नावें

चुपचाप एक स्थान पर छिप गये और नगर की गतिविधि पर दृष्टि रखने लगे।

यह स्थान एक ऊँचा-सा टीला था, जिस पर कदम्ब, कुटज और कोविदार के झाड़ों ने अपना स्थान बना लिया था। यहाँ से नगर का अधिकांश भाग दिखायी दे जाता था। तीनों ही थके हुए थे, पर माढव्य सबसे अधिक हाँफ रहे थे। उनकी तोंद लुहार की भाथी की तरह धौंक रही थी। देवरात ने सहानुभूति-पूर्वक उनकी ओर देखा। 'कल की रात बडी भयानक थी देवता ! पर ऐसा जान पडता है कि भगवान इस दु:ख-ताप के भीतर से कुछ अच्छा करने की योजना ही बना रहे हैं। आपको तो बड़ा कष्ट हुआ।' माढव्य शर्मा उत्फुल्ल थे। क्लान्ति भी आनन्ददायिनी होती है, यह बात उन्हें आज ही समझ में आयी थी। विनीत भाव से बोले, 'मुझे तो उनकी मंगलमयी योजना का आभास मिल गया, आर्य ! आज मैंने देखा है कि सेवा में अपने-आपको खपा देने में क्या आनन्द मिलता है। शरीर थककर चूर हो गया है, पर मन उल्लास से लहक उठा है। ऐसा तो मैंने कभी अनुभव नहीं किया। आपकी आज्ञा से लौट आया हूँ, पर मन अब भी उधर ही लगा हुआ है। आज मैंने जीने का अर्थ समझा है। किसी प्रकार पेट पालना तो मनुष्य-जीवन है ही नहीं, आर्य ! आज मेरा नया जन्म हुआ है। मैंने अपने को पाया है। यह सेवा करते-करते प्राण भी चले जाते तो मुझे कोई दुःख नहीं होता। और भी सिखाओ आर्य, और भी सिखाओ। कि कैसे अपने-आपको उलीचकर निःशेष भाव से दिया जा सकता है !'

चन्द्रमौलि चुप था। वह दादा के परिवर्तन को बड़े कुतूहल के साथ देख रहा था। आर्य देवरात की ओर देखकर संयत भाव से बोला, 'अभी समाप्त नहीं हुआ है, तात ! लगता है नगर में केवल यही उत्पात नहीं हुआ है, और भी हुए हैं और हो रहे हैं। पुराण-ऋषियों ने असुरों के उत्पात का जो दारुण चित्र खींचा है वह यहाँ प्रत्यक्ष दिखायी देता है। इस दारुण विभीषिका को निरस्त करने के लिए ही महादेव का ताण्डव हुआ करता है। अभी असुर-उत्पात का पर्व चल रहा है। इसके बाद ही महाकाल का विकराल ताण्डव होगा। और फिर ? उस उद्धत-उत्ताल ताण्डव का अवसान होगा देवी के मंगल लास्य से। असुरों के उत्पात के अपवित्र कर्दम में ही मंगलमयी का प्रफुल्ल शतदल खिलेगा। ताण्डव शुरू हो गया है, लास्य बाद में विलम्बित होगा !' लास्य ! रसभाव-समन्वित ललित नृत्य ! माढव्य को स्मरण आया कि उन्होंने उज्जयिनी में किसी अवसर पर वसन्तसेना का ललित नृत्य देखा था। उल्लसित होकर बोले, 'मेरे तरुण मित्र, वह जो सामने की विशाल अट्टालिका देख रहे हो न, वही नगर-श्री वसन्तसेना का आवास है। मैंने उसका ललित नृत्य देखा है, सखे ! अद्भुत है ! समझ नहीं पाया था, पर आनन्द से विह्वल हो गया था। सुना है मित्र, भानुदत्त

के गुण्डों ने उसे भी मार डाला है। अब क्या लास्य नृत्य होगा ?' माढव्य ने लम्बी साँस खींची।

देवरात को धक्का लगा, 'क्या कहा दादा, आर्या वसन्तसेना को मार डाला ! हाय रे, मैं तो उसका मोहन नृत्य देखने की साध मन में ही सँजोये रह गया ! हे भगवान् !'

माढव्य ने उचककर देखने का प्रयत्न किया, 'लगता है इस भवन के चारों ओर प्रहरी बैठाये गये हैं। पता नहीं क्या ठीक है आर्य, पर कल कोई बता रहा था कि वसन्तसेना को मार डाला है।' देवरात ने बेचैनी के साथ कहा, 'पता लगाना चाहिए, परन्तु अभी नहीं ! दिन में निकलने पर कुछ करने का अवसर भी खो देंगे !'

चन्द्रमौलि का मुखमण्डल मुर्झाया-सा लगा। बोला कोई नहीं।

देवरात बहुत क्लान्त थे। रात किस प्रकार उन्होंने अपना बन्धन काटा, यही सुनाते-सुनाते वे सो गये। माढव्य सुनते-सुनते सो गये। चन्द्रमौलि ही जागता रहा। कल की सारी घटना पर वह विचार करता रहा। क्यों ऐसा हो रहा है ? मनुष्य एक-दूसरे को मारने के लिए इतना व्याकुल क्यों है ? यह लूट-पाट, मारा-मारी, अग्निकाण्ड क्या उसकी स्वाभाविक वृत्ति है या किसी प्रकार के आगन्तुक विकार-मात्र हैं ? ऐसा किये बिना क्या मनुष्य रह नहीं सकता ? क्यों ? दिन चढ़ने लगा था। चन्द्रमौलि चुपचाप शून्य की ओर दृष्टि टिकाये खोया-खोया-सा बैठा रहा। एकाएक भयंकर कोलाहल से फिर दिग्मण्डल विद्ध हो उठा। वसन्तसेना के आवास के निकट भारी जन-सम्मर्द दिखायी पड़ा। देवरात और माढव्य दोनों झटके से उठकर बैठ गये। माढव्य ने कान लगाकर सुना। बोले, 'लड़ाई हो रही है आर्य !' तुमुल हर्ष-निनाद का झोंका आया और टीले को कँपा गया—'महामल्ल शार्विलक की जय।' देवरात खड़े हो गये, 'शार्विलक ! यह तो श्यामरूप का नया नाम है। श्रुतिधर ने बताया था। उठो दादा, शार्विलक आ गया है !'

तेईस

सम्राट् को मथुरा-विजय का समाचार तो मिल गया था, पर उज्जयिनी की ओर भटार्क के नेतृत्व में जो सेना बढ़ी थी उसका कोई समाचार नहीं मिल रहा था। मथुरा से नदी के रास्ते आसानी से समाचार मिल जाता था, क्योंकि नावें

बहाव की ओर तेजी से जाती थी। प्रयाग तक यमुना की धारा का और बाद में गंगा की धारा का बहाव पाटलिपुत्र की ओर जाता था पर पाटलिपुत्र से उजान यात्रा में देर लगती थी। इसके लिए घोड़ों से काम लिया जाता था। उत्तरी भारत के राजपुरुषों को अपने घोड़ों पर गर्व था। वे 'अश्वखुरपुटाङ्कित-भूमि।' अर्थात् घोड़ों की टाप से मुहरबन्द की हुई भूमि के अधीश्वर होते थे। इन घोड़ों की दो प्रसिद्ध जातियाँ थीं—शालि और होत्र। 'शालि' शब्द ही प्राकृत में साल, साड, आदि बन गया था और प्राकृत से पुनः संस्कृत में आकर 'साल' बन गया था। शुरू-शुरू में 'शालिवाहन' और 'सातवाहन' का अर्थ घुड़सवार ही था पर दक्षिणापथ के पठारों में इस श्रेणी के घोड़े इतने उपयोगी और दुर्दम सिद्ध हुए कि दक्षिणापथ के प्रसिद्ध राजवंश को 'सातवाहन' ही कहा जाने लगा। दक्षिणापथ में ये घोड़े जितने उपयोगी सिद्ध हुए उतने उत्तरापथ के मैदानों में नहीं। यहाँ 'होत्र' अधिक उपयोगी सिद्ध हुए। होत्र ही प्राकृत में 'घोट' बन गया और आगे चलकर 'घोड़ा' कहलाया। इन दोनों श्रेणी के घोड़ों की देखरेख और संवर्द्धन के लिए उन दिनों 'शालि-होत्र' नामक शास्त्र विशेष सम्मानित था। युद्ध के समय उत्तरापथ में होत्र-जातीय घोड़े युद्ध-भूमि में लगाये जाते थे और शालि-जातीय घोड़े दूर-दूर तक समाचार पहुँचाने के काम आते थे। सम्राट् समुद्रगुप्त संवाद की संचार-व्यवस्था के लिए इन घोड़ों की उपयोगिता पर भरोसा रखते थे। पर मथुरा के आगे जो मरुभूमि थी उसमें इन घोड़ों की उपयोगिता उन्हें सन्देहास्पद जान पड़ी। वे समाचार पाने के लिए व्याकुल थे। आर्यक के छोड़कर चले जाने से वे चिंतित भी थे। कहीं भटार्क आर्यक-जैसा साहसी और विवेकी न निकला तो क्या होगा। वे अपनी उस चिट्ठी को लिखकर आर्यक को रुष्ट करने का प्रमाद कर चुके थे। अब मन-ही-मन पछता रहे थे। उन्हें कभी-कभी झल्लाहट भी होती थी कि आर्यक को बन्धुभाव से जो पत्र लिखा गया उससे वह इतना रुष्ट क्यों हो गया। क्या सम्राट् का यह कर्तव्य नहीं था कि अपने पथभ्रान्त मित्र को उसके प्रमादों से सावधान कर दें? वे स्वयं सोच नहीं पा रहे थे कि किस प्रकार अपनी बात को लौटा लें। लौटा भी लें तो आर्यक कहाँ मिलेगा? पता नहीं, कहाँ गया है यह भावुक युवक।

सम्राट् ने स्वयं मथुरा जाने का निश्चय किया। उनका प्रथम पड़ाव चरणाद्रि दुर्ग में पड़ा। उन्होंने वहीं प्रतिज्ञा की कि भारतवर्ष को एक अखंड शासन-सूत्र में बाँधेंगे और विदेशियों को ध्वस्त कर देंगे या निकाल बाहर करेंगे। अपनी विजय के बाद प्रयाग में ही अपनी विजय-प्रशस्ति का उद्घोष करेंगे। यह विजय-स्तंभ प्रयाग में स्थापित होगा। यद्यपि इस समय उनकी राजधानी पाटलिपुत्र में है पर उनके पितृ-पितामह प्रयाग के निकटवर्ती एक छोटे राज्य के

अधिपति थे। इसलिए प्रयाग से उनका विशेष मोह था।

उन्हें पता लगा कि कुषाण और शक नरपतियों ने रेगिस्तानी भूमि में संवाद-संचार व्यवस्था के लिए ऊँटों का प्रयोग शुरू किया था। ये शालि घोटकों से अधिक तेजी से संवाद ढोते हैं और मरुभूमि में बिल्कुल थकते नहीं। 'शालि' घोड़ों की अनीकिनी के स्थान पर उन्होंने कम्मेलकों (ऊँटों) की अनीकिनी तैयार करने की आज्ञा दी। यद्यपि यह कम्मेलकों की अनीकिनी थी, पर पुराने अभ्यास के अनुसार लोग इसे भी 'शाल्यनीक' कहते रहे। लोक में घिसकर यह शब्द 'साडनी' ही बन गया। सो उज्जयिनी से सीधे मथुरा तक संवाद का आदान-प्रदान करने लिए ये नये 'साडनी सवार' दौड़ लगाने लगे। चरणाद्रि दुर्ग से यह व्यवस्था पूरी करके सम्राट् अब मथुरा की ओर बढ़ने की तैयारी करने लगे। अपने राजकवि हरिषेण को आदेश दिया कि सारी विजय-गाथाओं का यथायथ संग्रह करके प्रशस्ति तैयार रखें ताकि आवश्यकता पड़ने पर यथा-शीघ्र प्रयाग में विजय-स्तम्भ खड़ा किया जा सके।

समुद्रगुप्त स्वयं वीर पुरुष थे और वीर पुरुषों का सम्मान भी करना जानते थे। वे दृढ़-चरित्र व्यक्ति थे और सम्पूर्ण देश में दृढ़-चरित्र व्यक्तियों का प्राधान्य स्थापित करना चाहते थे। वे परम्परागत भारतीय जीवन के नैतिक मूल्यों के पोषक भी थे और उन्नायक भी। उन्हें युग-विशेष में नैतिक मान्यताओं के पुनर्वीक्षण पर विश्वास तो था पर बिना सामूहिक स्वीकृति के किसी भी आचरण को घातक मानने का आग्रह भी था। उन्होंने शास्त्रीय मान्यताओं के पुनर्वीक्षण को प्रोत्साहन भी दिया परन्तु सम्मर्शी और अनूक्ष विद्वानों की स्वीकृति पाये बिना कोई भी आचार उनकी दृष्टि में उच्छृंखल स्वैराचार-मात्र था। वे क्रमबद्ध सुविचारित आचार-संहिता से शासित समाज को ही उत्तम मानते थे। विदेशी विधर्मी स्वैराचार को वे घातक समझते थे। उनका विश्वास था कि देश में जो भयंकर कठिनाइयों और परामवों का तांता बँध गया है उसका कारण अविचारित स्वैराचार है। वे स्वयं स्वस्थ गृहस्थ जीवन बिताते थे और दूसरों से भी उसी प्रकार के जीवन-यापन की आशा रखते थे। आर्यक के चरित्र में इन आदर्शों का शैथिल्य देखकर वे क्षुब्ध हुए थे। अब भी वे उस क्षोभ से मुक्त नहीं हो सके। यदि देश के मूर्धन्य लोग ही स्वैराचार में लिप्त हो जायेंगे तो साधारण प्रजा को कैसे उस प्रकार के अविचारपूर्ण आचरण से विरत किया जा सकता है? आर्यक को उन्होंने डाँट के पत्र लिखा था। पर उसकी जो प्रतिक्रिया उस पर हुई वह उन्हें विचलित कर गयी। उनके मन में प्रश्न उठा था, क्या ऐसा मानी पुरुष स्वैराचारी हो सकता है? कहीं आर्यक को समझने में उनसे प्रमाद तो नहीं हुआ है? क्या धर्म के विषय में उन्होंने जिस कठोर आस्था का पोषण कर रखा है उसमें कहीं कोई दोष है? क्या नितान्त

अल्प-ज्ञात तथ्यों के आधार पर उन्होंने जो निर्णय लिया था वह सदोष था ? इसी प्रकार की उधेड़-बुन में जब वे पड़े हुए थे उसी समय हलद्वीप से पुरन्दर का राजमुद्रांकित पत्र लेकर दूत उपस्थित हुआ। उन्होंने पत्र ले लिया और दूत को यह कहकर विदा किया कि उसे बाद में बुला लिया जायेगा।

यथोचित विनयपूर्वक अभिवादन के बाद पुरन्दर ने हलद्वीप में चन्द्रा के विरुद्ध अभियोग और आचार्य पुरगोभिल की आपत्तियाँ लिख दी थीं। यह भी स्पष्ट लिख दिया था कि आचार्य ने कहा है कि सम्राट् ने एकान्त में जो निर्णय लिया है वह शास्त्र-सम्मत न होने से मान्य नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि शक और कुषाण राजाओं ने जो विद्रुमलताएँ बनायी हैं उन्हें मँगाकर देख लेना चाहिए और आचार्य की इच्छानुसार इस कार्य के लिए कुबेर काका नामक प्रतिष्ठित नागरिक को उज्जयिनी भेजने की राजाज्ञा भी जारी कर दी गयी है। परन्तु कठिनाई यह हुई है कि गोपाल आर्यक की धर्मपत्नी मृणाल-मंजरी और चन्द्रा भी काका के साथ उज्जयिनी जाने को व्याकुल हैं। काका भी उन्हें साथ ले जाने को प्रस्तुत हैं। इस सम्बन्ध में महाराजाधिराज सम्राट् की आज्ञा और अनुमति अपेक्षित है। पुरन्दर स्वयं इस प्रकार का जोखिम नहीं उठा सकते क्योंकि उनकी दृष्टि में और हलद्वीप की सारी प्रजा की दृष्टि में सती-शिरोमणि मृणालमंजरी, यद्यपि राजकाज में रुचि नहीं रखती फिर भी वे सारे हलद्वीप की मूर्धाभिषिक्त रानी हैं। अगर कहीं कुछ हो जाय तो प्रजा में विद्रोह हो जायेगा।

सम्राट् की भृकुटि कई बार कुंचित हुई। प्राड्विवाक पुरगोभिल के निर्णय से वे मर्माहत हुए। उन्होंने पत्र दो-तीन बार पढ़ा फिर उसे एक ओर फेंक दिया। वे सोच में पड़ गये। उन्होंने फिर पत्र उठाया। अब उनकी कुंचित भृकुटियों का तनाव कुछ कम हुआ। उन्हें लगा कि अब तक वे पत्र को अपनी मर्यादा से रँगकर पढ़ रहे थे। आचार्य ठीक कहते हैं। यदि सब-कुछ सुविचारित रूप में ही ग्रहण योग्य है और एक व्यक्ति द्वारा सोचा और किया गया आचार स्वैराचार है तो सम्राट् भी एकान्त में कोई निर्णय नहीं ले सकता। वह भी स्वैराचार ही होगा—सम्मर्दी, अलुब्ध विद्वानों के परामर्श से वंचित निर्णय-मात्र स्वैराचार है। ऐसा लगा, उनकी आँखें खुल गयी हैं। उन्होंने आर्यक पर एकान्त का निर्णय लादकर अपराध किया है। उन्हें अपना प्रमाद समझ में आ गया। ठीक है। उन्होंने तुरन्त कर्तव्य-निर्णय कर लिया। हलद्वीप की रानी, देवरात की दुलारी दुहिता, बन्धु गोपाल आर्यक की सहधर्मचारिणी सती-शिरोमणि मृणालमंजरी आर्यक का पता लगाने उज्जयिनी जायेगी और समुद्रगुप्त और उसकी पूरी सेना दूर-दूर रहकर उनकी रक्षा करेगी। वे जिसे चाहें साथ ले लें परन्तु उन्हें पता नहीं चलना चाहिए कि समुद्रगुप्त उनकी रक्षा के लिए साथ-

साथ जा रहे हैं । सब व्यवस्था करा दी गयी ।

अमात्य पुरन्दर ने बहुत चाहा कि मृणालमंजरी राजकीय सेना के कुछ अंग-रक्षक साथ में ले ले, पर वह राजी नहीं हुई । परन्तु अमात्य का यह तर्क-पूर्ण अनुरोध अस्वीकार न कर सकी कि क्योंकि सुमेर काका बहुत आवश्यक राजकीय पत्र साथ ले जा रहे हैं इसलिए उनकी रक्षा के लिए विश्वस्त मल्लाहों के साथ अच्छी नौका चुनने की अनुमति उन्हें मिलनी चाहिए । फिर यात्रा उजान की है, अर्थात् बहाव की उलटी दिशा की है इसलिए गुणकर्ष (नाव को रस्सी से बाँधकर खींचने) की आवश्यकता पड़ेगी अतः कुछ अधिक मल्लाहों की व्यवस्था करने की भी अनुमति मिलनी चाहिए । इस बहाने अमात्य ने मल्लाहों के रूप में तीन-चार विश्वस्त सैनिक भी बैठा दिये । बड़ी-सी नाव में आठ मल्लाहों के साथ चार यात्री—सुमेर काका, चन्द्रा, शोभन और मृणाल-मंजरी—मथुरा के लिए रवाना हुए । चरणाद्रि दुर्ग से सम्राट् और उनकी विशाल वाहिनी यथासम्भव किनारे-किनारे सावधानी से निकट रहकर चलने लगी । मृणाल को या किसी अन्य नौका-यात्री को यह बात अज्ञात ही रही । अमात्य पुरन्दर ने इतनी सावधानी और बरती कि आर्यक के अनुचरों की एक छोटी-सी टुकड़ी अलग से एक नाव में चुपचाप पीछे लगा दी ।

नाव विन्ध्याटवी को दरेरा देती हुई आगे बढ़ी । विन्ध्याचल के पास पहुँचने पर चन्द्रा ने बताया कि यहीं कहीं बाबा का आश्रम है । मृणालमंजरी ने उत्सुक भाव से कहा कि 'दीदी, नाव रोककर एक बार बाबा के आश्रम में हो आया जाये ।' सुमेर काका अन्दाजा लगाने लगे कि आश्रम का ठीक स्थान कहाँ है । एकाएक नाव रुक गयी । मल्लाह हैरान थे कि नाव आगे क्यों नहीं बढ़ रही है । उन्हें लगा कि नाव के नीचे कुछ रुकावट पैदा हो गयी है । कई मल्लाह पानी में कूद गये और नीचे के अवरोध का अन्दाजा लगाने लगे । नदी एक ऊँची पहाड़ी से सटकर जा रही थी । नीचे कोई चट्टान जैसी चीज थी । मल्लाहों की सलाह से सब लोग एक अपेक्षाकृत समतल स्थान पर उतर गये । सोचा गया कि रस्सी में खींचकर नाव को किसी निरापद स्थान पर ले जाया जाय । आगे खींचने पर यात्रियों को चढ़ाना कठिन था, इसलिए पीछे खींचने का निश्चय किया गया । दो मल्लाहों ने पानी में डुबकी मारकर इस बात का पता लगाने का प्रयत्न किया कि अवरोधक चट्टान कहाँ तक है और किस रास्ते जाने से नाव बिना कठिनाई के आगे बढ़ सकेगी ।

इसमें थोड़ा समय लग गया । मृणाल ने जीवन में कभी पार्वत्य शोभा नहीं देखी थी । वह थोड़ा ऊपर उठकर और देखने का प्रयत्न करने लगी । शोभन चन्द्रा की गोद में सो रहा था और सुमेर काका मल्लाहों का कौशल देख रहे थे । थोड़ी ऊँचाई पर उठते ही मृणाल मुग्ध हो गई । प्रकृति ने कितनी

कारीगरी दिखाती है। दूर तक जंगली पेड़ों की मनोहर पंक्तियाँ दिखायी दे रही थी। वन्य-कुसुमों की मदिर गंध से प्राण अभिभूत हो रहे थे। पर जिस चीज़ को देखकर मृणाल आश्चर्यचकित रह गयी वह था एक वृद्ध तापसी का प्रसन्न मुखमण्डल। मृणाल को याद आया कि चन्द्रा ने जैसा सिद्ध बाबा का रूप बताया था यह वैसा ही था। निःसन्देह ये सिद्ध बाबा ही थे। हँस रहे थे। फिर मृणाल को देखकर बोले, 'तपस्विनी माता, बूढ़े बच्चे को क्यों याद किया? सब ठीक है न अम्ब?' मृणाल एकदम अवाक् हो रही। क्या उत्तर दे, समझ में नहीं आया। उधर बाबा हैं कि हँसते जा रहे हैं। वे ही फिर बोले, 'बोलती क्यों नहीं वागीश्वरी, याद भी करती है, रूठ भी जाती है? मानिनी माता को ऐसा ही होना चाहिए! अहा, क्या तेरा कर्म!' मृणाल की चेतना लौटी। पैरों पर सिर रख दिया, 'दर्शन ही चाहती थी बाबा, आपको बेकार कष्ट दिया!' बाबा ने मृणाल के सिर पर हाथ रखा, 'उठ संतोषव्रत सुभगे, तू तो बेटे को कुछ सेवा का अवसर ही नहीं देती। अपने को समझ, जगद्धात्री, गोपाल आर्यक को खोजने जा रही है न? यही क्यों नहीं कहती? मिलेगा रे। पर उज्जयिनी तक क्यों जायेगी मेरी भोली माता? मथुरा में ही गोवर्धन-धारी मिलते हैं—समझी? मथुरा से आगे न बढ़ना। वहीं कहीं मिलेगा।' मृणाल ने फिर बाबा के चरणों पर सिर रख दिया। बाबा ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, 'जा, धर्मशीले, वह नाना आ रहे हैं, तुझे बेटे के पास नहीं रहने देंगे। जा सुखी होगी!' बाबा जरा रुके, 'अच्छा, मेरी भुवनेश्वरी माँ, गोपाल आर्यक मिलेगा, तो तू तो उसे अपना सर्वस्व उलीचकर दे देगी, देगी न मेरी अच्छी माँ? हाँ, तुझमें यह शक्ति है। पर इस बूढ़े बच्चे की ओर से क्या देगी भववल्लभे?' मृणाल क्या कहे? बाबा हँसते रहे, 'नहीं बता सकती मेरी अबोध माता, तू नहीं बता सकेगी। देख, बूढ़े बच्चे को न भूलना। मेरी चन्द्रा माता है न? उसका हाथ दे देना। कहना बाबा का प्रसाद है।'

पीछे से सुमेर काका मृणाल का नाम ले-लेकर पुकार रहे थे। बाबा उठकर चल दिये। मृणाल ने देखा ही नहीं कि वे किधर चले गये।

सुमेर काका परेशान दिखते थे, 'बिना कहे-सुने तू इधर कैसे आ गयी मैना, चल नाव ठीक हो गयी।'

मृणाल ने वाष्प-जड़ित कंठ से कहा, 'काका, सिद्ध बाबा के दर्शन हो गये। बड़ा शुभ दिन है आज। चले भी गये।'

काका चकित हो रहे, 'कुछ कहा उन्होंने बिटिया?'

मृणाल ने कहा, 'कह रहे थे, मथुरा से आगे न जाना।' काका सोच में पड़ गये। नाव फिर चली। मृणाल चन्द्रा से सटकर बैठ गयी और सिद्ध से जो बातें हुई थीं, धीरे-धीरे कह गयी। दोनों को रोमांच हो गया। चन्द्रा के मन में प्रश्न

उठा, 'सो क्यों' और मृणाल के मन में उठा, 'कैसे' !

चन्द्रा के मन में दूसरी ही बात थी। वह बाबा से भी कह आयी थी और मृणाल से भी कह चुकी थी कि आर्यक को मृणाल के हाथों सौंपकर वह छुट्टी लेगी। बाबा कहते हैं, मैना ही उसका हाथ आर्यक को देगी, सो भी बाबा का प्रसाद कहकर !

मृणाल ने कभी देने-लेने की बात ही नहीं सोची थी। बाबा को ऐसा कहने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा नाटक वह कैसे रच सकती है ? उसके लिए आर्यक को पा लेना ही सब-कुछ था, पर बाबा एक विचित्र नाटक रचने को कहते हैं ! मृणाल भला चन्द्रा का हाथ आर्यक को कैसे दे सकती है ? चन्द्रा ही चाहे तो ऐसा कर सकती है। उसी में मातृत्व के सारे गुण हैं। बाबा ने ऐसी विचित्र सलाह क्यों दे दी !

दोनों गंगा की निर्मल धारा से वही जा रही थी—उल्टी दिशा में। दोनों के मन में विचारों की धारा भी बहती जा रही थी—शायद उल्टी दिशा में ही। दोनों अपने-आपसे पूछ रही थीं—क्यों, कैसे ?

बाबा की इस उक्ति ने दोनों के हृदय में अभिमान का अंकुर उत्पन्न कर दिया। चन्द्रा ने सोचा, इस प्रकार के अभिनय के पहले ही भगवान् उसे उठा लें तो अच्छा हो। मृणाल ने सोचा, उससे ऐसा अभिनय नहीं हो सकेगा !

चन्द्रा ने ही मौन भंग किया। 'ऐसा तू क्यों करेगी मैना ?'

'ऐसा मैं कैसे कर सकती हूँ दीदी !'

'पर बाबा ऐसा ही तो कह रहे हैं।'

'जान पड़ता है दीदी, मैंने अपने मन के विकारों को ही इस रूप में देखा है। बाबा केवल विकृत मन की माया हैं।'

'नहीं रे भोली, बाबा सत्य हैं। उन्होंने कुछ सोच के ही कहा होगा।'

'बाबा सत्य भी हों तो वे वीतराग पुरुष हैं, उनका सोचना हमारे बारे में प्रमाण नहीं हो सकता।'

'तुझमें साहस देखती हूँ मैना। मैं इतना साहस नहीं बटोर पाती। मुझे तो कुछ आशंका हो रही है। बाबा कोई बात बिना भविष्य देखे नहीं कह सकते।'

मृणाल को अब आशंका हुई। 'क्या कह रही हो दीदी, तुम्हें कैसी आशंका दिखायी दे रही है ?'

मृणाल का मुँह काला पड़ गया। चन्द्रा ने उसे पास खींच लिया। बोली, 'आशंका का रूप मालूम हो जाय तो तेरी दीदी उसके प्रतीकार की बात भी सोच सकती है। नहीं मालूम है, यही तो चिन्ता है। पर घबराने की क्या बात है ! जैसी आयेगी, वैसा उपाय किया जायेगा। तू अपनी दीदी पर विश्वास

तो करती है न ?' मृणाल ने कहा, 'यह भी कोई पूछने की बात है दीदी।' चन्द्रा ने कहा, 'देख प्यारी मैना, तू इतना विश्वास कर कि अब कोई भी अभिमान चन्द्रा अपने मन में जमने न देगी। बाबा ने एक ही साथ हम दोनों की परीक्षा ली है। मेरे मन में सचमुच अभिमान का अंकुर उत्पन्न हो गया था। तेरे हृदय में भी उत्पन्न हो रहा होगा। उखाड़ दे, नष्ट कर दे, उगते ही कुचल दे उसे। मुझे इस अभिमान ने बहुत भरमाया है। मैं इसे उखाड़कर गंगा की धारा में फेंकती हूँ। हाय मैना, स्त्री के चित्त में विधाता ने अभिमान का अक्षय बीज क्यों बो दिया है! लुटा देने की सारी उमंग इस अभिमान के पौधे से उलझकर बरबाद हो जाती है।'

मैना विस्मय-विस्फारित नयनों से चन्द्रा को देखती रही।

अभिमान का पौधा! दीदी बता रही है कि उनके चित्त में अभिमान का पौधा अंकुरित हो गया था। कैसा होगा यह अभिमान का पौधा? मृणाल के चित्त में क्या यह अंकुरित नहीं हुआ है? चन्द्रा का हाथ यदि वह आर्यक के हाथों में दे दे तो क्या यह कार्य सचमुच नाटक होगा? इस प्रकार सोचने में कहीं उसके अपने हृदय का कोई प्रच्छन्न अभिमान नहीं काम कर रहा है? बाबा की सलाह से वह इतनी विचलित क्यों हो गयी है? यहीं कहीं अभिमान का पौधा होना चाहिए। जो बात सदा सोचती आयी है वही बाबा के मुँह से सुनकर वह विचलित हो गयी! कहीं-न-कहीं अभिमान का कटकी वृक्ष उसके मन में अंकुरित अवश्य हुआ है। बाबा के एक वाक्य ने ही उसे उजागर कर दिया है! दीदी कहती है, विधाता ने स्त्री के हृदय में इसका अक्षय बीज बो दिया है। यह रहेगा। इस नारी-काया में से वह जा नहीं सकता। तो फिर विचलित क्यों हुआ जाय?

मृणाल खो गयी है—अपने में आप ही!

नाव चलती जा रही है!

सुमेर काका गुमसुम बैठे हैं।

चौबीस

देवरात ने शार्विलक को अगम साहस में उलझा देखा। वह फुर्ती से शत्रुओं का व्यूह-भेद कर रहा था, पीछे सहस्रों नागरिक उसका नाम ले-लेकर तुमुल जय-निनाद कर रहे थे। वे आश्चर्य से देख रहे थे कि शार्विलक की तलवार

अवसर पाकर भी नर-हत्या नहीं कर रही है। यह एक प्रकार का आतंक युद्ध है। महामल्ल का जय-निनाद ही शत्रु सेना को इस प्रकार फाड़ रहा है जैसे अदृश्य प्रभंजन के झोंकों से मेघ-पटल छिन्न-भिन्न हो रहे हों। रक्त नहीं बह रहा है, विजय की आंधी अवश्य बह रही है। इस अद्भुत युद्ध में शार्विलक की तलवार बिजली-सी चमक रही है—शून्य में। कोई दैवी शक्ति आ गयी-सी जान पड़ती है। देवरात ने और भी आश्चर्य से देखा कि शत्रु सेना या तो भाग रही है या हाथ उठाकर प्रार्थना कर रही है कि वह शार्विलक के पक्ष में आना चाहती है। नागरिकों का उत्साह बाँध तोड़ देना चाहता है। देवरात का शरीर रोमांचित है। आँखों से आनन्दाश्रु झर रहे हैं। वे अपने-आपको ही सम्हालने का प्रयत्न कर रहे हैं। एकाएक उनमें भी उत्साह का ज्वार आया। नागरिकों की भीड़ के आगे जाकर चिल्ला पड़े, 'जय हो श्यामरूप, देवरात का आशीर्वाद ग्रहण करो।' श्यामरूप शार्विलक युद्ध में उलझा हुआ था। देवरात की वाणी सुनकर उसका उत्साह चौगुना हो गया। एक क्षण के लिए पीछे मुड़-कर देखा—गुरु देवरात ही तो हैं। आनन्दोल्लसित वाणी में बार-बार आशीर्वाद दे रहे हैं और नागरिकों को ललकार रहे हैं। युद्ध में उसके हाथ उलझे हुए थे पर मन में आनन्द की आंधी बह रही थी। वाणी द्वारा अभिवादन ही सम्भव था। 'कृतकृत्य हूँ आर्य, श्रममय का मूक प्रणाम स्वीकार हो।' नागरिकों को संबोधन करके बोला, 'बोलो, गुरु देवरात की जय।' नागरिकों के उल्लास में तीव्रता आ गयी, 'बोलो गुरु देवरात की जय।' जो लोग नितांत निकट थे उनके अतिरिक्त किसी ने देखा भी नहीं कि गुरु देवरात कौन हैं। किसी को इधर-उधर देखने की फुरसत नहीं थी। अन्धभाव से चिल्लाते रहे, 'गुरु देवरात की जय।' विकट संघर्ष चलता रहा। दूसरी ओर से एक और रेला आया। अप्रत्याशित धावमान जनसम्मर्द! 'गोपाल आर्यक की जय!' इस धावमान भीड़ के धक्के से देवरात बहुत पीछे फिंक गये। डुग्गी पर करारी चोट के साथ घोषणा हुई—'गोपाल आर्यक की जय हो। राजा पालक मार डाला गया। गोपाल को चारुदत्त ने राजटीका दी है। जो लोग गोपाल आर्यक की प्रभुता स्वीकार कर लेंगे उन्हें पुरस्कृत किया जायेगा। जो विरोध करेंगे उनका समूल नाश कर दिया जायेगा। महाराज गोपाल आर्यक की जय!' फिर एक बार डुग्गी पर चोट पड़ी—'नागरिक शान्त भाव से अपने घरों को लौट जायें। जो लोग धर्माचरण के साथ शान्तिपूर्वक रहेंगे उनकी रक्षा का वचन दिया जाता है। जो लोग विद्रोह करेंगे वे कुचल दिये जायेंगे।' डुग्गी पर तीसरी बार जोर की चोट पड़ी। उद्घोषक ने पूरी शक्ति के साथ चिल्लाकर कहा, 'बोलो, महाराज गोपाल आर्यक की जय।' शार्विलक ने और भी जोर लगाकर कहा, 'बोलो गोपाल आर्यक की जय।' देखते-देखते सारा वातावरण बदल

गया। सैनिकों का बड़ा हिस्सा इधर आ गया था। एक साथ सबने चिल्लाकर कहा, 'गोपाल आर्यक की जय।' नागरिकों के जय-निनाद से दिग्मण्डल फटने लगा। सभी उल्लास से पागल हो उठे। देवरात एकदम पीछे फिक गये थे। इस उन्मत्त कोलाहल को वे कुतूहल के साथ देख रहे थे। जयध्वनि आकाश को कम्पित कर रही थी। देवरात आनन्दोल्लास के झोंकों से निश्चेष्ट रह गये। प्रभो, क्या सुन रहा हूँ! क्या देख रहा हूँ! यह तो अपूर्व है, अकल्पित है, अनवधार्य है। एक ही साथ दोनो शिष्यों के अद्भुत शौर्य और पराक्रम का साक्षी बनाकर तुम क्या कराना चाहते हो। उनके रोम-रोम से आशीर्वाद बरस रहे थे। पर वे आगे न बढ सके। जनसम्मर्द के उल्लासमय रेल-पेल में उनकी ओर देखनेवाला भी कोई नही था। वे जडवत् स्थिर होकर सब-कुछ देखते रहे।

भीड को यह देखने की फुरसत नही थी कि कौन कहाँ खडा है। सामूहिक चित्त व्यक्ति की परवाह नही करता। देवरात के पीछे से भी भागते हुए लोग आये और भीड मे शामिल हो गये। कुछ तो बदहवास जान पडते थे। देवरात को कई बार धक्का लगा। सब उत्सुक थे, क्या हुआ? कैसे हुआ? न जाने विधाता ने मनुष्य के चित्त मे 'क्या हुआ, कैसे हुआ' जानने की कितनी अपार उत्सुकता भर दी है! देवरात निष्क्रिय साक्षी के रूप मे यह सब देखते रहे। डुग्गी चारो ओर पिटने लगी थी। एक ही घोषणा कई ओर से कई स्वरो में सुनायी देने लगी। महामल्ल शार्विलक ने आदेश के स्वर मे सबको सावधान करते हुए कुछ कहा। भीड तेजी से राजभवन की ओर भागी। कुछ लोगो ने आवेश मे आकर शार्विलक को कन्धे पर उठा लिया। भीड और तेज भागी। देखते-देखते घटना-स्थल जनशून्य हो गया। दूर से दूरतर बढती हुई जयध्वनि तब भी सुनायी देती रही। देर तक वे वहीं खड़े रहे—निःसंज्ञ की भाँति!

घटना-स्थल जब एकदम शून्य हो गया तो देवरात की चेतना में थोड़ी हलचल हुई। दोनो शिष्यों का पराक्रम देख लिया। अब!

उधर जाने से मोह बढेगा। कल से ही चित्त मे आर्यक के सम्बन्ध मे जो धिक्कार-भाव घुमड रहा है वह उसे प्रत्यक्ष देखकर क्षोभ, घृणा और क्रोध पैदा कर सकता है। नही, वे उधर नही जायेंगे।

मृणाल का भदनार मुख हृदय मे उदित हुआ। हाय, इस बालिका के साथ कैसा अन्याय हुआ है! पिता को स्मरण करती होगी—इस अपदार्थ पिता को, जो उसके कष्ट मे कुछ भी काम नही आया। मंजुला की याद आयी—हाय देवि, तुम्हारी थाती को यह भण्ड देवरात सुरक्षित नहीं रख सका!

मन में क्षोभ की तरंगें चंचल हुईं। फिर एक बार यौधेय रक्त खौल उठा। धिक्कार है आर्यक के इस शौर्य को! धिक्कार है यौधेय वीर की इस नपुंसक

शान्ति को ! धिक्कार है इस दिखावटी वैराग्य को ! उन्हें मंजुला की छाया स्पष्ट दिखायी दी। क्षमा करना देवि, देवरात व्याकुल है, कर्त्तव्य-मूढ़ है, तुम्हारी थाती को सावधानी से सुरक्षित न रख सकने का अपराधी है।
वे स्थिर खड़े न रह सके। ऐसा जान पड़ा, अनेक प्रकार की विक्षोभ-लहरियों के झोंके उन्हें उखाड़कर फेंक देंगे। वे एक स्थान पर बैठ गये। कुछ सूझ नहीं रहा था। प्रतिशोध ? आर्यक में प्रतिशोध ? कैसे हो सकता है ? क्षमा ? इतने भयंकर अपराध के लिए क्षमा ? क्षमा करने का अधिकार भी उन्हें है या नहीं ? वे देर तक संशय और अनिश्चय के हिंडोले में झूलते रहे। हाय देवि, तुम्हारा इतना-सा भी काम ठीक से नहीं कर सका ? और फिर भी देवरात जीवित है ? वे अर्द्धमूर्छित-से बैठ रहे—समस्त इन्द्रिय व्यापार शिथिल हो गये ! दूर दिगन्त में उन्हें एक ज्योति-रेखा दिखायी पड़ी। बिजली की कौंध नहीं थी, इन्द्रधनुष भी नहीं था। बिल्कुल शरच्चन्द्र की कोमल मरीचियों की बटी कमनीय रश्मि। ज्योति-रेखा उतर रही है, एकदम सामने उतर रही है—विचित्र शोभा है। देवरात देख रहे हैं, देख रहे हैं। ऐसा भी प्रकाश होता है ! ज्योति-रेखा स्पष्ट दिखायी दे रही है। वह सिमट रही है—स्पष्ट ही सिमट रही है !
देवरात ने देखा—दिव्यनारी !
वे देखकर हैरान हैं। क्या कल्पलोक की कोई अभिराम कल्पना है ? क्या युग-युग से लालित मनुष्य की मनोभवा शोभा है ? क्या अनुभाव-तरंगों से खिंची भावरागिणी है ? देवरात मुग्ध-चकित भाव से देख रहे हैं।
फिर वे एकाएक ससंभ्रम उठकर खड़े हो गये—'तुम हो देवि, तुम हो—छंदों की रानी, तालों की नर्मसखी, बासी को ताजा करनेवाली पुनर्नवा। तुम हो देवि, क्या देख रहा हूँ भुमे, यह दिव्य शोभा, यह भाव-मूर्ति, यह अपूर्व शालीन चारुता ! क्या सपना देख रहा हूँ ? भाव-लोक में उन्मसित हुआ हूँ ? हँस रही हो ? शुचिस्मिते, अपराधी को देखकर हँस रही हो मंजुलावयवे। हाय दिव्य रूपे, देवरात पथभ्रान्त हो गया है। अपने में आप ही उलझ गया है ! हँसो रानी, खूब हँसो, देवरात हँसते-हँसते सह लेगा !
'सहना ही पड़ेगा ! देवरात अशक्त है, पंगु है, कर्त्तव्य-मूढ़ है। पुनर्नवा देवि, तुम नित्य नवीन होकर मानस-पटल पर उदित होती हो। जानती नहीं, किस मर्मवेदना को जगा जाती हो, किस बासी घाव को नया कर जाती हो। देवरात स्वयं मुर्झा गया है, उसमें पुनर्नवा के स्वागत करने की क्षमता नहीं है। हँसो मंजुला रानी, खूब हँसो, देवरात हँसने के योग्य ही है।'
भाव-विह्वल अवस्था में वे एकटक दिव्य तेजोमयी मूर्ति को देखते रहे। 'धन्य हो पुनर्नवे ! धन्य हो महिमामयी ! आहा, कुछ कह रही हो ? कहो

देवि, देवरात का रोम-रोम कान बन गया है। कहो देवि, कुछ कहो, बोलो वागीश्वरी, कुछ तो बोलो !'

'हँस रही हूँ, आर्य देवरात ? ध्यान से देखो, हँस रही हूँ ? अपने चित्त के कलुष को तुम मेरी हँसी समझ रहे हो। ध्यान से देखो आर्य। तुम्हारे-जैसा विवेकी द्रष्टा मैंने नहीं देखा। आज तुम्हें हो क्या गया है ? तुम्हारे मन में कहीं कोई अनुचित चिन्ता शल्य बनकर घुस गयी है। निकाल दो उसे, फेंक दो उसे, प्यार करो उसे जो प्यार का अधिकारी है। लोगों से मुनी बातों से विचलित न होओ। तुमने बहुत पाया है आर्य, यहाँ आकर देने की क्रिया बन्द करो। तुम पाना चाहते हो ? कैसे पाओगे प्रभो ! भगवान् ने तुम्हें अहीनाभाव दिया ही नहीं है। तुम्हारा स्वभाव देना है, लुटाना है, अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर महा-अज्ञात के चरणों में उँड़ेल देना है। छोटे मुँह बड़ी बात कह रही हूँ प्रभो, क्षमा कर देना। तुम्हारी ही गिरावन तुम्हें लौटा रही हूँ।

'भूल गये आर्य, महाभाव का चस्का इस अभाजन को लगाकर स्वयं भूल गए ! उठो आर्य, इस अनुचरी ने यदि कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा करना। जीते-जी तुम्हारी भाव-साधना की सगिनी नहीं बन सकी। महाभाव-साधना की सगिनी तो बना लो आर्य ! इस लालसा ने मुझे बहुत भरमाया है प्रभो। तुम्हारे अभिलाष के बन्धन में बँधी हुई हूँ। बार-बार लौटकर आती हूँ। मुक्ति नहीं पा रही हूँ। जिन पर तुम्हारा ध्यान केन्द्रित होता है उनकी कल्याण-कामना के लिए भरमती फिरती हूँ। महाभाव सामने आ-आकर खिसक जाता है। ससार ज़ोर से खींचता है। बुरी तरह खींचता है। पुनर्नवा बनना पड़ता है। पर आर्य, यह तो मेरा सहज धर्म नहीं है !'

'सहज धर्म नहीं है देवि ? अभाजन को क्षमा करना, वह धर्म जो सहज न हो, कष्टदायक होता है। तुम्हें कष्ट हो रहा है। इस अभाजन के लिए यह कष्ट स्वीकार करो देवि। पुनर्नवा बनकर नित्य आती रहो। तुम्हारा थोड़ा कष्ट किसी को हराकर जाय तो क्या हर्ज है देवि ! नहीं, तुम नित्य-नवीन होकर हृदय में उतरा करो। नित्य-नवीन होकर, पुनः-पुन. नवीन होकर मेरी पुनर्नवा रानी ! तुम आती हो दिव्य वेश में, तुम्हारे प्रत्येक पद-संचार से प्राणों का उद्‌बोधन होता है, मुर्झाये अकुर खिल उठते हैं, कलियाँ चटकने लगती हैं, सारे विश्व-ब्रह्माण्ड में जीवन-रस उमड़ पड़ता है। मेरी शर्मिष्ठा जीवन्त हो उठती है, उसके सूखे अधरों पर अनुराग की लाली दौड़ जाती है, मुर्झाये कपोल कदम्ब केसर के समान उद्विग्न हो जाते है, तुम शर्मिष्ठा में मिलकर एकमेक हो जाती हो—पुनः नवीन, पुनः जाग्रत, पुन प्राणवन्त ! रानी, तुम दूसरों को भी पुनर्नवता प्रदान करती हो। यहकष्ट तो तुम्हे उठाना ही पड़ेगा, प्राणवल्लभे!'

'क्या कह रहे हो आर्य, तुम्हारी बातें समझ में नहीं आ रही हैं। कहीं कुछ कसर रह गयी है तुम्हारे भीतर। आओ, मेरे साथ मथुरा चलो। महाभाव में रमो। यहाँ तुमसे अधिक कुछ नहीं कह सकती। पीहर है यह। मथुरा चलो। महाभाव के आश्रय के चरणों में सब-कुछ वार दो। मंजुला को भी और शर्मिष्ठा को भी। उठो आर्य।'

'चलूँगा देवि, जहाँ कहो वहीं चलूँगा। पर इस पुनर्नवा रूप से वंचित न करना।'

'जा रही हो देवि, आँखें अतृप्त ही रह गयीं, प्राण प्यासे ही रह गये। जा रही हो, सचमुच जा रही हो? मथुरा जा रही हो, वृन्दावन की ओर? धन्य हो भावरूपे!'

ज्योति ऊपर उठती गयी, पूर्व की ओर। और दूर, और दूर। देवरात पर-कटे पक्षी की भाँति वहीं गिर पड़े। पीछे से किसी ने उन्हें पकड़ लिया और उनका सिर गोद में ले लिया।

माढव्य देर से खड़े थे। उन्हें देवरात की ये बातें प्रलाप जैसी सुनायी दे रही थीं। वे भौचक्के खड़े थे। उन्हें गिरते देख उन्होंने सम्हाल लिया। फिर अपने-आपसे ही बोले, 'सब पागल हो गये हैं। उधर वह किशोर कवि बड़-बड़ा रहा है, इधर यह प्रवीण पंडित बकबका रहा है। आर्यक राजा हुआ है तो कहाँ प्रसन्न होंगे, दोनों पर दुष्ट ग्रह का आवेश आ गया है। यह पुनर्नवा-पुनर्नवा चिल्ला रहा है, वह महाकाल की गुहार लगा रहा है। माढव्य को यही तो अवसर था राजदरबार में जाकर कुछ बना लेने का, पर इन विक्षिप्त मित्रों ने सब गुड़ गोबर कर दिया। क्या हो गया इन्हें?'

देवरात कुछ सजग हुए। उन्होंने माढव्य शर्मा की गोद में अपना सिर पाया। अकचकाकर उठ बैठे। थोड़े लज्जित-से लगे। 'कब आये आर्य माढव्य।' माढव्य शर्मा ने रुआँसा होकर कहा, 'देर से आया हूँ आर्य। आप जाने क्या-क्या प्रलाप बक रहे थे। उधर चन्द्रमौलि ने जो प्रलाप शुरू किया है उससे घबराकर आपको खोजने आया तो देखा यहाँ भी वही काण्ड चल रहा है। मन ठीक है न आर्य।' देवरात इससे और लज्जित हुए, 'प्रलाप कर रहा था दादा? प्रलाप था वह? तुमने कुछ देखा नहीं? क्या देखा दादा?' अब माढव्य शर्मा को लगा कि यह सचमुच पागल हो गया है—अटट पागल! झुँझलाकर बोले, 'उठो आर्य, तुम्हारे मस्तिष्क में कुछ विकार आ गया है। मैं क्या देखता भला। देखा कि आप बके जा रहे हैं। शुद्ध प्रलाप। कैसी पुनर्नवा और कैसी प्राणवल्लभा, किसी ने कोई अभिचार कर दिया है आर्य! यह घोर कापालिकों की भूमि है। जल्दी उठो। हटो भी यहाँ से।'

देवरात ने भीगे स्वर में कहा, 'अभिचार नहीं है आर्य माढव्य!'

'अभिचार नही तो क्या है आर्य ! तुम उज्जयिनी को नही जानते। महाकाल के इर्द-गिर्द न जाने कितने कापालिक, कितने औघड, कितने भैरव और कितनी भैरवियाँ घूमती रहती है। प्रियजन के उत्कर्ष से प्रसन्न होनेवालो पर अभिचार करना उनका क्रूर परिहास होता है। माढव्य तो मूर्ख है। न कभी बहुत प्रसन्न होता है न बहुत उदास। उस पर उनकी माया नही चलती। मूर्खों पर उनका लोभ भी नही होता। मेरे दो मित्र हैं। दोनो परम मेधावी। उनकी प्रसन्नता पर वे अपने अभिचार का प्रयोग तो करेंगे ही। उज्जयिनी मे मूर्ख ही सुखी रहते हैं आर्य !'

'ऐसा न कहो आर्य माढव्य, उज्जयिनी विद्या की राजधानी है। सिद्धो की तपोभूमि है। तुम जिसे नही देख सके वह है ही नही, ऐसा क्यो समझ लेते हो ?'

'कैसे न कहूँ तात, सौ बार अनुभव किया है उसे न कहूँ ? जिस समय मैं कारागृह मे बेहोश पडा था और आग के जलते उल्का-खड आँगन मे गिर रहे थे उस समय अचानक होश मे आकर मैं चिल्ला पडा था न ? उस समय तुम्हे बताया नहीं मगर मैंने प्रत्यक्ष देखा तुम्हारे चारो ओर एक अपूर्व सुन्दरी चक्कर लगा रही है और ऐसा लगता था तुम्हे बचाने की कोशिश कर रही है। मैं इन डाकिनियो की माया जानता हूँ आर्य। यह सब नाटक बचाने का नही था, तुम्हारे मस्तिष्क के कोमल मास के खाने का था। वह तो कहो, मैं भय से जोर से चिल्ला उठा। वह एक ओर सटक गयी। लगता है तभी से वह तुम्हारे पीछे पडी है।'

'सच आर्य, तुमने किसी अपूर्व सुन्दरी को देखा था। कैसी थी वह, बताओ दादा !'

'एक क्षण में तो सब खेल खतम हो गया आर्य, यही कह सकता हूँ कि वैसा सुन्दर रूप मैंने कही नही देखा, कभी नही देखा। सुना है आर्य कि डाकिनियाँ श्वेत वस्त्र पहनती हैं पर वह लाल कौशेय पहने थी। बिल्कुल आग की लपट के समान लाल कौशेय।'

देवरात ने उत्सुकता के साथ ही पूछा, 'तुम्हें आग की लाल-लाल लपटो को देखकर ऐसा भ्रम तो नहीं हुआ दादा ?' माढव्य ने दृढ़ता से कहा, 'नही आर्य, मैंने प्रत्यक्ष देखा।' देवरात सोच मे पड़ गये। हल्का लाल कौशेय ही उन्होने भी देखा था। वे कुछ बोले नही। केवल 'हूँ' कहकर रह गये।

माढव्य ने कहा, 'देखो आर्य, यहाँ कालिकाजी का मदिर है। वही चलो। उनके दर्शन से ही इस विपत्ति से उद्धार हो सकता है।'

देवरात थोडी देर खोये-खोये खड़े रहे। फिर एकाएक बोले, 'अच्छा दादा, प्रणाम ग्रहण करो। मैं उज्जयिनी छोड़ रहा हूँ। मथुरा जा रहा हूँ। गोपाल आर्यक मिले तो उसे मेरा आशीर्वाद कह देना।'

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वे एकदम चल पड़े। माढव्य आश्चर्य से देखते रहे गये। सचमुच मस्तिष्क विकृत हो गया था क्या!

पच्चीस

सांढनी सवारों की व्यवस्था उपयोगी सिद्ध हुई। सम्राट् को मथुरा पहुँचने के पहले ही समाचार मिल गया कि गाँववालो के प्रतिरोध के कारण उज्जयिनी के कोई दस योजन पहले ही भटार्क को रुक जाना पड़ा है। सम्राट् का कड़ा आदेश था कि चाहे कुछ भी हो जाये, प्रजा का उत्पीड़न न हो। प्रजा के मन में यह भाव कभी नहीं आना चाहिए कि सम्राट् समुद्रगुप्त भी शक शासकों के समान ही प्रजा का उत्पीड़न करनेवाला है। उधर भानुदत्त के दुर्वृत्त सेवकों ने गाँव-गाँव जाकर यह प्रचार किया कि भटार्क ने चण्डसेन को बन्दी बनाकर पाटलिपुत्र भेज दिया है। इस सेना ने गाँव-के-गाँव जला दिये हैं और स्त्रियो और बच्चों पर अमानुषिक अत्याचार किये हैं। भटार्क कर्तव्य-परायण स्वामि-भक्त सैनिक था। उसे न तो इस प्रकार की किसी कूटनीति का ज्ञान ही था, न उसकी इस प्रकार की नीतियों मे कोई रुचि ही थी। मथुरा से आगे बढ़ता हुआ वह चर्मण्वती के ढूहों मे पहुँचा। रास्ता विकट था। उसकी सेना का एक हाथी किसी स्थान के खेत मे पहुँच गया। खेत नष्ट हो गया। गाँववालो ने ढेला मार-मारकर हाथी और उसके महावत की दुर्गति कर दी। हाथी टीलों पर ऊँचाई पर चढे लोगों का कुछ बिगाड़ नहीं पाता था जब कि निरन्तर ढेला-वर्षण से वह अधमरा हो गया। किसी प्रकार महावत उसे भगाकर सेना के पड़ाव पर ले आया। सैनिकों मे इस घटना से उत्तेजना फैली। उनकी गाँववालों से रार हो गयी। वहाँ तो उन्होंने उन्हें दबा दिया पर बाद मे सेना को भयंकर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। सैनिक भी उन्मत्त हो उठे।

भटार्क को जब यह मालूम हुआ तो अभियान रोक दिया। ग्राम-वृद्धों को बुलाकर उनके अभियोग सुने और आश्वासन दिया कि सेना उनकी जीवन-चर्या में कोई व्याक्षेप नहीं होने देगी। उन्होंने सम्राट् की इस इच्छा की भी घोषणा की कि उनकी सेना प्रजा का विश्वास अर्जन करना चाहती है। समाज में शास्त्र-सम्मत आचरण की प्रतिष्ठा और स्वाधीनता देती है। धर्म-विरुद्ध काम करने-वालों को दण्ड देना चाहती है। सम्राट् प्रजा के सुख को ही अपना सुख मानते हैं। इस बात मे ग्राम-वृद्ध सन्तुष्ट हुए पर जब उन्होंने बताया कि विदेशी शासन

के एकमात्र धर्मप्राण प्रजावत्सल महाकुमार चण्डसेन को सम्राट् की सेना ने बन्दी बनाया है, प्रजा उनकी मुक्ति चाहती है तो भटार्क सोचते रह गये। वे किसी प्रकार यह विश्वास नहीं दिला सके कि यह समाचार झूठा है। ग्राम-वृद्धों को आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही इसके वास्तविक रहस्य का पता लगायेंगे। भटार्क इस प्रकार के भ्रम प्रचार का रहस्य नहीं समझ सके। उन्होंने अभियान कुछ समय के लिए स्थगित करके इस समाचार का स्पष्ट ज्ञान लेने का प्रयास किया। उज्जयिनी-विजय का निश्चित कार्यक्रम पालित नहीं हो सका। जैसे ही उन्हें समाचार मिला कि सम्राट् मथुरा आ रहे हैं, उनकी इच्छा है कि वे स्वयं उज्जयिनी अभियान का नेतृत्व करेंगे—भटार्क को कुछ निराशा हुई। यह एक प्रकार से उनके नेतृत्व में सम्राट् का अविश्वास प्रकट करता था।

जिस समय वे इस प्रकार चिन्तित थे उन्हीं दिनों समाचार मिला कि उज्जयिनी में विद्रोह हो गया है और गोपाल आर्यक ने राजा को मारकर शासन-सूत्र सम्भाल लिया है। इस समाचार ने जनपद में भारी उत्साह फैला दिया। ग्राम-वृद्धों ने स्वयं आकर निवेदन किया कि वे गोपाल आर्यक की सहायता करने में कुछ उठा न रखेंगे। उस समय तक जनपद में गोपाल आर्यक को अवतारी पुरुष मान लिया गया था। गाँवों में इस प्रकार के लोकगीत बन गये थे कि जिस प्रकार जलमग्न धरित्री का उद्धार महावराह ने किया था उसी प्रकार कुशासन में डूबे हुए देश का उद्धार गोपाल आर्यक करेगा। समा-चारों में इस प्रकार की जनश्रुतियाँ भी थीं कि शार्विलक मल्ल ने राजश्यालक भानुदत्त को पकड़ लिया है। यह समाचार भी तेजी से फैला था कि भानुदत्त ने चण्डसेन को बन्दी बनाया था। शार्विलक उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा है। भटार्क को नया उत्साह आया और सेना को आदेश दिया कि सम्राट् के मथुरा पहुँचने के पहले ही उज्जयिनी पहुँचकर गोपाल आर्यक की सहायता की जाय। सेना दुगुने उत्साह से आगे बढ़ी। प्रतिरोध समाप्त हो गया था। उज्जयिनी पहुँचने में कोई विलम्ब नहीं हुआ।

भटार्क की सेना बड़ा वेग से बढ़ी जा रही थी। हाथियों की प्रचण्ड वाहिनी घनघुम्मर घटा के समान फैलती दिखायी दे रही थी। घोड़ों के टाप के आघात से धरती काँप उठी थी और पदातिक सैन्यों से इतनी तेजी से उड़ी हुई धूल से दिग्मण्डल धूसरित हो उठा था। सेना उज्जयिनी के उपकण्ठ तक प्रायः पहुँच चुकी थी। उसी समय शार्विलक चण्डसेन को कारागार से मुक्त कर उज्जयिनी की ओर ले जाने की तैयारी कर रहा था। शार्विलक के साथियों ने भानुदत्त को पकड़ लिया था। प्राण-भय से उसने शरणागति का अनुरोध किया था। उसी के बताये अनुसार नगरोपकण्ठ के एक जीर्ण गृह से चण्डसेन को मुक्त किया गया था। शार्विलक को ज्यों ही पता लगा कि चण्डसेन को

अमुक स्थान पर हाथ-पैर बाँधकर डाल दिया गया है, वह एक क्षण का विलम्ब किये बिना वहाँ पहुँचा था। चण्डसेन को उसने बुरी हालत में देखा। उनका हाथ पीठ की ओर ले जाकर बाँध दिया गया था और पैरों में भी कठोर बेड़ियाँ डाल दी गयी थीं। वे औंधे मुख अर्द्धमृत अवस्था में पड़े थे। एक मुहूर्त का विलम्ब हुआ होता तो वे जीवित न मिलते। शार्विलक ने उनके बन्धन खोले थे और देर तक उपचार करके उनकी चेतना लौटाने का प्रयत्न किया था। जब वे कुछ स्वस्थ हुए तो उन्हें लेकर उज्जयिनी की ओर धीरे-धीरे ले चलने का निश्चय किया था। अभी वह चण्डसेन को लेकर प्रस्थान के लिए तैयार ही हुआ था की विशाल सेना के कोलाहल और जय-निनाद कि देखकर घबरा गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि यह विशाल सेना किसकी है और एकाएक उज्जयिनी की ओर जाने का उसका उद्देश्य क्या है। एक बार उसके मन में आशंका हुई कि कहीं यह सेना पालक के किसी मित्र की तो नहीं है। वह विचित्र संकट में फँसा-सा जान पड़ा। किसी ओर भाग निकलने का मार्ग भी नहीं था और चण्डसेन की हालत इतनी खराब थी कि उनको दौड़ाना असंभव था। शार्विलक चिन्ता में पड़ गया। उसके साथ जो दो-चार सैनिक आये हुए थे वे और भी घबरा गये। क्या किया जाय, कैसे इस अप्रत्याशित विपत्ति से बचा जाय। यह सूझ नहीं रहा था।

सोच-विचार के लिए अधिक समय नहीं था। शार्विलक ने अपने साथी से कहा कि तुम पता लगाओ कि सेना किसकी है। इस समय मेरा प्रधान कर्त्तव्य है मुमूर्षु अन्नदाता को सुरक्षित स्थान पर ले जाना। सीधे नदी की ओर भागने से ही रक्षा की कुछ क्षीण संभावना है। उसने चण्डसेन को अपनी पीठ पर बाँधा। उसके साथियों ने इस कार्य में उसकी सहायता की। फिर उसने तलवार की मूठ कसकर हाथ में पकड़ ली और वायु-वेग से नदी-तट की ओर दौड़ा। उसके साथी भी उसके पीछे-पीछे दौड़े। दो तो थककर बीच में ही रुक गये पर एक अधिक बलवान सिद्ध हुआ। वह शार्विलक के पीछे-पीछे चलता गया। नदी-तट उतना निकट नहीं था जितना शार्विलक ने सोचा था। पर लगातार दौड़ लगाने से उस लम्बी दूरी को भी वह शीघ्र ही पार कर गया। नदी-तट पर पहुँचकर उसने पीछे की ओर देखा। विशा सेना बहुत निकट आ गयी थी। लोग भय से व्याकुल थे। सबके मन में आशंका थी कि न जाने क्या होनेवाला है। इधर-उधर भाग-दौड़ और चीख-चिल्लाहट मची हुई थी। स्त्रियों और बालकों की चिल्लाहट से वातावरण फट रहा था। नदी में कूदने से पहले शार्विलक ने इस असहाय क्रन्दन को सुना, उसके पैर रुक गये। इतने असहाय लोगों को छोड़कर भाग जाना क्या उचित है? एक ओर अन्नदाता की प्राण-रक्षा और दूसरी ओर असंख्य भय-व्याकुल लोगों को ढाढ़स बँधाना।

दोनों में कौन-सा कर्तव्य उसे चुनना चाहिए। तर्क की ओर झुकनेवाली बुद्धि ने कहा—क्या कर लोगे अकेले इतनी विशाल सेना के सामने? भावना की ओर झुकनेवाली मानस प्रतीति ने कहा—असहाय स्त्री-पुरुषों और बच्चों को ढाढस देते समय मर जाना भी श्रेयस्कर है! क्षण-भर उसे निर्णय करने में दुविधा हुई, पर दूसरी भावनोन्मुखी वृत्ति ही विजयी हुई। चन्द्रसेन को पीठपर से खोलकर एक वृक्ष तले लिटाया। साथी से पानी माँगा। उनके मुख पर ठण्डे पानी के छींटे दिये और फिर अपने साथी को उनकी देखरेख के लिए छोड़कर वह लौट पड़ा। बच्चों, बूढ़ों, स्त्रियों को आश्वासन दिया, 'घबराने की कोई बात नहीं है। इधर देखो, शार्विलक अपनी तलवार के साथ तुम्हारे पास खड़ा है। शान्त भाव से सब लोग नदी के किनारे आ जाओ। तुम्हारी रक्षा यह शिव की दी हुई तलवार करेगी।' सर्वत्र बात फैल गयी।

एक बार फिर महामल्ल शार्विलक के जय-निनाद से वायुमण्डल विद्ध हो उठा। स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को एक ओर कर दिया गया। बहुत-से युवक और प्रौढ़, जो अब तक भगदड़ मचाये हुए थे, शार्विलक के पीछे आकर खड़े हो गये। उसके पीछे छूटे दोनों साथी भी आ गये। जिसके हाथ में जो भी लगा वही लेकर वह सिंहनाद करके गरज उठा—महामल्ल शार्विलक की जय! देखते-देखते एक छोटी-मोटी प्रतिरोधक सेना तैयार हो गयी। किसी को यह विश्वास नहीं था कि उनकी टुकड़ी इतनी बड़ी सेना के सामने अधिक देर तक टिक सकेगी परन्तु सबके मन में शार्विलक की यह वाणी ब्रह्मलीक की तरह खिंच गयी थी—'भय से भागते हुए मत मरो, मरना ही है तो लड़ के मरो।'

सेना की अगली हरावल में स्वयं भटार्क अश्ववाहिनी का नेतृत्व कर रहे थे। अब तक उन्हें किसी प्रकार के प्रतिरोध का सामना नहीं करना पड़ा था। एकाएक उज्जयिनी के उपकण्ठ में एक प्रतिरोध को देखकर वे सजग हुए। उन्होंने समझा कि पालक की सेना प्रतिरोध के लिए उपस्थित है। उन्होंने एक क्षण रुककर इस प्रतिरोधक वाहिनी का ठीक-ठीक अन्दाजा लगा लेने का प्रयास किया। सेना में जो जहाँ था उसे वहाँ ही रुक जाने का आदेश दिया। सेना के सहस्रों जवान इस प्रकार रुक गये जिस प्रकार उमड़ती हुई जलधारा किसी दुर्लंघ्य चट्टान से टकरा गयी हो। आगे के आदेश की प्रतीक्षा में हठात् रुकी हुई सेना भटार्क के इंगित पर एक साथ गरज उठी—'गोपाल आर्यक की जय!' शार्विलक ने इस गगनविक्षरी ध्वनि को सुना, पर स्पष्ट रूप से समझ नहीं सका कि किसकी जय बोली जा रही है। उनके एक साथी ने उत्तर में 'महामल्ल शार्विलक की जय' का नारा लगाया। दोनों ओर थोड़ी देर तक जय-निनाद होते रहे। इसी समय शार्विलक का पहला साथी दौड़ता हुआ दोनों हाथ ऊपर उठाकर चिल्लाया, 'रुक जाओ, अपनी ही सेना है!'

शार्विलक ने आश्चर्य के साथ पूछा कि किसकी सेना है। साथी ने जोर-जोर से चिल्लाकर कहा, 'ये लोग गोपाल आर्यक की जय बोल रहे हैं।' शार्विलक ने पूछा, 'सेनापति का नाम मालूम हुआ या नहीं?' साथी ने कहा, 'कहते हैं उसका नाम गोपाल आर्यक ही है।' शार्विलक हैरान। फिर उसे मथुरा के ब्राह्मण पुजारी की याद आयी। वृद्ध ने कहा था—'धन्य है भटार्क, देश पर देश जीतता आ रहा है। अपना नाम कहीं नहीं आने देता। सब-कुछ गोपाल आर्यक के नाम पर कर रहा है।' उसे अब रहस्य का कुछ अनुमान हुआ। परीक्षा के लिए उसने अपने साथियों को ललकारा, 'बोलो सेनापति भटार्क की जय!' शताधिक कंठों से आवाज निकली, 'सेनापति भटार्क की जय।' भटार्क को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सेना को रुके रहने का आदेश देकर घोड़ा दौड़ाया। आगे बढ़कर बोले, 'मैं भटार्क हूँ। अगर आप लोग गोपाल आर्यक के साथी हैं तो निर्भय होकर हमारे पास आ जायें।' इस समाचार से शार्विलक को रोमांच हो आया। आगे बढ़कर उसने कहा, 'सेनापति भटार्क, गोपाल आर्यक के बड़े भाई श्यामरूप शार्विलक का प्रेमाभिवादन स्वीकार करें।' भटार्क घोड़े से कूद पड़ा—'आर्य शार्विलक, महामल्ल शार्विलक, हमारे सेना-पति के अग्रज शार्विलक, मैं धन्य हूँ। मैंने आपकी कीर्तिगाथा सुनी है।' कहकर वे शार्विलक से लिपट गये। उनका शरीर रोमांच-कंटकित था, आँखें अश्रुपूर्ण। शार्विलक की भी यही दशा थी। दोनों दीर्घकाल से बिछुड़े सहोदर भाइयों के समान मिले।

शार्विलक से उज्जयिनी के समाचार पाकर भटार्क आश्वस्त हुए पर जब उन्होंने सुना कि राजरपालक भानुदत्त ने चण्डसेन को यहीं कहीं बाँध के बिना अन्न-पानी के छोड़ दिया था और उन्हीं का उद्धार करने के उद्देश्य से शार्विलक यहाँ आये थे, तो म्लान हो गये। शार्विलक ने उन्हें बताया कि किस प्रकार राजभवन के पास आर्यक ने पालक को मारा और स्वयं आर्य चारुदत्त के साथ राजभवन में प्रवेश किया। उधर भानुदत्त के गुण्डों ने आर्य चारुदत्त के घर आग लगा दी और सारा नगर जल उठा था। फिर किस प्रकार प्रातःकाल वह नगर में पहुँचा और नागरिकों की सहायता से नगर-श्री वसन्तसेना को मूर्च्छित अवस्था में छुड़ाया और किस प्रकार नागरिकों के मुख से गोपाल आर्यक की विजय-कथा सुनकर और शत्रुओं के नये सिरे से व्यूहबद्ध होकर राजभवन जाते समय नागरिकों ने उसके साथ मिलकर प्रतिरोध किया और शत्रु सेना को परास्त किया। भटार्क उत्सुकतापूर्वक यह कहानी सुनते रहे। उपसंहार में शार्विलक ने बड़े दुःख के साथ बताया कि अभी तक इतने दिनों के बिछुड़े भाई से वह मिल नहीं सका है। बीच में कुछ ऐसी घटना हो गयी कि राजभवन में प्रवेश करते ही उसे लौट आना पड़ा। जिस समय वह राज-

भवन मे प्रविष्ट हुआ उसी समय उसने दो व्यक्तियों को सदिग्धावस्था मे बात-चीत करते पाया। उन्हे तुरन्त बदी बनाया गया और कुछ नागरिकों ने उन्हे पहचान भी लिया। उज्जयिनी मे ये दोनो व्यक्ति—जय और विजय—भानुदत्त के दाहिने और बाये हाथ समझे जाते थे। इन्हे अनेक प्रकार के भय दिखाये जाने पर इस रहस्य का पता लगा कि भानुदत्त वहीं अन्तःपुर के एक गुप्त कक्ष मे छिपा हुआ है। सयोग से वही आर्य चारुदत्त से भेंट हो गयी। वे रात-भर राजभवन की रक्षा मे लगे रहे। उन्ही से पता लगा कि आर्यक और आर्य चारुदत्त की पत्नी धूता देवी राजभवन के एक साधारण-से कक्ष मे पडे हुए है और चारुदत्त के विश्वस्त नागरिको के पहरे मे सुरक्षित हैं। नगर के उपद्रव की बात उन तक पहुँची भी नही है। उन्ही के परामर्श से विश्वस्त नागरिको की पत्नियो की सहायता से भानुदत्त पकड लिया गया। उसे बाँध-कर आर्य चारुदत्त की देखरेख मे छोड दिया गया है। उसी से चण्डसेन का पता पाकर वह सीधे यहाँ आ गया है। घटना-चक्र के इस तीव्र गति से घूमने मे सारी रात बीत गयी और दूसरा दिन भी समाप्त हो गया। कल सध्या-समय वह चण्डसेन का पता लगा सका। वे मर ही गये होते यदि वह चार विश्वासी नागरिको के साथ वहाँ पहुँच नही गया होता। पूरे दस दण्डो के उपचार के बाद उनको थोडी चेतना आयी है। रात-भर उनका सवाहन हुआ है। बडी कठिनाई से उनके मुँह मे थोडा पानी पहुँचाया जा सका। एक स्थानीय वैद्य से थोडा-सा रसायन प्राप्त हुआ है, उसी से उनकी चेतना लौटी है। पर वे एकदम दुर्बल हो गये हैं। उन्हे उज्जयिनी ले जाने की कोई अच्छी व्यवस्था नही हो पायी थी। इसी बीच इस सेना को देखकर वह और उसके साथी डर गये और शार्विलक ने उन्हे पीठ पर बाँधकर नदी पार करना चाहा पर स्त्रियो, बच्चो और वृद्धो की भयार्त वाणी सुनकर उन्हे नदी-तट पर छोडकर उनकी रक्षा करने का आश्वासन देना पडा। शार्विलक ने प्रसन्नता के साथ उपसंहार करते हुए कहा, 'अब यह जानकर बडा आनन्दित हूँ कि यह सेना अपनी ही सेना है! तात भटार्क, मुझे आर्यक के विषय मे चिन्ता बनी हुई है। आर्या वसन्तसेना को भी प्राय मरणासन्न अवस्था मे छोड आया हूँ। तुम शीघ्र नगर मे प्रवेश करके दोनो की सुरक्षा की व्यवस्था करो। मुझे आर्य चण्डसेन को सम्हालने जाने दो। पता नही इस बीच उनकी क्या स्थिति है।'

भटार्क भी थोडा चिन्तित हुए परन्तु उन्होने शार्विलक को रोकना चाहा। 'आर्य, आप जैसा कहते हैं वैसा ही होगा। परन्तु आर्य चण्डसेन को सुरक्षित उज्जयिनी पहुँचाने के लिए गोपाल आर्यक का यह अनुचर सब व्यवस्था कर देगा। मुझे आपके सान्निध्य की आवश्यकता होगी। मैं अभी राजभवन की

और नगर-श्री वसन्तसेना की सुरक्षा की उचित व्यवस्था करता हूँ। आपकी कहानी से स्पष्ट है कि आप कई दिनों से केवल लड़ते ही आ रहे हैं। अब अपने सेवक पर विश्वास कीजिए। मेरे साथ चलिए और थोड़ा विश्राम कीजिए।' शार्विलक भटार्क की इस विनम्रता और मृदुभाषिता से बहुत प्रीत हुआ पर उसने दृढ़ता के साथ कहा कि चण्डसेन की मानसिक स्थिति बहुत चिन्ताजनक है। सम्राट् के सेनापति को देखकर पता नहीं उनके मन में क्या भाव आवे। इसलिए उनके निकट शार्विलक का रहना परम आवश्यक है। बातचीत में अधिक समय नष्ट करना उचित न समझकर भटार्क ने एक हाथी की व्यवस्था चण्डसेन के लिए की और सेना की एक टुकड़ी उज्जयिनी रवाना कर दी और आज्ञा दी कि तुरन्त नगर में घोषणा कर दी जाय कि सम्राट् की विशाल वाहिनी, जिसके नेता गोपाल आर्यक हैं, नगर में प्रवेश कर गयी है। किसी को भय पाने की आवश्यकता नहीं है। बालक, युवक, महिलाएँ, वृद्ध जन, अनाथ और असहाय आश्वस्त हो जायँ। जो लोग अशान्ति पैदा करेंगे उन्हें कठोर दण्ड दिया जायेगा। जो लोग गोपाल आर्यक के पक्ष में होंगे उनकी रक्षा की जायेगी और पुरस्कृत किया जायेगा। मृत राजा के जो भृत्य गोपाल आर्यक की ओर से लड़ रहे हैं या लड़ेंगे उन्हें सम्राट् उचित पुरस्कार देंगे। जो विरोध करेंगे उन्हें समूल ध्वस्त कर दिया जायेगा।' फिर वह शार्विलक के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ चण्डसेन मुमूर्ष अवस्था में पड़े थे। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि वे अब स्वस्थ हो आये थे। यद्यपि अब भी वे संज्ञा-शून्य-से ही थे।

शार्विलक ने चण्डसेन का हाल-चाल पूछा। उनकी शारीरिक अवस्था में पर्याप्त सुधार देखकर भटार्क का परिचय दिया और बताया कि सेनापति ने उन्हें उज्जयिनी पहुँचाने के लिए हाथी की व्यवस्था कर दी है। क्षण-भर वे फटी-फटी आँखों से देखते रहे, फिर एकाएक उनका मुखमंडल क्रोध और क्षोभ से लाल हो उठा। बोले, 'सम्राट समुद्रगुप्त के सेनापति भटार्क, तुम मथुरा-विजय के मद से अन्धे होकर क्या मथुरा के शासक वंश का उपहास करना चाहते हो? भली भाँति समझ लो कि मैं तुम्हारा शत्रु हूँ। मथुरा और उज्जयिनी के शासकों ने मेरी बात नहीं मानी, मुझे अपमानित किया और मुझे मार डालने में कुछ भी नहीं उठा रखा, यह सब सत्य है फिर भी चण्डसेन का यह झगड़ा घरेलू झगड़ा है। बाहर के शत्रुओं के लिए चण्डसेन सदा प्रचण्ड शत्रु ही बना रहेगा। मुझे असहाय और विपन्न देखकर मेरे ऊपर दया मत करो। चण्डसेन शत्रु से दया की भीख नहीं माँगेगा। तुम यहाँ से चले जाओ। अच्छा हो कि जाने के पहले विपदावस्था में पड़े हुए अपने प्रबल शत्रु को समाप्त करते जाओ।'

इस उत्तर से शार्विलक स्तब्ध रह गया। उसे अपने धर्मपरायण उदार स्वामी से ऐसी आशंका नहीं थी। वह समझता रहा कि चण्डसेन के साथ दुर्व्यवहार करनेवालों के विरुद्ध संघर्ष करके उसने स्वामी की वास्तविक सेवा की है। अब वह सोचने लगा कि उज्जयिनी में किये गये उसके कार्यों के बारे में स्वामी क्या सोचेंगे! कदाचित् कृपा के स्थान पर उसे कोप मिलेगा।

भटार्क उतना विचलित नहीं हुआ। पिछले अभियान के बीच उसने कितने ही प्रभावशाली राजवंशियों से ऐसे और इससे भी अधिक कठोर वाक्य सुने थे और दृढ़तापूर्वक उनको भय दिखाकर वश में किया था। आज भी उसकी शक्ति वैसी ही है। मृदु-विनीत भाषा में छन्दानुरोध उसका पहला अस्त्र होता था, प्रलोभन दूसरा और कठोर दण्ड की धमकी तीसरा। पहले उसने प्रथम अस्त्र का प्रयोग करना उचित समझा। चण्डसेन के बारे में उसने जो कुछ सुन रखा था उससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि चण्डसेन पर अन्तिम दो अस्त्रों का प्रयोग कार्य सिद्ध नहीं कर सकता। पहला अस्त्र अर्थात् मृदु-विनीत भाषा से उसका मन जीतना ही एकमात्र उचित अस्त्र था। आरम्भ में जैसी उनकी प्रतिक्रिया होगी उसे देखकर ही आगे की बात सोची जा सकती है। वस्तुतः उसके मन में चण्डसेन के प्रति श्रद्धा का भाव भी था।

भटार्क ने मृदु-विनीत स्वर में कहा, "आर्य चण्डसेन के उपयुक्त वचन है। मथुरा में प्रवेश करने के पूर्व से ही प्रजावत्सल, धर्मपरायण, गुणियों के कल्पतरु आर्यपाद का नाम सुनता आया हूँ। यह जाँच करके मैंने अच्छी तरह देख लिया था कि अधर्मपरायण शासन आर्यपाद का अपमान करता रहा है, पूज्य-पूजा का व्यतिक्रम कर रहा है और आर्यपाद को मार डालने का षड्यन्त्र करता रहा है। सम्राट् समुद्रगुप्त ऐसे महानुभावों से मित्रता स्थापित करना चाहते हैं। वे पूरी कुमारिका-भूमि में धर्म का राज्य स्थापित करना चाहते हैं। वे किसी राज्य पर अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित करना चाहते। वे अधर्माचरण करनेवाले का उच्छेद और धर्म के अनुकूल आचरण करनेवालों की मैत्री चाहते हैं। आर्यपाद यह कभी न समझें कि वे किसी राजकुल-विशेष के विरुद्ध प्रतिशोध चाहते हैं उनकी इच्छा केवल इतनी है कि इस पुण्यभूमि में धर्मसम्मत विधि-व्यवस्था का प्रभुत्व हो। सोचें आर्य, यह कुमारिका द्वीप (भारतवर्ष) है। तपोनिरता कुमारी पार्वती ने धर्म की रक्षा के लिए ही तो कैलास से कुमारिका अन्तरीप तक जाने का कष्ट उठाया था। उनके पवित्र चरणों से लांछित होने के कारण ही न यह आसमुद्र विस्तीर्ण देश इतना पवित्र हो सका है। उस देश में यदि कोई राजवंशीय पुरुष अनाचार में रत हो जाय, आप जैसे महान् धर्म-परायण साधु पुरुष के विरुद्ध षड्यन्त्र करे तो क्या धर्म की रक्षा हो सकेगी? कौन दण्ड देगा ऐसे मदगर्वित मदान्ध लोगों को? सम्राट् का विजय-

अभिमान ऐसे ही दुर्मद लोगों का नशा उतारने के लिए है। आप जैसे महानुभाव तो सम्राट् के परम मित्र हैं। शत्रु कैसे हो सकते हैं आर्य ? आपसे शत्रुता का भाव रखना तो धर्म के प्रति ही शत्रुता रखना है। नहीं आर्य, आप हमारे शत्रु नहीं हैं, परम मित्र हैं।'

भटार्क की मृदु-विनीत वाणी का कुछ शामक प्रभाव पड़ा। चण्डसेन की कुंचित भृकुटियों का तनाव कम हुआ। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारी बातें तो विनय-मधुर हैं। पर इसका क्या यह अर्थ नहीं होता कि सम्राट् सैन्यबल से विभिन्न राजवंशों का उन्मूलन करके उनको एक शासन के अन्तर्गत लाना चाहते हैं ? मित्रता तो समानों में हो सकती है न ? मेरे जैसा निःसंबल मनुष्य परम शक्तिशाली सम्राट् का कैसे मित्र हो सकता है ?' चतुर भटार्क ने बीच में बात रोक ली, 'हो सकता है आर्य चण्डसेन, हो सकता है। आप असहाय और निःसंबल कैसे हैं ? सम्राट् के सोचने का ढंग वही नहीं है जो इस समय आपके मन में है। सम्राट् उन लोगों को अपना समानधर्मा मानते हैं जिनकी धर्म के प्रति, धर्मसम्मत आचरण के प्रति, इस महान् देश की जनता और भूमि की पवित्रता के प्रति उसी प्रकार की भावना है जिस प्रकार की उनके मन में है। मैंने आपका यश सुना है और सम्राट् को निकट से जानने का अवसर पाया है। मेरा विश्वास है आर्य, कि आप जैसे धर्मप्राण महानुभाव से उनकी मैत्री बहुत उपादेय सिद्ध होगी।'

चण्डसेन ने भटार्क की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, 'तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है सेनापति, पर मथुरा और उज्जयिनी पर अधिकार कर लेने के बाद इस कथन में क्या सार रह जाता है ? एक विजित राजवंश को उच्छिन्न करके उसके किसी सदस्य से मैत्री का अर्थ क्या उसकी स्वाधीनता ले लेना नहीं है ! और परतन्त्र मित्र और दास में अन्तर ही क्या रह जाता है ?' भटार्क ने कहा, 'आर्य, सम्राट् समुद्रगुप्त से मिलने पर ही आपको यह बात स्पष्ट हो जायेगी। सम्राट् अपने को भी धर्म-परतन्त्र मानते हैं और अपने मित्रों को भी। धर्म की प्रभुता के सन्दर्भ में ही वे मैत्री को कल्याणप्रद मानते हैं। वे प्रत्येक धर्मपरायण राजकुल को उतना ही स्वाधीन मानते हैं जितना अपने को। सभी धर्म के बन्धन में हैं। पूर्ण अतन्त्र कोई नहीं है। इस नवीन धर्मनीति का प्रवर्तन करने के कारण ही हम उन्हें अपना नेता मानते हैं। इसी अर्थ में वे सम्राट् हैं। उनका व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है। अब तक जहाँ-जहाँ उनकी सेना गयी है वहाँ-वहाँ यथासम्भव किसी राजवंश का उच्छेद नहीं किया गया। केवल एक शर्त पर सबकी स्वाधीनता लौटा दी गयी है। वह शर्त है धर्म-सम्मत आचरण। आज उत्तरापथ के सभी राजवंश इस पवित्र भूमि में धर्म-सम्मत आचरण के आधार पर उनके मित्र बन गये हैं। इसी को हम धर्म-परतन्त्रता

नहीं। चन्द्रमौलि को कितनी दूर ले जाना पड़ेगा यह भी मालूम नहीं। उन्होंने पहले स्वयं देख लेने का निश्चय किया। टीले की दूसरी ओर उन्हें एक पुराना खंडहर दिखायी दिया। वहाँ जल-पक्षियों को उड़ते देख उन्होंने अनुमान किया कि कोई ताल या सरोवर वहाँ अवश्य होना चाहिए। खंडहर के पास सचमुच ही एक बड़ा-सा पुराना सरोवर था। सीढ़ियाँ टूट गयी थी पर ऐसी अवश्य थी कि पानी तक पहुँचा जा सके। जान पड़ता था इधर कोई आता नहीं। मकान किसी समय निस्सन्देह बड़ा विशाल और भव्य रहा होगा। किसी समृद्धिशाली सेठ ने बनवाया होगा पर अब तो उसकी रग-रग में तृण-गुल्म निकल आये थे। आँगन में कई अयत्नवर्धित वृक्ष अपनी दुर्दम्य जीवनी-शक्ति की घोषणा कर रहे थे। तालाब में जल बहुत स्वच्छ था। उस पर जल-पक्षियों के दल-के-दल उड़ और तैर रहे थे। माढव्य ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी। थोड़ी दूर पर गायों के झुंड दिखे। उन्हें चरानेवाले कुछ लड़के भी दिख गये। माढव्य उनके निकट गये। लड़के दौड़कर उनके पास आये। उनके तन पर कोई वस्त्र नहीं था, केवल कमर में कुछ पत्ते बँधे थे। उन्होंने पूछा कि वे लोग कौन हैं। अपने मित्र की थकान और अचेतावस्था की बात भी बतायी और पूछा कि क्या वे कुछ सहायता कर सकते हैं। लड़कों ने बताया कि वे भिल्ल जाति के हैं। उनका छोटा-सा गाँव बहुत दूर नहीं है और यदि उनकी सेवा वे ले सकें तो सहर्ष तैयार हैं। छोटे-छोटे अशिक्षित बालकों की इस सेवा-वृत्ति को देखकर माढव्य को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पहली बार अनुभव किया कि अशिक्षा के कारण कोई सुसस्कृत होने से वंचित नहीं रह जाता। शिक्षा से जानकारियाँ बढ़ती हैं अवश्य, पर चित्त का संस्कार तो घर और परिवेश के संस्कारों से ही होता है।

माढव्य के अनुरोध पर बच्चे अपनी गायों के साथ टीले के पास पहुँचे। उन्होंने पत्तों के सुन्दर दोने बनाये और उनमें गायों से दुहकर दूध भरा और कहा कि पंडित, अपने साथी को पिला दो और तुम भी पी लो। माढव्य ने चन्द्रमौलि को जगाया, दूध पीने को कहा और स्वयं भी पी लिया। चन्द्रमौलि में अब चेतना आयी। माढव्य ने बालकों को कुछ कार्षापण देना चाहा, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। चन्द्रमौलि को स्वस्थ देखकर बालक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने और भी सेवा करने की इच्छा प्रकट की परन्तु माढव्य ने उनके प्रति कृतज्ञता का भाव दिखाकर क्षमा माँगी। लड़के वहाँ से हटे नहीं। माढव्य ने आश्चर्य के साथ देखा कि कुछ लड़के दोनों में पानी भरकर सरोवर से ले आ रहे हैं। कैसा अद्भुत सेवा-भाव है। माढव्य और चन्द्रमौलि की आँखों में आँसू आ गये। लड़कों से चलने को कहकर चन्द्रमौलि और माढव्य सरोवर-तट पर गये। बालक उनके साथ ही बने रहे। शीतल जल में

अवगाहन करके वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। अब दिन काफी ढल आया था। चन्द्रमौलि ने पुराने खंडहर के एक स्थान पर विचित्र दृश्य देखा। गायें एक-एक करके वहाँ एक शिलाखंड के पास आती, उनके थनों से दो-चार बूँद दूध वहाँ अवश्य गिर जाता। चन्द्रमौलि को लड़कों से यह जानकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि नित्य यही होता है। लड़कों ने यह भी बताया कि यही महाकालनाथ का पुराना स्थान है। यहीं से वे उज्जयिनी मंदिर में ले जाये गये। उन्होंने यह भी कहा कि देवाधिदेव मूल रूप में उन्ही के देवता हैं लेकिन जो लोग शक्तिशाली हैं वे अब उन्हें उन्ही के देवता के मंदिर में जाने नहीं देते। देवाधिदेव उनकी व्यथा समझते हैं। वे स्वयं एक दण्ड के लिए यहाँ आकर भक्तों की सेवा ग्रहण करते हैं। तीसरे पहर वे यहाँ आ जाते हैं और भिल्ल लोगों की सेवा इसी रूप में ग्रहण करते हैं। और किसी समय कोई गाय वहाँ पहुँचती है तो दूध नहीं झरता। आश्चर्य से चन्द्रमौलि को रोमांच हो आया। चिल्लाकर माढव्य को बुलाया, 'दादा, यह देखो महाकाल की लीला!'

जब तक माढव्य वहाँ पहुँचे तब तक चन्द्रमौलि भाव-विह्वल हो गया थे। उसकी आँखों से अश्रुधारा झरने लगी। मुँह से निर्बाध भाव से श्लोक की धारा फूट पडी। ललित छन्दों की निर्बाध वर्षा के फलकड माढव्य भी निश्चेष्ट होने लगे।

उस अद्भुत मोहन स्तव का जब तार टूटा तो माढव्य का शरीर भी बहुत रोमांच-कंटकित हो उठा। उन्होंने स्नेहपूर्वक चन्द्रमौलि के सिर पर हाथ फेरा। थोड़ी स्तुति करते हुए बोले, 'धन्य हो किशोर कवि, ऐसी वाणी का वरदान तो मैंने कभी नहीं देखा। तुम महाकाल के सच्चे भक्त हो।'

चन्द्रमौलि उसी प्रकार भाव-विजड़ित वाणी में बोला, 'भक्त हूँ दादा, भक्त हूँ? मैं महाकाल के अनुचर के रूप में ही अब तक अपने को धन्य मानता हूँ दादा, उन्मत्त भाव से वर्तमान नटराज के प्रत्येक पद-संचार में मैंने छन्द देखा है, उस छन्द के ताल से ताल मिलाने का प्रयास करता रहा हूँ। उनके ललाट देश में द्युतिमान चन्द्रमा के आलोक में देवलोक के नंदन वन में सपनों-भरी आँखों का अलस विलसन देखकर मुग्ध होता आया हूँ। मैंने उनके अंग-अंग से विस्फुरित होनेवाली विराट् छन्दोधारा को प्रत्यक्ष देखा है। देखा है दादा, इस विराम-विहीन छन्दोधारा के स्पन्दन से महाशून्य सिहर उठा है और उसके वस्तुहीन प्रवाह के प्रचण्ड आघात से वस्तु रूपी फेन के शत-शत पुंज रूप ग्रहण करते हैं। देखा है दादा, घनमसृण तिमिर-व्यूह से उज्ज्वल आलोक की तीव्र छटा को विच्छुरित होते देखा है। इस तीव्र प्रकाश में नये-नये रंगों, वर्णों की विचित्र शोभा को प्रस्फुटित होते देखा है। इसी प्रचण्ड गति से उठे हुए घूर्णचक्र में फेनबुद्बुद की भाँति नक्षत्रमण्डलों, ग्रह-उपग्रहों को उठते-मरते, विलीन होते—

हीन होने का विधान तो कहीं नहीं है। सामने तेरा निरीह दादा खड़ा है और तू निर्दय की भाँति उसे छन्दों की मार से अधमरा करता रहा है!'

चन्द्रमौलि उसी प्रकार आविष्ट था। उसके अधरोष्ठों में थोड़ा कुंचन हुआ। ललाट देश में रेखाएँ उभरीं। उसके कंठ में अकारण उत्तेजना के भाव आये। ऐसा जान पड़ा जैसे सामने महाकाल ही दिख गये हों। 'हे महाकाल, अब तक मैंने तुम्हारे चरण-स्पर्श से पुलकित होते पुष्पों का मोहन रूप ही देखा था। रात को जब मेरा चैतन्य किसी अन्ध तिमिर-समुद्र में डूब गया था, मैंने देखा कि तुम्हारा विकट अमंगल ताण्डव विवेक-हीन होकर सब-कुछ को रौंद रहा है। मैंने नरक की आग बरसानेवाले क्रूर ज्वालामुखी को देखा है। मैंने एक ही साथ दो बातें देखीं। मेरा मन क्षोभ और कलुष-भाव से भर गया—एक तरफ देखा, स्पर्द्धित क्रूरता और उन्मत्तता का निर्लज्ज हुंकार सब-कुछ को उजाड़कर, रौंदकर ध्वस्त करने पर तुला है; दूसरी ओर भीरुता और निष्क्रियता का दुविधा-भरा भीरु पद-संचार जो चुपचाप आत्मसमर्पण कर रहा है। इस ओर लज्जा नहीं है तो उस ओर दृप्त जिजीविषा का कोई चिह्न नहीं है। महाकाल के चक्र-नृत्य के चालक देवता, मैं आज क्षुब्ध हूँ। मैं तुमसे न्याय की भीख नहीं माँगता। माँगता हूँ वह वज्र वाणी, वह दृप्त विचार, वह अकुतोभय वीर्य जो दोनों पर कसके आघात कर सके। मैं एक ओर इस नारीघाती, शिशुघाती वीभत्सता का ध्वंस चाहता हूँ, दूसरी ओर उस भीरुता और कायरता का नाश चाहता हूँ जिसने तनकर खड़ा होने की भावना ही समाप्त कर दी है। महाकाल के सिंहासन पर बैठे हुए विचाराधीश, तुम मुझमें शक्ति दो कि इन दोनों प्रकार की कुत्सित वृत्तियों को धिक्कार दे सकूँ। महाकाल के अधिदेवता, आज देवता के साथ छाया की तरह लगे अप देवता देख सका हूँ। प्रौढ़ प्रतापशाली नर-पतियों की अधिकार-लालसा ने और सर्वग्रासी लोभ ने संसार को क्रूर परिहास का केन्द्र बना दिया है। मैं शक्ति चाहता हूँ, इस विकट वीभत्सता को समाप्त कर देनेवाली दृप्त वाणी की। सर्वत्र, हे महाकाल, नाश की आँधी बह रही है। विकट घूर्णचक्र में पड़ा हुआ जगत् त्राहि-त्राहि कर उठा है। शक्ति दो, मैं तुम्हारे पद-संचार की अमृत-लेपिनी शक्ति चाहता हूँ।'

माढव्य सोचने लगे कि इस लड़के का दिमाग तो खराब नहीं हो गया। भिल्ल बालक खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे। उन्होंने माढव्य को बताया कि कुछ चिन्ता न करें। एक दण्ड बीत आया है। अब उनके साथी शान्त हो जायेंगे। भावुक लोग इस अवसर पर यहाँ आने पर प्रायः इसी प्रकार का आचरण करते हैं। चन्द्रमौलि सचमुच शान्त हुआ। माढव्य ने उसके सिर पर हाथ फेरा। प्यार से बोले, 'मित्र चन्द्रमौलि, उठो। आर्य देवरात का भी तो पता लगाना है।' चन्द्रमौलि ने हाथ जोड़कर कहा, 'दादा, थोड़ी देर और यहाँ रह लेने दो।'

माढव्य ने उसे थोड़ी देर और रहने का अवसर दिया। वे अकेले देवरात का पता लगाने चल पड़े। चन्द्रमौलि उसी प्रकार आविष्ट अवस्था में बैठा रहा। भिल्ल बालक कुतूहलपूर्वक ताकते रहे।

माढव्य लौटकर आये तो चन्द्रमौलि को स्वस्थ और प्रसन्न पाया। वे स्वयं म्लान लौटे थे। उन्होंने बताया कि आर्य देवरात का चित्त भी कुछ विकृत-जैसा लगा। वे न जाने किस अदृश्य मायाविनी से बात कर रहे थे और एकाएक मथुरा को चल पड़े। माढव्य की ओर उन्होंने फिरकर ताका भी नहीं, मानो उनके साथ उनका कभी का परिचय ही न हो। चन्द्रमौलि ने सुना तो एकदम खड़ा हो गया। बोला, 'दादा, मुझे भी क्षमा करो। मेरा मन अब यहाँ से भर गया है। इतने दिन तुम्हारे साथ रहकर न जाने किस जन्मान्तर के पुण्य का सुख अनुभव किया। तुम्हारे जैसे उदार सहृदय का स्नेह यों ही नहीं मिल जाता। अवश्य ही हम दोनों पूर्व जन्म के प्रिय सुहृद रहे हैं। एक साथ चलते-चलते सुख और दुःख दोनों अनुभव किये। पर दादा, अब लगता है, रास्ता बदल गया। तुम्हारा रास्ता जिधर जाता है उधर मेरा रास्ता नहीं जाता। विदा होता हूँ दादा, इस अनुज पर तुमने अनेक उपकार किये हैं। पहले से ही पर्याप्त बोझ हो गया है, अब अधिक बढ़ाने से लाभ नहीं। प्रणाम करता हूँ। आशीर्वाद दो कि वाग्देवता की आराधना द्वारा कुछ ऐसी सिद्धि पा सकूँ जो इन नरमास-भक्षी मुक्खड़ गिद्धों की लोलुपता से, संसार की सौन्दर्य-लक्ष्मी की रक्षा कर सकूँ। उज्जयिनी में मैंने बहुत नये अनुभव प्राप्त किये हैं। तुम्हारे सरस साह-चर्य का ही फल है कि आज भी जीवित हूँ।' चन्द्रमौलि ने दादा को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। माढव्य को इस उपहार की प्रत्याशा बिलकुल नहीं थी। वे ऐसे निःशब्द हो गये जैसे किसी ने औषध-बल से उनकी वाक्-शक्ति लुप्त कर दी हो। वे चुपचाप चन्द्रमौलि का जाना देखते रहे।

सत्ताईस

प्रभात होने को आया। कमल-पुष्प के मधु में रँगे पक्षोंवाले वृद्ध कलहंस की भाँति उद्दाम मंथर गति से चन्द्रमा आकाशगंगा के पुलिन से पश्चिम की ओर चला गया। सारा दिग्मण्डल वृद्ध रंकु मृग की रोमराजि के समान पाण्डुर हो उठा। हाथी के रक्त से रँगे सिंह के सटाभार के समान सूर्य की लाल किरणें आसमान में फैलने लगीं, वन-देवियों की अट्टालिकाओं के समान

महावनस्पतियो के शिखरों पर गर्दभ लोम के समान धूसर धुम्रों सटकर सव-
कुछ को धूमिल आभा से आच्छादित कर गया—सर्वत्र थकान, क्लान्ति, अलस
मंथर भाव। आज का प्रभात हुआ पर पक्षियों का कलगान नही सुना गया,
भौंरो की गुंजार जाने कहां विलीन हो गयी, मन्द-मन्द संचारी प्रभाव वायु का
मादक संचार नही दिखायी दिया। आज का प्रभात कुछ विचित्र था। राज-
भवन उदास था, नगर म्रियमाण था, राजपथ शून्य थे, नदी के घाट शब्द-हीन
थे, और तो और, महाकाल मन्दिर का घंटा भी चुप था। धूता रात-भर किसी
अज्ञात आशंका से सांस रोके पडी रही। प्रात.काल उनका चित्त उद्विग्न था।
सारी रात वे चारुदत्त की प्रतीक्षा करती रही पर वे अभी तक लौटे नहीं।
उन्होने यह सोचकर आर्यक की ओर जाना भी उचित नही समझा कि विश्राम
कर रहे होंगे। जब से उन्होंने अपने इस नये देवर को देखा है तब से उन्हें एक
अद्भुत वात्सल्य का अनुभव हो रहा है। कैसा कमनीय मुख है। भुजाएँ जानु
देश तक लम्बमान हैं, वक्ष.स्थल वज्र-कपाट के समान फैला हुआ है, चलने
मे सिंह की ठवनि है। पर बिचारे कितने दुःखी हैं, चेहरा मुरझाया हुआ है,
होंठ सूखे हुए हैं, शरीर पर कही भराव नही दिखायी देता जैसे उदन्त वनस्पति
पर अचानक हेमन्त का पाला पड गया हो। भीतर कही कोई दारुण वेदना है
जो शरीर को झुलसा रही है। सो रहे हैं, सोने दो। जाने कब से निश्चिन्त भाव
से सोने का अवसर नही मिला है। ऐसा अकुतोभय पौरुष और ऐसी दारुण
पीडा!

धूता को आज का दिन बड़ा उदास लग रहा था। न जाने क्या हो गया
है। वे घर छोडकर बाहर आ गयी हैं। आज पहली बार लक्ष्मी-विनायक का
पूजन नहीं हो सकेगा, पंजर-शुकों को दाना नही दिया जा सकेगा, होम की
अग्नि प्रज्वलित नहीं की जा सकेगी, आंगन मे आलिम्पन-उपलेपन नही हो
सकेगा, नैवेद्य पुष्पो की डालियाँ सूनी रह जायँगी, पितरो का तर्पण नही हो
सकेगा, कुलदेवताओ का अर्चन नही हो सकेगा। आज धूता के सारे नित्य कर्म
उपेक्षित होंगे। हे कुलदेवता, यह कैसी विडम्बना है!

इसी समय चारुदत्त आये। सदा की भांति शान्त, स्निग्ध, शोभन। आते
ही उन्होंने क्षमा मांगी—'रात बहुत बुरी बीती है देवि! दुष्टो ने नगर मे
आग लगा दी थी। हमारा घर तो जलकर राख हो गया है। सुना है कुछ
परदेशियो ने लोगों का साहस बढाया है और बडे सुचारु रूप में आग से जूझने
का प्रोत्साहन दिया है। अब आग तो बुझ गयी है पर नगर के कई भाग ध्वस्त
हो गये हैं। राजभवन को बचाने मे रात-भर भाग-दौड करनी पडी। तुम्हें कष्ट
हुआ। पर चिन्ता न करना देवि, गोपाल आर्यक को सुरक्षित रखना हमारा
प्रथम कर्तव्य है। आज तक हमारे घर के किसी अतिथि को इतना कष्ट नहीं

सहना पड़ा । तुम भी क्या कर सकती हो, लेकिन तुम्हें उनकी देख-रेख के लिए छोड़कर मैं थोड़ा निश्चिन्त अवश्य हुआ हूँ ।'

धूता ने दृढ़ कण्ठ से कहा, 'आर्य पुत्र निश्चिन्त रहें। मैं अपने देवर की सेवा में कुछ उठा नही रखूँगी। परन्तु इतना अवश्य कहूँगी कि अपने शरीर का भी थोड़ा ध्यान रखें। कल से ही निराहार है। मैं रात-भर प्रतीक्षा करती रह गयी।'

'मैं अभी स्नान-पूजा से निवृत्त होकर आ रहा हूँ। इस बीच तुम्हारे देवर यदि उठ जायें तो उन्हें भी तैयार रखो और स्वय तो स्नान कर ही लो। अभी कुछ कठिनाइयाँ हैं।'

धूता ने कुछ याद करके पूछा, 'आग किधर लगायी गयी थी? वसन्त-सेना बहन का घर तो सुरक्षित है न?' चारुदत्त वसन्तसेना के बारे में बहुत चिन्तित थे। यह भी पता लगा लिया था कि आग उधर नही फैली है। पर अभी तक उन्हे यह पता नही था कि वसन्तसेना है कहाँ। यथासाध्य वे पता लगाने का प्रयत्न भी कर रहे थे। पर धूता से यह कहने मे वे लजा रहे थे।

'आग तो श्रेष्ठि-चत्वर से ही फैली है। उधर ठीक ही होगा।' धूता कुछ व्याकुल हुई, 'ठीक ही होगा? पता नही लगाया?'

'लग जायेगा। कुछ अच्छे परदेशियो की सहायता से नागरिको ने आग को बहुत फैलने नही दिया। श्रेष्ठि-चत्वर के आस-पास के मकान ही जले है।'

'ये परदेशी लोग कौन थे?'

'कुछ ठीक पता नही चला है। पर उनके नेता का नाम सभी नागरिको की जिह्वा पर है। वे लोग रात-भर 'आर्य देवरात की जय' बोलते रहे। देखा तो बहुत कम लोगो ने उन्हे, पर जय-जयकार सबने किया। कहते हैं, वह कोई देवता ही रहा होगा।'

पास के घर मे गोपाल आर्यक विश्राम कर रहे थे। उन्हें चारुदत्त के अन्तिम वाक्य सुनायी पड़े। वे धड़फड़ाकर उठ बैठे। 'क्या नाम बताया भैया। आर्य देवरात?'

'हाँ मित्र, *यही नाम बता रहे हैं।*' आर्यक उठकर खड़े हो गये, 'आर्य देवरात?'

'हाँ, आर्य देवरात!'

'कहाँ हैं आर्य देवरात? किसने देखा मित्र!'

चारुदत्त को आश्चर्य हुआ कि गोपाल आर्यक कैसे आर्य देवरात को जानते हैं। बोले, 'जानते हो, आर्य देवरात को जानते हो? रुको अभी उनका पता लगाता हूँ। पर वे हैं कौन?'

'आर्य देवरात मेरे कौन हैं? मेरे गुरु हैं भैया, जहाँ कही मिलें, उन्हे यहाँ

ले आओ। कहाँ दिखे ? किसने देखा ? पूरा बताओ भैया, पूरा बताओ।'

'अभी खोजवाता हूँ। पूरा बताता हूँ। जितना जानता हूँ। जितना जानता हूँ उतना बता दिया है। अपनी भाभी से पूछ लो। मैं अभी आया।'

चारुदत्त आर्यक की उत्सुकता बढ़ाकर चले गये। आर्यक ने अनुनय-जड़ित वाणी मे पूछा, 'भाभी, भैया ने आर्य देवरात के बारे मे क्या कहा है ? जल्दी बताओ भाभी।'

भाभी ने स्नेहासिक्त वाणी मे कहा, 'विशेष कुछ तो नही बताया। इतना ही बताया कि वे कोई परदेसी महात्मा हैं। लोग समझ रहे हैं कि कोई देवता ही रहे होगे। सब लोग उनकी जय-जयकार कर रहे हैं। रात उन्होंने नागरिकों की बड़ी सहायता की है। मुझे भी लगता है लल्ला, कि कोई देवता ही होगे। ऐसी विपत्ति के समय देवता ही मनुष्य की सहायता करने आ जाते हैं। देवता ही होगे।'

'देवता तो वे हैं ही भाभी, मनुष्य रूप मे देवता।'

'तुम्हारे गुरु का भी यही नाम है लल्ला ?'

'बिलकुल यही नाम है। पर वह विपत्ति क्या थी भाभी ?'

धूता भाभी एकदम सकपका गयी। यह बात आर्यक को अभी नही बतानी है, ऐसा उनके पति कह गये थे। कुछ सम्हलकर बोली, 'सब बातों का ठीक-ठीक पता नही चला है। वे अब आते होगे। तब तक तुम भी स्नान कर लो। वे आते ही होगे। कह गये हैं कि आर्य देवरात का पता लगाकर तुरन्त ही लौटेंगे। वे अवश्य पता लगायेंगे देवर। उनकी बात अन्यथा नही होती। वे जितना कहते हैं उससे अधिक करते हैं। पता लगाने गये हैं तो पता तो लगा ही लेंगे, हो सकता है कि साथ लेते भी आवें। तब तक तुम तैयार हो जाओ।'

गोपाल आर्यक अब तक गुरु देवरात की ही बात सोच रहा था। भाभी की बातों से जब लगा कि देवरात अभी आ सकते हैं तो याद आया कि देवरात केवल गुरु ही नहीं उसके श्वसुर भी हैं। आते ही मृणाल के बारे में पूछेंगे। और आर्यक की करतूति से वे पहले से ही परिचित होगे, तो उस अभाजन का मुँह भी नहीं देखना चाहेंगे। चाहें भी तो अभागा आर्यक अपना मुँह कैसे दिखा सकेगा ? विषम संकट सिर पर मँडरा रहा है। सबके सामने उसका मुँह काला होगा। फटो धरित्री, लील जाओ इस अभाजन को ! क्षण-भर बाद ही आर्यक के जीवन का सबसे काला पक्ष सारी दुनिया में उजागर हो जायेगा।

भाभी ने आर्यक के चेहरे पर अचानक छा गयी मलिनता को देख लिया। स्नेह के साथ बोली, 'तुम उदास क्यों हो गये लल्ला ?'

उदास ? भाभी को क्या बताये। कैसे समझाये कि गुरु के आगमन से शिष्य का हृदय फटकर क्यों टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ? आर्यक के मुख की विषाद-रेखा

और भी गहरी होती गयी।

भाभी उसकी यह अवस्था देखकर बहुत बुरी तरह डर गयी। 'भाभी से कुछ चूक हो गयी क्या लल्ला? नही मेरे लहुरे देवर, भाभी की बात का बुरा माना जाता है? हाय राम, यह क्या हो गया तुम्हे? अभी उनसे अभिमानपूर्वक कहा है कि देवर को प्रसन्न रखने मे कुछ उठा नही रखूँगी और अभी तुम्हे चोट पहुँचा दी? पैरो पड़ूँ लल्ला, खुश हो जाओ। कुछ भूल-चूक हुई हो तो क्षमा करो। हाय-हाय, तुम्हारा चेहरा कैसा देख रही हूँ!'

गोपाल आर्यक अपने मे ही खो गया था। भाभी की बात से उसकी चेतना लौटी। यत्न और आयास के साथ हँसने का प्रयास करते हुए कहा, 'क्या कह रही हो भाभी, तुम्हारी बातो का कौन पापी बुरा मानेगा? नही भाभी, मैं दूसरी बात सोचने लगा था।'

'क्या सोचने लगे थे। कल भी सोचने लगे थे, आज भी सोचने लगे। अपना कष्ट तुम भाभी को भी नही बता सकते देवर? बोलो, तुम्हे जो कष्ट है वह मुझे बताओ। मेरे सिर की शपथ, मुझसे कुछ छिपाओ मत। जो बात माँ से भी नही कही जा सकती वह भाभी से कही जाती है। तुम अपना कष्ट बताओ। भाभी की छाती टूक-टूक हो जा रही है लल्ला। कह दो ना!'

भाभी ने ऐसे दुलार से आर्यक के सिर पर हाथ फेरा जैसे कोई माँ अपराध से भीत बालक के सिर पर हाथ फेर रही हो। उस करतल मे अमृत की संजीवनी का लेप था। उसके रोम-रोम कृतार्थ हो गये। मातृत्व का ऐसा सुधालेप उसने बरसो बाद अनुभव किया। उसे ऐसा लगा कि भाभी से कुछ भी छिपाना महापाप होगा। पर कहे तो कैसे कहे, क्या करे! लज्जा का दुर्भेद्य आवरण तो भाभी के एक स्पर्श से गलकर बह गया, पर वाणी की जडिमा नही गयी। आर्यक आज पार्वती का स्नेह पा रहा है, गगा का पावन स्पर्श पा रहा है, अरुंधती का वरदान पा रहा है, पर वाग्देवी रुष्ट हो गयी हैं, वचन-रचना की चातुरी जवाब दे गयी है, वह निर्वाक्-निःस्पन्द होकर इस अपूर्व मातृत्व से आप्लावित होता रहा। चन्द्रा ने भी एक बार उसे उदास देखकर इसी प्रकार दुलारा था पर उस समय वाग्देवी चंचल हो उठी थी। आज वे निश्चेष्ट हैं। आर्यक की आँखो से अश्रुधारा झरने लगी। भाभी के चरणो मे उसने अपना सिर रखा। फिर सायास वाणी मे बोला, 'सत्र कहता हूँ भाभी, पर एक काम करो। कुछ ऐसा उपाय करो कि आर्य देवरात एकदम यहाँ न आ जायँ। वे मेरे परम पूज्य गुरु ही नही हैं, श्वसुर भी हैं। मेरी कहानी सुन लो। यदि उन्हे समझा सको तो समझा दो। मैं कुछ कह नही सकूँगा भाभी। पर उन्हे सामने देखकर मेरी हृदय-गति अवश्य बन्द हो जायगी, मेरे मस्तिष्क की नसें अवश्य फट जायँगी, मेरा सारा अस्तित्व कच्चे मिट्टी के घडे की तरह टुकड़े-टुकड़े हो

जायेगा। भाभी, मैं उनको मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ।' आर्यक ने एक बार फिर अपना ललाट भाभी के कोमल कमनीय चरणों पर पटक दिया।

भाभी ने फिर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा—'उठो लल्ला, यह मैं कर लूँगी। थोड़ा शान्त हो जाओ। भाभी तुम्हारा उपचार जानती है!'

'मेरा उपचार कुछ नहीं है भाभी।'

'है, है। उठो भी तो।'

भाभी ने और भी सहानुभूति-भरे स्वर में रहस्य-भरी मुसकान के साथ कहा, 'उठो लल्ला, पहले मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाओ। भोले देवरों के सारे मानसिक कष्टों का उपचार भाभियाँ ही जानती हैं। भाभियाँ जादू भी तो जानती हैं लल्ला।'

आर्यक अवाक्। जादू ही तो देख रहा हूँ। ऐसी शामक हँसी जादू नहीं तो क्या है? भाभियाँ मोहन मंत्र जानती होंगी।

आर्यक ने भाभी से कुछ भी नहीं छिपाया। सब ज्यों-का-त्यों कह गया। भाभी इस प्रकार सुनती रहीं जैसे पुरानी सुनी हुई कहानी नये सिरे से सुन रही हों। बीच-बीच में वे परिहास करने में भी नहीं चूकीं। जब आर्यक ने कहा कि विवाह के बाद भी चन्द्रा उन्हें अटपटे पत्र लिखती रही और आर्यक ने उन पत्रों को मृणाल को दे दिया तो भाभी ने गम्भीर भाव से पूछा कि वे पत्र मृणाल तक पहुँचने के पहले हथेली के पसीनों से भीग तो नहीं गये थे। आर्यक को इस प्रश्न से आश्चर्य हुआ। भोलेपन से कह गया, 'ऐसा तो नहीं हुआ।' भाभी ठठाकर हँस पड़ीं। बोलीं, 'हुआ होगा भोलानाथ! जरा ठीक से याद करके कहो।' भाभी की हँसी से आर्यक की समझ में आया कि भाभी परिहास कर रही हैं। पोथियों में लिखे हुए सात्विक स्वेद की बात कह रही हैं। लज्जित होकर कहा, 'भाभी, क्रूर परिहास कर रही हो।' भाभी ने गंभीर होकर कहा, 'देवर से किया हुआ परिहास क्रूर नहीं होता लल्ला। भाभी को उपचार की बात भी तो सोचनी पड़ती है।' और भी प्रसंगों पर भाभी ने परिहास किया जिससे आर्यक की पपनियाँ ऐसी गिरीं जैसे गोंद से चिपका दी गयी हों। उन्होंने सरस स्मित के साथ पूछा कि 'चन्द्रा को तुमने कभी प्यार किया ही नहीं लल्ला?' तो ऐसी ही अवस्था हो गयी थी।

उपसहार करते हुए आर्यक ने कहा, 'तुम्हीं बताओ भाभी, मैं मृणाल को कैसे मुँह दिखाऊँ, आर्य देवरात को मुँह कैसे दिखाऊँ, भैया जानेंगे तो क्या मुझे क्षमा करेंगे?'

भाभी ने हँसते हुए कहा, 'देवर, अब तुमसे कैसे झगड़ा करूँ। अगर तुम मेरे देवर न होकर ननद होते तो झगड़ भी लेती। विधाता ने गुण तो सब ननद के दिये है, बना दिया है देवर!'

ननद के गुण ? आर्यक का सिर चकरा गया। क्या अभी तक उसने जो कुछ कहा है उससे भाभी ने यही समझा कि उसमें पुरुषोचित गुण है ही नहीं ? जो कुछ है वह केवल स्त्री जनोचित है ? भाभी कहना क्या चाहती है ?

भाभी के अधरों पर मन्द स्मित ज्यों-का-त्यों सटा रह गया था। आर्यक की समझ में नहीं आता था कि भाभी के मन में क्या है। क्या वे उसे दयनीय जीव समझ रही हैं ?

भाभी ने कहा, 'सुनो देवर, मेरी बात पर तुम विश्वास करोगे या नहीं, नहीं जानती, पर ये बातें अस्पष्ट रूप में मुझे मालूम थीं। कैसे मालूम थीं ? बताती हूँ।

'तुम स्वप्न में विश्वास करते हो ? नहीं करते ? सब स्वप्न विश्वास करने योग्य होते भी नहीं। अधिकतर स्वप्नों में मनुष्य अपनी ही दबायी वासनाओं की काल्पनिक तृप्ति पाता रहता है। वे मायालोक में हमारी अतृप्त आकांक्षाओं को साकार रूप देते हैं। पर सच पूछो तो वे ही क्षणिक मायालोक नहीं है। यह सारा संसार ही क्षणिक माया लोक है। है यह भी स्वप्न ही। इस पर विश्वास करना और स्वप्न पर विश्वास न करना दोनों निरर्थक हैं। विश्वास करो तो दोनों पर करो, नहीं तो किसी पर न करो। जैसे इस दुनिया में बहुत-कुछ झूठा भ्रम है और बहुत-कुछ सत्य प्रतीति है वैसे ही स्वप्न में भी होता है। पिछली शिवरात्रि को तुम्हारे भैया बहुत उदास होकर लौटे। मैंने दुःख का कारण जानना चाहा, नहीं जान सकी। फिर मैंने भवानी की आराधना की। इनको उदास देखती तो छाती फटने को आती। मन्दिर पास ही है। नित्य भवानी से प्रार्थना करती कि इन्हें प्रसन्न बनाओ। इनका सब दुःख मेरे ऊपर डाल दो। तीन दिन बाद एक विचित्र बात हुई। इन्हें और बच्चे को खिला-पिलाकर मैं शयन-कक्ष में आयी। ये बच्चे को गोद में लेकर सो गये थे। देखा, स्वप्न में भी वैसी ही उदासी थी। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता था। मैं मन-ही-मन भवानी का ध्यान करते-करते सो गयी। दिया बुझाया था नहीं, मुझे याद नहीं है। मैं सोई भी कहाँ थी ? पर एकाएक दिव्य प्रकाश से घर जगमग-जगमग हो गया। ऐसा लगा, कोई दिव्य ज्योति उतर रही है। धीरे-धीरे उस ज्योति ने मनुष्य का आकार ग्रहण किया। दिव्य नारी-मूर्ति। गोरी-छरहरी काया, मानो ज्योति-रेखाओं से ही बनी थी। ज्योतिर्मय ललाट से चन्द्रमा के समान स्निग्ध ज्योति झर रही थी और मुखमण्डल का तो क्या कहना ! वैसा ललित-मोहन रूप तो मैंने कभी देखा नहीं। मैंने समझा, साक्षात् भवानी आ गयी हैं। मैं घबड़ाकर उठी और उनके चरणों पर गिर पड़ी। यह स्वप्न नहीं था। अब भी उस ज्योतिर्मय रूप की स्मृति से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। स्वप्न तो इसलिए समझना पड़ा कि वहीं सोये हुए इनको और बच्चे

को कुछ भी आभास नहीं मिला। पर मेरा रोम-रोम कहता है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा है। देखा है, अतुलित ज्योति-राशि, उमडते सौन्दर्य का पारावार, थिरकते छन्दों का विद्घन वपु, अमृतोपम वाणी का सतत प्रवहमान निर्झर! अंग-अंग पर शोभा निछावर हो रही थी। क्या रूप था देवर, आहा! उस पर तरुण अरुण किरणों से होड करनेवाला कौशेय वस्त्र—वासं वासना तरुणार्करागम्। तपोनिरता पार्वती ही तो ऐसी थी।

'मैं ससम्भ्रम उठ पडी। मेरे मुख से केवल इतना ही निकला—माता भवानी के चरणों में धूता का अशेष प्रणाम। आज मेरा जन्म-जन्म कृतार्थ है माता!' उन्होंने मुझे रोका—'नहीं बेटी, तू भूल कर रही है। भवानी तो मेरी माता हैं। मैं उनकी पुत्री मंजुलोमा हूँ। क्या बताऊँ लल्ला, वह वाणी थी या अमृत की धारा थी। मेरा सारा अस्तित्व ही उस सुधाधारा में बह गया। मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर रही थी कि मेरी सारी सत्ता बही जा रही है!'

आर्यक कुछ अभिभूत की भाँति सुन रहा था। एकाएक चौंका, 'क्या नाम कहा भाभी, मंजुलोमा? आश्चर्य है।'

'हाँ, देवर मंजुलोमा। क्या संगीत है इस नाम में! चकित मृगी जैसे वंशीनाद से विवश हो जाती है, उसी प्रकार विवश हो गयी थी मैं इस नाम के श्रवण-मात्र से।'

आर्यक को लगा कि भाभी रूप-महिमा के बाद अब इस नाम-महिमा का बखान आरम्भ करेंगी। अधीर भाव से कहा, 'आगे क्या हुआ भाभी, जल्दी बताओ। ऐसा न हो कि बात समाप्त भी न हो और आर्य देवरात आ जायें।'

'हा, बताती हूँ। मैं उन्हें माताजी कहने लगी। वे मुझे प्यार से बेटी कहने लगीं। देर तक बात हुई। सब तुम्हारे मतलब की नहीं है। जितने से तुम्हारा सम्बन्ध है उतना ही बताती हूँ।'

आर्यक ने चुहल की, 'भैया वाली बात नहीं बताओगी? मैं जानता हूँ। तुम जितने का अधिकारी मुझे समझती हो उससे अधिक का अधिकारी माताजी मानती हैं!'

भाभी के मुख पर हल्की लालिमा आ गयी। ऊपर से ही भोले दिखते हो, पेट में लम्बी दाढ़ी छिपा रखी है! भैया वाली बात क्या जानते हो?'

आर्यक ने हँसकर कहा, 'भाभी, कुछ तुम जानती हो, कुछ तुम्हारा देवर भी जानता है।'

'तो पहले तुम्हीं बताओ।'

'अर्थात् देवरात के क्रोध में जल मरो।'

'नहीं-नहीं, कोई क्रोध नहीं करेगा। तुम कुछ नहीं जानते, सुनो तो।'

'सुनाओ भी।'

'माताजी ने विचित्र-विचित्र बातें बतायीं। उस समय मैं उनकी बात ठीक-ठीक समझ नहीं सकी। तुम्हारी कहानी सुनने के बाद अब कुछ समझ पाई हूँ। पूरी-पूरी तरह तो अब भी नहीं समझ पाती। जाने दो देवर, तुम्हें देखते ही क्यों पहचान गयी? माताजी ने तुम्हारे बारे में जैसा-कुछ बताया था, वैसा ही तुम्हें पाया गया। कह रही थीं, तुमसे कई बार बात करने का प्रयत्न किया पर तुम उन्हें देख ही नहीं सके। वे बहुत व्याकुल थीं। कहती थीं, उन्हें सब नहीं देख सकते। वे केवल भाव रूप हैं—भाव-मात्र। मन में कुछ वासनाएँ रह गयी थीं, उन्हीं के कारण सम्पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो पातीं। वे वासनाएँ सूक्ष्म लिंग शरीर में टिकती हैं। जो उन्हें कभी याद नहीं करता उसके सामने लिंग शरीर प्रत्यक्ष नहीं हो पाता। वे मृणाल के सामने भी गयी थीं पर वह उन्हें बिल्कुल नहीं देख पायी। बड़े आयास के बाद वे तुम्हें दिख पायी थीं। उन्हें उज्जयिनी में कुछ आभास मिल गया था कि तुम्हारे और इनके बारे में कुछ षड्यन्त्र चल रहा है। वे तुम्हें तो किसी प्रकार दिख गयीं, हालांकि अपनी पूरी दृष्टि-शक्ति को तुम्हारे भीतर प्रत्यारोप करना पड़ा। जब वह प्रत्यारोप खिंच गया तो तुम उन्हें देख नहीं पाये। मुझसे वह कई बार मिलीं। कहती थीं कि एक तू ही मुझे देख पाती है। इनसे भी एक बार मिलीं पर अधिक देर तक ये उनकी ओर देख नहीं पाये। जाने क्या बात है लल्ला, कि मैं उन्हें प्रायः देख लेती हूँ पर तुम लोग नहीं देख पाते। हाँ, तो उस दिन माताजी ने कहा कि देख बेटी, आर्यक आया है। उस पर कुछ संकट आने की आशंका है। कल जैसे भी होगा उसे तेरे पास भेजूंगी। इन दोनों को लेकर तुम तुरन्त घर छोड़ देना और किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर जाना। मैंने कहा कि मेरी बात पर ये कैसे विश्वास करेंगे तो बोलीं, मैं कह दूंगी। कल प्रातःकाल इन्हें भी दिख गयीं। कह भी दिया पर बहुत थोड़ी देर ही इनसे बात हुई। कहती थीं, इनमें भी दृष्टि-प्रत्यारोप करना पड़ा। ये जब बता रहे थे कि माताजी की पलकें स्थिर थीं तो मैं उसका रहस्य समझ गयी। उस दिन माताजी ने बहुत सारी बातें कहीं, पर सब समझ नहीं सकी। आज थोड़ा-थोड़ा समझ पा रही हूँ।'

आर्यक के भी बहुत-कुछ समझ में आ रहा था। पर वह भाभी के मुँह से अधिक सुनना चाहता था। भाभी माताजी के बारे में अधिक बता रही थीं, उनके सन्देशों के बारे में एकदम मौन थीं। आर्यक को वही आवश्यक जान पड़ता था। अनुनय के साथ भाभी से सन्देश कहने की प्रार्थना करने पर भाभी ने चुहल की, 'सुना रही हूँ लल्ला, भाभी का मुँह मीठा करना पड़ता है तब मीठी बात सुनने की आशा लगायी जाती है!' आर्यक ने कहा, 'भाभी तुम

पहले सन्देशा कहो। वह मीठा है कि खट्टा यह तो देवर समझेगा।' भाभी ने कहा, 'बड़े समझदार बननेवाले लालाजी, भाभी जिसे मीठा कहती है, वह मीठा ही होता है! इतना भी नहीं समझते!'

भाभी ने उपसंहार करते हुए कहा, 'चन्द्रा और मृणाल प्रेमपूर्वक साथ रहती हैं। दोनों तुम्हारा पता लगाने को व्याकुल हैं। माताजी ने कहा है कि आर्यक को समझा देना कि चन्द्रा और मृणाल में न कोई झगड़ा है, न कभी होने की आशंका है। आर्यक घर जाये। सुनो लल्ला, तुम्हारी भाभी ने माताजी से पूछा भी था कि ऐसा वे कैसे सोचती हैं? दो सौतें भविष्य में भी नहीं लड़ेंगी, यह कैसे हो सकता है? माताजी ने कहा, बेटी, स्त्री एक ही जाति या श्रेणी की नहीं होती। चन्द्रा की जिस उद्दाम यौवन-लालसा से आर्यक घबरा गया है वह उसका आरम्भिक रूप है। वह उतने ही प्रबल वात्सल्य-भाव का केवल पूर्व रूप था। चन्द्रा को उस वात्सल्य का आश्रय मृणाल के रूप में मिल गया है। वह सिर से पैर तक मातृत्व के उज्ज्वल आलोक से दीप्त शिखा की तरह ऊर्ध्वमुखी हो गयी है। चन्द्रा का प्रेम अप्रतिम है। अग्निशिखा की तीव्र आँच को देखकर उसकी पवित्रता पर शंका नहीं करनी चाहिए। आर्यक से कह दे कि चन्द्रा ने उसके प्रेम के लिए जो त्याग किया है वह संसार की शायद ही कोई कुलांगना कर सकी हो। वह अश्रद्धेय नहीं, नमस्य है। भाभी ने थोड़ा रुककर दूसरी ओर देखा। फिर आँखें नीची किये हुए ही बोली, 'माताजी की एक बात समझ में नहीं आयी। वे उच्छ्वसित भाव से कह रही थी, गणिका होकर भी जो साहस मंजुला नहीं कर सकी वह साहस कुलांगना होकर चन्द्रा कर बैठी। इस उद्दाम प्रेम का निदर्शन खोजना कठिन है। उसके प्रेम में पाने का नहीं, लुटाने का वेग है।'

भाभी ने माताजी का सन्देश सुनाने के बाद इतना और जोड़ दिया, 'उस दिन मैं समझ नहीं पायी थी कि चन्द्रा कौन है और उसने कौन-सा त्याग किया है। अब मैं समझ सकती हूँ। मेरे प्रिय लल्ला, तुम्हारी कोई समस्या ही नहीं है। तुम बेकार परेशान हो। उठो, मैं आर्य देवरात को समझा लूँगी। तुम चिन्ता छोड़ो।'

इसी समय आर्य चारुदत्त ने आकर खबर दी कि आर्य देवरात आये तो हैं पर उन्हें खोजा नहीं जा सका। पर इससे अधिक उल्लास के साथ उन्होंने बताया कि बड़े भैया श्यामरूप, जो यहाँ महामल्ल गोपालक नाम से विख्यात हैं, आज के विकट युद्ध में हमारे पक्ष का नेतृत्व कर रहे हैं। वे विजयी सेनापति के रूप में राजभवन तक आ गये थे पर बीच में एक आवश्यक कार्य से अन्यत्र गये हैं। वे शीघ्र ही लौट आयेंगे। आर्यक ने सुना तो एकाएक उल्लास के आवेग में चिल्ला उठा, 'मेरे भैया श्यामरूप! सच कहते हो आर्य, श्यामरूप!

मुझे उनके पास ले चलो मित्र।' चारुदत्त ने कहा, 'अभी नहीं, आज तो राजा को इस विशाल भवन के इसी सँकरे कक्ष में बन्दी बनकर रहना है! श्यामरूप अभी ही आयेंगे।'

अट्ठाईस

मथुरा नगरी निकट आ गयी थी। मल्लाहों ने बताया था कि एक दिन की यात्रा ही शेष है। वटेश्वर तीर्थ आ गया था। मृणाल के अनुरोध पर बाबा ने नाव रोकवा दी। उद्देश्य था वटेश्वर महादेव का दर्शन और पूजन। वैशाख की प्रचण्ड धूप और लू के कारण रात में ही यात्रा सुगम होती थी। मध्याह्न का समय यथासम्भव छायादार वृक्षों के नीचे बिताया जाता था परन्तु मृणाल प्रायः नाव में ही रहती थी। सुमेर बाबा और चन्द्रा बाहर निकलकर आवश्यक कार्य कर लिया करते थे। परन्तु वटेश्वर तीर्थ की महिमा दूर-दूर तक फैली हुई थी। दूर-दूर से यात्री आते थे और इस सिद्धिदाता महादेव के दर्शन से अपनी-अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति की आशा रखते थे। मृणाल ने भी वटेश्वर महादेव की महिमा सुन रखी थी। इस महिमामय देवता के चरणों में अपनी मनोव्यथा वह निवेदन करना चाहती थी। बाबा ने सोत्साह उसके निश्चय का समर्थन किया। नाव रोक दी गयी। सूर्योदय होने ही वाला था।

दूसरी नाव भी रुक गयी। इसमें साधारण नागरिक वेश में पुरञ्जय के ऐसे विश्वस्त सैनिक थे जो किसी समय आर्यक के अनुचर रह चुके थे और सहस्र वीर की सेना में काम कर चुके थे। अब तक बाबा ने समझ लिया था कि अपनी नाव के साथ इस दूसरी नाव में कौन लोग हैं। परन्तु ऊपर-ऊपर से वे अनजान ही बने रहे। मृणाल और चन्द्रा को भी उन्होंने कुछ बताया नहीं। मृणालमंजरी स्नानादि से निवृत्त होकर चन्द्रा के साथ महादेव के मन्दिर को चली तो सैनिक भी चुपचाप उतरकर मन्दिर के चारों ओर बिखर गये। बाबा मृणाल और चन्द्रा के पीछे मन्दिर की ओर चले।

एक विशाल वट वृक्ष की छाया में यह मन्दिर था। मन्दिर आकार में बहुत बड़ा नहीं था पर उसकी सुन्दरता मन मोह लेती थी। वृक्ष काफी पुराना होगा। उसके प्ररोह दूर-दूर तक फैले हुए थे और स्वतन्त्र वृक्षों के रूप धारण कर चुके थे। मन्दिर जब बना होगा उस समय यह वृक्ष इतना फैला हुआ नहीं रहा होगा क्योंकि शिखर के समानान्तर प्ररोह ऊपर लटक आये थे जिन्हें

किसी चिराकांक्षित देवी का दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया है। मृणाल वैसे ही बैठी रही। काका दूर से देख रहे थे। उन्हें युवक की हरकत पर क्रोध आया। डपटकर बोले, 'युवक, मन्दिर के बाहर आओ। वहाँ क्या कर रहे हो?'

युवक अकचकाया। बाहर निकलकर काका से बोला, 'मुझसे पूछ रहे हैं तात? महादेव के सामने उनकी अनुग्रहेच्छा को देखकर आज मैंने जीवन को कृतार्थ समझा है। प्रणम्य को प्रणाम न करने से पूज्य-पूजा का व्यतिक्रम होता है तात, मैंने कुछ अनुचित किया है?' काका युवक के भोलेपन से प्रभावित हुए। बोले, 'तुम्हें देखकर लगता है कि तुम्हारा जन्म किसी कुलीन वंश मे हुआ है, तुम्हारे मुख पर प्रताप के चिह्न हैं पर किसी कुलवधू को पूजा के समय विव्रत करना क्या कुलीन-जनोचित कार्य है?' युवक ने जैसे अपना दोष समझा—'क्षमा करो तात, ये तो साधारण कुलवधू नही जान पड़ती, जिस कुल की ये वधू होगी वह निश्चय ही देवताओं का कुल होगा। मैंने इनका दर्शन पाकर अपना जन्म कृतार्थ माना है। विश्वास करो तात, मुझे ये पार्वती की प्रतिमूर्ति लगती हैं। ऐसा लगता है कि विधाता ने भक्ति को गलाकर, सतीत्व का मिश्रण करके, गंगा की धारा से तरल करके, ललिता देवी के साँचे मे ही इन्हे सिरजा है। मेरा प्रणाम इसी दिव्य रूप को निवेदित हुआ है। मुझसे कोई दोष हुआ हो तो क्षमा करो तात, साक्षात् पार्वती को प्रणाम किये बिना कैसे रहा जा सकता था? परन्तु आप क्या इन्हे जानते हैं, ये कौन हैं? किस पवित्र कुल मे इनका जन्म हुआ है, हिमालय और मैना के समान किन बड़भागी पिता-माता का वात्सल्य इन्हे प्राप्त हुआ है? आप क्या कुछ जानते हैं तात!'

सुमेर काका इस सरल, सुन्दर युवक के प्रश्नो का उत्तर दे या न दें, कुछ निश्चय नही कर सके। केवल इतना ही कहा कि 'सुनो आयुष्मान्, मैं इन्हे जानता हूँ पर तुम्हारी मनोभावना का आदर करते हुए भी तुम्हे सावधान करना चाहता हूँ कि तुम्हारे जैसे शिष्ट कुलीन युवक को पर-स्त्रियो के बारे मे ऐसे प्रश्न नही करना चाहिए। यह सब प्रकार से अनुचित है।' युवक का चेहरा बुझ गया—'क्षमा करें तात, दोष हो गया। पर मैं कोई लम्पट युवक नही हूँ। आपका अनुमान ठीक है। मैं कुलीन वंश मे ही उत्पन्न हुआ हूँ। आज तक मैंने किसी कुल-ललना की ओर कुदृष्टि से नही देखा है। मैंने इस महीयसी बाला को कुलवधू से बहुत ऊपर की देवी समझकर ही प्रणाम किया है। सुनो तात, मैं नितान्त अकर्मण्य नही हूँ। सहस्रो कुलवधुओं की मान-रक्षा के लिए मैं व्याकुल हूँ। इन भुजाओं की ओर देखो तात, ये अगर कुलवधुओं की मान-रक्षा नही कर सकी तो मे इन्हे वृथा उच्छून मासखण्ड ही समझूँगा। मैंने श्रद्धाजनित कुतूहल के कारण पूछा है, किसी प्रकार की पाप-भावना से चालित होकर ऐसा नही किया। अच्छा तात, मैं चलता हूँ मेरे अविनय को क्षमा करें।'

कहकर युवक उदास भाव से चल पड़ा। उसने पीछे फिरकर देखा भी नही। सुमेर काका इस युवक के श्रद्धापूर्ण वचनों से ऐसे प्रभावित हुए कि प्यार से उसे सम्बोधन करते हुए बोले, "रुको आयुष्मान, तुम्हें बुरा लग गया? कौन नहीं जानता कि सुमेर काका गँवार है, उसे बोलने का ढंग नही मालूम। तुम सचमुच बहुत कुलीन लगते हो। हलद्वीप मे सुमेर काका की बात का कोई बुरा नही मानता। बच्चा-बच्चा उसके गँवारपन का जानकार है। बुरा न मानो चिरंजीव, हम लोग हलद्वीप से आये हैं, यह मेरी बेटी है। मुझे लोग सुमेर काका कहते हैं; बेटे का भी काका, बाप का भी काका, बहू का भी काका, सास का भी काका, तुम भी मुझे काका कह सकते हो। मुझे तुम्हारी सच्चाई और विनयशीलता अच्छी लगी है।'

सरल प्रकृति के सुमेर काका सब कुछ कह गये। युवक प्रसन्न हुआ। 'तो काका, आप लोग हलद्वीप के निवासी हैं। वही हलद्वीप जहाँ के राजा गोपाल आर्यक हैं? आप गोपाल आर्यक को तो जानते होंगे।' सुमेर काका प्रसन्न भाव से बोले, 'गोपाल आर्यक को तो मैंने गोद में खेलाया है आयुष्मान्। तुम उसे कैसे जानते हो?'

'वाह काकाजी, आपने भी खूब पूछा। इस भारतभूमि मे ऐसा कौन है जो गोपाल आर्यक को नही जानता। उसी महावीर के प्रचण्ड भुजदण्डों का प्रताप है कि सम्राट् समुद्रगुप्त आज आसमुद्र पृथ्वी की विजय का स्वप्न देखता है। आपने ऐसे महावीर को गोद में खेलाया है, आप नमस्य हैं।'

बात कहनेवाला सम्राट् को अब तक नही मिला होगा।' वह प्रसन्नता से खिल गयी। 'काका, तुम्हारी सारी बातें सुनकर मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि वे सम्राट् ही थे।' कहकर चन्द्रा किसी पुरानी स्मृति मे थोडी देर के लिए खो गयी। कुछ स्मरण करके हँसती हुई बोली, 'जानते हो काका, सम्राट् मुझसे क्यों अप्रसन्न है ? भेद जानने की अपनी इसी आदत के कारण।' फिर अपने मे आप ही डूबती-उतराती-सी कहने लगी, 'जब आर्यक सम्राट् के आदेश पर सेनापति बनकर दिग्विजय के लिए चला गया तो सम्राट् ने एक दिन मुझे बुलाया और अत्यन्त सहानुभूति दिखाते हुए कहा कि देखो चन्द्रा रानी, मैं तुमसे एक बात जानना चाहता हूँ। जब आर्यक जाने लगे तो मैंने उनसे कहा कि बन्धु, तुम्हारी सुन्दरी पत्नी को वियोग का दुःख दे रहा हूँ परन्तु मुझे आशा है कि तुम शीघ्र ही दिग्विजयी होकर लौट आओगे और उस समय उन्हे जो सुख मिलेगा, उससे सारी वियोग-वेदना बहुत सुखद लगने लगेगी। मित्रो मे इस प्रकार का परिहास होता ही रहता है पर आर्यक का चेहरा उतर गया, आँखो मे आँसू छलक आये। भरे गले से केवल इतना ही कहा कि मेरा जन्म पत्नी को वियोग की ज्वाला मे जलाने के लिए ही हुआ है। मैं ठीक समझ नही सका कि वे क्या करना चाहते थे ? वे क्या तुम्हारे साथ रहकर भी तुम्हें वियोग का दुःख देते हैं ? मैंने सम्राट् से साफ कर दिया कि आर्यक की शास्त्रविधि से विवाहिता पत्नी हलद्वीप मे सचमुच वियोग-ज्वाला से जल रही है। मै आर्यक को उसके पास ले जाना चाहती हूँ। मैं भी उसकी पत्नी हूँ पर जिसे आप शास्त्रविधि समझते हैं उस विधि से मैं विवाहिता नही हूँ। आर्यक मेरा मनोवृत पति है। सम्राट् ने आँखें चढा ली। उन्होंने क्रुद्ध भाव से कहा—तुम्हारी जैसी निर्लज्ज महिला मैंने आज तक नही देखी। तुम मेरे सामने से हट जाओ। मैंने भी छोडा नही। कहा—मैं पतिव्रता हूँ, तुम्हारे जैसे सम्राट् भी मुझे उस व्रत से हटा नही सकते। मैं कुंचित भृकुटियों की उपेक्षा करना जानती हूँ।' और सम्राट् को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर चली आयी। सम्राट् क्रुद्ध दृष्टि से ताकते रह गये। पर काका, उस समय मैंने अनावश्यक औद्धत्य दिखाया था।

'उस दिन मैंने ऐसा औद्धत्य न दिखाया होता तो आज बिचारे आर्यक को भटकना नही पडता और मेरी इस बहन को इतना कष्ट न होता। दुर्मुख होना भी पाप ही है।'

जब मृणालमंजरी का ध्यान टूटा तो दिन बहुत चढ आया था। वह अलस मंथर गति से प्रदक्षिणा करके मंदिर से बाहर आयी। उसकी आँखो मे विचित्र कुतूहल का भाव था। जैसे किसी अपरिचित जगत् मे लौट आयी हो। शोमन दौडकर उससे लिपट गया। चन्द्रा ने उसे सहारा दिया। नाव मे बैठते ही प्रसन्न भाव से उसने कहा, 'मैना, आज तेरी तपस्या सफल हुई। सम्राट् स्वय

आकर सिरदा दे गया है !' मृणाल कुछ समझ नहीं सकी। अभी भी वह किसी दिव्य लोक की चकाचौंध से अभिभूत लग रही थी। बोली, 'दीदी, आज सच-मुच मुझे बहुत मिला है। जानती हो दीदी, मुझे भगवान् शंकर के दर्शन हुए। एक साथ सहस्रों बिजलियों के कौंधने से जैसा प्रकाश होता है वैसा प्रकाश मैंने देखा है। उसी दिव्य ज्योति में मैंने कर्पूर और सिंदूर को समाविष्ट देखा। अपूर्व शोभा थी दीदी, अपूर्व। कैसे बताऊँ कि क्या देखा—बरसने से पहले घनघुम्मर घटा में जो आशा-प्रचारिणी श्यामल शोभा दिखायी देती है, निस्तरंग विशाल अंबुराशि में जो भीषण-मनोहर अचंचल निस्पन्दता दिखायी देती है और ऊर्ध्व-गामिनी शान्त-अकम्पित दीप-शिखा में अन्धकार-विमर्दिनी साहस-दायिनी जो स्थिरता होती है, इन सबको एक साथ मिला देने पर जो अक्षोभ्य शान्ति बनेगी, कुछ-कुछ वैसा ही। ऐसा जान पड़ा कि शान्ति सहस्रधार होकर मेरे ऊपर बरस रही है। तुम विश्वास करो दीदी, मैंने आज अक्षोभ्य मूर्ति देखी है। मन्दिर के सम्पूर्ण गर्भगृह में श्यामल प्रकाश जगर-मगर कर रहा था। इतना प्रकाश था मगर आँखें जरा भी चौंधियायीं नहीं। क्या वह चन्द्रमौलि महादेव के सिर-स्थित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना थी या वही अन्तराल-विहारिणी पार्वती की मंदस्मित का आलोक था? और इसी अद्भुत शोभा में धीरे-धीरे प्रकाश को सिमटते देखा। किस प्रकार वह प्रकाश सिमटते-सिमटते एक आलोक-विग्रह के रूप में प्रकट हुआ, वह मैं तुम्हें नहीं बता सकती। सच मानो दीदी, वे ही थे। बिल्कुल वे ही। क्लान्त नहीं थे, पर बुरी तरह चिन्तित थे। उनका तेज वैसा ही था पर शरीर सूखकर ऐसा दिखायी दे रहा था जैसे पत्तों के झड़ जाने पर कोई महा-वनस्पति हो। दुखी तो नहीं लगे पर चिन्ताकातर अवश्य लगते थे। जानती हो दीदी, मैंने क्या सुना? कह रहे थे, 'चिन्ता न करो मैना, मैं आ रहा हूँ। तुम्हारी चन्द्रा दीदी के पैरों पड़कर क्षमा माँगूँगा। तुम उनसे कहना कि वे क्षमा कर दें।'

चन्द्रा की आँखें आकर्ण विस्फारित हो गयीं, 'सच मैना, तूने ऐसा सुना? भोली बहना, तू जैसा सोचा करती है वैसा ही सपने में भी देखती है और ध्यान में भी अनुभव करती है। मेरी प्यारी मैना, तू साक्षात् अरुन्धती है। दे तेरा मुँह चूम लूँ।' आवेश में चन्द्रा ने मैना का मुँह चूम लिया। मैना मानो सोते-से जागी, 'तुम तो दीदी पागल हो जाती हो।'

'फिर से कह बहन, फिर से कह। इस प्रेम-परवश पगली को कोई प्यार से पागल कहनेवाला भी नहीं है। तू ही इस पगली की व्यथा समझती है। अब मैं कृतार्थ हूँ मैना, परम कृतार्थ हूँ। तेरे पवित्र हृदय में बैठा हुआ आर्यक ही सही आर्यक है। उस निष्कलंक आर्यक ने जो कुछ कहा है उसे सत्य मानकर अपने को कृतार्थ मानती हूँ। बहन, इससे अधिक का लोभ तेरी पगली दीदी में

नहीं है । बहुत पा गयी रे, बहुत पा गयी । और क्या सुना बहन ?'

'दीदी, वह स्वप्न बिल्कुल नहीं था । वह महादेव की कृपा का प्रसाद था । मैंने प्रत्यक्ष देखा है दीदी, वे आ रहे हैं, चले आ रहे हैं, भागे आ रहे हैं । बार-बार कह रहे थे, मैंने चन्द्रा के साथ अन्याय किया है, तुमने उसे प्यार देकर मेरी लाज बचा ली । मैंने तुम्हें भी कष्ट दिया है, चन्द्रा को भी कष्ट दिया है । मैंने अपने पहले के प्रेम को तुमसे छिपाकर तुम्हें भी धोखा दिया है, दुनिया को भी धोखा दिया है, चन्द्रा को भी धोखा दिया है । मैना, मेरी प्यारी मैना, तुम दोनों मुझे क्षमा कर दो । मैं पैरों पड़ता हूँ, क्षमा कर दो ।'

चन्द्रा स्तब्ध !

मृणाल ने ही फिर कहा, 'बताओ दीदी, ऐसा कभी मैंने सोचा है ? क्या धोखा दिया है मुझे ? तुम कहती हो जो सोचती है वही देखती है । मैंने कभी ऐसा सोचा ही नहीं । सच दीदी, कभी नहीं ।'

'अपनी सारी सोची बातों को आदमी कहाँ जानता है मैना ?'

'जानता है, जानता है । मेरे मन में कभी कहीं ऐसी विचित्र बात नहीं आयी, नहीं आ सकती ।'

'अरी भोली, चन्द्रा का सत्संग भी तो तुझे मिला है !'

'मिला है, प्राण ढालकर उसे ग्रहण किया है पर ऐसा विचार मेरे मन में कभी नहीं आया ।'

'तो तू इसे सत्य मानती है ?'

'सोलह आना सत्य । यह महादेव का प्रसाद है । सत्य प्रसाद । वे आ रहे हैं । तैयारी करो दीदी, अभ्यागत के स्वागत की तैयारी करो । चूकना नहीं दीदी । यह देखो, मेरे सारे शरीर में रोमांच हो रहा है ।'

'मेरे में भी वैसा ही हो रहा है । मगर मैं तेरी-जैसी भोली नहीं हूँ । जब तेरी अँगिया दरक जायेगी तब मेरी आँख फड़केगी । तुझमें अपार ग्राहिका शक्ति है । मेरा संवेदन थोथा हो गया है ।'

'तुमने अपना संवेदन मुझे जो दे दिया है । नहीं दीदी, रुको मत, चूको मत । वे आ रहे हैं ।'

चन्द्रा ध्यानस्थ ।

ऐसे ही समय काका आ गये । शोमन भी उनके साथ ही आ गया । मृणाल और चन्द्रा दोनों खड़ी हो गयीं । काका आसन पर बैठकर बोले, 'ले, इस बार नाती से उलझना पड़ रहा है । कहता है, मैं भी पूजा करूँगा । अरे बाबा, तू क्या पूजा करेगा ! तू तो स्वयं देवता है । कहता है, मंत्र सिखा दो । इसका नाना तो भाग गया । मैं इसे क्या मंत्र सिखाऊँ ? कहता है नाना को बुलाओ । कहाँ से बुलाऊँ ?'

चन्द्रा ने झपटकर बच्चे को गोद में ले लिया। 'मैं सिखा दूँगी रे, ऐसा मन्तर सिखाऊँगी कि तेरा नाना भी दौड़ा आयेगा, तेरा बाप भी आ जायेगा।' चन्द्रा आवेश में थी। उसने बच्चे को प्यार से चूम लिया। काका हँसने लगे।

मृणाल ने काका के पैर छू लिये। काका ने आश्चर्य से देखा—मैना का चेहरा उत्फुल्ल कमल की भाँति प्रफुल्ल दिखायी दिया। काका ने सन्तोष का अनुभव किया। मृणाल ने कहा, 'काका, अभी मैं दीदी को बता रही थी, पूरी बात कह नहीं पायी कि तुम आ गये। वे आ रहे हैं काका। दो दिन और यहीं रुक जाओ तो कैसा हो। और हाँ दीदी, मैंने पिताजी को भी देखा है। वे भी आ रहे हैं। शायद वे एक दिन बाद आयेंगे। लेकिन वे भी आ रहे हैं।

चन्द्रा ने हँसते हुए कहा, 'आज शिवजी प्रसन्न हैं काका, मेरी भोली बहन ने जो-जो सोचा है। सब होने वाला है।'

मृणाल ने प्रतिवाद किया, 'बार-बार ऐसा न कहो दीदी, देवता को साक्षी करके जो देखा है सब घटित होगा—सब।'

चन्द्रा सकुचा गयी। काका ठहाका मारकर हँस पड़े।

काका ने पुरानी बात याद करते हुए कहा, 'आर्य देवरात एक बार मुझे बता रहे थे कि जो कुछ घट रहा है, वह भाव-जगत् में पहले से ही घटा रहता है। निर्मल-निष्पाप चित्त के दर्पण में सब दिखायी दे जाता है। जिसके चित्त में आवरण पड़ा रहता है—त्रिविध मलों का आवरण—वह नहीं देख पाता। बताया था कि कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को होनेवाली सारी घटनाओं को अपने भीतर दिखा दिया था। मेरे चित्त पर बहुत आवरण पड़े हुए हैं। दर्पण ही मलिन हो तो दिखेगा क्या? लेकिन तू दो दिन यहाँ क्यों रुकना चाहती है बिटिया?'

'आदेश हुआ है काका, दो दिन और पूजा करने का आदेश।'

'तो रुक जाते हैं। तब तक शोमन पंडित भी मंत्र सीख लेंगे। गुरु रूप में चन्द्रा तो है ही।'

काका फिर फक्कड़ाना हँसी हँस पड़े।

उनतीस

सुमेर काका की दो बातें समुद्रगुप्त को चीर गयीं। सम्राट् अविमृश्यकारी है—बिना सोचे-समझे काम कर बैठता है। उसके जल्दबाजी में किये गये निर्णय

ने फूल-सी कोमल बिटिया को आग में पटक दिया है ! यदि ये दोनों बातें सत्य हैं तो सम्राट् के लिए कलंक हैं। अविमृश्यकारिता सबके लिए चारित्रिक दोष है, पर सम्राट् के लिए तो यह अक्षम्य अपराध भी है। उसके बिना सोचे-विचारे निर्णय से सहस्रों को कष्ट हो सकता है, सैकड़ों की मान-मर्यादा ध्वस्त हो सकती है, साम्राज्य ही लड़खड़ा सकता है। उसका प्रत्येक निर्णय बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय होना चाहिए। गोपाल आर्यक और चन्द्रा के सम्बन्ध में क्या सोच-विचार से काम किया गया ? क्या इतने बड़े विश्वसनीय सखा और सेनापति को खो देना साम्राज्य के हित में हुआ ? समुद्रगुप्त का वह निर्णय वह तत्क्षण उत्पन्न व्यक्तिगत प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं था ? आचार्य पुरगोभिल कहते हैं कि राजा का एकान्त में लिया निर्णय धर्म-सम्मत नहीं होता, उसके राजा के राग-द्वेष से प्रभावित की आशंका रहती है। समुद्रगुप्त ने एकान्त में जो निर्णय लिया उसमें राग-द्वेष का स्पर्श था ? समुद्रगुप्त के अन्तर्यामी कहते हैं—था।

फिर मृणाल जैसी सती साध्वी देवी यदि कष्ट पाती है तो समुद्रगुप्त की उस थोथी प्रतिज्ञा का क्या मूल्य है कि वह देश की बहू-बेटियों के मान और मर्यादा की रक्षा करेगा और उन्हें किसी प्रकार की परिशोचना में नहीं पड़ने देगा। समुद्रगुप्त के रोम-रोम में यह विश्वास भरा था कि किसी देश की सभ्यता और धर्माचार की कसौटी उस देश की स्त्रियों का सम्मान और निश्चिन्तता है। मनु की यह व्यवस्था कि जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है वहाँ देवता निवास करते हैं, उन्हें बहुत सम्मान योग्य मालूम होती थी। सतीत्व, शील, विनय, पवित्रता और सरलता का अनाविल रूप उन्हें स्त्रियों से ही मिलता था। वे मानते थे कि स्त्रियों का सम्मान इन्हीं गुणों के कारण विदित है। परन्तु उनके उस निर्णय से क्या इस सम्मान में कोई त्रुटि आयी है ? उनके अन्तर्यामी कहते हैं—नहीं।

किन्तु समुद्रगुप्त का चित्त उत्क्षिप्त ही बना रहा। मृणालमंजरी को कष्ट हो तो रहा है। सतियों में शिरोमणि, रूप, शील और पवित्रता की साक्षात् मूर्ति परम प्रिय नर्म-सखा की सहधर्मिणी मृणालमंजरी यदि उनके किसी निर्णय से दुखी हो गयी है तो कहीं-न-कहीं अपराध तो हुआ ही है। मृणालमंजरी सारे देश की शुचिता और पवित्र संस्कारों का ही रूप है। कहीं-न-कहीं गलती हुई अवश्य है, कहाँ हुई है, यह स्पष्ट नहीं हो रहा है।

और चन्द्रा ? उसे समझने में भी कहीं चूक हुई है। सच्चाई, सरलता और तेजस्विता को निर्लज्जता मान लेना ही कदाचित् यह चूक है। सम्राट् समुद्रगुप्त मृणालमंजरी की एक झलक पाने के लिए कई दिनों से नाव का पीछा करते आ रहे थे। उसके रूप, शील, सतीत्व की कहानियाँ सुन चुके थे।

लेकिन अवसर मिला आज वटेश्वर मंदिर में। आहा ! कैसा दिव्य रूप है, कैसी कमनीय कान्ति है, कैसी अनुभाव तरंगों से घिरी शरीर-यष्टि है ! श्रद्धा और भक्ति की वह मिलित विग्रह है, शील, शोभा और पवित्रता की मोहन त्रिवेणी है। परन्तु चन्द्रा उसे नित्य दिख जाती थी। सेवा ही मानो प्रत्यक्ष रूप धारण करके उपस्थित हुई थी, तितिक्षा ही मानो गंगा-यमुना की शामक शोभा देखने आ गयी है। निरन्तर सेवा में निरत दिखती थी, क्या रूप दिया है विधाता ने ! अंग-अंग से सुषमा, सब ओर से सन्तुलित सौन्दर्य। तेज से प्रदीप्त जैसे ज्वलन्त दीपशिखा हो, जिसे छूने से जल जाने की आशंका होती है। स्वच्छ वस्त्र से आगुल्फ आच्छादिता उसकी तेजोमयी देह-यष्टि को देखकर आश्चर्य हुआ था उन्हें—जलचादर के दीप ज्यों झलमलाति तन-जोति ! सहज भाव से कर्म निरता तपस्विनी चन्द्रा तरंगों पर थिरकती पद्मिनी की तरह लगती थी। वह रात को शायद सोती भी नहीं थी। हाय, हाय, इसी सेवा-परायण महिला को अपशब्द कह दिये थे। भाग्यवान हो आर्यक, जो तुम्हें स्वेच्छा से अपने को तिल-तिल उत्सर्ग करनेवाली प्रेयसी मिली है। और मन्द-भाग्य हो समुद्रगुप्त, जो तुमने इस चक्रवाक-मिथुन को अन्धतिमिर की भाँति अलग-अलग कर देने का असाधु निर्णय लिया !

परन्तु यह आर्यक भाग्यवान है कि हतभाग्य है ? समुद्रगुप्त को मुँह नहीं दिखायेगा ! क्या हुआ है तेरे मुँह में कि मुँह नहीं दिखायेगा ? समुद्रगुप्त दूसरों के लिए राजाधिराज हो, चक्रवर्ती सम्राट् हो, तेरे लिए तो वह केलिसखा ही है। बहुत बार झगड़ चुका है, एक बार और झगड़ लेगा तो क्या अन्तर आ जाता है। मित्र के निर्णय में त्रुटि रह गयी हो तो मित्र नहीं समझायेगा तो कौन समझायेगा ? गँवार कहीं का। अपने से आप ही छिपता फिरता है। इस बार नहीं रुकेगा समुद्रगुप्त। जब नहीं समझता था तब नहीं समझता था। वह जानता है और मानता भी है कि निश्छल सेवा के पसीने से अधिक पावनकारी वस्तु विधाता की सृष्टि में है ही नहीं, सेवा का पसीना शरीर और मन के सारे कलुष को धो देता है। हो सकता है कि पहले चन्द्रा में कोई दोष रहा भी हो पर अब ? निश्छल सेवा के पसीने ने सब धो दिया है। केवल धो ही नहीं दिया है, पवित्रता का पानी चढ़ा दिया है। क्या कुन्दन-सी दमकती देह द्युति है ! यह क्या अन्तरतर की पवित्रता के बिना आ सकती है ! नहीं आर्यक, समुद्रगुप्त तुम्हें भागने नहीं देगा। जहाँ कहीं होगे, अवश्य पकड़े जाओगे। समुद्रगुप्त मित्रघात नहीं होने देगा। नहीं होने देगा !

समुद्रगुप्त अत्यन्त साधारण नागरिक वेश में थे। वे एक शालि-जातीय घोड़े पर सवार थे। जान-बूझकर उन्होंने 'होत्र'-जातीय घोड़ा नहीं लिया था। उससे सैनिक होने का सन्देह हो सकता था। उन्होंने किसी अंग-रक्षक को भी

साथ नही लिया था। उनकी सेना नदी के दूसरे किनारे से जा रही थी—एक दूरी बनाये रखकर। वे विचारो मे उलझे हुए थे। सामने से ऊँट पर सवार दो साधारण नागरिक आ रहे थे। समुद्रगुप्त ने देखा ही नही। ऊँट पर भटार्क का दूत था। नियमानुसार उसे 'जय' बोलकर अभिवादन करना चाहिए था पर रास्ते मे ऐसा करने की कड़ी मनाही थी। दूत ने अनेक कौशल से उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहा पर वे खोये ही बने रहे। ऊँट पर से कूदकर दूत ने घोड़े की रास पकड ली। अब समुद्रगुप्त का ध्यान उधर गया। चुपचाप प्रणाम निवेदन करके भटार्क का मुद्रांकित पत्र उसने सम्राट् के हाथो मे रख दिया। भटार्क ने लिखा था, 'महाराजाधिराज के प्रताप से विजय हुई है। महावीर गोपाल आर्यक ने राजकीय सेना के पहुँचने के पहले ही अत्याचारी प्रजापीडक पालक को मारकर उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है। उनके अग्रज महामल्ल श्यामरूप शार्विलक ने नागरिको की सहायता से शत्रु सेना को उसी प्रकार बिखरा दिया था जिस प्रकार प्रबल प्रभंजन मेघ-घटा को छिन्न-भिन्न कर देता है। *नगरश्रेष्ठी ब्राह्मण* चारुदत्त के *प्रभाव से नगर मे शान्ति लौट* आयी है। विशिष्ट समाचार भेजे जा रहे है। शेषमेयोऽभिधास्यति !' पत्र पढकर समुद्रगुप्त घोडे से कूद पडे और दूत को कठिन आलिंगन-पाश मे बाँध लिया।—'कहाँ से आ रहे हो भद्र ?'

'उज्जयिनी से ही धर्मावतार।'

'गोपाल आर्यक को तुमने अपनी आँखों से देखा भद्र ?'

'नही धर्मावतार, परन्तु उनके अग्रज महामल्ल शार्विलक के दर्शन करने का सौभाग्य मिला है। यह शार्विलक का ही बाहुबल था जिसने हमें उज्जयिनी पर अधिकार दिलाया है। वे आर्य चण्डसेन को छुड़ाने नगर के बाहरी उपकठ में आये हुए थे। अभी तक वे भी अपने अनुज महावीर गोपाल आर्यक से नही मिल पाये थे। सेनापति ने मुझे वहीं से भेजा है।'

'साधु भद्र, ये चण्डसेन कौन हैं ?'

'धर्मावतार, मथुरा और उज्जयिनी दोनो राज्यो के राजाओ के पितृव्य हैं ये आर्य चण्डसेन। बहुत धर्मपरायण और प्रजावत्सल हैं। पर राजा के साले भानुदत्त ने इन्हे बंदी बना दिया था।'

'साधु भद्र, ऐसे शुभ समाचार देनेवाले को कुछ भी अदेय नही होता। रास्ते मे क्या दूँ पर कुछ दूँगा अवश्य। यह लो मणिखचित केयूर !'

दूत ने *सम्राट् के बाहुमूल मे यत्नपूर्वक छिपाये केयूर को आदर के साथ* ग्रहण किया। फिर आदेश की प्रतीक्षा मे सावधान मुद्रा मे खड़ा हो गया। समुद्रगुप्त ने कुछ सोचकर कहा, 'भद्र, मैं यहीं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम नाव मे नदी पार कर जाओ। उधर हमारी सेना जा रही है। तुम सेनापति को

तुरन्त साथ लेकर आओ।'

'जो आज्ञा धर्मावतार।' कहकर दूत अपने ऊँट को वहीं बाँधकर चला गया। सम्राट् प्रतीक्षा करने लगे। दूत को सेनापति के साथ लौटने में बहुत देर नहीं हुई। यद्यपि सम्राट् ने किसी को साथ नहीं लिया था किन्तु सेनापति सावधान थे। नदी के दूसरे किनारे से वे सम्राट् पर दृष्टि रखते चल रहे थे। ज्यों ही सम्राट रुके वे दूसरे किनारे की ओर लपके। दूत से जल्दी ही भेंट हो गयी। हाथ जोड़कर मौनभाव से अभिवादन करके आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े हो गये। सम्राट् ने मंदस्मित के साथ कहा, 'धनंजय, उज्जयिनी से ये बहुत शुभ समाचार ले आये हैं। हमारी सेना पहुँचने के पहले ही हमारे महाबलाधिकृत गोपाल आर्यक ने उज्जयिनी पर विजय-ध्वजा फहरा दी है।' सेनापति धनजय ने उल्लसित होकर वर्धापनिका दी। फिर सम्राट् धनंजय को एक ओर खींचकर ले गये, 'मन की शंका बताता हूँ धनजय। जब आर्यक सुनेगा कि मैं निकट आ गया हूँ तो भागने की कोशिश करेगा। उसे भागने न देने का उत्तरदायित्व तुम्हारा है। अभी विश्वस्त अनुचरों को दौड़ा दो। उज्जयिनी के बाहर जानेवाले सभी रास्ते घेर लो। मिलें तो कहना कि समुद्रगुप्त उससे मिलने के लिए व्याकुल है। निस्संकोच मिले। मित्र के नाते मिले। जाओ।'

यह व्यवस्था करके समुद्रगुप्त घोड़े पर सवार हुए और तीव्र गति से आगे बढ़ गये। उनका मन अब बहुत उत्फुल्ल था। नर्म-सखा आर्यक से शीघ्र ही मिलने की आशा से वे उल्लसित थे।

उस पार उज्जयिनी-विजय का समाचार पहुँच चुका था। सेना एक कोस तक लम्बी पंक्ति में फैली हुई थी। इस उल्लासजनक समाचार से उसमें भी उत्साह की लहर दौड़ गयी। देखते-देखते यह समाचार सेना के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया। सैनिकों में उन्माद-सा छा गया। महाराजाधिराज समुद्रगुप्त के जय-निनाद से आकाश गूँज उठा। रह-रहकर समुद्रगुप्त के साथ-ही-साथ गोपाल आर्यक का जय-निनाद भी सुनायी देने लगा। सेना का पिछला हिस्सा बटेश्वर तीर्थ के उस पार तक फैला हुआ था। एकाएक जय-निनाद की तुमुल ध्वनि सुनकर काका चौंक पड़े। हुआ क्या! उस पार से आनेवाले शब्द स्पष्ट सुनायी पड़ रहे थे पर काका के मन में सन्देह नहीं रहा कि कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण घटना हुई है। कहीं किसी शत्रु सेना से मुठभेड़ तो नहीं हो गयी? काका जानते नहीं थे कि उस पार समुद्रगुप्त की विशाल वाहिनी प्रायः उनके साथ-ही-साथ चल रही है। वे चिन्तित हुए। साथ की नाव भी उस दिन वटेश्वर तीर्थ में ही रह गयी थी। काका जान गये थे कि उसमें हलद्वीप के ही सैनिक हैं, पर अभी तक वे उनसे दूर-दूर ही रह रहे थे। अब किसी

संकट की आशंका से उनके मन मे आया कि इनसे मेल-जोल बढाया जाय। सैनिक भी ऐसा ही सोचने लगे थे। काका नदी-तट पर मदिर के सामने के एक वट प्ररोह के नीचे बैठे थे। मृणाल और चन्द्रा ने आज बड़ी देर तक बटेश्वर मदिर में पूजा की थी। शोमन भी आज यथाविधि स्नान करके मदिर मे उनके साथ गया था। अब तीनो नाव मे आराम कर रहे थे। दिन ढलने लगा था। यद्यपि अब भी सूर्य की प्रचण्ड किरणो मे आग बरस रही थी फिर भी वट वृक्ष के नीचे बहुत ठडक थी। दूर-दूर तक फैले हुए घने प्ररोह-तरुओं ने इस तिज-हरी मे भी अन्धकार कर रखा था। प्ररोहो की बाढ मे मदिर के पास के क्षेत्र को छोडकर कही भी मनुष्य का हस्तक्षेप नही हुआ था। वे यथेच्छ फैले हुए थे। कई जगह उनके घने जमाव ने वट-निकुज ही बना दिया था। काका चिन्तित भी थे और इस अद्भुत शोभा से मुग्ध भी थे। वट वृक्ष की सघन छाया ने सचमुच ऐसा दृश्य उत्पन्न कर दिया था कि अलकार-रचना मे प्रवीण कवि कह सके कि यहाँ सूर्य की तीक्ष्ण किरणो से भागकर अशेष जगत् का अन्धकार छिप गया है।

एक गठीले शरीर का युवक आया और काका को प्रणाम करके खडा हो गया। काका ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। बोले—

'क्या कुछ कहना चाहते हो, आयुष्मान् !'

'हाँ काका, आपने मुझे पहचाना नही। मैं योगेश्वर का पुत्र सोमेश्वर हूँ। आप लोगो के साथ ही दूसरी नाव मे मैं और मेरे सात साथी चल रहे हैं। हमे आदेश था कि किसी सकट की जब तक सम्भावना न रहे तब तक हम गोपनीय रहकर आप लोगो की देख-रेख करें। अभी तक हमारी यात्रा शान्ति के साथ होती आयी है। पर उस पार जो विकट कोलाहल सुनायी दे रहा है, उससे हमे आशका हुई है कि कुछ सकट आ सकता है।'

'उस पार कोलाहल करनेवाले लोग कौन हो सकते है ?'

'पता लगा रहा हूँ काका, अभी तक कुछ ठीक ज्ञात नही हो सका है।"

'बेटा, तुम योगेश्वर के पुत्र हो और हलद्वीप के ही निवासी हो। यह जान-कर बडी प्रसन्नता हुई। आशंका मेरे मन मे भी थी पर तुम लोगो के रहते चिन्तित होने की कोई बात नही है। वैसे भी तुम्हारा काका अकेले एक सहस्र के बराबर है पर तुम लोगो के रहते तो कोई शका की बात ही नही है।'

युवक ने हाथ जोड़कर फिर कहा—

'काका, हमारा पूरा परिचय जान लें। हम आर्यक भैया के साथी रहे हैं। हलद्वीप मे जब अशान्ति थी और भैया उसका प्रतिरोध कर रहे थे तो हम उनके साथ थे। उन्ही की आज्ञा से हम हलद्वीप की सेना मे आ गये हैं।

अमात्यपुञ्जय ने बहुत सोच-समझकर हमें मामी के साथ लगाया है। हमारी नाव के छह मल्लाह भी शस्त्र-विद्या में निपुण हैं। हम अपनी दोनों मामियों के सम्मान पर रंचमात्र आँच नहीं आने देंगे। आपकी अतुलनीय वीरता से हलद्वीप का कौन निवासी अपरिचित है ? पर जब बच्चे साथ में हैं तो आप क्यों चिन्तित होंगे। आपके सामने कुछ बोलना छोटे मुँह बड़ी बात होगी, पर आर्य, विशुद्ध सूचना के रूप में कहना चाहता हूँ कि हमारी चौदह तलवारें कालसर्प की चौदह जिह्वाओं के समान हैं जो सहस्रों को चाट जाने का सामर्थ्य रखती हैं। हम महावीर गोपाल आर्यक के सिखाये नौजवान हैं काका, बालकपन में भी हमने राजा के सैकड़ों गुण्डों का मान मर्दन किया है, चन्द्रा मामी मुझे पहचान लेंगी आर्य। मैं उनके आर्यक के प्रति प्रबल अनुराग का भी साक्षी हूँ और घोर संकट में भैया का प्राण जिस साहस के साथ बचाया था उसका भी।'

'चन्द्रा को तुम कैसे जानते हो बेटा ?'

'चन्द्रा मामी को मैं उस समय से जानता हूँ, जब आर्यक भैया के लहुरा वीर दल में रहा करता था। चन्द्रा मामी का साहस सुनकर आप आश्चर्य करेंगे काका। दुष्टों ने आग लगा दी थी और आर्यक भैया एक बच्चे और उसकी माँ को बचाने के लिए जलते घर में कूद पड़े थे। हम लोग रुको-रुको कहें तब तक तो वे माँ और बच्चे को बाहर लेकर आ ही गये। दोनों बेहोश थे। इसी समय दुर्वृत्तों ने उन पर प्रहार किया। हम लोग कई लोगों से लड़ रहे थे। हमें पता ही नहीं चला कि क्या हुआ। भैया के सिर में चोट पहुँचाकर दुर्वृत्त भाग गये। वे जलते घर के द्वार पर गिर पड़े। इसी समय चन्द्रा मामी न जाने कहाँ से आँधी की तरह आयी और उन्हें उठाकर आग से दूर लायी। इत्ते बड़े गबरू जवान को उसने ऐसे उठा लिया जैसे माता किसी अबोध शिशु को उठा लेती है। हम लोग भी दौड़े पर ऐसे कर्तव्यमूढ़ हुए कि कुछ किसी को सूझा ही नहीं। भैया के सिर से रक्त की धारा बह रही थी। किसी की ओर देखे बिना चन्द्रा मामी ने अपनी पूरी साड़ी फाड़ दी और क्षत स्थान को फुर्ती से बाँधकर रक्त बन्द किया। वह लगभग निर्वस्त्र हो गयी पर रक्त तो रोक ही दिया। इसके बाद उसने जो सेवा की वह कोई देवी ही कर सकती है। लेकिन आर्यक भैया लजा गये। लजाने की क्या बात थी काका, मगर स्त्रियों के सामने वे सदा इसी प्रकार लजा जाते थे। अब भी उनकी आदत वैसी ही है।' काका ने दीर्घ निःश्वास लिया।

सोमेश्वर आविष्ट-सा कहता ही गया, 'कोई एक समय ऐसा हुआ है काका ! कई बार भैया की रक्षा के लिए चन्द्रा मामी ने अपने प्राण संकट में डाले हैं। मगर उसका प्रेम बड़ा उत्कट था। आर्यक भैया उसे प्यार करने में

भी लजाते थे। आज भी उनकी यही आदत है। हम लोग तो उसी समय से चन्द्रा मामी कहने लगे थे। पर उसका भाग्य कुछ गडबड था। देवी है आर्य, पूरी देवी।' मृणाल और चन्द्रा कोलाहल से आशंकित होकर नाव से बाहर आ गयी थी। काका को खोजती आयी तो काका को बातचीत करते देख ठिठक गयीं। मृणाल ने चन्द्रा के इस साहस और सेवा की बात सुनी तो उसकी आँखों में आँसू आ गये। चन्द्रा आगे बढ गयी, मृणाल दरविगलित अश्रुधारा के साथ नाव में लौट गयी। चन्द्रा ने आगे बढकर कहा, 'सोमेश्वर, तू कहाँ से आ गया? काका से क्या अनाप-शनाप कहे जा रहा है?'

सोमेश्वर अकचका के खड़ा हो गया। बडी श्रद्धा के साथ भूमि पर सिर रखकर उसने चन्द्रा को अपना प्रणाम निवेदन किया। उसकी आँखों में आँसू आ गये—'साथ ही तो चल रहा हूँ मामी।'

'साथ ही चल रहा है और अब तक बताया नहीं! धन्य है तू।'

'आज्ञा नहीं थी मामी।'

'आज कैसे आज्ञा हो गयी?'

'उस पार के कोलाहल के कारण मामी।'

'यह कैसा कोलाहल हो रहा है सोमेश्वर?'

'पता लगा रहा हूँ मामी। तुम अभी नाव में जाओ। अभी बताता हूँ।'

काका ने भी चन्द्रा को नाव में जाने को कहा। वह लौट गयी।

सोमेश्वर ने काका से कहा, 'काका, अनुमति दें तो इन पेडों के अन्तराल में पटवास लगा दें। अमात्य ने कहा था कि पटवास साथ लेते जाओ। हमारे पास तीन हैं। कोई संकट आया तो नाव में मामियों का रहना ठीक नहीं होगा। इन पेडों में सुरक्षा भी रहेगी। पटवास के द्वार पर खड़ा एक जवान भी सहस्रों को रोक सकेगा। अन्धकार में वे दिखायी भी नहीं देंगे। वैसे तो हम नाव की रक्षा के लिए भी तैयार हैं पर यह स्थान अधिक सुरक्षित होगा। तो आज्ञा है न काका?'

काका को यह बात जँच गयी। दोनों ने स्थान का चुनाव किया। सोमेश्वर के इशारे पर पटवास के लिये दस-बारह जवान बाहर आ गये। इनमें कई मल्लाह भी थे। पटवास फुर्ती से खड़े कर दिये गये। सघन प्ररोहों के अन्तराल में ये पटवास छोटे-छोटे दुर्ग-से बन गये। तीनों थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खड़े कर दिये गये। काका के आदेश से मृणाल, चन्द्रा और शोमन ने एक में प्रवेश किया। एक में काका के रहने की व्यवस्था की गयी। एक सैनिकों ने अपने लिए रखा। पर ये दोनों खाली ही पड़े रहे। काका के साथ सैनिक मन्दिर के सामने ही डट गये।

उस पार का कोलाहल और भी तेज हुआ। सोमेश्वर ने एक मल्लाह को

पता लगाने को नदी पार कर उधर जाने का आदेश दिया था। वह लौट आया। उसने आकर समाचार दिया कि यह सम्राट् समुद्रगुप्त की सेना है, मथुरा जा रही है। बीच में ही किसी प्रकार इन्हें समाचार मिला है कि अकेले ही महावीर गोपाल आर्यक ने उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है। ये लोग महाराजाधिराज समुद्रगुप्त और महावीर गोपाल आर्यक की जय-जयकार कर रहे हैं। कई तरह की कहानियाँ सुना रहे हैं। किस प्रकार अकेले महावीर आर्यक ने प्रचण्ड शत्रुवाहिनी को ध्वस्त करके प्रजापीडक राजा पालक को मारा है, किस प्रकार उसकी तलवार ने चक्र की भाँति घूम-घूमकर शत्रुओं के शव से रण-स्थल को पाट दिया है। और भी समाचार मिला है कि गोपाल आर्यक के बड़े भाई श्यामरूप दाविलक ने अकेले ही पालक की दूसरी ओर बड़ी सेना को मार भगाया है। समाचार भेजे जाने के समय तक दोनों भाई मिल भी नहीं पाये हैं। लोग कह रहे हैं कि श्यामरूप में एक सहस्र हाथियों का बल है।

काका ने सुना तो उन्मत्त भाव से चिल्ला उठे, 'सुन रे बिटिया, सुन ले। बोलो, महावीर गोपाल आर्यक की जय।'

पन्द्रह कण्ठों ने एकसाथ जय-घोष किया। उस समय चन्द्रा की गोद में सिर रखकर मृणाल रो रही थी, 'दीदी, तुमने उनकी कितनी सेवा की है। मैं अभागिन तो उनके किसी काम नहीं आयी। दीदी, तुम साक्षात् जगदम्बा हो।' चन्द्रा दुलार से डाँट रही थी, 'बेकार बात न कर। मैं तो उस गँवार की दासी ही रही हूँ और रहूँगी। ऐसी बात न किया कर। मुझे अच्छा नहीं लगता। उठ मैना, तू उदास होगी तो वह भी उदास हो जायेगा!' इसी समय काका का उन्मत्त कण्ठ सुनायी दिया, 'सुन रे बिटिया, सुन ले, बोलो, महावीर गोपाल आर्यक की जय।' चन्द्रा धड़फड़ाकर उठी। क्या हुआ? क्या कोई संघर्ष छिड़ गया? काका इतने उत्तेजित क्यों हैं? वह बाहर निकल आयी। ज्यों ही चन्द्रा बाहर आयी, सोमेश्वर दीप्त कण्ठ से गरज उठा, 'बोलो, चन्द्रा मामी की जय।' सभी मल्लाह आ जुटे थे—सबने उत्तेजित कण्ठ से चन्द्रा मामी का जय-निनाद किया। चन्द्रा चकित थी। 'अरे मेरे सोमेश्वर भैया, पागल हो गये हो क्या! क्या बात है?' सोमेश्वर सचमुच उन्मत्त था, कोई उत्तर दिये बिना फिर चिल्ला उठा, 'बोलो, चन्द्रा मामी की जय।' चन्द्रा विस्मय-विमूढ़!

अब मृणाल भी बाहर निकल आयी। वह भी विस्मित थी। उसे बाहर देखते ही सोमेश्वर ने उन्मत्त भाव से चिल्लाकर कहा, 'बोलो मैना देई की जय।' जय-जयकार से दिग्मण्डल काँप उठा। सब उन्मत्त थे, काका उत्तेजना के चरम शिखर पर थे। वे नाच रहे थे। बीच-बीच में चिल्ला उठते थे, 'मेरे बेटे सिंह हैं, स्यार क्या खाकर उनसे जूझेंगे।' फिर झपटकर शोमन को कन्धे पर

तीस

भटार्क और शार्विलक (श्यामरूप) साथ-ही-साथ आर्यक के पास गये। आर्य चारुदत्त ने उन्हें मार्ग दिखाया। आर्यक बहुत दिनों के बिछुड़े भाई के पैरों मे लोट गया। दीर्घकाल तक दोनो भाई एक-दूसरे से लिपटे रहे। दोनों की वाणी रुद्ध थी। शार्विलक प्यार से आर्यक का सिर सूँघता रहा। दोनों की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहती रही। भटार्क और चारुदत्त इस अपूर्व भातृ-मिलन का दृश्य देखते रहे। फिर दोनो शान्त हुए। आर्यक ने आग्रह के साथ कहा, 'भैया, हलद्वीप लौट चलो।' शार्विलक ने स्वीकृति दी। दोनों भाई एक-दूसरे से हलद्वीप लौट चलने का अनुरोध करते रहे। शार्विलक ने बताया कि उसे एक नये पिता और नयी माता के स्नेह पाने का सौभाग्य मिला है। उनका दर्शन करने के बाद ही वह हलद्वीप जा सकेगा। परन्तु आर्यक को स्पष्ट आदेश के स्वर मे उसने कहा कि वह बिना देरी किये हलद्वीप चला जाय। इसी समय आर्यक वसन्तसेना का सन्देशावाहक शार्विलक को उनके आवास पर जाने का निमन्त्रण लेकर आया। शार्विलक को जाना पडा, पर फिर से आर्यक को प्यार करके यह आदेश देता गया कि वह जल्दी-से-जल्दी हलद्वीप पहुँच जाये। जब शार्विलक वहाँ पहुँचेगा तो उसके स्वागत के लिए आर्यक वहाँ अवश्य रहे। चारुदत्त ने मुसकराते हुए आर्यक से कहा, 'भैया के साथ भाभी का भी स्वागत करना होगा।' आर्यक ने उल्लसित होकर कहा, 'भाभी कहाँ है भैया, तुमने कुछ बताया नहीं।' पर शार्विलक ने आर्य चारुदत्त से ही कहा, 'क्यों लडके को बेकार बातों मे उलझाते हो आर्य।' चारुदत्त ने संकेत समझकर कहा, 'अभी भाभी कहाँ है मित्र, जब होंगी तो तुम्हें और मुझे अवश्य कृतार्थ करेंगी। अभी थोडा धीरज रखो।'

चारुदत्त और श्यामरूप शार्विलक विदा हुए। शार्विलक के चले जाने के बाद भटार्क को अवसर मिला। दोनो मित्रों मे देर तक वार्तालाप होता रहा। मथुरा के अभियान का विस्तृत विवरण पाकर आर्यक को प्रसन्नता हुई। चण्डसेन का विस्तृत परिचय पाने के बाद और भटार्क से उनकी बातचीत के विश्लेषण के बाद आर्यक ने कहा, 'मित्र भटार्क, चण्डसेन को मथुरा-उज्जयिनी के राज्य-सचालन का भार देना सम्राट् की नीति के अनुरूप होगा। तुम शीघ्र ही इस प्रकार की सलाह सम्राट् को भेज दो।'

भटार्क ने हँसते हुए कहा, 'तुम्हारे रहते मैं अब सदेश भेजनेवाला कौन होता हूँ। कहो तो सन्देशा तुम्हारे नाम से ही भिजवा दूँ। मैं अब इस राज-नीतिक प्रपंच मे नहीं पडूँगा। सैनिक हूँ, जहाँ मारकाट करनी हो वहाँ भेज

पता लगाने को नदी पार कर उधर जाने का आदेश दिया था। वह लौट आया। उसने आकर समाचार दिया कि यह सम्राट् समुद्रगुप्त की सेना है, मथुरा आ रही है। बीच में ही किसी प्रकार इन्हें समाचार मिला है कि अकेले ही महावीर गोपाल आर्यक ने उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है। ये लोग महाराजाधिराज समुद्रगुप्त और महावीर गोपाल आर्यक की जय-जयकार कर रहे हैं। कई तरह की कहानियाँ सुना रहे हैं। किस प्रकार अकेले महावीर आर्यक ने प्रचण्ड शत्रुवाहिनी को ध्वस्त करके प्रजापीडक राजा पालक को मारा है, किस प्रकार उसकी तलवार ने चक्र की भाँति घूम-घूमकर शत्रुओं के शव से रण-स्थल को पाट दिया है। और भी समाचार मिला है कि गोपाल आर्यक के बड़े भाई श्यामरूप शार्विलक ने अकेले ही पालक की दूसरी और बड़ी सेना को मार भगाया है। समाचार भेजे जाने के समय तक दोनों भाई मिल भी नहीं पाये हैं। लोग कह रहे हैं कि श्यामरूप में एक सहस्र हाथियों का बल है।

काका ने सुना तो उन्मत्त भाव से चिल्ला उठे, 'सुन रे बिटिया, सुन ले। बोलो, महावीर गोपाल आर्यक की जय।'

पन्द्रह कण्ठों ने एकसाथ जय-घोष किया। उस समय चन्द्रा की गोद में सिर रखकर मृणाल रो रही थी, 'दीदी, तुमने उनकी कितनी सेवा की है। मैं अभागिन तो उनके किसी काम नहीं आयी। दीदी, तुम साक्षात् जगदम्बा हो।' चन्द्रा दुलार से डाँट रही थी, 'बेकार बात न कर। मैं तो उस गँवार की दासी ही रही हूँ और रहूँगी। ऐसी बात न किया कर। मुझे अच्छा नहीं लगता। उठ मैना, तू उदास होगी तो वह भी उदास हो जायेगा।' इसी समय काका का उन्मत्त कण्ठ सुनायी दिया, 'सुन रे बिटिया, सुन ले, बोलो, महावीर गोपाल आर्यक की जय।' चन्द्रा धड़फड़ाकर उठी। क्या हुआ? क्या कोई संघर्ष छिड़ गया? काका इतने उत्तेजित क्यों हैं? वह बाहर निकल आयी। ज्यों ही चन्द्रा बाहर आयी, सोमेश्वर दीप्त कण्ठ से गरज उठा, 'बोलो, चन्द्रा भाभी की जय।' सभी मल्लाह आ जुटे थे—सबने उत्तेजित कण्ठ से चन्द्रा भाभी का जय-निनाद किया। चन्द्रा चकित थी। 'अरे मेरे सोमेश्वर भैया, पागल हो गये हो क्या! क्या बात है?' सोमेश्वर सचमुच उन्मत्त था, कोई उत्तर दिये बिना फिर चिल्ला उठा, 'बोलो, चन्द्रा भाभी की जय।' चन्द्रा विस्मय-विमूढ़!

अब मृणाल भी बाहर निकल आयी। वह भी विस्मित थी। उसे बाहर देखते ही सोमेश्वर ने उन्मत्त भाव से चिल्लाकर कहा, 'बोलो मैना देई की जय।' जय-जयकार से दिङ्मण्डल काँप उठा। सब उन्मत्त थे, काका उत्तेजना के चरम शिखर पर थे। वे नाच रहे थे। बीच-बीच में चिल्ला उठते थे, 'मेरे बेटे सिंह हैं, स्यार क्या खाकर उनसे जूझेंगे।' फिर झपटकर सोमन को कन्धे पर

लेकर चिल्ला उठे, 'बोलो सोमन युवराज की जय !' सोमन खिलखिला मारकर हँस रहा था और काका उसे कन्धे पर लेकर नाच रहे थे । अद्भुत दृश्य था । चन्द्रा ने गरजकर कहा, 'भाई सोमा, तू ही बता क्या बात है, काका का तो दिमाग खराब हो गया है ।' सोमा ने कहा, 'जय हो भाभी, आर्यक भैया ने अकेले उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया है और भगवान् की माया देखो कि श्यामरूप भैया भी वहीं पहुँच गये हैं । दोनों ने बड़ी वीरता दिखायी है, काका फिर उन्मत्त भाव से नाच उठे, 'मेरे बेटे सिंह है, प्यार क्या खाकर उनसे जूझेंगे !'

चन्द्रा की बात समझ में आ गयी । अब उसके उन्मत्त होने की बारी थी । उसने मृणाल का हाथ पकड़कर घसीटा और उसे उन्मत्त भाव से गोदी में उठा लिया, 'तेरा पतिव्रत धर्म विजयी हुआ मैना । मेरा आर्यक लाखों में एक है । मैंने अपनी आँखों उसका पराक्रम देखा है । लिच्छवियों की सेना पर ऐसा टूटा था जैसे बाज बटेरों पर टूटता है । उसकी तलवार फिरकी की तरह नाचती थी । पर तेरा पतिव्रत ही उसकी शक्ति है । तेरा पतिव्रत विजयी हुआ मैना, तेरा सतीत्व उसे विजयी बनाता है ।'

मैना ने कहा, 'छोड़ो दीदी, तुम भी पागल हो गयी ? मेरा नहीं तुम्हारा पतिव्रत विजयी हुआ है ।'

'नहीं रे नहीं, मैं निश्चित जानती थी कि मेरा आर्यक युद्ध करके लौटेगा । मैं क्या यों ही उसे प्यार करती हूँ ? वह सच्चा पुरुष है । पौरुष उसकी बोटी-बोटी से उछलता रहता है । वह नीचे से ऊपर तक दीप्त पौरुष है । थोड़ा गँवार अवश्य है । तेरी तपस्या सार्थक हुई मैना, चन्द्रा का कलंक दूर हुआ । वह अब आयेगा, अवश्य आयेगा । आ, एक बार उसकी ओर से तुझे प्यार कर दूँ ।'

मृणाल गम्भीर हो गयी, 'श्यामरूप भैया भी मिल गये हैं दीदी । भगवान् का कैसा अनुग्रह है । जब देते हैं तो छप्पर फाड़कर देते हैं । उठो दीदी, पहले मन्दिर में चलो । और बातें बाद में होंगी ।' चन्द्रा को घसीटती हुई मृणाल वटेश्वर महादेव के मन्दिर में गयी और एकदम लकुट की भाँति पृथ्वी पर गिरकर महादेव को अपना कृतज्ञ प्रणाम निवेदन किया । चन्द्रा ने भी वैसा ही किया ।

प्रणाम निवेदन करके मृणाल आसन मारकर बैठी और ध्यान में डूब गयी । चन्द्रा धीरे-धीरे मन्दिर से बाहर आयी । बाहर अब भी सोमेश्वर के साथी खड़े थे । उन पर भी भक्ति की मादकता छा गयी थी । वे ऐसे शान्त-निस्तब्ध खड़े थे जैसे प्रस्तर की मूर्तियाँ हों । बाहर निकलकर चन्द्रा ने सोमेश्वर को बुलाया । सोमेश्वर विनीत भाव से सामने आकर खड़ा हो गया । चन्द्रा की वाणी रुद्ध थी । वह केवल आँखें फाड़कर सोमेश्वर को ताकती रही । उसकी

आँखों से अश्रुधारा झरने लगी। चन्द्रा की आँखों मे क्वचित्-कदाचित् ही आँसू दिखायी देते थे। सोमेश्वर उसके अन्तरतर को समझने का प्रयास करता हुआ चुपचाप खड़ा रहा। चन्द्रा की आँखों से अश्रुधारा उसी प्रकार बहती रही। सोमेश्वर ने उसका मन फेरने के लिए देवर-जनोचित परिहास करना चाहा पर क्या कहे, उसकी समझ मे नहीं आया। यों ही बोला, 'मिठाई नहीं खिलाओगी भाभी? कितना बढ़िया समाचार सुनाया है!' चन्द्रा का मन सचमुच दूसरी ओर फिरा। किस बात की मिठाई खायेगा भाई सोमा? समाचार देने की? उसकी नही खिलाऊँगी। वह तो मेरा जाना हुआ-सा था। पर एक दूसरी बात की मिठाई अवश्य खिलाऊँगी।'

'और किस बात की मिठाई खिलाओगी भला?'

'यही कि तुम पहले आदमी हो जिसने मुझे भाभी कहा है। तुमने मेरे कानो मे अमृत डाल दिया है देवर, इस अभागी को आज तक किसी ने भाभी नही कहा।' चन्द्रा के करुण आनन्द से सोमेश्वर भीग गया, 'इन सबको पहचानती हो भाभी। सब बालक थे, परन्तु तुम्हारा स्नेह सबने पाया था। ये बड़े पाजी भाई हैं भाभी। मुझसे भी पहले तुम्हें भाभी कहते रहे हैं। ये मेरी मिठायी में हिस्सा माँगेंगे।'

चन्द्रा खिल गयी, 'सबको बुलाओ तो देखूँ।' सब बुलाये गये। चन्द्रा ने देखा, कई अस्पष्ट परिचित चेहरे लगे। सोमेश्वर ने कहा, 'क्यों मेरे भाइयो, पहचानते हो, ये कौन हैं?'

सबने उल्लसित स्वर में एकसाथ उत्तर दिया, 'चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी।' सोमेश्वर ने कहा, 'देखा भाभी, एक-से-एक दुष्ट हैं तुम्हारे देवर। वे क्या सोमेश्वर को अकेले प्रसाद लेने देंगे?'

चन्द्रा प्रफुल्ल हुई, 'सबको मिठाई खिलाऊँगी। सब मेरे प्यारे देवर हैं।'

सबने एकसाथ जय-निनाद किया, 'चन्द्रा भाभी की जय!'

मन्दिर मे मृणाल के कानो तक ध्वनि गयी। उसका ध्यान भंग हुआ। बाहर आयी तो चन्द्रा ने कहा, 'देखा मैना, कित्ते देवर जुट गये। सब मिठाई खाना चाहते हैं। खिला सकेगी?'

मृणाल का चेहरा खिल गया। मन्दस्मित के साथ बोली, 'अहोभाग्य!'

सुनते ही, फिर भाभियों के जय-निनाद से आकाश प्रकम्पित हो उठा। सैनिक देवर कुछ और निकट आ गये। एक ढीठ देवर बोल उठा, 'बाद वाली मिठाई तो मिलेगी न भाभी। कही यही सब समाप्त न कर देना।'

मृणाल और चन्द्रा एकसाथ बोल उठी, 'मिलेगी, और मिलेगी।'

तीस

मटार्क और शार्विलक (श्यामरूप) साथ-ही-साथ आर्यक के पास गये। आर्य चारुदत्त ने उन्हें मार्ग दिखाया। आर्यक बहुत दिनों के बिछुड़े भाई के पैरों में लोट गया। दीर्घकाल तक दोनों भाई एक-दूसरे से लिपटे रहे। दोनों की वाणी रुद्ध थी। शार्विलक प्यार से आर्यक का सिर सूँघता रहा। दोनों की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहती रही। मटार्क और चारुदत्त इस अपूर्व भ्रातृ-मिलन का दृश्य देखते रहे। फिर दोनों शान्त हुए। आर्यक ने आग्रह के साथ कहा, 'भैया, हलद्वीप लौट चलो।' शार्विलक ने स्वीकृति दी। दोनों भाई एक-दूसरे से हलद्वीप लौट चलने का अनुरोध करते रहे। शार्विलक ने बताया कि उसे एक नये पिता और नयी माता के स्नेह पाने का सौभाग्य मिला है। उनका दर्शन करने के बाद ही वह हलद्वीप जा सकेगा। परन्तु आर्यक को स्पष्ट आदेश के स्वर में उसने कहा कि वह बिना देरी किये हलद्वीप चला जाय। इसी समय आर्यक वसन्तसेना का सन्देशवाहक शार्विलक को उनके आवास पर जाने का निमन्त्रण लेकर आया। शार्विलक को जाना पड़ा, पर फिर से आर्यक को प्यार करके यह आदेश देता गया कि वह जल्दी-से-जल्दी हलद्वीप पहुँच जाये। जब शार्विलक वहाँ पहुँचेगा तो उसके स्वागत के लिए आर्यक वहाँ अवश्य रहे। चारुदत्त ने मुसकराते हुए आर्यक से कहा, 'भैया के साथ भाभी का भी स्वागत करना होगा।' आर्यक ने उल्लसित होकर कहा, 'भाभी कहाँ है भैया, तुमने कुछ बताया नहीं।' पर शार्विलक ने आर्य चारुदत्त से ही कहा, 'क्यों लड़के को बेकार बातों में उलझाते हो आर्य।' चारुदत्त ने संकेत समझकर कहा, 'अभी भाभी कहाँ है मित्र, जब होगी तो तुम्हें और मुझे अवश्य कृतार्थ करेंगी। अभी थोड़ा धीरज रखो।'

चारुदत्त और श्यामरूप शार्विलक विदा हुए। शार्विलक के चले जाने के बाद मटार्क को अवसर मिला। दोनों मित्रों में देर तक वार्तालाप होता रहा। मथुरा के अभियान का विस्तृत विवरण पाकर आर्यक को प्रसन्नता हुई। चण्डसेन का विस्तृत परिचय पाने के बाद और मटार्क से उनकी बातचीत के विश्लेषण के बाद आर्यक ने कहा, 'मित्र मटार्क, चण्डसेन को मथुरा-उज्जयिनी के राज्य-संचालन का भार देना सम्राट् की नीति के अनुरूप होगा। तुम शीघ्र ही इस प्रकार की सलाह सम्राट् को भेज दो।'

मटार्क ने हँसते हुए कहा, 'तुम्हारे रहते मैं अब संदेश भेजनेवाला कौन होता हूँ। वहाँ तो सन्देश तुम्हारे नाम से ही भिजवा दूँ। मैं अब इस राज-नीतिक प्रपंच में नहीं पड़ूँगा। सैनिक हूँ, जहाँ मारकाट करनी हो वहाँ भेज

दो, बाकी सब तुम्हारा। मैं सदा तुम्हारा विनीत सेवक रहा हूँ। आज भी हूँ, कल भी रहूँगा।'

आर्यक इस प्रस्ताव से सहम गया। 'मित्र, मैं सम्राट् के सामने किसी प्रकार नहीं जा सकता—पत्रवाहक के रूप में भी नहीं। तुम्हीं उनके पास जो चाहो लिखकर भेज दो।'

भटार्क ने दृढ़ता के साथ कहा, 'क्यों नहीं जा सकोगे? तुमने कोई अपराध किया है? क्या दोष तुमसे हुआ है? कौन नहीं जानता कि आज समूचे उत्तरापथ में जो महाराजाधिराज समुद्रगुप्त का डंका बज रहा है वह गोपाल आर्यक के प्रचण्ड बाहुबल और तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर ही। मित्र, मैंने उज्जयिनी के सारे समाचार सम्राट् को भेज दिये हैं। वे आज मथुरा आ गये होंगे। तुम्हें तो अब राजनीतिक सुझाव ही भेजना शेष रह गया है।' आर्यक एकाएक सनाका सा गया। 'क्या कहा? सम्राट् मथुरा पहुँच गये हैं?'

'हाँ मित्र, वे मथुरा पहुँच गये होंगे और यदि उज्जयिनी भी आ जायें तो आश्चर्य न करना। उन्होंने उज्जयिनी के अभियान का स्वयं नेतृत्व करने का निश्चय किया था पर मैंने उन्हें लिखकर सूचित कर दिया है कि इस अभियान की आवश्यकता नहीं। गोपाल आर्यक ने अकेले ही इस लक्ष्य की पूर्ति कर दी है।' 'यह तो तुमने अच्छा नहीं किया भटार्क। मैं तो इस समय उज्जयिनी का दायित्व तुम्हें सौंपने जा रहा हूँ।'

'तो सौंप दो ना। तुम्हारा दिया हुआ सब आदेश सदा मेरे सिर-माथे। पर सेना का संचालन सदा गोपाल आर्यक करते रहे हैं, वैसे ही उज्जयिनी का संचालन भी वही करते रहेंगे। उनका सेवक भटार्क इस राज्यभार को उसी प्रकार वहन करेगा जिस प्रकार भरत ने राम के राज्य का संचालन किया—न कम, न अधिक।' कहकर भटार्क हँस पड़ा। फिर भैया, 'तुम्हें हलद्वीप भी तो जाना है। अभी तो तुमने शार्विलक को वचन दिया है। पर मेरी एक बात मानो, समुद्रगुप्त केवल राजाधिराज नहीं हैं, तुम्हारे सखा भी तो हैं। उनसे मिल अवश्य लेना। अरे भाई, सौ बात बड़े भाई की मानी जाती हैं तो एक बात छोटे भाई की भी मान ली जाती है। बोलो, मानोगे न?'

आर्यक ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। इतना ही कहा कि अवसर आने पर वह भटार्क की बातों पर अवश्य विचार करेगा। उसने बात को आगे बढ़ने से रोकने के लिए कहा, 'अभी तुम थोड़ा विश्राम करो। फिर बातें होंगी।' भटार्क के जाने के बाद आर्यक अकेला रह गया। सम्राट् मथुरा पहुँच गये हैं। उनसे वह कैसे मिलेगा। चन्द्रा के बारे में पूछेंगे तो क्या उत्तर दूँगा। बिचारी चन्द्रा इस समय न जाने कहाँ होगी। केवल लोक-लाज के भय से उसने चन्द्रा के उद्दाम-प्रेम की उपेक्षा की है। क्या चन्द्रा के प्रति उसने आकर्षण नहीं दिखाया

था ? क्या सचमुच उसके प्रति उसके मन में पर-स्त्री भावना थी ? क्या मृणाल-मंजरी से अपनी भावना छिपाने का अपराध उसने नहीं किया ? कभी उसने इस सम्बन्ध में मृणालमंजरी से सलाह क्यों नहीं ली ? उसके अन्तर्यामी कहते हैं कि इस सम्बन्ध में वह झूठ की ओर अधिक झुका है सत्य की ओर कम ? भाभी कहती हैं तुम्हारी सब समस्याएँ हल हो जायेंगी। कैसे होंगी ! भाभी न चन्द्रा को जानती हैं, न मृणाल को। भाव-लोक-विहारिणी कोई माताजी उनसे न जाने क्या-क्या कह गयी हैं। भोली भाभी ने सबको ब्रह्मवाक्य मान लिया है। कहती हैं, तुम अपने को ही अपने से छिपाते रहे हो। वे ठीक कहती हैं। आर्यक ने यह पाप अवश्य किया है। उसमें सत्य का सामना करने का साहस नहीं है। वह असत्य को प्रश्रय देता रहा है और मानता आया है कि दुनिया इस असत्य को सत्य मान लेगी। दुनिया के सामने बहुत समस्याएँ हैं। उसे इतनी फुरसत नहीं है कि हर व्यक्ति के अन्तर में झाँककर सच-झूठ का निर्णय करती रहे। व्यक्ति को अपने प्रति आप ही ईमानदार बनना होगा। हर बड़ी वस्तु के लिए कर चुकाना पड़ता है। सत्य से बड़ा धन क्या हो सकता है ! उसे पाने में खर्च करना पड़ता है। जो सोचता है कि बिना कुछ किये इतनी बड़ी सम्पत्ति पा जायेगा और रख सकेगा, वह मूढ़ है। सत्य को पाना कठिन है, पाकर सुरक्षित रखना और भी कठिन है। सम्राट् से बातचीत करते समय उसने सत्य को छिपाया था। यह दोष था।

फिर चन्द्रा के बारे में वह सत्य क्या था जिसे स्वीकार करने में वह संकुचित होता रहा है। भाभी ने जब पूछा कि देवर, सच बताओ, तुम्हारे मन में चन्द्रा के प्रति आकर्षण था या नहीं ? क्या तुम दुनिया को यह नहीं दिखाना चाहते थे कि वह गले पड़ गयी है पर मन-ही-मन प्रसन्न नहीं थे कि वह अनायास मिल गयी है ? भाभी कैसा छेद देनेवाला प्रश्न करती हैं। आर्यक क्या उत्तर दे। चन्द्रा जहाँ उद्दाम-प्रेम की मूर्ति है वहीं और उससे भी अधिक अकुंठ सेवा का सजीव विग्रह है। संसार में आज तक किस स्त्री ने इतना साहसिक प्रेम और इतनी अकुंठ निश्छल सेवा की है। कितनी बार उसने आर्यक के लिए प्राणों को संकट में डाल दिया है, कितनी बार उसने प्राण ढालकर आर्यक में संजीवनी शक्ति भरी है, कितनी बार उसने सामाजिक विधि-विधानों को तलवे से रौंदकर सत्य को स्वीकार किया है। आर्यक ने उसके शारीरिक उद्दाम वेग को ही देखा है, मानसिक और आध्यात्मिक त्याग-भावना की ओर ध्यान ही नहीं दिया। क्या उसकी उपेक्षा ने ही चन्द्रा को अधिकाधिक उग्र नहीं बना दिया ? सम्राट् से उसने क्यों नहीं कसकर सच्चाई कह दी ? आर्यक को चन्द्रा ने कितनी ही बार कायर कहा था। क्या उसकी बात नितान्त असत्य थी ? चन्द्रा जब उसे गँवार कहती है, कायर कहती है, निर्बुद्धि कहती है तो वह घबरा जाता है

पर इसमें कितनी आत्मीयता होती है। प्रेम रस में सराबोर इन कुवाच्यों की मिठास अपूर्व ही होती है। परन्तु आर्यक ने इस आत्मीयता की सदा अवहेलना की है। उसके अन्तर्यामी जानते हैं कि उसकी अवहेलना दिखावा है, संसार की दृष्टि में अपने-आपको निर्दोष दिखाते रहने का नाटक है। हाय, आर्यक ने अपने को कैसी क्रूर नियति के हाथों बेंच दिया है। चन्द्रा कहाँ होगी, किस अवस्था में होगी, जिसने अपने-आपको सारी विधि-व्यवस्थाओं और लोकमर्यादाओं के विरुद्ध झोंककर अन्तरतर के सत्य का अनुपालन किया, उस देवी को कैसा धोखा दिया आर्यक ने! चन्द्रा समर्पण की मूर्ति है, आर्यक वंचना का अवतार। आर्यक की वंचना को मामी ने कैसा पकड़ लिया। पूछती हैं, 'देवर जब तुम चन्द्रा की चिट्ठियाँ मृणाल को देते थे तो वे हथेली के पसीने से भीग गयी होती थीं न, ठीक स्मरण करके बताओ।' करारी चोट करती हो मामी। पहले तो उसका गँवारपन उभर आया। फिर उसकी वंचना उजागर हो गयी। हृदय पर किसी ने कसके हथौड़े से चोट की थी। मामी ने कैसा चीर दिया हृदय को? मामी, तुम भोली दिखती हो पर समझती सब हो। आर्यक की लज्जा से भी रस खींच लेती हो! हाय, यह कैसी विडम्बना है कि आर्यक जिस बात को सारी दुनिया से छिपाता आया है, वह इस भोली मामी के लिए करतल पर रखे हुए आँवले के फल के समान स्पष्ट है।

आर्यक डूब रहा है, उतरा रहा है, बह रहा है। मामी मिल जातीं तो उनसे पूछता कि मेरा कर्तव्य क्या है? क्या सम्राट् से मिल लेना चाहिए या उनकी भी उपेक्षा करनी चाहिए। उपेक्षा के बाद? और सम्राट् का सामना करने से भी अधिक भयंकर है मृणाल का सामना करना। क्या सोचेगी वह सुकुमार-हृदया प्राणवल्लभा। आर्यक उसे कैसे अपना मुँह दिखा सकेगा? फटो धरित्री, निगल जाओ इस भंड को। आर्यक डूब रहा है।

चन्द्रा को ही क्या मुँह दिखायेगा? मगर वह क्षमा कर देगी। चन्द्रा क्षमा की मूर्ति है। थोड़ा मान तो करेगी पर तुरन्त प्रसन्न हो जायेगी। प्रेम-परवशा चन्द्रा जानती ही नहीं कि अभिमान क्या होता है। कायर कहेगी, गँवार कहेगी और सेवा में जुट जायेगी। सेवा में ही वह अपने को पाती है, अपने प्यार को पाती है, अपनी चरितार्थता अनुभव करती है। चन्द्रा सेवामयी है! आर्यक उतरा रहा है।

और मृणाल? उस भोली ने तो जाना ही नहीं कि मान क्या होता है, ईर्ष्या किसे कहते हैं, असूया किस खेत में पैदा होती है। उसे, अपना सुख क्या है इसका पता ही नहीं, वह तो एक बात जानती है, सुख वह है जिसमें आर्यक सुखी रहे। चन्द्रा ने कई बार कहा कि मृणाल के पास चलो। वह दोनों को प्यार कर सकती है। पर पवित्र चेता चन्द्रा ने जिस बात को अनायास समझ

लिया उसे कुटिल आर्यक नहीं समझ सका। दोनों साथ रह सकती हैं, आर्यक की दोनों आंखों के समान। आर्यक कल्पना की धारा में बह रहा है। इसी समय अमृतवर्षी मधुर स्वर में भाभी ने पूछा, 'किस उधेड़-बुन में पड़े हो देवर? कहो तो बता दूं?' जैसे रंगीन रेशमी धागे से किसी ने आर्यक के मन को खींच लिया हो? वह अकचकाकर उठ के खड़ा हो गया।- भाभी कब से खड़ी हैं। अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम निवेदन करके मन्दस्मित के साथ आर्यक ने कहा, 'क्षमा करो भाभी, एक समस्या का समाधान आपको करना होगा।'

'मैं जानती हूँ, लल्ला, तुम दूसरों को भुलावा नहीं दे सकते हो, भाभी तुम्हारे अन्तरतर में झांककर देख चुकी है, उसे भुलावा नहीं दे सकते। और कौन-सी समस्या हो सकती है तुम्हारी? तुम्हारी भाभी सब जानती है। समस्या यही है न कि चन्द्रा और मृणाल दोनों तुम्हारी दो आँखें हैं, इनमें कौन दाहिनी है, कौन बायी है? यही है न समस्या?'

'भाभी तुम बड़ा वेधक परिहास करती हो?'

'वेधक है? मैं तुम लोगों की रग-रग पहचानती हूँ। तुम्हारे भैया की भी यही समस्या थी। अच्छा देवर, आंख दाहिनी हो या बायी, क्या फर्क पड़ता है?'

'तुम्हारा ही प्रश्न है, तुम्ही उत्तर दो। पर भैया की दो आंखों की क्या बात है भाभी?'

'फिर तुमने मान लिया कि समस्या दो आंखों की ही है। भैया वाली जानना चाहते हो, अपनी वाली छिपाना चाहते हो।'

आर्यक हँसकर चुप हो गया। भाभी ने ही आगे कहा—

'देखो लल्ला, तुम भैया से अधिक भाग्यवान् हो। उनको दो आँखों का फैसला दोनों आंखों को ही करना पड़ता है पर मेरे भोलानाथ, तुम्हारे तो एक तीसरी आंख भी है, उसे क्यों भूल जाते हो?'

'देखो भाभी, पहेली न बुझाया करो। तुम्हारा देवर पहले ही हार मान चुका है। वह तुम्हें भोली समझता है तो तुम उसे बमभोला समझती हो। तुम्ही ठीक समझती हो, अब गँवार पर नागरी का कृपा-कटाक्ष निक्षेप करो और पहेली को ऐसी भाषा में समझाओ जिससे वह ठीक से समझ सके।'

'तो भोलानाथजी, अपनी तीसरी आंख को ठीक से जान लीजिए। रोज-रोज नागरी का कृपा-कटाक्ष नहीं मिलेगा।'

'बताओ भाभी, मेरे गँवारपन की शपथ है, ठीक-ठीक समझा दो।'

'बलि बलि जाऊँ इस गँवारपन पर! तो गिनो उँगली पर।'

'गिन रहा हूँ।'

'एक आंख चन्द्रा रानी। ठीक?'

'ठीक, एक !'

'दूसरी आँख मैना रानी, ठीक ?'

'ठीक, दो !'

'और तीसरी आँख तुम्ही बताओ भोलानाथ !'

'बता दूं ?'

'बनते हो, जान-बूझकर बनते हो ?'

'नही भाभी, पहले बता देता हूँ, फिर तुम बताना कि ठीक हुआ या नहीं।'

'बताओ।'

'तीसरी आँख मेरी नागरी भाभी। ठीक ?'

'पेट में दाढी है तुम्हारे ! है न ?'

'तीसरी आँख से देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। हाँ, है !'

'कित्ती बडी है ?'

'बहुत बड़ी। यही भाभी के बराबर !'

'ठीक देखा है, शाबाश ! अब जब दो आँखों को देखना हो तो तीसरी आँख से पूछ लिया करो !'

आर्यक आनन्द-लहरी में बह रहा है। पूछ रहा हूँ भाभी।—'ऐ मेरी तीसरी आँख, बता तो मेरी दो आँखें कहाँ हैं, कैसे हैं ?'

भाभी आर्यक के अभिनय से हँसते-हँसते दोहरी हो गयीं।—'वाह लल्ला, नाटक करो तो नाम कमाओगे।'

आर्यक ने गंभीर होकर कहा, 'हँसी नही कर रहा हूँ, भाभी, सचमुच मैं उलझन मे हूँ। तुम्हें बार-बार याद कर रहा था कि तुम ठीक जान लो कि मेरे सिर पर विचिकित्सा के बादल मँडरा रहे हैं। राजाधिराज समुद्रगुप्त मथुरा आ गये हैं, दो-तीन दिनों में उज्जयिनी भी आ सकते हैं। मैं उनके सामने जाऊँ या न जाऊँ।'

भाभी भी गंभीर हो गयीं। 'क्यों,नही जाओगे ? तुमने उनका क्या बिगाड़ा है ? नासमझी उन्ही ने की है, तुम क्यों लज्जित होगे ?'

'ठीक है भाभी, पर अभी तो उससे भी कठिन समस्या है। मृणाल के सामने कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा ?'

'यही सोने-सा चमकता मुँह। इसमें मुझे तो कोई खाद दिखायी नही देता। मृणाल को दिखायी दे तो भाभी को बुला लेना। मैं उसे समझा दूँगी। वैसे, आवश्यकता नहीं पड़ेगी। तुम पतिव्रताओं को जानते नहीं। समझे मेरे देवरजी।'

'जिसे जानता ही नही उसे समझूँगा क्या ?'

'तो नहीं समझते तो भाभी की बात मानो। पहले समुद्रगुप्त से मिलो।

लिया उसे कुटिल आर्यक नहीं समझ सका। दोनों साथ रह सकती हैं, आर्यक की दोनों आँखों के समान। आर्यक कल्पना की धारा में बह रहा है। इसी समय अमृतवर्षी मधुर स्वर में भाभी ने पूछा, 'किस उधेड़-बुन में पड़े हो देवर? कहो तो बता दूँ?' जैसे रंगीन रेशमी धागे से किसी ने आर्यक के मन को खींच लिया हो? वह अकचकाकर उठ के खड़ा हो गया।- भाभी कब से खड़ी हैं। अत्यन्त विनीत भाव से प्रणाम निवेदन करके मन्दस्मित के साथ आर्यक ने कहा, 'क्षमा करो भाभी, एक समस्या का समाधान आपको करना होगा।'

'मैं जानती हूँ, लल्ला, तुम दूसरों को भुलावा नहीं दे सकते हो, भाभी तुम्हारे अन्तरतर में झाँककर देख चुकी है, उसे भुलावा नहीं दे सकते। और कौन-सी समस्या हो सकती है तुम्हारी? तुम्हारी भाभी सब जानती है। समस्या यही है न कि चन्द्रा और मृणाल दोनों तुम्हारी दो आँखें हैं, इनमें कौन दाहिनी है, कौन बामी है? यही है न समस्या?'

'भाभी तुम बड़ा वेधक परिहास करती हो?'

'वेधक है? मैं तुम लोगों की रग-रग पहचानती हूँ। तुम्हारे भैया की भी यही समस्या थी। अच्छा देवर, आँख दाहिनी हो या बायी, क्या फर्क पड़ता है?'

'तुम्हारा ही प्रश्न है, तुम्ही उत्तर दो। पर भैया की दो आँखों की क्या बात है भाभी?'

'फिर तुमने मान लिया कि समस्या दो आँखों की ही है। भैया वाली जानना चाहते हो, अपनी वाली छिपाना चाहते हो।'

आर्यक हँसकर चुप हो गया। भाभी ने ही आगे कहा—

'देखो लल्ला, तुम भैया से अधिक भाग्यवान् हो। उनकी दो आँखों का फैसला दोनों आँखों को ही करना पड़ता है पर मेरे भोलानाथ, तुम्हारे तो एक तीसरी आँख भी है, उसे क्यों भूल जाते हो?'

'देखो भाभी, पहेली न बुझाया करो। तुम्हारा देवर पहले ही हार मान चुका है। वह तुम्हें भोली समझता है तो तुम उसे बमभोला समझती हो। तुम्ही ठीक समझती हो, अब गँवार पर नागरी का कृपा-कटाक्ष निक्षेप करो और पहेली को ऐसी भाषा में समझाओ जिससे वह ठीक से समझ सके।'

'तो भोलानाथजी, अपनी तीसरी आँख को ठीक से जान लीजिए। रोज-रोज नागरी का कृपा-कटाक्ष नहीं मिलेगा।'

'बताओ भाभी, मेरे गँवारपन की शपथ है, ठीक-ठीक समझा दो।'

'बलि बलि जाऊँ इस गँवारपन पर! तो गिनो उँगली पर।'

'गिन रहा हूँ।'

'एक आँख चन्द्रा रानी। ठीक?'

'ठीक, एक !'
'दूसरी आँख मैना रानी, ठीक ?'
'ठीक, दो !'
'और तीसरी आँख तुम्हीं बताओ भोलानाथ !'
'बता दूँ ?'
'बनते हो, जान-बूझकर बनते हो ?'
'नहीं मामी, पहले बता देता हूँ, फिर तुम बताना कि ठीक हुआ या नहीं।'
'बताओ।'
'तीसरी आँख मेरी नागरी भाभी। ठीक ?'
'पेट में दाढ़ी है तुम्हारे ! है न ?'
'तीसरी आँख से देखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। हाँ, है !'
'कित्ती बड़ी है ?'
'बहुत बड़ी। यही भाभी के बराबर !'
'ठीक देखा है, शाबाश ! अब जब दो आँखों को देखना हो तो तीसरी आँख से पूछ लिया करो !'

आर्यक आनन्द-लहरी में बह रहा है। पूछ रहा हूँ भाभी।—'ऐ मेरी तीसरी आँख, बता तो मेरी दो आँखें कहाँ हैं, कैसे हैं ?'

भाभी आर्यक के अभिनय से हँसते-हँसते दोहरी हो गयीं।—'वाह लल्ला, नाटक करो तो नाम कमाओगे।'

आर्यक ने गंभीर होकर कहा, 'हँसी नहीं कर रहा हूँ, भाभी, सचमुच मैं उलझन में हूँ। तुम्हें बार-बार याद कर रहा था कि तुम ठीक जान लो कि मेरे सिर पर विचिकित्सा के बादल मँडरा रहे हैं। राजाधिराज समुद्रगुप्त मथुरा आ गये हैं, दो-तीन दिनों में उज्जयिनी भी आ सकते हैं। मैं उनके सामने जाऊँ या न जाऊँ।'

भाभी भी गंभीर हो गयीं। 'क्यों नहीं जाओगे ? तुमने उनका क्या बिगाड़ा है ? नासमझी उन्हीं ने की है, तुम क्यों लज्जित होगे ?'

'ठीक है भाभी, पर अभी तो उससे भी कठिन समस्या है। मृणाल के सामने कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा ?'

'यही सोने-सा चमकता मुँह। इसमें मुझे तो कोई खाद दिखायी नहीं देता। मृणाल को दिखायी दे तो भाभी को बुला लेना। मैं उसे समझा दूँगी। वैसे, आवश्यकता नहीं पड़ेगी। तुम पतिव्रताओं को जानते नहीं। समझे मेरे देवरजी।'

'जिसे जानता ही नहीं उसे समझूँगा क्या ?'

'तो नहीं समझते तो भाभी की बात मानो। पहले समुद्रगुप्त से मिलो।

राजा हो या राजाधिराज, मनुष्य तो होगा ही। एकदम मित्र की भाँति मिलो। हर बात का खुलकर जवाब दो। दोष हो या गुण, छिपाओ कुछ भी नही। वे प्रिय कहे या अप्रिय, वाणी का और शिष्टाचार का संयम न छोडना। मीठा तो तुम बोलते ही हो, साफ भी बोलो। अपने अन्तर्यामी पर अधिक विश्वास करो, लोक-जल्पना पर कम। सत्य सबसे बड़ा है, यह मत भूलो।

'मृणाल के पास अवश्य जाओ। सच्चाई के साथ, विश्वास के साथ, विनय के साथ, शील के साथ। उसकी महिमा का सम्मान करो। सती की आँख मे वरदान रहता है। कभी कोई ऐसा काम न करो जिससे उस आँख मे क्षोभ का संचार हो। उसकी तपस्या से तुम विजयी हुए हो, यह बात कभी न भूलना। देखो लल्ला, पुरुष का अहम् और उसकी भीरुता, दोनो ही स्त्री को कष्ट देते हैं। भूलना मत।'

'चन्द्रा को मैं जितना समझ पायी हूँ वह निर्भीकता, स्पष्टता और साहस मे अद्वितीय नारी है। उसका मूल भाव माता का भाव है। वह तुम्हारी और मृणाल की सेवा के लिए लालायित है। उसके इस सेवाभाव की उपेक्षा करोगे तो अच्छा नही होगा। उपेक्षा करके तुमने उसे चण्ड बना दिया है। सेवा की उपेक्षा से ही ससार की आधी समस्याएँ हैं। इस विषय मे तुम अपने भैया को गुरु मानो।'

'आर्यक तृप्ति अनुभव करता रहा। भाभी देवबाला की तरह लग रही थी। ऐसा लग रहा था, स्वय सरस्वती आकर आर्यक को मार्ग बता रही हैं। वह कृतकृत्य हो गया। इतना स्पष्ट तो उमे कभी सूझा नही। वातावरण बहुत गभीर हो गया था। भाभी माता की भूमिका मे पहुँच गयी थी। आर्यक का मन भार-मुक्त हो गया था। देवर-भाभी के धरातल पर लौट आने के उद्देश्य से उसने चुहल की।'

'सब मानूँगा, एक बात को छोड़कर। भैया को नही, भाभी को गुरु मानूँगा।'

'उससे अच्छा होगा कि मृणाल को गुरु मान लेना।'

'अच्छा भाभी, तुम इतना स्पष्ट कैसे देख लेती हो।'

'देवर की आँख से! समझे?'

इसी समय आर्य चारुदत्त आये और धूता देवी के हाथ मे एक पत्र देकर दूसरी ओर आँख फिराकर बैठ गये।

पत्र से सुगन्धि निकल रही थी। आर्यक को इस सुगन्धि ने आकृष्ट किया। सुन्दर सँवारे हुए भोजपत्र पर कुसुमराग से लिखे हुए पत्र मे कस्तूरी और अगरु के उपलेपन की सुगन्धि थी। धूता देवी ने आदर के साथ पत्र खोला। पढते-पढ़ते उनकी आँखें चमकने लगी और अधरो पर मन्द मुसकान बिखर गयी।

बोली, 'तो देवरजी, उज्जयिनी में तुम्हारी भाभियों की सेना तैयार हो गयी है। एक तो मेरी नटखट बहन वसन्तसेना है। अकेली ही एक सेना है। दूसरी अभी वधू वेश में ही है—तुम्हारे भैया श्यामरूप की नयी बहू—मदनिका।' चलो वसन्तसेना का निमंत्रण बहुत मुखर है—कहती है, 'दीदी सुना है, तुम्हारे पास एक गँवार देवर आया है। जल्दी उसे भेज दो। मेरे यहाँ बंदरों का नाच होनेवाला है, एक कम पड़ रहा है।' दूसरी बिचारी क्या कहे। चुपचाप प्यार निवेदन किया है। अब तुम्हारी यह भोली भाभी कहाँ तक तुम्हारी रक्षा करे ?

गोपाल आर्यक और चारुदत्त हँसने लगे।

आर्यक बहुत प्रसन्न है। मन में कोई भार नहीं है। छिप के नहीं जा रहा है। उज्जयिनी में उसे निर्मलीकरण का रसायन मिला है। तीनों भाभियों के निर्मल सरस परिहास ने उसमें नया जीवन भर दिया है। वह अब तक भाभी के प्यार से वंचित रहा है। भगवान् ने एक ही साथ तीन भाभियों का वरदान दिया। जीवन उसे जीने योग्य जान पड़ता है। उज्जयिनी का मोह अब उसे छोड़ नहीं रहा है। वह भागेगा नहीं, भाभी का उपदेश उसके हृदय में सीधे पैठ गया है—अब लौं नसानी, अब ना नसैं हौं !

भटार्क को उज्जयिनी का भार सौंपकर वह मथुरा की ओर चला। भटार्क ने पहले ही दूत भेज दिया। इस बार आर्यक यथा-नियम शालि-वाहन (घुड़सवार) होकर निकला। भटार्क ने उसकी इच्छा के विरुद्ध गुप्त रूप में कुछ अंग-रक्षक आगे-पीछे कर दिये। आर्यक तीव्र गति से आगे बढ़ा। वह आज सारी मानसिक कुंठा को घोड़े की टाप से कुचल देना चाहता है। वह सरपट भागा जा रहा है, उसे अपना इच्छित अर्थ मिल गया है। चन्द्रमौलि ने कहा था, 'जिसका मन ईप्सितार्थ पर स्थिर भाव से जमा हो उसे और नीचे की ओर ढरकती वारिधारा को कौन रोक सकता है ? कोई नहीं रोक सकता। आर्यक अब मृणाल के सामने जायेगा, चन्द्रा की खोज करेगा, सम्राट् को स्पष्ट और सच्चा उत्तर देगा। भाभी की बातों से अधिक स्पष्ट और खरा उपदेश उसे नहीं मिल सकता। कैसी अद्भुत है भाभी की अन्तर्दृष्टि ! गहराई तक बेध देती है। कहती हैं, 'तुम पतिव्रताओं को नहीं जानते।' आर्यक सचमुच नहीं जानता। भाभी को ही देखो, कहीं कोई गाँठ नहीं है, जहाँ ईर्ष्या होनी चाहिए वहाँ स्नेह है, जहाँ असूया होनी चाहिए वहाँ आदर है, सब-कुछ को दबाकर, सब-कुछ से रस खींचकर प्रफुल्ल शतदल की तरह विराजमान हैं। कैसा अद्भुत सहज भाव है ! मंदस्मित के सामने शरत्कालीन चन्द्रमा की कोमल मरीचियाँ भी फीकी पड़ जाती हैं, चलती हैं तो चरणों से अनुभाव की तरंगें बिखरती रहती हैं। आर्यक धन्य है जो उसे ऐसी भाभी मिल गयी। आर्य

चारुदत्त सचमुच भाग्यवान् हैं। आर्यक भाग्यहीन है, अब नहीं रहेगा। बहुत नाच चुका गोपाल, अब अभिनय बंद कर, जहाँ तेरा सच्चा विश्राम है वहाँ चल। लोकापवाद के भय से अन्तरतर का निरादर न कर। प्रतिव्रता की महिमा की अवहेलना न कर।

किसी ने जय-ध्वनि की, 'महावीर गोपाल आर्यक की जय हो।' आर्यक का ध्यान भंग हुआ।

'धनंजय हूँ आर्य, प्रणाम स्वीकार हो!'

'धनंजय? हलद्वीप के अमात्य पुरदर के भाई धनंजय?' आर्यक ने कुछ विस्मित होकर पूछा।

'हाँ आर्य, मैं पुरदर का भाई धनंजय ही हूँ।'

'यहाँ कैसे आये हो भाई धनजय? तुम क्या सम्राट् की रक्षावाहिनी के बलाधिकृत नहीं रहे? यहाँ इस तरह क्यों घूम रहे हो?'

'अब भी हूँ, आर्य। महाराजाधिराज के साथ मथुरा आया हूँ।'

'महाराजाधिराज का सदेश लेकर ही सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ।'

'महाराज ने क्या आज्ञा दी है भद्र?'

'महाराजाधिराज ने सदेश भिजवाया है कि वे अपने नर्मसखा गोपाल आर्यक से मिलने को व्याकुल हैं। वे अपने महाबलाधिकृत से नही, अपने नर्म-सखा से मिलने को आतुर हैं।'

'सम्राट् महाबलाधिकृत से तो रुष्ट होंगे भाई धनंजय?'

'किसने आपके मन मे ऐसी पाप आशंका पैदा कर दी आर्य? सम्राट् को तो हमने इतना प्रसन्न कभी देखा ही नही। आप तो जानते ही हैं कि वे समुद्र के समान गंभीर रहते है, उनका समुद्रगुप्त नाम कितना सार्थक है, पर मथुरा आते ही उन्होने मुझे बुलाकर कहा, 'आयुष्मान् धनजय, गोपाल आर्यक नरशार्दूल है। उसने जो पराक्रम दिखाया है उसकी कोई तुलना नही हो सकती। मैंने उसके हृदय पर वृथा चोट पहुँचायी थी। अब मैं वास्तविक स्थिति से परिचित हो गया हूँ। तुम उज्जयिनी जाओ और जैसे भी हो मेरे मित्र को यहाँ ले आओ। उसका राजकीय सम्मान तो उचित अवसर पर किया जायेगा पर व्यक्तिगत रूप से मैं उसका स्वयं सम्मान करूँगा।' सम्राट् की आँखें डबडबा आयी थी। आज तक मैंने कभी उनके मुखमण्डल पर विकार के चिह्न नही देखे थे। पहली बार चन्द्रमा के आने की आशा-मात्र से समुद्र मे ऐसा चाचल्य देखा है आर्य!'

'साधु, भाई धनंजय, चलो, मैं आ रहा हूँ।'

धनजय चला गया—मथुरा की ओर। आर्यक का मन और भी हल्का हुआ। उसने धीरे-धीरे मथुरा की ओर घोडा बढाया।

'सम्राट् मिलनेवाले हैं। बीच का इतिहास न चाहते हुए भी आर्यक के मन

में दीवार खड़ी कर रहा है। कैसा मिलना होगा! आर्यक अब वही आर्यक नहीं, बीच में कालदेवता ने उसे बदल दिया है, सम्राट् वही सम्राट् नहीं है, बीच में इतिहास-विधाता ने उनके आगे भी काँटा खड़ा कर दिया है।—सखि वै तुम वै, हम वै ही रहे, पै कछु के कछू मन ह्वै गये हैं!'

आर्यक की गति धीमी हो गयी।

कहाँ सारे देश को अत्याचार और शोषण से मुक्त करने का संकल्प और कहाँ व्यक्तिगत पचड़ों का व्यवधान। अगर सम्राट् हर आदमी के व्यक्तिगत जीवन को अपने मन के अनुकूल बनाने का प्रयत्न न करते तो क्या हानि होती? वृहत्तर मानवीय समस्याओं के सुलझाने के प्रयास में छोटी-मोटी घरेलू बातों को ले आने का क्या औचित्य है? आर्यक विक्षुब्ध भाव से सोचता चला जा रहा है।

परन्तु सम्राट् को धर्म का रक्षक होना चाहिए। क्या अधिकतर सामाजिक उलझनों का कारण यही नहीं है कि शासन का जो सर्वोपरि संरक्षक है वह धर्म के बारे में उदासीन है। पालक का व्यक्तिगत जीवन क्या धर्माचार के विपरीत होने से ही अनर्थ का कारण नहीं बना? सुरा और सुन्दरी उसके व्यक्तिगत जीवन के ही तो लक्ष्य थे। प्रजा उसके विरुद्ध क्यों हो गयी। क्या अच्छा है—राजा का प्रजा के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप या प्रजा का राजा के व्यक्तिगत जीवन के प्रति सतर्क दृष्टि। पहले आर्यक को उखाड़ फेंका और दूसरे को उखाड़ फेंकने में आर्यक ही निमित्त बन गया। धर्म क्या व्यक्ति को आश्रय करके चलता है या वह अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का आश्रय बनाता है? दूसरा पक्ष ही ठीक जान पड़ता है। एक से अधिक व्यक्तियों का संसर्ग ही तो कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का प्रश्न उठाता है। एक का दूसरे के साथ सम्बन्ध न हो तो धर्म की आवश्यकता ही क्या है। सम्राट् धर्म का संरक्षक होता है, इस कथन का अर्थ है कि सम्राट् अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का नियामक होता है। पर क्या सम्राट् स्वयं एक व्यक्ति नहीं है? वह भी क्या अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की विशुद्धता का विषय नहीं है? अनुराग-विराग, ईर्ष्या-असूया क्या उसके अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की विशुद्धता के निर्णय को धर्म-सम्मत रहने देंगी? आर्यक अनुभव कर रहा है कि सम्राट् के निर्णय में कहीं कोई त्रुटि अवश्य है, पर कहाँ? आर्यक समझ नहीं पा रहा है कि यह त्रुटि कहाँ है। भाभी ने कहा था, बहुत सहजभाव से कहा था, 'सत्य अविभाज्य है।' क्या सारे अनर्थों में सत्य को विभक्त करके देखने की दृष्टि तो नहीं है? आर्यक व्याकुल भाव से सोच रहा है। वह सम्राट् की कठोर धर्म-परायणता को जानता है पर यह भी जानता है कि उसके सारे धर्म-सम्बन्धी विचार एक ही आधार पर टिके हुए हैं—संयम। ठीक भी है। यदि धर्म अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का आश्रय करके रहता है तो संयम—शरीर, मन, वाणी

पर अंकुश—रहना ही चाहिए। दो या अधिक व्यक्तियों के सम्बन्ध के साधन तो ये तीन ही हैं—शरीर, मन और वाणी। शरीर का कर्म, मन का चिन्तन और वाणी का सम्प्रेषण, ये ही तो अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों के आधार हैं—मन, वचन, कर्म! सम्राट् शरीर के कर्म पर अधिक बल देते हैं। आर्यक जानता है और मानता भी है। पर शरीर-सम्बन्ध को इतना महत्त्व देना क्या ठीक है? पुराण ऋषियों ने क्या कहा है? वे तीनों का सन्तुलन चाहते हैं। तीनों के सन्तुलन से सत्य अविभाज्य रह सकता है। सम्राट् सन्तुलन की बात नहीं सोचते। तो क्या सम्राट् पुराण ऋषियों की अवहेलना के दोषी हैं? अभी यह प्रश्न सामने आयेगा। सम्राट् मिलेंगे।

आर्यक की गति और भी शिथिल होती जा रही है। घोड़ा भी समझ रहा है। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है।

कुछ लोग इकट्ठे होकर किसी से कुछ सुन रहे थे। सुनानेवाला बहुत मीठे स्वर से कुछ सुना रहा था। सुननेवाले तन्मय होकर सुन रहे थे। आर्यक ने सोचा, इनकी तन्मयता भंग नहीं होनी चाहिए। धीरे-से घोड़े से उतर गया। घोड़े को एक जगह बाँधकर वह भी सुनने की इच्छा से चुपचाप उधर ही बढ़ गया—अवश की भाँति। सुरीले कंठ से गानेवाले ने पहले समझाया, शायद इसके पहले भी बहुत कुछ समझा चुका था। आर्यक बीच में आ गया था। प्रसंग पार्वती की तपस्या का था। शिव ब्रह्मचारी वेश में परीक्षा लेने आये थे। तपोनिरता पार्वती से कुशल प्रश्न पूछ रहे थे, 'हे सुकुमारि, बड़ी कठोर तपस्या कर रही हो। शरीर का ध्यान तो रखती हो न? शारीरिक शक्ति की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए—वही तो पहला धर्म-साधन है! ऐसा न करना कि कठोर तप के कारण यह सुकुमार शरीर ही टूट जाय—

अपि स्वशक्त्या तमसि प्रवर्तसे
शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्!

कैसा कंठ है? कैसी मर्मभेदी अभिव्यक्ति है—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्! आर्यक को लगा कि स्वर परिचित जान पड़ता है। किन्तु श्रोताओं की भीड़ चीरकर सामने जाना उचित भी नहीं था, सम्भव भी नहीं था। आर्यक साव-धानी से सुनने लगा। यह तो चन्द्रमौलि का कण्ठ है! अब धीरज नहीं रहा। निश्चय ही यह चन्द्रमौलि का कण्ठ था। आर्यक के प्रश्न का कैसा विलक्षण उत्तर है—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्! शरीर अर्थात् आचरण पक्ष! वह चन्द्रमौलि के सामने जाने का प्रयत्न करने लगा। श्रोताओं में से किसी ने पहचान लिया। वह चिल्ला उठा, 'महावीर गोपाल आर्यक की जय।' सभा की तन्मयता भंग हो गयी। जय-जयकार की ध्वनि से आकाश कम्पित हो उठा। चन्द्रमौलि जैसे सोते से जागा। आर्यक को सामने देखकर चकित विस्मित ताकते

रहे। आर्यक ने उन्हें गाढ़ आलिंगन में बाँध लिया। फिर भीड़ की ओर ताक-कर बोले, 'बोलो, महाकवि चन्द्रमौलि की जय।' जनता ने द्विगुणित उल्लास से 'जय-ध्वनि की। श्रोताओं में कई धनंजय के सैनिक थे। आर्यक को पहचानते थे। परन्तु यह नहीं जानते थे कि आर्यक चन्द्रमौलि को जानते हैं। कथा फिर जमी नहीं। दोनों मित्र एक ओर हो गये। दोनों साथ ही मथुरा की ओर चल पड़े। एक ओर घोड़े की व्यवस्था भी हो गयी।

मार्ग में आर्यक ने चन्द्रमौलि से कहा, 'बन्धु चन्द्रमौलि, आज तक मैंने अपने-आपको सारी दुनिया से छिपाया है, तुमसे भी छिपाया है। अब मुझे सहज गुरु मन्त्र मिल गया है—अपने-आपको छिपाते फिरना सारे अनर्थों की जड़ है। अब मैं अपने-आपको छिपाऊँगा नहीं। विधाता ने मुझे जो बनाया है वह हूँ। इसमें छिपाना क्या है। तुम्हें मैंने अपनी मनोव्यथा नहीं बतायी, पाप किया। उसका प्रायश्चित्त करूँगा। मैं अपनी सारी राम कहानी सुनाऊँगा। सुनोगे?'

'अवश्य सुनूँगा बन्धु।'

आर्यक ने सारी कहानी सुना दी।

'चन्द्रमौलि ने दीर्घ निःश्वास लिया। बन्धु आर्यक, मैं भी अपने को छिपाता आया हूँ। पर तुम्हारे समान भाग्यवान् नहीं हूँ। गुरु नहीं पा सका। साहस नहीं बटोर सका। तुम्हें गुरु कहाँ मिला मित्र!'

'उज्जयिनी में। पतिव्रताओं की मुकुटमणि, आर्य चारुदत्त की सहधर्मिणी, अरुन्धती-कल्पा धूता भाभी मेरी गुरु हैं। सहज सत्य पर उनकी दृष्टि सहज ही चली जाती है!'

'भाग्यवान् हो मित्र, पर तुम्हारे भाग्योदय से मुझे भी आशा बँधी है। कोई-न-कोई पतिव्रताओं की मुकुटमणि किसी-न-किसी मित्र की सहधर्मचारिणी, कोई-न-कोई अरुन्धती-कल्पा भाभी मुझे भी गुरु रूप में मिल ही जायेगी।'

आर्यक इंगित समझकर ठठाकर हँस पड़ा, 'लगता है मित्र कि माढव्य शर्मा का सत्संग व्यर्थ नहीं गया है।'

चन्द्रमौलि का चेहरा खिल गया।

उधर सम्राट् ने बीच रास्ते में ही आर्यक की अगवानी की। दोनों सगा देर तक एक-दूसरे से लिपटे रहे। अविरल प्रेमाश्रुओं ने बिना कुछ कहे ही सब-कुछ कह दिया। चन्द्रमौलि मुग्ध-गद्गद भाव से यह-मिलन देखता रहा। दोनों ही मौन। दोनों ही प्रेम-निर्भर। सम्राट् ने ही मौन भंग किया। 'कल तुमसे बात करूँगा मित्र, आज अधिक आवश्यक कार्य है, तुमसे विदाई ले रहा हूँ। वह नाव है, जाकर बैठ जाओ। सामने बटेश्वर तीर्थ है। वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है। देर न करो। कल मिलेंगे।'

'कौन प्रतीक्षा कर रहा है सखे?' आर्यक ने पूछा।

सम्राट् ने कहा, 'समय नष्ट न करो। प्रतीक्षा करा-कराके जान ले ली, अब पूछते हैं कौन प्रतीक्षा कर रहा है!'

आर्यक सनाका खा गया। सम्राट् की रहस्यपूर्ण हँसी से कुछ-कुछ अनुमान लगाने लगा।

चन्द्रमौलि की ओर देखकर सम्राट् से बोला, 'महाकवि चन्द्रमौलि हैं। मेरे परम मित्र हैं।'

सम्राट् ने कहा, 'मेरे साथ जायेंगे। आओ बन्धु!' आर्यक की ओर देखे बिना ही चन्द्रमौलि को खींचकर सम्राट् अपने साथ ले चले। आर्यक नाव में जा बैठा। कौन प्रतीक्षा कर रहा है? क्या मृणाल है? यह समुद्रगुप्त पूरा बताता ही नहीं। बता देता तो क्या बिगड़ जाता। हँसना ही जानता है—हँसो बाबा, आर्यक भी हँसता-हँसाता सब सहेगा।

सम्राट् के इस प्रकार के बधुजनोचित व्यवहार से चन्द्रमौलि प्रभावित हुए। वे सम्राट् से एक बात कहने की अनुमति लेकर बोले, 'सखे, एक बात कहना भूल गया था। आर्य देवरात मथुरा आये हुए हैं। उनके मन में कुछ भ्रामक समाचारों से थोड़ा कष्ट है। मैं उनसे मिलूँगा और उनके चित्त में भ्रमवश जो अन्यथा भाव आ गया है उसे दूर करने का प्रयास करूँगा। यदि संभव हुआ तो उन्हें लेकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जानते हो मित्र, वे सम्बन्ध में मेरे मौसा हैं।'

'मौसा!' आर्यक ने आश्चर्य से पूछा। सम्राट् ने अधिक अवसर नहीं दिया। बोले, 'बस मित्र, आज इतना ही। तुम दोनों मौसेरे भाई बन गये, आज इतना ही पर्याप्त है। दुनिया जानती है कि मौसेरे भाई कौन होते हैं! बस जाओ।' सम्राट् के संकेतपूर्ण नर्म वाक्य से चन्द्रमौलि और आर्यक दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़े। नाव चल पड़ी।

सम्राट् ने चन्द्रमौलि को प्यार से निकट खींच लिया। बोले, 'बन्धु, तुम मेरे प्रिय सखा आर्यक के मित्र हो। मुझे भी अपना वैसा ही मित्र मानना। तुम आर्य देवरात से मिलना चाहते हो। मैं तुम्हें मिला दूँगा। तुम्हीं शायद उनको शान्ति दे सकोगे। मैंने कल ही उन्हें देखा था, कुछ अशान्त दिखते थे। मगर बन्धु, तुम्हारा पूरा परिचय पा सकता हूँ? आर्य देवरात तुम्हारे मौसा कैसे हैं?' चन्द्रमौलि इस प्रश्न के लिए एकदम प्रस्तुत नहीं था। हाथ जोड़कर बोला, 'सब बता दूँगा मित्र, सब बता दूँगा, पर थोड़ा रुकने की अनुमति दें, सम्राट् ने कहा, 'तो सखे, मैंने ठीक ही समझा था कि चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं। तुम भी आर्यक की तरह अपने से अपने को चुराते रहने का कारबार करते हो!' चन्द्रमौलि थोड़े लज्जित हुए। 'हाँ महाराज, आर्यक से भी बड़ा चोर हूँ। मेरी कहानी उलझी हुई नहीं है पर बहुत सुलझी भी नहीं है। लेकिन

थोडा रुकेंगे नही ?' सम्राट् ने हँसते हुए कहा, 'थोडा बाद में सही।' चन्द्रमौलि सम्राट् की इस सहानुभूति से गद्‌गद हो उठा। फिर सम्राट् ने आदरपूर्वक कहा, 'आर्यक से कैसे मैत्री हुई, यह तो बताओगे ना ?' चन्द्रमौलि ने सोल्लास सारी कथा सुना दी। आर्य देवरात, माढव्य शर्मा के बारे मे भी बताया और उज्जयिनी मे सुनी हुई शार्विलक की कहानी भी सुनायी। सम्राट् ने हर बात की ब्योरेवार जानकारी पाने का प्रयत्न किया, चन्द्रमौलि ने यथा ज्ञान उन्हें समझाया। सम्राट् चन्द्रमौलि से बहुत प्रभावित जान पडे। सम्राट् ने फिर अनुनय-भरा आग्रह किया, 'कह ही दो न मित्र, अपनी भी।' चन्द्रमौलि इस आग्रह-भरे अनुनय की उपेक्षा नही कर सका। उसके चेहरे पर लज्जा के भाव दिखायी पडे। बोला, 'कैसे कहूँ धर्ममूर्ते, कुछ कहने योग्य तो है नही। मैं बहुत छुटपन मे ही मातृ-पितृहीन अनाथ हो गया। ऐसे अनाथ-अभाजन को भी कोई प्यार कर सकता है यह एक विचित्र विधि-विधान है। परन्तु ऐसा सचमुच ही हुआ। एक परम रूपवती राजदुहिता ने इस अभाजन को पाने के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं सहे ? दारुण तपस्या की ज्वाला मे उसका स्वर्ण-कमल-सा कमनीय मुख झुलसकर काला हो गया। उसके अभिभावक मुझ-जैसे अनाथ को कन्या नही दे सकते थे और उसने ऐसी ठान ली कि दूसरे को किसी प्रकार वरण नही कर सकी। केवल एक बार मुझे छिपकर उसे देखने का सौभाग्य मिला। मैंने उसे हठ छोड़ देने को कहा पर उस समर्पित प्राणा को अपने निश्चय से डिगा नहीं सका। उसके मन मे यह आशका थी कि उसके घरवाले मेरा अनिष्ट करेंगे। वह बार-बार मुझे देश छोड़कर अन्यत्र चले जाने को कहती रही। कैसे छोड देता महाराज ! पर छोड़ना पडा। सच-झूठ तो नही जानता पर उसके घरवालो ने ही बताया कि वह मर गयी ! यही तो कहानी है धर्ममूर्ते !'

राजाधिराज समुद्रगुप्त ने टोका, 'झूठा समाचार भी तो हो सकता है कवि ?'

'कैसे कहूँ अकारण बन्धु ! यक्ष भूमि मे धर्म सकट से उद्धार पाने के लिए अपनी प्राणप्यारी कन्या या वधू को मार डालने की घटना तो होती ही रहती है। मेरा ससार सूना हो गया है। कौन बतायेगा कि समाचार ठीक था या नही। मेरा तो वहाँ प्रवेश ही निषिद्ध है।'

'अपने मित्र पर विश्वास रखो। मैं पता लगाऊँगा।'

'अपने मानसिक सन्ताप की ज्वाला से जलता रहा हूँ। संसार में कही भी तो उस रूप को नही देख पाता ! मैंने अपने को भुलाने के लिए समष्टि-चेतना में अपनी क्षुद्र सीमा को निमज्जित कर देने का प्रयास किया है।' चन्द्रमौलि महादेव ने तपोनिरता पार्वती को सम्बोधित करके कहा था, 'हे अवनतांगि, आज से मैं तुम्हारी तपस्या से खरीदा हुआ दास बना—अवनुतांगिदासः। मैं

आर्यक स्वयं आ रहा है। उसे देखकर कहीं आर्यक फिर तो नहीं भाग गया होगा। अपने किये का अनुताप उसे कभी नहीं हुआ था। आज हो रहा है। अगर आर्यक उसे देखकर बिदक गया तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मैं न बना जाय?

चन्द्रा के हृदय पर कोई आरी चल रही है। आज वह सोचने लगी है कि मेरे कारण सब अनर्थ हुआ है—मैं हाँ सब अनरथ कर हेतू!

चन्द्रा अपने में डूब रही है। किससे पूछे? कौन उसकी वेदना समझ सकता है? मृणाल समझ सकती है पर उससे इस समय ऐसी बात कैसे पूछी जा सकती है। हाँ एक आदमी और है—बाबा। बाबा मिल जाते तो रास्ता पूछती। बाबा सब जान जाते हैं। बिना कहे ही सब समझ लेते हैं। पर बाबा बहुत दूर हैं। उनके पास कैसे पहुँचा जा सकता है। उसे विन्ध्याचल की वह गुफा याद आयी। बाबा इसी गुफा में रहते हैं। वह मन-ही-मन उस गुफा में उतरने लगी। पता नहीं बाबा मिलें या न मिलें। बाबा अपने को बूढ़ा बेटा कहते हैं, चन्द्रा को माँ कहते हैं। क्यों न उन्हें माँ के रूप में पुकारा जाय। 'कहाँ हो चन्द्रा के बूढ़े बेटे, माँ व्याकुल है। दिखते क्यों नहीं।' चन्द्रा बाबा को देख रही है। ठीक वैसे ही एक किनारे चुपचाप बैठे हैं जैसे उस दिन बैठे थे—ठीक उसी तरह मुसका रहे हैं—ठीक उसी तरह।

'अरी मेरी त्रिनयनी माँ, तू देख क्यों नहीं रही है! बूढ़ा बेटा तो तेरे सामने है। तेरी आँखों को क्या हो गया माँ, तू तो सामने पड़े बूढ़े बेटे को भी नहीं देख रही है! क्यों बुलाया माँ, क्या कष्ट हो गया तुझे?'

'तुम्हीं बताओ बाबा, तुम्हारी त्रिलोचना माँ क्यों नहीं देख पा रही है।'

बाबा ठठाकर हँसे, 'तेरी आँखों में विकार आ गया है माँ।'

'हाँ बाबा, कुछ सूझ नहीं रहा है, रास्ता दिखाओ।'

'मेरी मनोजमानभंजिनी माँ, तू तो बच्चों की-सी बात कर रही है। तू तो अपने बूढ़े बेटे को रास्ता दिखायेगी। तू क्यों रास्ता पूछ रही है? तू बहुत भोली है माँ। तेरे तो सारे मनोविकार जल गये थे, फिर पलुहा गये क्या माँ? तेरी ललिता बहन भी तो मेरी माँ है। मैंने उस दिन उससे कहा था कि जब आर्यक आ जाये तो अपनी चन्द्रा दीदी का हाथ उसके हाथ में दे देना। तू सुन के बुरा मान गयी थी न माँ? मैंने तो तेरी परीक्षा लेनी चाही थी। तू एक ही परीक्षा में महरा गयी। तेरे मन में अभिमान पैदा हो गया था। तूने सोचा, यह अधिकार तेरा है! महरा गयी न माँ! अरे यह अभिमान भी मनोज ही है—मन में पैदा होता है। साथ में पैदा कर देता है ईर्ष्या को, असूया को, क्षोभ को, मोह को, अहंकार को। ये सब मनोज हैं माँ, मन ही में पैदा होने-वाले। कवियों ने केवल काम को मनोज कहा है—जानती है क्यों? क्योंकि

वह बिना किसी कारण के अकेले मे भी पैदा हो जाता है ? ये दूसरे जो हैं वे किसी दूसरे से सम्पर्क होने से पैदा होते हैं। जिसमे ये दूसरे मनोविकार पैदा नही होते । वह व्यक्ति-निष्ठ होता है, ऐकान्तिक होता है और मेरी भोली माँ, वह असामाजिक हो जाता है। तू पहले ऐसी ही थी । अब तुझे ऐकान्तिकता से अलग होने का अवसर मिला है । अब ये दूसरे प्रकार के मनोज विकार तेरे मन पर धावा बोलेंगे, बोल चुके हैं । ठीक कह रहा हूँ न जगत्तारिणी माँ ?'

'जानती है माँ, पुरुष ऐकान्तिक प्रेम का स्तवगान करे तो कर भी सकता है । पर जिसे जगत माता ने नारी-विग्रह दिया है उसके लिए यह प्रेम कठिन है । नारी, त्रैलोक्य जननी का पार्थिव विग्रह है, उसे ऐकान्तिक प्रेम महँगा पड़ता है ।'

'समझ नहीं पा रही हूँ । भरमानेवाली बातें न बताओ । मेरे मन में विकार पैदा हुए हैं, उन पर मेरा वश नही है, क्या करूँ ? क्या जगत्-माता ने नारी-विग्रह देकर मुझे इस भवसागर में भटकने के लिए ही भेजा है ?'

'ना रे ना ! तुझे नारी-विग्रह न देती तो मेरे जैसे कोटि-कोटि बालक अनाथ न हो जाते ? विकार बुरी बात थोड़े ही है ? इन्हे उलीचकर महाप्रेमिक को दे देना माँ । जानती है माँ, सेवा को क्यो इतना महत्त्व दिया जाता है ? सचराचर विश्वरूप भगवन्त को पाने का यही एक साधन है । और साधनाएँ व्यक्ति-परक हैं या निर्वैयक्तिक । सेवा ही ऐसी साधना है जो व्यक्ति के माध्यम से अग-जग व्यापी विश्वात्मा की प्राप्ति कराती है । नारी माता होकर इस साधना का अनायास अवसर पा जाती है । ऐकान्तिक प्रेम उसका सोपान मात्र है । तू उसे पार कर चुकी है । अब तुझे प्रेमी को माध्यम बनाकर विश्वात्मा को प्राप्त करने का अवसर मिला है ।

'भोली माँ, ईर्ष्या तो तब होगी जब तू स्वयं सब-कुछ पाना चाहेगी । औरों को वंचित करना चाहेगी माँ ! नहीं मेरी भोली माँ, तू माव रूप में 'माँ' बन, अकुंठ-अकातर चित्त से सेवा मे लग जा । अपने प्रेमी को माध्यम बनाकर सारे मनोभव विकारों को अज्ञात महाप्रेमिक के चरणों में उँडेल दे । ईर्ष्या, मान, अभिमान सब उसी के चरणों में ढाल दे । तेरा क्या है रे ? कैसा मान और कैसा अभिमान ? मन मे उठते हैं तो उसे ही दे दे जिसके लिए उठते हैं ।'

'बड़ी दुर्बल हूँ बाबा, न दे पायी तो क्या टूटकर बिखर जाऊँगी ?'

'टूटे तेरा अहंकार ! तू क्यों टूटेगी माँ ? वही टूटता है जिसमें देने की इच्छा नही रहती । मन दृढ़ कर माँ, तू दे सकेगी । सब उलीचकर दे सकेगी । तेरी इच्छा-शक्ति प्रबल है, उतनी ही प्रबल है तेरी क्रिया-शक्ति । दोनों को तूने दो कोठों में डालकर बन्द कर दिया है । ऐसा कर कि दोनों साथ-साथ ताल मिलाकर चल सकें । और बूढ़ा बेटा किस दिन काम आयेगा रे जगदम्बिके !

तेरी इच्छा-शक्ति और क्रिया-शक्ति ताल मिलाकर चलने लगेंगी, उस दिन नयी गरिमा पायेगी। और तेरा बूढ़ा बेटा नाच-नाचकर तेरे पीछे भागेगा। जब कठिनाई हो तो बुला लेना माँ!'

चन्द्रा उद्विग्न हो गयी। क्या सुना उसने? अब तक वह ऐकान्तिक प्रेम में थी। अब सामाजिक परिवेश में आने का अवसर मिला है। सबकी सेवा करने से ही उसे सचराचर विश्वरूप भगवन्त का साक्षात्कार होगा। सारे मनोज-विकार महा प्रेमिक के चरणों में उँडेल देना होगा—मान भी, अभिमान भी, ईर्ष्या भी, असूया भी! ये सब सामाजिक परिवेश की देन है। अपना क्या है? कुछ नहीं।

चन्द्रा उसी प्रकार तन्द्रिल अवस्था में देर तक पड़ी रही। आर्यक यदि उसे देखकर बिदक गया तो सारा खेल बिगड़ जायेगा। अभिमान अगर मन में पैदा हुआ तो वह उसे उखाड़कर फेंक देगी। आर्यक सुखी रहे। मृणाल सुखी रहे। उसे कोई लोभ नहीं है।

अभिमान को कैसे किसी को दिया जा सकता है? बाबा कहते हैं, सारे मनोभव विकारों को महा प्रेमिक के चरणों में उँडेल दे। कैसे उँडेल दे भला? बाबा पहेली बुझाते हैं? कैसे दिया जा सकता है? इच्छा-शक्ति के साथ क्रिया-शक्ति भी होनी चाहिए। देने की इच्छा और देने की क्रिया—क्या मतलब हुआ? हाय मूर्ख, अपने-आपको बचा लेने की इच्छा और तदनुकूल क्रिया, इसी का नाम तो अभिमान है। उसे देना तो अपने-आपको ही दे देना है—रंच-मात्र भी बचा रखने की लालसा और प्रयास के बिना परिपूर्ण आत्मदान। चन्द्रा कुछ-कुछ समझ रही है।

बोली, 'नहीं हो सकेगा बाबा, नहीं हो सकेगा! जानते हो बाबा, मैंने कभी भी आर्यक को आदरार्थक सर्वनाम 'आप' से सम्बोधित नहीं किया। मृणाल जब आदरार्थक सर्वनामों से उसकी चर्चा करती है तो बड़ा मीठा लगता है। वह आर्यक का नाम कभी नहीं लेती। सभी स्त्रियों की यही परंपरा है। जब वह कहती है 'वे' और, उनका' तो उसके मुँह से निकले ये शब्द छोटे बच्चों की तोतली बोली के समान बड़े प्यारे लगते हैं। छोटे बच्चे व्याकरण और वाक्य-रचना की बारीकियाँ नहीं जानते है, केवल अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु कितने मीठे लगते हैं वे अनबूझे शब्द! मृणाल बच्ची है, उसके ये शब्द तोतली बोली के समान प्रिय लगते हैं। बिचारी जानती ही नहीं कि इनका अर्थ क्या है। मैं उससे बड़ी हूँ, इन शब्दों का अर्थ जानती हूँ, मैं इन निरर्थक शब्दों का उच्चारण भी नहीं कर सकती। सामान्य रूप से कहा जाता है और माना जाता है कि पति देवता होता है, उसकी पूजा करनी होती है। यह बात आज तक मेरी समझ में न आयी कि प्रेम में पूजा का स्थान कहाँ है और क्या है?

बाबा, मुझे ये विचार भोंडे लगते हैं। कहोगे बाबा, तो मैं उनके लिए आग में कूद जाऊँगी, पर चरणों में अपने को नहीं उँडेल सकती। कुछ और बताओ बाबा, जो मेरे 'स्वभाव' के अनुकूल हो।'

'धन्य है मेरी ऋतंभरा माँ। तू अगर सच बोल रही है तो तेरी यह बात अद्भुत है। इतनी बड़ी बात तो त्रिपुर सुन्दरी भी नहीं कह सकी थीं। कहते हैं कि केवल त्रिपुर भैरवी ही नाम लेकर शिव को सम्बोधित कर सकती थीं। तुझमें त्रिपुर भैरवी का निवास देख रहा हूँ माता। त्रिपुर सुन्दरी ने शिव के कर्पूर गौर वक्षःस्थल में अपनी ही छाया देखकर उसे भैरवी नाम दिया था। ऐ सौभाग्य-जननी माँ, तूने कैसे समझ लिया कि मैंने तुझे तेरे सखा के चरणों में लोट जाने को कहा है? आर्यक तो केवल तेरा माध्यम होगा माँ, तुझे अपने सारे विकारों को उसे सौंपने को तो मैंने कहा नहीं माँ। मेरा संकेत था कि तू अपने सारे विकारों को निखिल चराचर विश्वात्मा को सौंप दे। तू अगर अपने सखा प्रेमिक के चरणों में अपने-आपको नहीं डाल सकती तो न डाल। इसमें कोई दोष नहीं है। त्रुटि-विच्युति तब होगी माँ, जब विश्वात्मा के चरणों में अपने को उलीचकर नहीं दे सकेगी। कैसे देगी मेरी निर्बोध माँ, तू तो अहंकार से जकड़ गयी है। अहंकार क्या है, जानती है? अपने-आपको सबसे अलग विशिष्ट समझने की बुद्धि। हैं रे जगद्धात्री माँ, तू इसी बुद्धि के चक्कर में है। इसी बुद्धि से बचने के लिए माध्यमों का विधान है। ये माध्यम अनेक हो सकते हैं—श्रद्धा का पात्र गुरु, प्रेम का पात्र प्रेमी या प्रेमिका, स्नेह का पात्र सन्तान, विश्वास का पात्र देवता—कोई-न-कोई माध्यम खोजना पड़ता है। तुझे अनायास मिल गया है आर्यक, साथ में मिली है मृणाल। पर माँ, श्रद्धा हो, प्रेम हो, स्नेह हो, आत्मदान करना ही होता है। चरणों में लोटना ही आत्मदान नहीं होता। अपने अहंकार को, अलगाव की बुद्धि को, मान को, अभिमान को, सम्पूर्ण आपा को तो उलीचकर दे ही देना पड़ता है। चरणों में देने का मतलब है अपने को, अपने अहंकार को, नीचे की ओर झुकाना। सिर पर पटक देने से तो अहंकार ऊर्ध्वगामी होगा माँ। भावार्थ को समझने का प्रयत्न कर, शब्दार्थ में मत उलझ।'

चन्द्रा भावार्थ में जाने का प्रयास करती है। बाबा हँस रहे हैं। 'त्रिपुर भैरवी माया है माँ, वह त्रिपुर सुन्दरी के अहंकार की छाया है। धोखा है, अनेक जन्मों की विकट साधना से जब जगज्जननी सन्तुष्ट होती हैं तो नारि-विग्रह देती हैं। वे स्वयं निषेध-व्यापार रूपा हैं, अपने-आपको मिटा देने की भावना का मूर्त विग्रह। वे नारी-काया को ही अपना प्रतिरूप बनाती हैं, पर यह त्रिपुर भैरवी है कि सर्वत्र उपस्थित हो जाती है—अहंकार के रूप में वे नारी को ऐकान्तिक प्रेम के मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित करती हैं, सेवा के

वास्तविक धर्म से वंचित रहने को उत्साहित करती हैं, उद्दाम वासना को बरसाती हैं पर निखिल जगत् की माता त्रिपुर सुन्दरी सदा रक्षा करती रहती है—तू बिना सेवा के किसी प्रकार के प्रेम की कल्पना कर सकती है मेरी भोली माँ ? नहीं कर सकती । यही त्रिपुर सुन्दरी के अस्तित्व का प्रमाण है । है न ?'

'हाँ बाबा !'

'तो विभिन्न भाव-धाराओं में बहने-उतराने की क्या आवश्यकता आ पड़ी ? सहज बन जा माँ, एकदम सहज । अहंकार को उखाड़कर फेंक दे । मेरी माँ, अहंकार को तो तू इस बूढ़े बेटे को भी दे सकती है । दे दे माँ । दे तो अपनी ग्रीवा, तनिक देखूँ ।'

चन्द्रा ने अपनी गर्दन झुका दी, बाबा ने अपने अँगूठे से उसकी ग्रीवा को दबाया । चन्द्रा वेदना से चिल्ला उठी । बाबा ने आश्चर्य से कहा, 'मन्या और अलवुषा दोनो बहुत सूज गयी हैं । हैं न माँ जगद्धात्री ।' उन्होने थोड़ा सहलाकर और दबाया । चन्द्रा को बड़ी पीड़ा हुई, लेकिन पीड़ा मे एक प्रकार का सुख भी था । लगता था हृदय-द्वार से अनेक जटिल ग्रंथियाँ खुलती जा रही है । वह चीखती जाती थी और शान्ति भी अनुभव करती जा रही थी । बाबा का अँगूठा देर तक उसकी ग्रीवा पर चला रहा । वे हर चीख पर हँसते जा रहे थे, 'ठीक हो रही है रे, सब नाड़ियाँ ठीक होती जा रही हैं । घबड़ा मत माँ, सब सहज अवस्था मे आती जा रही है—एकदम सहज । हाय माँ, ये बनी रहती तो तेरा सिर झुक नही सकता था । बहुत दिनों से सूजी हुई लगती हैं ।' बाबा ने एक बार हथेली से पूरी ग्रीवा दबायी, 'सो जा माँ, सो जा । कैसा मालूम हो रहा है रे मेरी अभिमानिनी माँ, कैसा लग रहा है ?' चन्द्रा लुढ़ककर बाबा के चरणो पर गिर पड़ी । अपूर्व शान्ति उसके मुख पर दमक उठी । बाबा ने उसे बैठा दिया ।' सो जा माँ, भगवती त्रिपुर सुन्दरी की गोदी में सो जा । जब उचित समझेगी तब तुझे उठा देगी ।'

बाबा उठे, पता नही किससे बात करते रहे । अन्त मे बोले, 'भगवती, बहुत भोली है मेरी यह माँ, तुम्ही सम्हालो । अब मेरा यहाँ क्या काम है ?'

बाबा चले गये । चन्द्रा ऐसे सो गयी जैसे कोई नन्ही बालिका माँ की गोदी में सो गयी हो ।

मृणाल ध्यानमग्न है । महादेव, तुम्हारी कृपा अपरम्पार है । तुम्ही ने दिया है नाथ, तुम्ही उन्हे अपना बनाओ । वे आयेंगे, यही आयेंगे । तुम्हारे चरणों मे ही उन्हे पा सकूँगी । देवाधिदेव, तुम्हारा आशीर्वाद अमोघ है ।

आयेंगे, अवश्य आयेंगे । मृणाल का हृदय उछल रहा है ।

मृणाल मन-ही-मन आर्यक के शुभागमन की कल्पना कर रही है । आते ही उनके पास पहुँचेंगे । छाती से लगा लेंगे । मैं उनकी आदत जानती हूँ ।

छाती से लगाकर चिबुक ऊपर उठा लेंगे। पर नहीं; यह उचित नहीं होगा। पहले उन्हें दीदी से मिलना चाहिए। दीदी का अधिकार पहला है। हाय-हाय, दीदी ने आग में कूदकर उनका जीवन बचाया है। दुर्धर्ष शत्रुओं के व्यूह में घुसकर उनकी सहायता की है—दीदी को अपने प्राणों की, मान की, चिन्ता नहीं है। दीदी का अधिकार उनके प्राणों पर है, शरीर पर है, मन पर है! कहीं ऐसा न हो कि वे दीदी को भूल जायें। बुरा होगा। जो सचमुच आदरणीय है उसका आदर उपेक्षित न हो जाय। वे आ रहे हैं; देवाधिदेव, कोई उपाय करो कि वे पहले दीदी से मिल लें। अनौचित्य दोष से रक्षा करना देवता। मैं दीदी के चरणों में सदा नत रही हूँ। इस सौभाग्योदय के दिन कोई दोष न हो जाय जगद्गुरो।

मृणाल चिन्तित है। इतने दिनों तक न जाने कहाँ-कहाँ भटकते फिरे हैं। कैसी हो गयी होगी उनकी वलिष्ठ काया! बहुत दुःख भोगा है—सिर्फ एक मानसिक भ्रम के कारण। देवाधिदेव, सारे मानसिक विकारों को ध्वस्त करते रहते हो। उनके मानसिक भ्रम को भी दूर कर देना।

दीदी के मन में आज चाचल्य देखा है; महादेव, उनके चित्त की निर्मलता और प्रेम की पवित्रता के तुम साक्षी हो। सब-कुछ ठीक कर दो नाथ, मृणाल अबोध है।

सुमेर काका एक बार घाट की ओर जाते हैं, एक बार ऊपर वाले रास्ते को देखते हैं। मथुरा जाना चाहिए था। वह क्या जानता है कि हम लोग कहाँ हैं। मथुरा पहुँच गया होगा। सुना है सम्राट् उससे मिलने को व्याकुल है। कुछ तो बतायेगा ही। कहीं नाव से ही न चल पड़े। विचारा कैसे पहचानेगा अपनी नाव। वे दूर-दूर तक की नावों को देख रहे है।

भोले सुमेर काका को पता नहीं कि सम्राट् को उन लोगों की घड़ी-घड़ी की स्थिति मालूम है।

शोमन भी समझ रहा है, चुप है।

सोमेश्वर के साथियों में मंत्रणा चल रही है। भैया हम लोगों को पहचान लेंगे कि नहीं। मथुरा तक तो आ गये होंगे। भाभी ने नाव रोक क्यों दी? भैया यहीं आ जायें, यह संभव है या नहीं। कैसे उनका स्वागत किया जाय। शोमन ऊब गया है। वह बड़ी अम्मा को खोज रहा है। कहाँ गयी बड़ी अम्मा? वह काका से पूछता है। काका ने मन्दिर में देखा, पटवासों में देखा, नाव में देखा, कहीं नहीं है। कहाँ चली गयी?

काका का हृदय धड़कने लगा। कहाँ चली गयी? अभी तो यहीं थी। चन्द्रा, चन्द्रा!

काका ने फिर देखा, फिर देखा। कहीं नहीं है। कहाँ चली गयी? हे

भगवान् !

जितने भी साथी थे, सब विभिन्न स्थानों की ओर दौड़े। दोनों नावें दोनों दिशाओं में भागीं—'चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी।'

जिस समय आर्यक की नाव घाट पर लगी, मन्दिर के चारों ओर भाग-दौड़ मची थी। सोमेश्वर के साथी विशाल बरगद के कोने-कोने छान रहे थे। और चिल्लाते जा रहे थे—'चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी।' काका के होश-हवास गुम थे। वे नदी की ओर दौड़ पड़े थे—'चन्द्रा, चन्द्रा।' सोमेश्वर के दो साथी सामनेवाले रास्ते पर दौड़ रहे थे—चन्द्रा भाभी। मन्दिर में मृणाल का ध्यान टूट चुका था। वह भी भागी—'दीदी, दीदी।'

विचित्र दृश्य था। आर्यक मन्दिर के सामने आया। सारी गोलमाल देखकर वह स्तब्ध रह गया। इसी समय सोमेश्वर ने दूर के एक सघन प्ररोह कुंज में चन्द्रा को संज्ञाशून्य अवस्था में पड़ा देखा। वहीं से चिल्लाकर बोला, 'भाभी दौड़ो, काका दौड़ो, देखो चन्द्रा भाभी को क्या हो गया है ! अरे जल्दी दौड़ो, हे भगवान् क्या हो गया है इन्हें ! चन्द्रा भाभी, चन्द्रा भाभी, उठो। दौड़ो काका, दौड़ो भाभी।'

मृणाल उन्मादिनी की तरह दौड़ी। 'दीदी, दीदी, हे भगवान् !' काका दूर थे। शोमन को लिये-दिये हाँफते-हाँफते दौड़े।

आर्यक भी दौड़ा। अप्रत्याशित आशंका से उसका हृदय धड़कने लगा।

मृणाल ने चन्द्रा को गोद में उठा लिया था—'भाई सोम, दौड़ के पानी लाओ।' सोमेश्वर पानी लाने भागा।

आर्यक पहुँच गया—'क्या हुआ मैना ?'

हाय, देवाधिदेव, वे आ गये। कैसा विचित्र संयोग खड़ा कर दिया नाथ। उनके चरणों में सिर रख देने से भी वंचित रह गयी। दीदी को बचा लो प्रभो, सब दिया, इतना और दे दो नाथ !

मैना की आँखों में अश्रुधारा बाँध तोड़कर बहने लगी। उसने इशारे से आर्यक को पास बुलाया। अश्रुभरित आँखों से देखा, सिर आयामपूर्वक झुकाया। फिर चन्द्रा को उसकी गोद में डाल दिया। आर्यक की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने चन्द्रा की नाड़ी देखी। पानी माँगा। सोमेश्वर पानी ले आया था, आर्यक को देखकर सहम गया, 'भैया !'

मृणाल ने होठों पर उँगली रखकर कहा, 'चुप !' इशारे से कहा, 'तनिक उधर जाओ।'

आर्यक ने चन्द्रा के मुँह में पानी दिया। मृणाल हवा करने लगी। काका आये—हतवाक् !

वे एक ओर हो गये।

...pired by the pages of history. The whole story is fiction but it is based on historical facts. Certain incidents that have happened in history are there in the film. Though not necessarily in the same circumstances.

History tells us that there was a revolution against the British in 1857 but it fails to either explain the circumstances in which the revolution started or tell us about the first man who led the revolt. I have fictionalised this man and

flop. With this
compromises y
the film?

Not only the
but a lot of m
involved too. W
making "Kranti
buyer. I made a
the film with my
three plots of l
raise the
you said, I just c
But I haven't i